अन्तोन मकारेंको

एक पुस्तक माता-पिता के लिए

अन्तोन मकारेंको लिखित
एक पुस्तक माता-पिता के लिए

यह पुस्तक परिकल्पना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित की गई है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाई जा रही है। अगर आप पीडीएफ की बजाय प्रिण्ट कॉपी से पढ़ना चाहते हैं तो जनचेतना से सम्पर्क कर सकते हैं। जनचेतना द्वारा वितरित किया जा रहा अन्य प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य दिये गये अमेजन लिंक से खरीद सकते हैं।

अमेजन लिंक : https://goo.gl/bxmZR5

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Luc-know-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविताएं, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ में
- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- हर रविवार किसी महत्वपूर्ण पुस्तक की पीडीएफ

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए इस लिंक का इस्तेमाल करें

www.mazdoorbigul.net/whatsapp

जुड़ने में समस्या आने पर अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें – 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

एक पुस्तक माता–पिता के लिए

अन्तोन मकारेंको

एक पुस्तक
माता–पिता के लिए

अन्तोन मकारेंको

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

अनुवादक : जगदीश चन्द्र पाण्डेय

मूल्य / रु. 80.00

प्रथम संस्करण / **जनवरी, 2006**

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना, डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 द्वारा प्रकाशित
क्रिएटिव प्रिन्टर्स 628/S-28, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण-परिकल्पना एवं संयोजन / **रामबाबू**

EK PUSTAK MATA PITA KE LIYE *by :* ***Anton Makarenko***

अनुक्रम

अन्तोन सेम्योनोविच माकारेंको और उनकी 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए'	7
पहला अध्याय	17
दूसरा अध्याय	32
तीसरा अध्याय	46
चौथा अध्याय	77
पाँचवाँ अध्याय	95
छठा अध्याय	145
सातवाँ अध्याय	211
आठवाँ	249
नवें अध्याय से	290

अन्तोन सेम्योनोविच मकारेंको और उनकी 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए'

अन्तोन सेम्योनोविच मकारेंको के शैक्षिक क्रिया-कलाप बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में सम्पन्न हुए थे। वे रूसी बुद्धिजीवियों की उस पीढ़ी के थे, जिसके कंधों पर नयी, समाजवादी संस्कृति की नींव के निर्माण के महान, सुखद, परन्तु कठिन कार्य में हाथ बंटाने का उत्तरदायित्व था। उस महान सोवियत शिक्षाशास्त्री की रचनात्मक विरासत कम्युनिस्ट लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा के सिद्धान्त व व्यवहार की प्रणाली में एक महान योगदान है और वह हमारे आज के युग के लिए भी महत्वपूर्ण है।

अ. से. मकारेंको का जीवन उनकी युवावस्था से ही शिक्षा शास्त्र को समर्पित था। उनका जन्म 1888 में एक बड़े उक्राइनी मज़दूर परिवार में हुआ था। उनके माता-पिता अपढ़ थे, लेकिन वे ज्ञान के महत्व तथा शक्ति को जानते थे और वे इस तथ्य को महत्व देते थे कि उनके बेटे को बचपन से पुस्तकों का बहुत चाव था। अन्तोन पांच वर्ष की अवस्था से ही धाराप्रवाह पाठ कर सकता था। 1895 में उन्हें एक प्राथमिक पाठशाला में भर्ती कर दिया गया।

1900 में उनका परिवार क्रेमेंचूग नगर के निकट क्रियूकोवो गांव में रहता था। अन्तोन ने क्रेमेंचूग नगर के स्कूल में अध्ययन किया। उस स्कूल का पाठ्यक्रम ख़ासा प्रभावशाली था : वहाँ रूसी, अंकगणित, भूगोल, इतिहास, प्राकृतिक-विज्ञान, भौतिकी के अलावा रेखांकन, चित्रांकन, संगीत तथा व्यायाम की शिक्षा भी दी जाती थी।

अन्तोन कुशाग्र-बुद्धि का विद्यार्थी था। उन्हें उस समय रूसी और विदेशी क्लासिकी साहित्य का जितना ज्ञान था, वह उनकी उम्र के बालक के लिए एक आश्चर्यजनक बात थी। उन्हें दर्शनशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान और कला-समालोचना का आधारभूत ज्ञान भी था।

मकारेंको ने सोलह वर्ष की अवस्था में स्कूल की पढ़ाई पूरी कर ली और उसी स्कूल के वार्षिक शैक्षिक पाठ्यक्रम में भर्ती हो गये। वह स्कूल प्राथमिक स्कूलों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित करता था।

1905 के वसन्त में मकारेंको ने शैक्षिक पाठ्यक्रम पूरा किया और उसी साल से क्रियूकोवो के प्राथमिक स्कूल में पढ़ाना शुरू कर दिया। उन्हें बहुत सारी बातों का ज्ञान था और वे विद्यादान करने, शिक्षार्थियों को चिंतन तथा विवेचन करना सिखलाने में समर्थ थे। लेकिन इस महान भावी शिक्षाशास्त्री को एक अच्छा शिक्षक बनने में

समय लगा। जब वे एक अच्छे अनुभवी शिक्षक बन गये थे, तो वे एक ऐसी ग़लती कर बैठे, जिससे उन्हें बहुत वेदना हुई। एक शिक्षा-सत्र के परिणामों का समाहार करते समय उन्होंने एक शैक्षिक प्रयोग करने का निर्णय किया : मकारेंको ने प्रत्येक विद्यार्थी के औसत अंकों की गणना की और एक विद्यार्थी को प्रमाण-पत्र दिया-‘‘सैंतीसवाँ और अन्तिम’’। बाद में उन्हें ज्ञात हुआ कि उस विद्यार्थी को यह प्रमाणपत्र इसलिए नहीं मिला कि वह सुस्त था, बल्कि इसलिये मिला कि वह गम्भीर और लाइलाज बीमारी से ग्रस्त था। इससे उस लड़के को अतीव दुख हुआ...

इस घटना से मकारेंको का दिल टूट गया। उस युवा अध्यापक ने कटु अनुभव से सीखा कि स्कूल में सफल होने के लिए केवल पढ़ाने की ही नहीं, बल्कि शिक्षार्थियों के लालन-पालन की योग्यता भी जरूरी है। कौन जाने, इसी घटना से उनके मन में यह विचार उपजा हो कि लालन-पालन की पद्धतियों को केवल अध्यापन तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है, कि यह शिक्षा-विज्ञान का ऐसा विशेष व स्वतंत्र क्षेत्र है, जिसका अपना ही विषय तथा अपने ही नियम हैं।

1911 में अ. से. मकारेंको को दोलींस्काया रेलवे-स्टेशन को स्थानान्तरित कर दिया गया। इस युवा अध्यापक ने शिक्षार्थियों को अनेक दिलचस्प कार्यकलाप में लगाकर उनके फ़ालतू समय का सदुपयोग किया : वे नाटकों का मंचन, फ़ैन्सी ड्रेस नृत्य-समारोहों तथा खेलों का आयोजन करते थे। वे भावनाओं को संज्ञान से मिलाते हुए अध्यापन का अपना काम भी बड़ी ही कुशलता से करते थे।

1914 में, पोल्तावा में अध्यापक-संस्थान खुला, जिसमें अपूर्ण माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता था। मकारेंको सीखने-पढ़ने के लिए हमेशा बहुत उत्सुक रहते थे, उन्होंने इस अवसर का तुरन्त लाभ उठाया। शानदार अंकों के साथ प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वे एक विद्यार्थी बन गये।

एक परिपक्व व्यक्ति के रूप में संस्थान के विद्यार्थी बनकर मकारेंको ने शिक्षा-वैज्ञानिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक साहित्य का गहन अध्ययन किया। उन्होंने जो कुछ पढ़ा उसे तुरन्त समझ लिया, क्योंकि उन्हें जीवन का तथा स्कूल में कई वर्षों के अध्यापन का अनुभव था।

1917 के ग्रीष्मकाल में मकारेंको ने स्वर्ण-पदक लेकर परीक्षा पास की। संस्थान द्वारा जारी प्रशस्ति में कहा गया था, ‘‘अ. से. मकारेंको असाधारण योग्यताओं, ज्ञान, बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा अध्यवसायी हैं। उन्होंने शिक्षा-विज्ञान और मानविकी के विषयों में विशेष दिलचस्पी दिखलायी और उनका बहुत अध्ययन किया। उनके निबंध हमेशा अत्युत्तम होते थे। वे एक बहुत अच्छे, और ख़ास तौर से रूसी भाषा व इतिहास के, अध्यापक बनेंगे।’’

महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद अ. से. मकारेंको के जीवन में एक नयी अवस्था का समारम्भ हुआ। भूतपूर्व ज़ारशाही रूस के अन्दर अभूतपूर्व रफ़्तार और विस्तार से एक नये जीवन का निर्माण हो रहा था। संयंत्रों, नये नगरों और

गाँवों की तथा लोगों के बीच नये सम्बन्धों की रचना हो रही थी।

1918 के आरम्भ में अ. स. मकारेंको को क्रियूकोवो के स्कूल का डायरेक्टर नियुक्त किया गया। उस स्कूल को माध्यमिक स्कूल बना दिया गया था।

1920 में अ. से. मकारेंको ने उक्राइना में पोल्तावा के निकट अनाथ बच्चों तथा बाल-अपराधियों के लिए एक बस्ती का संगठन करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार के शैक्षिक प्रतिष्ठान ऐसे समय में स्थापित किये गये थे जो नवोदित सोवियत जनतंत्र के लिए बहुत कठिन था। प्रथम विश्व-युद्ध और विदेशी हस्तक्षेप से महामारी और अकाल तथा भारी आर्थिक विनाश हो गया था और हज़ारों बच्चे अपने माता-पिताओं को गँवाकर बेघर हो गये थे।

सोवियत सरकार ने जो असाधारण उपाय किये थे उनमें बच्चों को फ़ौरी तथा कारगर सहायता देने के लिए किये गये उपाय भी शामिल थे। जनवरी, 1919 में व्ला. इ. लेनिन की पहल पर बच्चों के संरक्षणार्थ राजकीय परिषद का गठन किया गया। शिक्षा के जन-कमिसार अ. व. लुनाचार्स्की* उसके अध्यक्ष थे। परिषद ने बच्चों को अधिक समृद्ध इलाकों को पहुँचाने के निर्देश दिये और उनके सामूहिक खान-पान तथा खाद्य-पदार्थों व वस्त्रादि की आपूर्ति का इन्तज़ाम किया।

1921 के आरम्भ में फे. ए. द्ज़ेर्जीन्स्की** की पेशक़दमी पर बच्चों के रहन-सहन की दशा सुधारने के वास्ते एक आयोग का गठन किया गया। इसके गठन के कारणों को स्पष्ट करते हुए फे. ए. द्ज़ेर्जीन्स्की ने लिखा : "...यह एक भयानक विपत्ति है। बच्चों पर नज़र डालने पर कोई भी सोचे बिना नहीं रह सकता है-सब कुछ उनके लिए! क्रान्ति के फल हमारे लिए नहीं, उनके लिए हैं। यहाँ हमें उनकी सहायता इस प्रकार से शीघ्रता से करनी चाहिए, गोया हमने उन्हें दरिया में डूबते देखा हो... सारी सोवियत जनता के लिए जरूरी है कि बड़े पैमाने पर उन्हें सहायता दे।"***

बेघर बच्चों को बचाने के लिए राज्य द्वारा किये गये ज़ोरदार प्रयत्नों के फलस्वरूप देश भर में बच्चों के हज़ारों प्रतिष्ठानों की स्थापना हुई।

अ. से. मकारेंको ऐसे ही एक बस्ती के डायरेक्टर बने। बाद में उस बस्ती का नामकरण अ. मा. गोर्की**** के नाम पर किया गया।

---

* **लुनाचार्स्की, अनातोली वसील्येविच** (1808-1933)-प्रमुख सोवियत राजनेता, पार्टी कार्यकर्ता, लेखक, आलोचक। अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद शिक्षा के पहले जन-कमिसार (1929 तक)**-सं.**

** **द्ज़ेर्जीन्स्की, फेलिक्स एद्मुन्दोविच** (1877-1926)-सुख्यात क्रान्तिकारी, कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज्य के प्रमुख नेता, अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद अखिल रूसी असाधारण आयोग के अध्यक्ष।**-सं.**

*** फे. ए. द्ज़ेर्जीन्स्की, 'चयनित लेख व भाषण'। गोस्पोलितिज़्दात, 1947, पृष्ठ 144 (रूसी भाषा में)।

**** **गोर्की अ. मा. (पेश्कोव)** (1868-1936)-महान रूसी सोवियत लेखक, सामाजिक

अपने भाषणों तथा लेखों में अ. से. मकारेंको अपने क्रिया-कलाप को महज़ बाल-अपराधियों के साथ किये गये काम का अनुभव मानने का अक्सर विरोध किया करते थे। ''...किसी प्रकार के कोई विशेष ''अपराधी'' नहीं होते, बल्कि कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो विषम स्थिति में जा पड़े हैं।'' अ. से. मकारेंको की विशिष्ट शिक्षा-वैज्ञानिक प्रतिभा का विषय ऐसे बच्चे थे, जो सर्वाधिक प्राकृतिक वस्तुओं-स्नेह और माता-पिता की देखभाल-से वंचित हो गये थे। ''कोई भी सामान्य बच्चा, जो सहायता, समाज, समूह, दोस्त तथा अनुभव के बग़ैर और तनावपूर्ण मानसिकता सहित, किसी भी परिप्रेक्ष्य के बिना बेघरबार सड़क पर आ पड़ता है, वह वैसा ही व्यवहार करेगा जैसा उन्होंने किया,''* उन्होंने अपने शिक्षार्थियों के बारे में लिखा। मकारेंको की मुख्य प्रस्थापनाओं को कोई भी अध्यापक, चाहे वह बच्चों के किसी भी प्रतिष्ठान में काम क्यों न करता हो, सफलतापूर्वक उपयोग में ला सकता है।

शिक्षा तथा लालन-पालन की जिन पद्धतियों को अ. से. मकारेंको ने अ. मा. गोर्की के नाम पर बनी बस्ती में इस्तेमाल किया, उन्हें उन्होंने फे. ए. दज़ेर्जीन्स्की के नाम पर बने कम्यून में सुधरे हुए शैक्षिक व भौतिक आधार पर और भी अधिक विकसित किया। कम्यून के अन्दर प्रयुक्त शैक्षिक प्रक्रिया शिक्षार्थियों के अधिगम, उत्पादक श्रम, सौन्दर्यबोध तथा शारीरिक विकास की घनिष्ठ एकता पर आधारित थी। कम्यून के सदस्य वस्त्रों की, काष्ठ कला तथा धातुकर्मीय कार्यशालाओं में काम करते थे। बाद में कम्यून में एक विद्युत उपकरण संयंत्र तथा एक फ़ोटो कैमरा संयंत्र बनाया गया। कम्यून अपने स्नातकों को माध्यमिक शिक्षा प्रदान करता था और जो व्यावसायिक, माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा संस्थानों में जाते थे उन्हें वज़ीफ़े देता था। शिक्षार्थियों के ख़ाली समय में कम्यून में कई प्रकार की मण्डलियाँ तथा खेलकूद आदि के कार्यक्रम चलते थे। प्रत्येक शिक्षार्थी कोई न कोई दिलचस्प काम पा जाता था और अपनी क्षमताओं तथा रचनात्मक रुझानों का विकास करता था।

अ. से. मकारेंको ने बस्ती तथा कम्यून के अपने 15 वर्षीय काम के अनुभव का वर्णन 'जीवन की ओर (शिक्षा का महाकाव्य)', 'मीनारों पर झण्डे', '1930 का प्रयाण', 'फ़ेद-1', 'आशावादी शैली' नामक पुस्तकों तथा कई सैद्धान्तिक लेखों में प्रस्तुत किया है।

यह वह अवधि थी, जिसमें मकारेंको ने लालन-पालन की अपनी उस पद्धति को ठोस रूप प्रदान किया, जिसका सर्वोच्च सिद्धान्त मनुष्य के प्रति, उसके अनूठे व्यक्तित्व तथा उसकी व्यक्तिगत विशिष्टताओं के प्रति सम्मान है।

कार्यकर्त्ता।

उनका अ. से. मकारेंको के साथ बहुत समय से पत्र-व्यवहार था। वे उनके ख़ार्कोव के निकट स्थित बाल-बस्ती में शैक्षणिक कार्य तथा उनके लेखन-कार्य में दिलचस्पी रखते थे। 1928 में वे अपने नाम पर निर्मित बाल-बस्ती में उनके मेहमान थे।

* अ. से. मकारेंको, 'रचनाएँ', रूसी संघ की शिक्षा-विज्ञान अकादमी, 1958, खण्ड 5, पृष्ठ 438। (रूसी भाषा में)

अ. से. मकारेंको ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष मास्को में बिताये, जहाँ उन्होंने अपने सारे प्रयासों को वैज्ञानिक तथा साहित्यिक रचना में लगाया। उन्होंने बड़े ही उत्साह के साथ फलप्रद काम किया, उनके ज्वलन्त प्रतिभापूर्ण लेख, एक के बाद एक, प्रकाशित होते चले गये। अपने अनगिनत पाठकों के आवेदन पर उन्होंने रिपोर्टें पेश कीं तथा व्याख्यान भी दिये।

जनवरी, 1939 में अ. से. मकारेंको को उनके दीर्घकालीन रचनात्मक कार्यकलाप के लिये श्रम के लाल ध्वज के पदक से अलंकृत किया गया। उन्होंने एक छोटी-सी अवधि में शिक्षा-विज्ञान पर कई लेख तथा साहित्यिक निबन्ध लिखे। वे अपनी 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए' को और आगे बढ़ाना तथा अपने उपन्यास 'पीढ़ी का पथ' को पूरा करना चाहते थे। इसके अलावा उन्होंने लालन-पालन पर एक आधारभूत ग्रन्थ लिखने के लिये तीन साल की एक योजना भी बनायी थी, परन्तु पहली अप्रैल, 1939 को उनका देहावसान हो गया।

अ. से. मकारेंको जो शिक्षा-वैज्ञानिक विरासत छोड़ गये हैं वह वैज्ञानिक विचारों की प्रचुरता तथा मनुष्य पर अटूट विश्वास के कारण आज भी सराही जाती है। सोवियत संघ तथा कई अन्य देशों में मकारेंको की पुस्तकों के संस्करण-दर-संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं।

उन्होंने परिवार में लालन-पालन पर अपनी इस पुस्तक को 1935 में लिखना शुरू किया था। 1936 के ग्रीष्मकाल में अ. से. मकारेंको 'जीवन की ओर' के पाठकों से मिलने के लिये मास्को आये। पुस्तक की रचना-प्रक्रिया का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा : ''अब एक पुस्तक माता-पिता के लिए प्रकाशित करने की ज़रूरत पैदा हो गयी है। इसके लिये बहुत सामग्री है और सोवियत शिक्षा-विज्ञान के कई नियम हैं, जिनके बारे में किसी को लिखना ही चाहिये।''* नयी पुस्तक के लिये पाठकों में इतनी अधिक दिलचस्पी थी कि 'क्रास्नाया नोव्य' पत्रिका ने पाण्डुलिपि के पूरा होने से पहले ही उसका धारावाहिक प्रकाशन शुरू कर दिया। 1937 में 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए' का पहला भाग एक अलग संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ।

यह घोर दुख की बात है कि नियोजित चार भागों में से केवल यही भाग लिखा जा सका। लेकिन अपने इस रूप में भी इसे एक पूर्ण पुस्तक माना जा सकता है।

परिवार में बच्चों के लालन-पालन के मुख्य सिद्धान्तों का काफ़ी हद तक पर्याप्त वर्णन होने की वजह से इस पुस्तक का महत्व बढ़ जाता है। इन सिद्धान्तों में बच्चे के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान, बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल, उनके सामंजस्यपूर्ण शारीरिक विकास, खेल, श्रम, भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं का संगत मेल, वयस्कों के वास्तविक सम्मान से बल प्राप्त करने की प्रवृत्ति और परिवार में भावनात्मक सुख के वातावरण की रचना करना शामिल है। चूँकि ये सिद्धान्त शायद

* अ. से. मकारेंको, 'रचनाएँ', रूसी संघ की शिक्षा-विज्ञान अकादमी, 1958, खण्ड 7, पृष्ठ 307।

ही कभी पुराने पड़ेंगे, इसलिये मकारेंको की पुस्तक का महत्व हमेशा बना रहेगा।

परिवार में बच्चों के लालन-पालन जैसे नाज़ुक और पेचीदा विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिये मकारेंको ने अपनी इस पुस्तक में जिस विधि का उपयोग किया है वह बहुत आधुनिक है। 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए' नुस्खों और सलाहों का, चाहे वे ठीक ही क्यों न हों, महज़ एक संग्रह नहीं है, वह हिदायतों और अनुबोधनों का, चाहे वे ठीक ही क्यों न हों, संग्रह नहीं है, वह लेखक और पाठक के बीच एक जीवन्त और गोपनीय वार्तालाप है। युक्ति-युक्तता की सर्वोत्तम समझ ने, जो हमेशा मकारेंको की शैक्षिक व साहित्यिक शैली की लाक्षणिक रही है, किसी भी तरह की उपदेशात्मक और पण्डिताऊ चीज़ को उस वार्तालाप में कहीं से भी प्रविष्ट नहीं होने दिया है।

यह नितान्त स्वाभाविक है कि सभी माता-पिता अपने बच्चों को सुखी देखना चाहते हैं। लेकिन उनमें से सभी लोग यह नहीं समझते कि सुख, सबसे पहले, वैयक्तिक और सामाजिक के बीच सामंजस्य है, और यह सामंजस्य एक दीर्घकालिक, कुशलतापूर्ण तथा कष्टसाध्य लालन-पालन के ज़रिये ही हासिल हो सकता है। लालन-पालन को मानवीय श्रम की एक विशेष और जटिल क़िस्म मानने के लिये सभी लोग तैयार नहीं होते हैं। कुछ लोग क़िस्मत अथवा सुखद संयोग की उम्मीद लगाये बैठे होते हैं, कुछ यह विश्वास करते हैं कि इस मामले में मुसीबत उठाने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि उन्हें पहले से ही ढेरों अन्य काम करने हैं : ''हमारा किसी ने भी लालन-पालन नहीं किया, लेकिन हम बड़े हो गये और सम्भ्रान्त जीवन बिता रहे हैं।'' मकारेंको उन्हें नम्रता से याद दिलाते हैं : ''प्रिय माता-पिताओ! आप कभी-कभी यह भूल जाते हैं कि आपके परिवार में एक व्यक्ति, एक ऐसा व्यक्ति पल-बढ़ रहा है, जिसका दायित्व आपके ऊपर है।''

जो माता-पिता इस तथ्य से समझौता करना नहीं चाहते कि विवाह-बन्धन में बँधकर तथा मात्र एक ही बच्चे को जन्म देकर भी वे शिक्षक बन चुके हैं, उन माता-पिताओं का व्यापक रूप से प्रयुक्त बहाना समय की कमी होता है। लेकिन उनकी पसन्द का दायरा काफ़ी संकीर्ण है : या तो वे हर कठिनाई के बावजूद अपने बच्चे का अच्छी तरह से लालन-पालन कर सकते हैं या बहाने की शक्ल में तरह-तरह की ''वस्तुगत'' कठिनाइयों का हवाला देकर ख़राब ढंग से यह काम पूरा कर सकते हैं।

जो भी हो, यदि यह समझ लिया जाये कि अच्छे लालन-पालन के लिये बहुत अधिक समय का होना महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उस थोड़े-से समय का सर्वोत्तम उपयोग करने की योग्यता का होना महत्वपूर्ण है जो आपके पास होता है, तो यह पसन्द इतनी कठिन नहीं होगी। यह मकारेंको की राय है और वे अपनी पुस्तक के सारे पृष्ठों में अपने इस निष्कर्ष की सत्यता को सिद्ध करते हैं।

अनुभवहीन माता-पिता की सबसे बड़ी ग़लती यह होती है कि वे हर प्रकार के नैतिक प्रवचनों पर बहुत भरोसा करते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इस तरह के

माता-पिता अपने बच्चे को हर समय एक ज़ंजीर से बाँधे रखते हैं। उनके बच्चे का कोई भी क़दम और कोई भी हरकत सविस्तार अनुदेशों का विषय बन जाती है। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बच्चे का स्वस्थ शरीर भी इस मौखिक दबाव को बर्दाश्त नहीं कर सकता है। इसके फलस्वरूप एक दिन वह बच्चा ''ज़ंजीर तोड़ देता है'' और, जिसका उसके माता-पिता को सबसे ज़्यादा डर था, उसी बुरी सोहबत में जा फँसता है। माता और पिता, दोनों ही भयाक्रान्त हो जाते हैं। वे सहायता के लिये पुकारते हैं, वे माँग करते हैं कि उनके बच्चे को उसी ''शैक्षिक ज़ंजीर'' से बाँध दिया जाये, जिसके बिना वे अपने बच्चे का लालन-पालन नहीं कर सकते। मकारेंको कहते हैं कि इस प्रकार के लालन-पालन के लिये मुक्त समय की ज़रूरत होती है और साफ़ ज़ाहिर है कि यह समय व्यर्थ बर्बाद किया जाता है।

इससे नितान्त भिन्न वह मामला है, जहाँ बच्चों का लालन-पालन शिक्षा-विज्ञान के अनुरूप होता है, जहाँ लोग अपनी हर शैक्षिक क्रिया में उस विज्ञान के ज्ञान का उपयोग करते हैं, जिसके रहस्यों को 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए' के लेखक ने पाठकों के सम्मुख उद्घाटित किया है।

विज्ञान के अनुरूप बच्चों के लालन-पालन का पहला अर्थ है परिवार में दैनिक जीवन का विवेक-सम्मत संगठन। परिवार एक जीवित सामाजिक संघटन होता है और इस संघटन की हर ख़राबी, अनिवार्यतः लालन-पालन पर प्रभाव डालती है। झगड़े और मिथ्यापवाद, माता या पिता के प्रति निरादर, घरेलू जीवन में अव्यवस्था, सुव्यवस्थित प्रणाली का अभाव और लापरवाही बच्चों के चरित्र पर गहरी और तीक्ष्ण छाप डालती हैं। निपट नादान लोग ही यह विश्वास करते हैं कि अव्यवस्था और झगड़ों से भरे पारिवारिक वातावरण में एक स्वस्थ व्यक्ति की रचना हो सकती है, कि ऐसे वातावरण में एक अच्छा व्यक्ति पल-बढ़ सकता है। ऐसा कोई भी शिक्षा-वैज्ञानिक इलाज नहीं है, जो पारिवारिक जीवन की ग़लतियों की, आंशिक रूप में भी, प्रतिपूर्ति कर सकता हो।

क्या पारिवारिक जीवन को सही दिशा में संगठित करने, उसे माता या पिता द्वारा किये जाने वाले सारे शैक्षिक प्रयत्नों के लिये एक भरोसेमन्द आधार का रूप देने के वास्ते बहुत कुछ करना पड़ता है? 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए ' का लेखक इस प्रश्न का उत्तर वेत्किन परिवार की एक कहानी को विस्तार के साथ सुनाकर देता है। परिवार के सदस्यों की संख्या इतनी बड़ी है कि पिता को वह संख्या-तेरह-बताने में संकोच तक होता है। लेकिन परिवार के सदस्य मैत्रीपूर्ण वातावरण में रहते हैं, पिता और माता के बीच सम्बन्ध सम्मानपूर्ण है, जिससे एक ऐसा वातावरण बन जाता है जिसमें परिवार का हर सदस्य प्रसन्नता के साथ काम करता है और रहता है। एक ऐसा प्रभाव बन जाता है कि वेत्किन परिवार में हर अच्छी चीज़ ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा हो जाती है। छोटे-से-छोटे बच्चे भी घरेलू कामों में उत्साह के साथ भाग लेते हैं। परिवार का हर सदस्य एक-दूसरे की मदद करता है। परिवार का एक सदस्य अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतों के बारे में सोचने से पहले हमेशा सम्पूर्ण परिवार की आवश्यक

ज़रूरतों के बारे में सोचता है।

माता-पिता का प्राधिकार सुसंगठित पारिवारिक जीवन के सुदृढ़ आधार पर टिका होता है। कई लोग यह विश्वास करते हैं कि लालन-पालन के एक साधन के रूप में प्राधिकार को, ख़ास तौर से बच्चों के लिये, कृत्रिम रूप से बनाया जा सकता है। मकारेंको इस दृष्टिकोण के विरुद्ध विश्वसनीय तर्क पेश करते हैं। वास्तविक जीवन के विशद उदाहरणों के आधार पर वे यह दर्शाते हैं कि बच्चे प्राधिकार की समस्या को समझते हैं और कभी-कभी वयस्कों से ज़्यादा अच्छी तरह से समझते हैं। प्राधिकार के प्रश्न में किसी भी मिथ्याकरण को, किसी भी कृत्रिमता को बच्चे तुरन्त उद्घाटित कर देते हैं और हमेशा सही ढंग से करते हैं। इसीलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वयस्कों की ऐसी "चालों" की अनुक्रिया के रूप में बच्चे, नियमतः गुपचुप या खुली अवज्ञा, बहानेबाजी, झूठ तथा खुलेआम उपहास का उपयोग करते हैं। और परिणामों का समाहार करते हुए मकारेंको कहते हैं : "अपने बच्चों के साथ किसी भी तरह के सम्बन्धों के बावजूद, प्राधिकार स्वयं माता-पिता में ही अन्तर्निहित होना चाहिये, लेकिन यह किसी भी हालत में कोई विशिष्ट प्रतिभा नहीं होता है। इसकी जड़ें हमेशा एक ही स्थान पर पायी जाती हैं : माता-पिता के व्यवहार में, और इसमें व्यवहार के सभी पक्ष शामिल हैं-दूसरे शब्दों में माता-पिता दोनों का सम्पूर्ण जीवन, उनका काम, विचार, आदतें, भावनाएँ और प्रयत्न।" (पृष्ठ 189-190)

सफल पारिवारिक लालन-पालन की एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण शर्त है बच्चों की आवश्यकताओं का सही नियमन करने की माता-पिता की क्षमता। बच्चे की हर सनक को उसकी ज़रूरत नहीं समझा जाना चाहिये। बच्चों को ऐसी भौतिक सुख-सुविधाएँ पेश करना अननुज्ञेय है, जिन्हें माता-पिता कष्ट-साध्य श्रम से प्राप्त करते हैं।

यदि परिवार बड़ा होता है तो अत्यानुग्रह करना इसलिये असम्भव हो जाता है कि ऐसा करना माँ-बाप के बूते से बाहर होता है। यहाँ समस्या आसान ढंग से हल हो जाती है : बच्चा कितना ही तक़ाज़ा और ज़िद क्यों न करे, उसे सिर्फ़ अत्यावश्यक वस्तुएँ ही मिलेंगी। लेकिन इकलौते बच्चेवाले परिवार की बात भिन्न है। यहाँ अत्यधिक आवश्यकताओं और फलतः अहंवाद के विकास को केवल वात्सल्य की बुद्धिमत्ता ही रोक सकती है।

इकलौते बच्चेवाले परिवार में अत्यधिक आवश्यकताओं की अवश्यम्भाविता इस तथ्य के कारण और भी ज़्यादा विकट हो जाती है कि ऐसे परिवार में अच्छे कार्यों में जुटने के लिये, अच्छे लालन-पालन को बुरे से भिन्न बनानेवाले व्यवहार की आदतों के उपार्जनार्थ पर्याप्त आधार न तो होता है और न हो सकता है। अधिक या कम उम्र के भाइयों अथवा बहनों के अभाव में बच्चे के पास दुलारने के लिये, मदद करने के लिये, अच्छे उदाहरण का अनुसरण करने के लिये कोई नहीं होता है। इकलौते बच्चेवाले माता-पिता को आसान जीवन के लालच के ख़िलाफ आगाह करते हुए

मकारेंको लिखते हैं :

"बड़े परिवारों के बच्चों की भारी सफलता की पुष्टि के लिये लाखों-जी हाँ, लाखों-उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसके विपरीत इकलौते बच्चे की सफलता के मामले बहुत ही दुर्लभ होते हैं। जहाँ तक मेरे व्यक्तिगत अनुभव का सम्बन्ध रहा है, सबसे ज़्यादा बेलगाम अहंवाद, जो माता-पिता की ख़ुशी को ही चौपट नहीं करता, बल्कि स्वयं बच्चों की सफलता को भी नष्ट कर देता है, लगभग हमेशा इकलौते बेटों और बेटियों में ही होता है।"

श्रम स्वस्थ लालन-पालन का अमूल्य साधन है। यदि एक बच्चे के पास काम का कोई दायित्व नहीं हैं, यदि बच्चा घरेलू कामों में माँ-बाप की सहायता नहीं करता, स्कूली पाठों के अलावा कोई और उपयोगी काम नहीं खोजता है, तो वह आलसी होता जायेगा और आलसीपन चरित्र का ऐसा दुर्गुण है जिसे लोग, उचित ही, सारी बुराइयों का जनक कहते हैं।

कुछ माता-पिता कहते हैं कि विज्ञान और तकनीकी क्रान्ति के युग में जहाँ घरेलू काम अधिकाधिक यंत्रीकृत होते जा रहे हैं वहाँ बच्चे के लिये समुचित काम खोज निकालना आसान नहीं है। ऐसे बहानों को गम्भीरता से लेना ही नहीं चाहिये। उन्हें, उसी आलसीपन की एक अभिव्यक्ति मानना चाहिये-पर इसवाले मामले में बच्चों के नहीं, माता-पिता के आलसीपन की। यदि माँ और बाप यह समझते हैं कि गम्भीरता से काम करने की आदत के बिना उनके बच्चे का भविष्य अन्धकारमय होगा, तो वे कोई न कोई तरीक़ा खोज निकालेंगे। हर किशोर बच्चा घर की सफाई कर सकता है, धुलाई की मशीन चला सकता है, वृद्ध या बीमार की देखरेख कर सकता है। बच्चे का इस अवसर से वंचित रखने का अर्थ है उसे भारी नुक़सान पहुँचाना।

सुनिश्चित दिनचर्या की उपयोगिता तथा उसके परिपालन से सम्बन्धित मकारेंको के विचार भी गम्भीरता से ध्यान देने लायक हैं। समय पर सोना और समय पर उठना, व्यक्तिगत सफ़ाई के नियमों का पालन करना, कभी भी जल्दबाज़ी न करना और कभी भी देरी न करना-यह सब बातें हर दिन बच्चे में कूट-कूटकर भर दी जानी चाहिये। यदि माता-पिता स्वयं भी व्यवस्थित जीवन बिताते हों, तो ऐसे प्रयासों में सफलता शीघ्रता तथा सरलता से प्राप्त हो जाती है।

परिवार में सेक्स की शिक्षा की समस्या को सबसे ज़्यादा कठिन समझा जाता है। 'एक पुस्तक माता-पिता के लिए' के लेखक भी इस समस्या पर समुचित गम्भीरता से विचार करते हैं। मुख्य रूप से वे यह कहते हैं कि सेक्स सम्बन्धी शिक्षा सेक्स के बोध, सेक्स के मामलों पर विचार-विमर्श से किसी भी हालत में प्रतिस्थापित नहीं होनी चाहिये। सेक्स की शिक्षा को किसी भी शर्त पर लालन-पालन की अविभक्त प्रणाली के अन्य पक्षों से विलग नहीं किया जाना चाहिये।

मकारेंको अपने सामान्य ढंग से इस समस्या का नैतिक-दार्शनिक और सामाजिक-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं। उनका गहन चिन्तन इस समस्या के

सारे पक्षों व सम्बन्धों की जाँच करता है। हर चीज़ को देखते हुए और, इसी कारण से, हर चीज़ का समुचित मूल्यांकन करते हुए, जो बहुधा अनपेक्षित होता है, वे अपने विवेचन को कलात्मक रूप में पेश करते हैं : ''परिवार'', वे कहते हैं, ''वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जहाँ मनुष्य सामाजिक जीवन में अपने पहले चरण रखता है! यदि वे चरण सही ढंग से व्यवस्थित होते हैं, तो सेक्स की शिक्षा भी सही ढंग से चलेगी। जिस परिवार में माता-पिता सक्रिय होते हैं और उनका प्राधिकार उनके जीवन और कार्य से सहज रूप में निकलता है, जहाँ बच्चों के जीवन, समाज के साथ उनके पहले सम्पर्क, उनके अध्ययन, खेल, मनोदशाएँ, उल्लास और निराशाओं पर माता-पिता का हमेशा ध्यान रहता है, जहाँ अनुशासन है, अच्छा प्रबन्ध और नियंत्रण है, ऐसे परिवार में बच्चों की सेक्स की सहजवृत्ति भी हमेशा सही ढंग से विरचित होती है।''

अतः उसी परिवार में अच्छा लालन-पालन सुनिश्चित हो सकता है जिसमें बच्चा अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों से ही वास्तविक नैतिकता की स्वच्छ व स्वस्थ वायु में साँस लेता है। एक नैतिक परिवार को अन्य प्रकार के परिवारों से अलग पहचानने में सहायक कई चिह्न होते हैं। लेकिन सबसे ज़्यादा सही, अमोघ सूचक है माँ के प्रति रवैया। मकारेंको इस प्रचलित विश्वास का खण्डन करते हैं कि बच्चों की ख़ुशी के लिये, उनके अच्छे लालन-पालन के लिये माँ को तपस्वियों-सा जीवन बिताना चाहिये-सिर्फ़ अन्य के बारे में सोचना चाहिये और अपनी कोई परवाह नहीं करनी चाहिये। उन्होंने यह दर्शाया कि एक स्वस्थ परिवार में माँ द्वारा अपने आपको कुर्बान करने के लिये कोई जगह नहीं हो सकती है, कि बच्चों की ख़ुशी, सबसे पहले माँ की ख़ुशी है, उसके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की पूर्णता है।

पुस्तक के प्रारम्भ में ही मकारेंको लिखते हैं : ''जीवन के समृद्ध अनेकानेक पथों पर, उसके पुष्पों, आँधियों व तूफ़ानों के बीच बच्चे को बुद्धिमानी व पूर्ण विश्वास के साथ आगे ले जाना एक ऐसा काम है, जिसे हर आदमी, यदि वह इसे सचमुच चाहता हो तो कर सकता है।'' इस पुस्तक को पढ़ने और इस पर विचार करने के बाद आप एक पिता या माँ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आकांक्षा को पुष्ट ही नहीं करेंगे, बल्कि यह भी जान जायेंगे कि उसे वास्तविकता में कैसे परिणत किया जाये।

-व. कुमारिन

पहला अध्याय

'एक पुस्तक माता-पिता के लिए'
मेरी पत्नी गलीना स्तखीयेव्ना मकारेंको
के सहयोग से लिखी गई थी।

अ. मकारेंको

कदाचित इस विषय पर लिखना मेरी अतिसाहसिकता हो?

आधुनिक माता-पिता अपने बच्चों को ढालते समय हमारे देश के भावी इतिहास को और, फलतः विश्व के इतिहास को भी ढालते हैं। क्या मैं ऐसे व्यापक विषय का भार वहन कर सकता हूँ? क्या मुझे इसका अधिकार अथवा साहस है कि मैं इसकी मुख्य समस्याओं ही से निबट सकूँ?

सौभाग्यवश, मुझसे ऐसी साहसिकता की माँग नहीं की जाती। हमारी क्रान्ति की अपनी ही महान पुस्तकें हैं, पर जो और भी अधिक संख्या में हैं ये उसके महान कार्य हैं। ये सब नये मानव का नवनिर्मित शिक्षा-विज्ञान है। हमारा हर विचार, हर गति और हमारे जीवन की हर साँस विश्व के नये नागरिक की महिमा से स्फुरित होती है। क्या उस स्फुरण को महसूस न करना सम्भव है, क्या यह न जानना सम्भव है कि हमें अपने बच्चों को किस प्रकार शिक्षित करना चाहिये?

लेकिन हमारे जीवन के अरुचिकर दैनिक पक्ष भी हैं, जो छोटी-छोटी बातों के एक जटिल समुच्चय को जन्म देते हैं। कभी तो इन छोटी-छोटी बातों में इंसान खो जाता है और कभी हमारे माता-पिता इनमें, यह भूलकर कि उनके पास निकट ही क्रान्ति का महान दर्शन है, सत्य ढूँढ़ लेते हैं। माता-पिताओं को अपने परिवेश को देखने-समझने में, सोचने-विचारने में, अपनी आँखें खोलने में मदद देना-यही इस पुस्तक का साधारण-सा ध्येय है।

हमारा युवावर्ग एक ऐसा दृष्टिगोचर विश्व महत्व का तत्व है जिसकी किसी से तुलना नहीं हो सकती, एक ऐसा तत्व है, जिसकी महानता और महत्ता को समझने में हम, कदाचित, असमर्थ हैं। उसे किसने जन्म दिया, किसने सिखाया-पढ़ाया और किसने उसे क्रान्ति के ध्येय का दायित्व सौंपा? ये दसियों लाखों माहिर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, कम्बाइन-चालक, कमाण्डर और वैज्ञानिक कहाँ से आये? क्या यह मुमकिन हो सकता है कि हम, पुराने लोगों ने, इस युवावर्ग की रचना की हो? क्यों हमने यह नहीं देखा? परन्तु हमारे पास समय भी नहीं था। हमने निर्माण किया, लड़ाई लड़ी

और फिर निर्माण किया और हम अभी भी निर्माण कर रहे हैं...

लेकिन देखिये! क्रामातोर्स्क की विशाल असाधारण कार्यशालाओं में, स्तालिनग्राद ट्रैक्टर संयंत्र के विराट विस्तार में, मकेयेव्का और गोर्लोव्का की खानों में, हवाई जहाज़ों में, टैंकों में, पनडुब्बियों, प्रयोगशालाओं में, सूक्ष्मदर्शक यंत्रों पर, ध्रुव प्रदेश के वीरानों में, हर सम्भव प्रकार के संचालक व नियंत्रक यंत्रों पर, ऊँचे क्रेनों पर, प्रवेश-द्वारों तथा निकास-द्वारों पर-हर जगह, हर कोने में दसियों लाखों नये, युवा और बेइन्तिहाँ दिलचस्प लोग डटे हैं।

वे सीधे-सादे लोग हैं। उनमें से कुछ बातचीत करने में बहुत परिष्कृत नहीं हैं, उनका हास-परिहास कभी-कभी अशिष्ट होता है... इससे कोई इनकार नहीं, यह सच ही है।

लेकिन वे जीवन के स्वामी हैं, शान्त हैं और उनमें आत्मविश्वास कूट-कूटकर भरा है, वे बिना भावुकता के , बग़ैर दिखावे के, बग़ैर शेख़ी बघारे, बग़ैर शिकायत के और नितान्त अनपेक्षित रफ़्तार से, बेहिचक अपना काम कर रहे हैं।

और इस ऐतिहासिक चमत्कार की पृष्ठभूमि में वे पारिवारिक ''महाविपत्तियाँ'' कैसी बेहूदा जान पड़ती हैं, जो पिता के भावों और माँ की खफ़्शी को बर्बाद कर देती हैं, जो सोवियत संघ के भावी नर-नारियों के चरित्र को नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं।

हमारे देश में बचपन की कोई महाविपत्तियाँ, कोई विफलताएँ और लालन-पालन में एक शतांश प्रतिशत भी दोष नहीं होना चाहिये! फिर भी यदा-कदा ये महाविपत्तियाँ होती हैं। कभी-कभी यह एक खुला झगड़ा होता, और बहुधा यह झगड़ा गुप्त होता है : माता-पिता उसे नहीं देखते हैं, उसे समझ नहीं पाते हैं, वे उसके किन्हीं भी पूर्वलक्षणों को देख नहीं पाते।

एक माँ से प्राप्त पत्र में, मैं पढ़ता हूँ :

''हमारा इकलौता बेटा है, लेकिन वह भी न होता, तो बेहतर था... इस भयानक अवर्णनीय दुर्भाग्य ने हमें असमय ही बूढ़ा बना दिया है। एक युवक, जो सर्वोत्तम लोगों में से हो सकता था, को नीचे और नीचे पतित होते देखना दुखद ही नहीं बल्कि पीड़ाप्रद और समझ में न आने वाली बात भी है। आख़िर, आज के युग में युवा का मतलब है खुशी और उल्लास!

''वह हमें दिन-ब-दिन मार रहा है, अपने हर व्यवहार से, अपने हर कर्म से, अविरत अविचल रूप से मारे जा रहा है।''

पिता की सूरत-शक्ल बहुत आकर्षक नहीं है : उसका चेहरा चौड़ा, एक तरफ़ को झुका हुआ है, दाढ़ी बढ़ी हुई है। वह फूहड़ है। उसकी आस्तीनों में मुर्गी के पंख या ऐसी ही कोई चीज़ लगी है, एक पंख उँगली में भी चिपका है : उँगली मेरे स्याही-दान के ऊपर हाव-भाव प्रकट करती हिलडुल रही है और उसी के साथ वह पंख भी ऐसा ही कर रहा है।

“मैं एक कामगार हूँ... समझे? मैं काम करता हूँ... और मैं इसे पढ़ाता हूँ... पूछिये इससे यह सच है कि नहीं। अब बता, तुझे क्या कहना है : मैंने तुझे पढ़ाया या नहीं?”

दीवार के पास की एक कुर्सी पर लगभग तेरह वर्ष का, गहरी काली आँखों वाला एक सुन्दर, गम्भीर लड़का बैठा है। वह पलक झपकाये बिना सीधे अपने पिता की आँखों में देखता है। लड़के के चेहरे से मैं उसके किसी भी मनोभाव को नहीं पढ़ पाता। उसमें शान्त और कोरी एकाग्रता के सिवा और कोई भाव व्यक्त नहीं हो रहा है।

पिता अपनी मुट्ठी हिलाता है, उसका विकृत चेहरा लाल हो जाता है।

“एक और केवल एक, हुँह? मुझे लूट लिया और... जो मैं पहने हूँ, उसके सिवा कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा!”

उसका घूँसा दीवार की तरफ़ झपटता-सा झूलता है। लड़का आँखें मिचकाता है और फिर अपने पिता को पहले की जैसी ठण्डी गम्भीरता से ताकने लगता है।

पिता जैसे थककर कुर्सी पर पीठ टिका लेता है, उसकी उँगलियाँ मेज़ पर ठकठक करती है और वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा चारों ओर ताकता है। एक पुराने घाव से विकृत उसके गाल की एक ऊपरी पेशी तेजी से फड़कती है।

वह अपने बड़े सिर को झुका लेता है और हताश होकर बाँहों को फैलाता है।

“उसे कहीं ले जाइये... मैं, मैं...विफल हो गया हूँ। उसे ले जाइये...”

वह इस बात को थके-हारे स्वर में गिड़गिड़ाकर कहता है, पर सहसा वह फिर से उत्तेजित हो जाता है और फिर अपना घूँसा दिखाने लगता है।

“लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? मैं एक छापामार* था। मेरी तरफ़ देखिये, यह एक तलवार की चोट है... मेरा सिर फट गया था! उनकी ख़ातिर, आपकी खातिर!”

वह अपने बेटे की तरफ़ मुड़ता है और अपने हाथों को अपनी जेबों में डाल लेता। फिर वह बेहद करुण स्वर में, ऐसे करुण स्वर में बोलता है जैसा कि मरते हुए आदमी के होठों से निकलता है :

“मीशा! मेरे इकलौते बेटे, तुमने ऐसा किया कैसे...?”

मीशा की आँखें पहले जैसी ही भावविहीन रहती हैं, फिर सहसा उसके होंठ हिलते हैं, पल भर के लिये एक क्षणिक विचार अपनी झलक दिखाता है और फिर ग़ायब हो जाता है।

मैं समझ जाता हूँ कि ये दो शत्रु हैं और दीर्घकाल तक, सम्भवतः जीवनपर्यन्त शत्रु ही बने रहेंगे। किसी एक छोटी-मोटी बात पर उनके चरित्रों में टकराव हुआ है, आत्मा के किसी अँधियारे कोने में मूल वृत्तियाँ जाग गयी हैं; संयम के बाँध टूट गये

* **छापामार**-रूसी भाषा में पार्टीजान। उस वीरतापूर्ण आन्दोलन का सदस्य, जो गृह-युद्ध के दौरान शत्रु द्वारा अधिकृत इलाक़ों में मुक्ति और स्वाधीनता के लिये जनसाधारण के संघर्ष का एक रूप था।-**सं.**

हैं। चरित्र के साथ लापरवाही का सामान्य परिणाम-एक अनपेक्षित विस्फोट होता है : इसमें सन्देह नहीं कि यह पिता मारपीट से काम लेता है और उसका बेटा, मुक्त व गर्वीला, अपने पिता के ख़िलाफ़ उठ खड़ा हुआ है...

मैंने मीशा की तरफ़ कठोर निगाहों से देखा और शान्त शब्दों में कहा :

''तुम आज ही दूज़ेर्जीन्स्की कम्यून* में जाओगे!''

लड़का कुर्सी पर बैठा-बैठा सीधा हो गया। उसकी आँखों से उल्लास की असली लपटें भड़क उठीं और सारा कमरा पहले से अधिक उजला-सा लगने लगा। मीशा ने कुछ नहीं कहा, वह अपनी कुर्सी पर पीछे को झुक गया और उसने अपनी नवजात मुस्कराहट को सीधे अपने पिता की थकी हुई तथा व्यथित निगाहों की ओर सन्धानित कर दिया और तभी मैंने उसकी उस मुस्कान में अशाम्य, अगोपित घृणा झलकती देखी।

पिता ने दुखी होकर सिर झुका लिया।

जब मीशा इन्सपेक्टर के साथ चला गया, तो पिता ने मुझसे ऐसे पूछा मानो किसी आप्तपुरुष से पूछ रहा हो :

''मैंने अपना बेटा क्यों गँवाया?''

मैंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसने फिर पूछा :

''क्या वहाँ सब ठीक-ठीक होगा?''

पुस्तकें और छत तक अँटी हुई पुस्तकें ही पुस्तकें। सुन्दर जिल्दों में बँधे लोकप्रिय लेखकों की पुस्तकें। लिखने की विशाल मेज़-उस पर भी पुस्तकों के ढेर, विशालकाय मसिधानी, नरसिंही मूर्तियाँ, ऋक्षाकृतियाँ और दीपदान।

इस अध्ययन-कक्ष में बड़ी चहल-पहल रहती है, पुस्तकें अपने-अपने खानों में पड़ी नहीं रहतीं, लोगों के हाथों में फड़फड़ाती हैं। अख़बार सोफ़े की गद्दियों पर महज़ पड़े नहीं रहते, बल्कि खोले और पढ़े जाते हैं। यहाँ घटनाओं पर गहरी जानकारी से भरेपूरे विचार-विमर्श होते और वे सक्रिय हो जाती हैं। तम्बाकू के धुएँ के बीच खल्वाट शिरों, सजे-सँवरे केशों, हज़ामत बनी ठोड़ियों, मूँछों और कहरुबी सिगरेट-होल्डरों की झलक दिखायी पड़ती है, श्रृंग-निर्मित चश्मों की कोरों के पीछे चातुर्य की चमक से भरी आँखें झिलमिलाती हैं।

लम्बे-चौड़े भोजन-कक्ष में चाय पेश की जाती है, यह पुराने फ़ैशन की समोवार के साथ बनी, विविध प्रकार के व्यंजनों सहित परोसी हुई, जी-भर के पी जानेवाली चाय नहीं, परिष्कृत चाय थी, ऐसी चाय, जो लगभग प्रतीकात्मक थी, वह चीनी के बर्तनों, लेस के नैपकिनों और सादे बिस्कुटों का प्रदर्शन थी। किंचित शिथिल, भोली-भाली,

---

* **दूज़र्जीन्स्की कम्यून**-श्रम कम्यून, जो छोटी अवस्था के अपराधियों के लिये संघटित किया गया था और जिसका नाम दूज़ेर्जिन्स्की के नाम पर रखा गया था। अ. से. मकारेंको उसके संस्थापकों में से एक थे तथा कुछ समय तक उसके अध्यक्ष भी रहे।**-सं.**

कुछ निराली कपिशवर्णी केशोंवाली गृह-स्वामिनी अपने सँवारे-सजाए प्रसाधित नखोंवाले हाथों से चायपान का प्रबन्ध करती है। चायपान में कलाकारों, बैलेनर्तकियों के नामों, शरारत-भरी लघु-कथाओं और जीवन की हल्की-फुल्की घटनाओं के क़िस्सों का ज़ोर था। परन्तु अगर चाय के साथ नाश्ते की कोई चीज़ पेश करने के बाद मेज़बान डिकैण्टर के दो-तीन फेरे लगाते तो क्या? तब सारे मेहमान फिर अध्ययन-कक्ष में आ जाते हैं, फिर धूम्रपान होने लगता है, सोफ़े पर अख़बार फैल जाते हैं और गद्दों पर लुढ़कते-ढुलकते मेहमान किसी नये क़िस्से को सुनकर हँसते-हँसते दोहरे हो जाते हैं।

क्या इसमें कोई ख़राबी है? कौन जाने? लेकिन इन लोगों के बीच विस्फारित नेत्रोंवाला, दुबला-पतला, पर फुर्तीला एक बारह वर्षीय वोलोद्या हमेशा इधर-उधर भागता रहता है। जब क़िस्से-कहानियों के अनवरत प्रवाह में किसी वजह से कोई रुकावट आ जाती है, तो डैडी वोलोद्या को ''पेश करते हैं'', परन्तु उसके एक छोटे-से अंश में, रंगमंचीय भाषा में इसे ''अंकान्तराल'' कहते हैं।

डैडी वोलोद्या को अपने घुटनों की ओर खींचते हैं, वोलोद्या के सिर को सहलाते हैं और कहते हैं :

''वोलोद्या, तुम अभी सोये क्यों नहीं?''

वोलोद्या उत्तर देता है :

''पर आप क्यों नहीं सोये?''

मेहमान प्रसन्न हो जाते हैं। वोलोद्या डैडी की गोद में सिर झुका लेता है, संकुचित होकर मुस्काता है, मेहमानों को उसका यह ढंग और अधिक अच्छा लगता है।

डैडी समुचित स्थान पर वोलोद्या को थपथपाते हैं और पूछते हैं :

''तुमने 'हैमलेट' पूरा पढ़ लिया कि नहीं?''

वोलोद्या हामी भरता है।

''तुम्हें पसन्द आया?''

इस बार भी वोलोद्या को कोई परेशानी नहीं हुई, लेकिन अब लज्जा के लिये कोई जगह भी नहीं थी।

''उँह, कोई ख़ास नहीं, अगर वह उसे... क्या नाम... ओफ़ेलिया से प्यार करता है, तो वे शादी क्यों नहीं कर लेते? वे महज़ वक़्त बर्बाद करते हैं और आप पढ़ते ही पढ़ते रह जाते हैं!''

मेहमान फिर एक बार खुलकर हँसते हैं। सोफ़े के एक कोने से किसी की ख़ुशमिज़ाज आवाज़ इसमें आवश्यक मसाला लगाते हुए कहती है : ''वह कमबख़्त, गुज़ारे का खर्च नहीं देना चाहता होगा!''

इस बार वोलोद्या भी हँसता है, डैडी भी हँसते हैं, लेकिन तब तक आवश्यक चुटकुला मंच पर पहुँच चुकता है : ''आप जानते हैं, जब पादरी से गुज़ारे का ख़र्च देने के लिये कहा गया तो उसने क्या कहा?''

''अंकान्तराल'' समाप्त। वोलोद्या को कार्यक्रम के अंग-रूप में कभी-कभार ही

पेश किया जाता है-डैडी जानते हैं वोलोद्या छोटी मात्रा में ही मुनासिब है। वोलोद्या को ऐसी मात्राओं की व्यवस्था पसन्द नहीं है। वह उस भीड़ में इधर-उधर भागता रहता है, एक मेहमान से दूसरे के पास जाता रहता है और अजनबी लोगों से भी जा चिपकता है। वह अपने आपको दिखलाने, मेहमानों को हँसाने और अपने माता-पिता को उल्लसित करने के अवसर खोजता रहता है।

चायपान के समय एक क़िस्से के बीच वोलोद्या की तीव्र आवाज़ फूटती है :

''वह उसकी रखैल है, है न?''

माँ अपने हाथ ऊपर झटकती हुई ज़ोर से बोलती है :

''सुना आपने? वोलोद्या तू कह क्या रहा है?''

लेकिन माँ के चेहरे पर बनावटी लज्जा के साथ ही साथ अनिच्छित प्रसन्नता और गर्व भी अंकित था; वह इस बालकोचित अतिस्वतंत्रता को प्रतिभा का प्रमाण मानती है। कौतूहलजनक वस्तुओं के सुरुचिपूर्ण संग्रह की सूची में वोलोद्या की प्रतिभा भी स्वीकार्य है-जापानी प्याले, नींबू काटने के छोटे-छोटे चाकू, नैप्किन और ...ऐसा अनोखा बेटा।

अपने तुच्छ और मूर्खतापूर्ण मिथ्या सम्मान के बीच ये माता-पिता अपने बेटे के चरित्र को गहराई से समझने तथा अपने भावी पारिवारिक संकटों के पहले-पहल संकेतों को देखने में असमर्थ हैं। वोलोद्या की निगाहों में बड़ी जटिलता है। वह अपनी आँखों को निष्कपट बच्चों जैसी बनाने का प्रयत्न करता है-यानी अपने माता-पिता के लिए, ''विशेष फ़रमाइश पर'', लेकिन उन्हीं आँखों में धृष्टता और आदतन झूठ की-यानी उसके अपने लिये-चिंगारियाँ चमकती हैं।

वह किस प्रकार का नागरिक बनेगा?

प्रिय माता-पिताओ!

आप कभी-कभी यह भूल जाते हैं कि आपके परिवार में एक व्यक्ति, एक ऐसा व्यक्ति पल-बढ़ रहा है, जिसका दायित्व आपके ऊपर है।

इस विचार से अपने आप को सांत्वना मत दीजिये कि यह नैतिक दायित्व से अधिक कुछ नहीं है।

एक ऐसा क्षण आ सकता है, जब आप हिम्मत हार बैठेंगे और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर हाथों को फैला देंगे और तब, शायद, आप नैतिक दायित्व की उसी भावना को शान्त करने के लिये बुड़बुड़ायेंगे : ''वोलोद्या कैसा अद्‌भुत लड़का था! उसे देखकर हर कोई आनन्दित हो जाता था।''

लेकिन क्या आप यह कभी नहीं समझेंगे कि दोष किसका है?

पर इसके बावजूद, हो सकता है कि ऐसी महाविपत्ति न आये।

एक ऐसा क्षण आता है, जब माता-पिता पहले-पहल यह महसूस करते हैं कि किंचित गड़बड़ी है। फिर यह भावना गहरी होती जाती है कि जिसे वे अपना सुखी परिवार समझते थे, उसमें सचमुच ही कुछ अस्वास्थ्यकर चीज़ है। कुछ समय तक

चिंतित माता-पिता इसे बर्दाश्त करते हैं, शयन-कक्ष में दुखी होकर इस पर फुसफुसाकर विचार-विमर्श करते हैं, लेकिन लोगों के बीच अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रहते हैं और ऐसा ढोंग करते हैं मानो सब कुछ ठीक-ठाक हो और कोई त्रासदी न हुई हो, क्योंकि परिवार के फलों का बाहरी रूप-रंग काफ़ी स्वस्थ नज़र आता है।

ये माता-पिता ठीक उन उत्पादकों की जैसी हरकत करते हैं, जो घटिया क़िस्म की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उन्हें उचित वस्तु के रूप में समाज को पेश करते हैं...

जब आपके परिवार में पहला छोटा बाल-संकट पैदा होता है, जब आप अपने बच्चे की आँखों में ऐसी किंचित-मात्र पाशविकता देखते हैं, जो अभी बहुत न्यून और दुर्बल है, परन्तु शत्रुतापूर्ण है, तो आप अपने पिछले दिनों पर नज़र क्यों नहीं डालते, आप अपने ही व्यवहार पर पुनर्विचार करने क्यों नहीं बैठते?

लेकिन मुझे पक्का यक़ीन है कि आप कोई बहाना खोज रहे हैं...

चश्मा पहने, छोटी अरुणाभ दाढ़ी तथा गुलाबी चेहरेवाले एक ख़ुशमिज़ाज आदमी ने सहसा अपने गिलास में चम्मच घुमायी, गिलास को एक तरफ़ धकेला और झटके के साथ एक सिगरेट निकाली।

''तुम अध्यापक लोग पद्धतियों को लेकर हमेशा ही लोगों को उलाहने देते हो। इस बारे में झगड़ा कोई नहीं कर रहा है। पद्धतियाँ पद्धतियाँ हैं। मेरे दोस्त, आप तो मूल अन्तर्द्वन्द्व को सुलझाओ।''

''कौन सा अन्तर्द्वन्द्व?''

''ओहो, कौन सा अन्तर्द्वन्द्व? तुम यह भी नहीं जानते कि यह है क्या? तो आप सुलझाओगे क्या?''

''अच्छी बात है, मैं सुलझाऊँगा। तुम उत्तेजित किस बात पर हो रहे हो?''

उसने जी भरकर सिगरेट का क़श खींचा, उसके भरे होंठों से धुएँ का एक छोटा-सा छल्ला निकला, फिर... उसके चेहरे में एक थकी-थकी सी मुस्कान प्रकट हुई।

''तुम कुछ नहीं सुलझाओगे। यह अन्तर्द्वन्द्व असमाधेय है। यह कहना कोई समाधान नहीं है कि यह कुर्बान करो या वह कुर्बान करो। यह महज़ एक औपचारिक बचाव है! मान लो, मैं एक चीज़ कुर्बान नहीं कर सकता, तब?''

''लेकिन मेरी दिलचस्पी यह जानने में है कि अन्तर्द्वन्द्व क्या है?

मेरे साथी ने तम्बाकू के धुएँ के बीच से मेरी ओर तिरछी नज़र से देखा, अपने दुख के सूक्ष्मतर पक्षों पर बल देने के लिये सिगरेट को अपनी उँगलियों के बीच मरोड़ा और कहा :

''एक तरफ़ तो समाज के अन्दर आपका काम है, आपका सामाजिक कर्तव्य है और, दूसरी तरफ़, अपने बच्चे, अपने परिवार के प्रति आपका कर्तव्य है। समाज मेरा सारा समय ले लेता है : सुबह, दोपहर और शाम-हर क्षण का उपयोग निश्चित है और मापा हुआ है। और बच्चा? यह तो सीधा-सा अंकगणित है : बच्चे को अपना

समय देने का मतलब है घर पर बैठना, ज़िन्दगी से दूर रहना, वस्तुतः एक कूपमण्डूक बन जाना। आपको अपने बच्चे से बात करनी ही चाहिये, उसे ढेर सारी बातें समझानी ही चाहिये, अपने-आप उसका लालन-पालन करना चाहिये, भाड़ में जायें ये सब!'' उसने मेरी ओर दम्भपूर्ण अधैर्य की मुद्रा से देखा और अपनी आधी पी हुई सिगरेट को राखदानी में रगड़कर बुझा दिया।

''क्या तुम्हारा एक लड़का है?'' मैंने सावधानी से पूछा।

''हाँ, छठे दर्जे में, तेरह वर्ष का, अच्छा है, भली-भाँति सीखता है, लेकिन वह अभी से, इस छोटी अवस्था में ही आवारा हो गया है। वह अपनी माँ से ऐसा बरताव करता है जैसे वह नौकरानी हो। उजड्ड है। मैं उससे कभी नहीं मिलता। अब ज़रा सोचो, कुछ दिन हुए उसका एक दोस्त उससे मिलने आया था, वे बग़ल के कमरे में बैठे थे, सहसा मैंने सुना कि मेरा कोस्तिक गालियाँ बक रहा है। महज़ एक या दो शब्द नहीं, ऐसी बातें बक रहा है कि आस-पास की हवा भी शर्मिन्दा हो गयी।

''क्या तुम घबरा गये थे?''

''घबरा गये थे'? तुम्हारा मतलब क्या है? तेरह वर्ष की अवस्था और एक भी गोपनीय चीज़ नहीं, जिसे वह न जानता हो। मेरा ख़्याल है कि वह गन्दे क़िस्से और दूसरी तरह की गन्दी बातें भी जानता होगा!''

''बेशक, वह जानता है।''

''हूँ, यह बात है! सवाल यह है कि मैं कहाँ था? मैं, उसका बाप, कहाँ था?''

''आप इस बात पर झुँझला रहे हैं कि अन्य लोगों ने आपके बच्चे को गन्दे शब्द और गन्दे क़िस्से सिखलाये और आपको इसमें हिस्सा लेने का मौक़ा नहीं मिला?''

''और आप मज़ाक उड़ाने लगे!'' मेरा वार्तालाप का साथी गुर्राया। ''लेकिन मजाक करने से अन्तर्द्वन्द्व नहीं सुलझते हैं।''

उसने व्यग्र होकर चाय के दाम अदा किये और झटपट चला गया।

लेकिन मैं क़तई मज़ाक नहीं कर रहा था। मैंने उससे एक प्रश्न पूछा और उसका उत्तर महज़ बड़बड़ाहट थी। वह क्लब में बैठकर चाय पीता है और मेरे साथ बैठा गप्पें मारता है-वह इसे भी सामाजिक कार्य बतायेगा। और उसे अधिक समय दे दीजिये, तो वह उसका क्या करेगा? गन्दे क़िस्सों के ख़िलाफ़ आन्दोलन चलायेगा? लेकिन कैसे? जब उसने ख़ुद गालियाँ देना सीखा, तो उसकी उम्र क्या थी? उसका कार्यक्रम क्या है? ''मूल अन्तर्द्वन्द्व'' के अलावा उसके विचार क्या हैं? वह कहाँ को भाग खड़ा हुआ? शायद अपने बच्चे को शिक्षा देने, या शायद वह ''मूल अन्तर्द्वन्द्व'' पर विचार करने कहीं अन्यत्र जा रहा हो।

''मूल अन्तर्द्वन्द्व''-समय की कमी-असफल माता-पिताओं का प्रिय बहाना है। ''मूल अन्तर्द्वन्द्व'' से बचकर वे कल्पना करते हैं कि वे अपने बच्चों के साथ प्रभावशाली बातचीत में लगे हैं। एक सांत्वनाप्रद दृश्य-पिता बोलता है और बेटा सुनता है! लेकिन अपने ही बच्चों को भाषण और उपदेश देना असाधारण रूप से कठिन काम है। ऐसे

भाषण को लाभप्रद, शैक्षिक प्रभाव का बनाने के लिये कई परिस्थितियों के सौभाग्यशाली सम्मेल की ज़रूरत है। सबसे पहले आपको एक दिलचस्प विषय छाँटना होता है, फिर यह ज़रूरी है कि आपको उसे अभिव्यक्त करना आता हो तथा आप अपनी बात के समुचित उदाहरण देना तथा हाव-भाव प्रकट करना जानते हों, इसके अलावा भाषण सुननेवाले बच्चे में असाधारण धैर्य भी होना चाहिये।

दूसरी तरफ़, मान लीजिये आपका भाषण आपके बच्चे को अच्छा लगता है। पहली नज़र में ऐसा प्रतीत होगा कि यह अच्छी बात है, लेकिन ऐसे माता-पिता भी होते हैं जो ऐसा होने पर गुस्से से लाल-पीले हो जायेंगे। वह उपदेशक भाषण किस काम का, जिसका ध्येय बच्चे को प्रसन्न करना हो? हर कोई जानता है कि प्रसन्नता कई अन्य तरीक़ों से उपलब्ध की जा सकती है, इसके विपरीत ''उपदेशात्मक'' भाषणों का उद्देश्य श्रोता को व्याकुल बनाना, उसे सताना, रुलाना और नैतिक दृष्टि से परिक्लान्त बनाना होता है।

प्यारे माता-पिताओ!

कृपया यह मत सोचियेगा कि बच्चे से बातचीत करने का कोई लाभ नहीं है। हम तो आपको ऐसी बातचीत से बहुत अधिक की उम्मीद करने के ख़िलाफ़ चेतावनी मात्र दे रहे हैं।

जो माता-पिता अपने बच्चों का लालन-पालन बुरी तरह से करते हैं और जिन लोगों में सामान्यतः कोई शिक्षात्मक गुण नहीं होता, वे ही ऐसे लोग हैं, जो शैक्षिक बातचीत के मूल्य को बढ़ाते-चढ़ाते हैं।

वे कल्पना करते हैं कि शैक्षिक कार्य इस प्रकार होता है : शिक्षक बिन्दु 'क' पर आ खड़ा होता है। तीन मीटर दूर बिन्दु 'ख' है, जिस पर बच्चा खड़ा है। शिक्षक अपने वाक् तन्तुओं को क्रियाशील करता है, बच्चा अपने श्रव्य-उपकरण से समुचित ध्वनि-तरंगों को ग्रहण करता है। वे तरंगें कर्ण-पट के ज़रिये बच्चे की आत्मा में प्रविष्ट होती है और उनका किसी विशेष शैक्षिक-औषधि के रूप में आस्वादन हो जाता है।

कभी-कभी कर्ता और पात्र की स्थिति थोड़ी भिन्न होती है, लेकिन तीन मीटर की दूरी वही रहती है। बच्चा एक ज़ंजीर से बँधा हुआ जैसा शिक्षक के गिर्द चक्कर खाता है और इस सारी अवधि में वाक् तन्तुओं की क्रिया या किसी अन्य प्रकार के प्रत्यक्ष प्रभाव का अनुभव करता है। कभी-कभी बच्चा ज़ंजीर से छूट जाता है और थोड़े ही समय की अवधि में ज़िन्दगी के भयावह गन्दले कुण्ड में जा पहुँचता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक, पिता या माता काँपती आवाज़ में आपत्ति उठाते हैं : ''वह बिल्कुल वश के बाहर हो गया है! दिन भर गलियों के चक्कर लगाता है! आप जानते हैं हमारे मोहल्ले में किस तरह के लड़के हैं? जवान शोहदे! कौन जाने वे कहाँ क्या करते हैं?

भाषणकर्ता की आवाज़ और आँखें दोनों ही निवेदन करती हैं : मेरे बेटे को पकड़ो,

उसे गलियों के आवारा छोकरों से बचाओ, उसे फिर शैक्षिक ज़ंजीर में बाँधो, मुझे उसे शिक्षा देते रहने दो।

ऐसी शिक्षा के लिये निश्चय ही काफ़ी अधिक फ़ालतू समय चाहिये और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका मतलब फालतू समय की बर्बादी है। ट्यूटरों व गवर्नेसों, स्थायी रूप से देख-रेख करने वाले ओवरसियरों की प्रणाली बहुत समय पहले ही विफल होकर टूट गयी। सर्वोत्तम, जीवन्त बच्चे, निरपवाद, बन्धन तोड़कर निकल भागते हैं।

एक सोवियत व्यक्ति को केवल एक व्यक्ति के प्रत्यक्ष प्रभाव द्वारा शिक्षित नहीं किया जा सकता है, चाहे उस व्यक्ति में कितने ही गुण न हों। शिक्षा व्यापकतम अर्थ की एक सामाजिक प्रक्रिया है। हर वस्तु शिक्षा में योग देती है : लोग, वस्तुएँ, घटनाएँ; लेकिन इनमें मुख्य और सर्वोपरि हैं-लोग। लोगों में माता-पिता और शिक्षकों का प्रथम स्थान है। बच्चा अपने इर्दगिर्द के यथार्थ के सम्पूर्ण जटिल संसार के साथ अनगिनत सम्बन्धों का बन्ध रहता है इनमें से प्रत्येक सम्बन्ध अन्य सम्बन्धों में परिव्याप्त होता हुआ अप्रतिकार्य रूप से विकसित हो रहा है और बच्चे की शारीरिक और नैतिक बढ़ती के साथ-साथ अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है।

इस ''उथल-पुथल'' में कोई भी चीज़ किसी भी गणना के अनुरूप होती नहीं जान पड़ती है। पर इसके बावजूद हर क्षण-विशेष पर बच्चे के व्यक्तित्व में निश्चित परिवर्तन हो रहे हैं। और शिक्षक का काम है कि वह इस विकास को दिशा दे, उसका मार्गदर्शन करे।

कुछ माता-पिताओं द्वारा बच्चे को जीवन के प्रभाव से बचाने और सामाजिक शिक्षा के स्थान पर व्यक्तिगत घरेलू प्रशिक्षण को प्रतिस्थापित करने के प्रयत्न विवेकशून्य हैं और व्यर्थ हैं। इसकी विफलता अवश्यम्भावी है : या तो बच्चा घरेलू क़ैदखाने को तोड़ भागेगा या आप एक विकृत प्राणी का निर्माण कर डालेंगे।

''तो बच्चे के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा के लिये ज़िम्मेदार ज़िन्दगी ही है? तो फिर परिवार का क्या महत्व है?''

नहीं, वह परिवार या, यदि आप चाहें, माता-पिता हैं, जो बच्चे के लालन-पालन के लिये ज़िम्मेदार हैं। लेकिन पारिवारिक समष्टि द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण शून्य के आधार पर बच्चे के चरित्र को नहीं ढाल सकता है। विविध पारिवारिक प्रभावों का एक सीमित पुंज या पिता के शैक्षिक भाषण भावी मानव के निर्माणार्थ पर्याप्त सामग्री नहीं है। अपनी बहुमुखी विविधताओंवाला सोवियत जीवन ही उस सामग्री को मुहैया कर सकता है।

पुराने ज़माने में बच्चों को ''फ़रिश्तों जैसी आत्माएँ'' कहा जाता था। हमारे ज़माने में कहा गया है कि बच्चे ''जीवन के सुमन'' हैं। यह बढ़िया बात है। लेकिन तुनकमिज़ाज भावुक लोगों ने इन सुन्दर शब्दों के अर्थ पर विचार करने का कष्ट नहीं उठाया। ऐसे लाग सोचते हैं कि जब बच्चों को ''सुमन'' कहा गया है, तो हमें

उनको लेकर झमेला खड़ा करने, ख़ुशी से फूल उठने, उन्हें सूँघने और आह-ओह करने के सिवा और कुछ नहीं करना चाहिये। कदाचित वे यह भी सोचते हैं ख़ुद फूलों को ही यह सिखलाना चाहिये कि वे ''सुखोपभोग'' का कमनीय गुलदस्ता हैं।

विचारशून्य व विशुद्ध सौन्दर्यबोधात्मक उत्साह में अपनी ही विफलता के बीज निहित होते हैं। ''जीवन के सुमनों'' को अपनी मेज़ पर चीनी गुलदान में पड़े ''सुखोपभोग'' का गुलदस्ता नहीं समझना चाहिये। ऐसे फूलों पर आप कितना ही उत्साह क्यों न दिखायें, कितना ही झमेला क्यों न करें, ये फूल पहले से ही मरणासन्न हैं, उनका विनाश अनिवार्य है और वे निष्फल हैं। कल आप उन्हें उठवाकर फेंक भर देंगे। और अगर आप उनके प्रति अत्यधिक भावुक हैं, तो आप उन्हें किसी मोटी पुस्तक के पन्नों में रखके सुखाकर देर तक रखेंगे, परन्तु उनसे किसी तरह की प्रसन्नता की उम्मीद नहीं की जा सकती है : आप स्मृतियों में कितना ही क्यों न खो जायें, उन्हें कितनी ही देर तक निहारते क्यों न रहें, आप को भूसे के सिवा, महज़ भूसे के सिवा और कुछ नहीं मिलेगा!

नहीं, हमारे बच्चे उस क़िस्म के फूल कतई नहीं हैं। हमारे बच्चे हमारे जीवन के जीवित तने पर फूलते हैं, वे गुलदस्ता नहीं हैं, वे सेबों का एक अद्‌भुत उद्यान हैं। और यह उद्यान हमारा है। मुझ पर यकीन कीजिए, यहाँ सम्पदा के अधिकार का तात्पर्य है कोई सुन्दर वस्तु, बेशक, ऐसे उद्यान की प्रशंसा न करना, उस पर प्रफुल्लित न होना कठिन है, लेकिन उसमें काम न करना और भी ज़्यादा कठिन हैं कृपा करके इस काम में हाथ बँटाइये : धरती खोदिये, पानी सींचिये, कीटपतंगों से छुटकारा दिलाइये और सूखी मृत शाखाओं को काटिये। अथाह ख़ुशी और चुम्बनों के लिये ही फूलों के निकट न आइये-अपना फावड़ा, कैंचियाँ तथा पानी सींचने का पात्र उठाइये और सीढ़ी लेकर आइये। और जब आपके उद्यान में कोई कीड़ा-शुंडी दिखायी दे, तो कीटनाशी दवा पेरिस-ग्रीन ले आइये। उससे डरिये मत, उसे थोड़ा छिड़किये, फूल को भी कुछ देर तक असुविधा का अनुभव करने दीजिये। प्रसंगतः, एक अच्छे माली को कीड़ों से कोई कष्ट नहीं होता है।

हाँ, हमें माली बनना चाहिये। यह उत्तम तुलना हमें इस कठिन समस्या कि बच्चों को कौन शिक्षित बनाता है-माता-पिता या जीवन?-के बारे में कुछ बातों को समझने में मदद करेगी।

एक उद्यान में पेड़ कौन उगाता है?

मिट्टी और वायु उसे पोषण देते हैं, सूर्य आक्सीकरण की मूल्यवान क्षमता प्रदान करता है, हवाएँ और आँधियाँ उसे प्रतिरोध के लिये दृढ़ता प्रदान करती हैं, उसके सह-वृक्ष उसे हानिकारक अकेलेपन से बचाते हैं। वृक्ष में तथा उसके गिर्द के वातावरण में अत्यन्त पेचीदा रासायनिक प्रक्रियाएँ काम कर रही हैं।

जीवन के इस श्रमसाध्य काम में माली क्या परिवर्तन ला सकता है? क्या उसे फलों के पकने और उन्हें लोभपूर्ण उदासीनता से तोड़कर ख़ुद हड़प जाने तक लाचार

और असहाय होकर गुपचुप बैठे रहना चाहिये? कुछ जंगली लोग ठीक ऐसा ही करते हैं। और ऐसा ही कई माता-पिता भी करते हैं।

पर असली माली ऐसा हरगिज़ नहीं करेगा।

मनुष्य ने बहुत पहले ही प्रकृति के साथ सावधानी और कोमलता से पेश आना सीख लिया था। उसने प्रकृति को रूपान्तरित करना, नये प्राकृतिक रूपों की रचना करना, प्रकृति के जीवन में अपनी शक्तिशाली दोष-निवारक क्षमता को लागू करना सीख लिया है। प्रकृति से पेश आना वास्तव में मनुष्य की उसको मदद करना ही है।

हमारी शिक्षा भी इसी प्रकार का एक दोष-निवारक हे। और सिर्फ़ इसी दिशा में शिक्षा सम्भव है। जीवन के समृद्ध अनेकानेक पथों पर, उसके पुष्पों, आँधियों व तूफ़ानों के बीच बच्चे को बुद्धिमानी व पूर्ण विश्वास के साथ आगे ले जाना एक ऐसा काम है, जिसे हर आदमी, यदि वह इसे सचमुच चाहता हो तो कर सकता है।

मुझे सबसे ज़्यादा झुँझलाहट इस घबराहट भरी चीख़ से होती है :

''गली के आवारा छोकरे!''

''देखिये ना, पहले सब कुछ ठीक-ठाक था, लेकिन फिर सेर्योजा ने हमारे मोहल्ले के ढेर सारे छोकरों से दोस्ती कर ली...''

यह ''ढेर सारे छोकरे'' सेर्योजा को बिगाड़ देते हैं। कोई नहीं जानता कि सेर्योजा कहाँ-कहाँ आवारा फिरता है। सेर्योजा ने कपड़े की आलमारी से पतलून का एक कपड़ा निकालकर बेच दिया। सेर्योजा आधी रात को वोद्का की गन्ध फैलाता घर आया। सेर्योजा ने अपनी माँ का अपमान किया।

कोई घोर नादान व्यक्ति ही इस बात पर विश्वास कर सकता है कि यह सब ''ढेर सारे छोकरों'' ने ''गली के छोकरों'' ने किया होगा। सेर्योजा नये क़िस्म का अनोखा लड़का नहीं है। वह पूर्णतः सामान्य स्टैण्डर्ड क़िस्म का ऐसा लड़का है, जिससे सब तंग आ गये हैं और उसे ऐसा बनानेवाले ''गली के छोकरे'' या ''मोहल्ले के छोकरे'' नहीं, बल्कि उसके आलसी चरित्रहीन माँ-बाप हैं। वह एक झटके में नहीं बना, यह प्रक्रिया अनवरत और आग्रहपूर्ण प्रक्रिया है और उस वक्त से चालू है जब सेर्योजा डेढ़ साल का था। पारिवारिक व्यवहार के कई पूर्णतः शर्मनाक लक्षणों ने उसके निर्माण में योगदान किया है : थोथा आलसीपन, उद्देश्यहीन दिवास्वप्न, नीचतापूर्ण निरंकुशता और, सर्वोपरि, अक्षम्य ग़ैर-ज़िम्मेदारी तथा तिल भर की कर्तव्य-भावना।

सेर्योजा निश्चय ही एक असली ''गली का छोकरा'' है, लेकिन उसे ऐसा आवारा छोकरा उसके परिवार ने, केवल परिवार ने बनाया। कदाचित आपके मोहल्ले के दायरे में उसे अपने ही जैसे असफल व्यक्ति मिल जाते हैं : वे सब मिलकर युवकों के सामान्य गिरोह की रचना करते हैं, वे सभी बराबर मात्रा में नैतिक दृष्टि से दमित हैं और बराबर मात्रा में ''गली के'' हैं। लेकिन उसी मोहल्ले में आप ऐसे दर्जनों बच्चे देखेंगे जिनके लिये पारिवारिक निकाय और पारिवारिक दोष-निवारक क्षमता ने ऐसे सिद्धान्तों और परम्पराओं की रचना की है, जो उन्हें गली के लड़कों से दूर रहे बग़ैर,

अपने आपको, पारिवारिक दीवारों के अन्दर, जीवन से अलग-थलग रखे बिना उनके प्रभाव की रोक-थाम करने में मदद देते हैं।

सफल पारिवारिक लालन-पालन का निर्णायक कारक माता-पिता द्वारा सोवियत समाज के प्रति अपने नागरिक कर्तव्य के अनवरत, सक्रिय और सचेत परिपालन में निहित है। जिन मामलों में माता-पिता द्वारा इस कर्तव्य को सचमुच महसूस किया जाता है, जहाँ यह उनके दैनिक जीवन के आधार की रचना करता है वहाँ यह परिवार के लालन-पालन के कार्य का भी अवश्यम्भावी रूप से मार्गदर्शन करता है। ऐसे मामलों में कोई विफलताएँ या महाविपत्तियाँ सम्भव नहीं हैं।

परन्तु, दुर्भाग्यवश माताओं और पिताओं की एक ऐसी श्रेणी भी है, और इस श्रेणी में काफ़ी अधिक लोग हैं, जिनके मामले में यह नियम काम नहीं करता है। यह लोग अच्छे नागरिक जान पड़ते हैं, लेकिन वे या तो सुसंगत ढंग से सोचने की क्षमता के अभाव से ग्रस्त हैं या दुर्बल दिशा-ज्ञान से या प्रेक्षण में बहुत कमज़ोर हैं। और सिर्फ़ इसी कारण से कर्तव्य की उनकी भावना पारिवारिक सम्बन्धों के क्षेत्र में काम नहीं करती और, फलतः उनके बच्चों के लालन-पालन के काम में भी नहीं आती। केवल मात्र इसी कारण से उन्हें कमोबेश गम्भीर विफलताओं का मुँह देखना पड़ता है और इसी कारण से वे समाज के लिये सन्दिग्ध गुणोंवाले मनुष्यों का ''उत्पादन'' करते हैं। अन्य अधिक ईमानदार हैं। वे सचाई से कहते हैं :

''आपको मालूम होना चाहिये कि बच्चों का लालन-पालन कैसे किया जाता है। शायद मैं इस काम को सही ढंग से नहीं कर पा रहा हूँ। बच्चों के लालन-पालन के लिये ज्ञान की ज़रूरत है।''

दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चों को अच्छे ढंग से पाल-पोस कर बड़ा बनाना चाहता है। पर इसके रहस्य को हर कोई नहीं जानता। कुछ लोगों ने इसकी खोज की है, कुछ लोग इसका पूरा-पूरा उपयोग करते हैं। लेकिन आप घोर अँधेरे में हैं, आपके सामने इस रहस्य को किसी ने उद्घाटित नहीं किया।

ऐसा होने की वजह से सभी शिक्षा-विज्ञान का मुँह जोहते हैं। प्रिय माता-पिताओ!

हमारी आपस की बात है : हमारे शिक्षक बन्धु भी अपने-अपने परिवारों में, अनुपात के मुताबिक, लगभग उतनी ही दोषपूर्ण वस्तुएँ तैयार करते हैं, जितनी कि आप। इसके विपरीत, उत्तम कोटि के बच्चों का लालन-पालन, बहुधा ऐसे माता-पिताओं द्वारा किया जाता है, जिन्होंने शिक्षा-विज्ञान का न अगला दरवाज़ा देखा है न पिछला।

और शिक्षा-विज्ञान बच्चों के इस लालन-पालन पर कोई ख़ास ध्यान नहीं देता है। यही कारण है कि सर्वाधिक विद्वान शिक्षा-वैज्ञानिक, विषय को भली-भाँति जानते हुए भी, अपने बच्चों का लालन-पालन करते समय सहजबुद्धि और सांसारिक ज्ञान पर अधिक भरोसा करते हैं लेकिन वे अन्य के मुकाबले कहीं अधिक मामलों में शिक्षण-वैज्ञानिक ''रहस्य'' में भोले-भाले विश्वास के दोषी होते हैं।

शिक्षा-विज्ञान के एक ऐसे ही प्रोफ़ेसर से मेरी पहचान थी। वे अपने इकलौते

बेटे से हमेशा ही ऐसा बर्ताव करते थे मानो वह एक ऐसी समस्या हो, जिसे पुस्तकों और गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से हल करना हो। अनेक शिक्षा-वैज्ञानिकों की भाँति उनका यह विश्वास था कि दुनिया में कहीं कोई ऐसी शिक्षा-वैज्ञानिक करामात अवश्य होगी, जो शिक्षक और बच्चे दोनों को पूर्ण और उल्लासजनक सन्तोष देती हो, समस्त सिद्धान्तों के अनुरूप होती हो और अमन-चैन तथा शाश्वत सुख का वातावरण बना देती हो! लड़का भोजन करते समय माँ के साथ धृष्टता से पेश आया। प्रोफ़ेसर ने कुछ देर सोचा और प्रेरणाप्रद समाधान पर जा पहुँचे :

"फ़ेद्या, चूँकि तुमने अपनी माँ का अपमान किया है, इसका मतलब है कि तुम हमारे घर को पसन्द नहीं करते। तुम इस मेज़ पर बैठने के क़ाबिल नहीं हो। अच्छी बात है, कल से मैं तुम्हें पाँच रूबल प्रतिदिन दूँगा-तुम अपना खाना जहाँ चाहो, वहीं खा लेना।"

प्रोफ़ेसर प्रसन्न हो गये। उनकी राय में उन्होंने अपने बेटे की धृष्टता के प्रति बड़ी ही बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतिक्रिया की। फ़ेद्या भी खुश था। लेकिन यह करामाती योजना अन्त तक चली नहीं। कुछ समय तक घर में अमन चैन रहा, पर शाश्वत सुख नदारद था।

प्रोफ़ेसर को यह उम्मीद थी कि तीन या चार दिन बाद फ़ेद्या उनके पास आयेगा, अपनी बाँहें पिता के गले में डाल देगा और कहेगा, "पिताजी, मैं ग़लती पर था, मुझे घर से विलग मत कीजिये।"

लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि जो हुआ वह ऐसा बिल्कुल नहीं था। फ़ेद्या को कहवाघरों और भोजनालयों में जाने का चस्का लग गया। एकमात्र चीज़ जो उसे परेशान करती थी, वह उसके पिता द्वारा दी जाने वाली राशि का कम होना था। उसने अपनी योजना में एक-दो हेर-फेर किये और घर में काफ़ी देर तक चीज़ों को टटोल-टटोलकर कुछ ढूँढ़ा और पहलक़दमी भी दिखलायी। अगली सुबह कपड़ों की आलमारी से प्रोफ़ेसर की पतलून ग़ायब हो गयी और शाम को उनका बेटा शराब के नशे में चूर घर लौटा। उसने मर्मस्पर्शी स्वर में अपनी माँ और अपने पिता के प्रति प्रेम प्रकट किया, पर पारिवारिक मेज़ पर लौटकर आने की कोई बात नहीं की। प्रोफ़ेसर ने अपनी पेटी खोल ली और कुछ मिनटों तक उसे अपने बेटे के सामने हिलाता रहा।

एक महीने बाद प्रोफ़ेसर महोदय ने आत्मसमर्पण कर दिया और अपने बेटे को श्रमिक-बस्ती में भेजने का आवेदन कर दिया। उनके अनुसार, फ़ेद्या को उसके कई दोस्तों ने बिगाड़ दिया :

"आप जानते नहीं, किस तरह के बच्चे हमारे मोहल्ले में हैं!

कुछ माता-पिता इस वाक़ये को सुनने पर निश्चय ही यह कहेंगे : "ठीक है, लेकिन अगर किसी का लड़का खाने की मेज़ पर अपनी माँ के साथ धृष्टता का बरताव करता है, तो उसके लिये क्या किया जाये?"

साथियो, कदाचित इसके बाद आप मुझसे यह पूछें कि अगर किसी का रुपये-पैसों से भरा बटुवा खो जाये, तो उसे क्या करना चाहिये? इस पर विचार कीजिये और आपको तुरन्त उत्तर मिल जायेगा : एक नया बटुवा खरीदिये, कुछ और धन कमाइये और उसे बटुवे में रख लीजिये।

यदि कोई बेटा अपनी माँ का अपमान करता है, तो किसी भी करामात से कोई लाभ नहीं हो सकता है। इसका मतलब है कि आपने अपने बेटे का लालन-पालन बहुत बुरे ढंग से किया है और कि आप बहुत लम्बे समय से ऐसा कर रहे हैं। आप इसके लालन-पालन के काम को नये सिरे से शुरू कीजिये, आपको अपने परिवार की अनेक बातों को बदलना होगा। बहुत सारी बातों पर विचार कीजिये और मुख्य रूप से खफ़द अपना सूक्ष्मता से परीक्षण कीजिये। और जहाँ तक यह प्रश्न है कि आपको धृष्टता के तुरन्त बाद क्या करना चाहिये, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका कोई भी सामान्य उत्तर नहीं दिया जा सकता है। यह अलग-अलग मामलों में अलग-अलग होगा, यह मालूम होना ज़रूरी है कि आप किस क़िस्म के आदमी हैं और आपने अपने परिवार के प्रति कैसा व्यवहार किया है। कदाचित आपने स्वयं ही अपने बेटे की उपस्थिति में अपनी पत्नी के साथ धृष्ट व्यवहार किया हो। प्रसंगतः यदि आपने अपने बेटे की अनुपस्थिति में अपनी पत्नी से दुर्व्यवहार किया हो, तो उसे भी ध्यान में लाइये।

नहीं, परिवार में बच्चों के लालन-पालन की करामातों को निश्चय ही दृढ़ता के साथ ठुकरा दिया जाना चाहिये। बच्चों की देखभाल और लालन-पालन एक गम्भीर और बेहद ज़िम्मेदारी का काम है और यह, निस्सन्देह, एक कठिन काम भी है। इस मामले में कोई भी आसान करामात आपकी मदद नहीं कर सकती है। एक बार, जब आपके परिवार में बच्चे का आगमन हो गया, तो इसका यह मतलब है कि आपको आनेवाले अनेक वर्षों तक अपना सम्पूर्ण चिन्तन, सारा ध्यान और सम्पूर्ण चरित्रबल उसी पर लगाना पड़ेगा। आपको अपने बच्चों का पिता और संरक्षक ही नहीं बना रहना होगा, बल्कि स्वयं अपने जीवन का संगठनकर्ता भी बनना होगा, क्योंकि एक नागरिक के रूप में आपके क्रियाकलाप के साथ तथा एक व्यक्ति के रूप में आपकी भावनाओं के साथ एक शिक्षक के रूप में आपके गुण पूरी तरह से बँधे होते हैं।

दूसरा अध्याय

...पुराने ज़माने का परिवार, दस्तकारों तथा छोटे अधिकारियों के परिवारों सहित, एक संचयकारी संगठन होता था। यह सच है कि संचय भिन्न होता था और परिणाम भिन्न होते थे। पारिवारिक संचय बच्चों की पढ़ाई के लिये, बेटियों के दहेज़ के लिये, ''शान्तिपूर्ण वृद्धावस्था'' के लिये और परिवार के लोक-दिखावे के लिये ज़रूरी था। पारिवारिक संचय की कृपा से क़िस्मतवाले लोग उस सामाजिक संस्तर में पहुँच जाते थे, जहाँ महज़ ग़रीबी से ही मुक्ति नहीं थी, बल्कि जहाँ ''असली'' सोसायटी में जा पहुँचने की उम्मीदें होती थीं।

इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण क़दम सफल विवाह होता था। अभिजातवर्गीय परिवारों की ही भाँति कामगारों, कर्मचारियों तथा बुद्धिजीवियों के परिवारों में भी प्रेमवश शादियाँ कभी-कभार ही होती थीं। बेशक हमारे परिवारों में होने वाले विवाहों में वही दोमोस्त्रोय* सरीखा माहौल नहीं होता था, जैसा कि अभिजातवर्गीय और व्यापारी परिवारों में हुआ करता था। वहाँ युवजनों को उनके पिताओं के निरंकुश निर्देशों के अनुसार, एक-दूसरे के दर्शन किये बिना ही ब्याह दिया जाता था। हमारे युवजन एक-दूसरे से कमोबेश स्वतंत्रता के साथ मिलते-जुलते थे, एक दूसरे को जानते-पहचानते थे और एक-दूसरे के स्नेह-निवेदनार्थ साथ-साथ आते-जाते थे, लेकिन अस्तित्व के लिये संघर्ष का क्रूर नियम लगभग यांत्रिक रूप से काम करता था। विवाह तय करने में भौतिक कारण बहुधा निर्णायक हुआ करता था। एक बेटी का दहेज़, एक तरफ़, भावी समृद्धि के लिये एक बीमा होता था और, दूसरी तरफ़, सम्माननीय वर को आकृष्ट करता था। शादी करते समय, सुन्दर आँखों, आकर्षक आवाज़, दयालु हृदय जैसे महत्वहीन तर्कों से निर्देशित होने का अवसर केवल निर्धनतम लड़कियों को ही मिलता था।

घर का अधिपति पिता होता था। वही परिवार के भौतिक संघर्ष का निर्देशन करता था, वही उसकी कष्टसाध्य, दुरूह योजनाओं को चलाता था, वही धन-संचय का संगठन करता था, वही पैसों की गिनती करता था और वही बच्चों की नियति का निर्धारण करता था।

पिता! वह इतिहास का मुख्य पात्र था। अधिपति, अधिकर्मी, शिक्षक, न्यायकर्ता

---

* **दोमोस्त्रोय**-पन्द्रहवीं सदी मे लिखित एक पुस्तक, जिसमें उस काल के रूसी परिवारों के लिये सही जीवन पद्धति का प्रावधान किया गया था-अब यह शब्द पारिवारिक निरंकुशता का पर्याय है।-**सं.**

और कभी-कभी, दण्डाधिकारी भी वही था, वही परिवार को सीढ़ी के एक सोपानक से दूसरे में ले जाता था। सम्पत्ति के स्वामी, पूँजी के संचयकर्त्ता व निरंकुश शासक, ईश्वर के सिवा सभी संविधानों के लिये अजनबी उस पिता के पास ज़बर्दस्त शक्ति होती थी, जो प्रेमवश और भी अधिक बढ़ जाती थी।

लेकिन उसका एक और पक्ष भी था। यह वही था, जिसने अपने बच्चों की, उनकी ग़रीबी, बीमारी व मृत्यु की, उनके झंझटभरे जीवन तथा संकटपूर्ण अन्त की विकट ज़िम्मेदारी का भार अपने कन्धों पर उठाया था। उस पर यह ज़िम्मेदारी जीवन के मालिकों, बलात अर्थापहरणकर्ताओं व अनाचारियों, सामन्तों, महाजनों, जनरलों तथा फ़ैक्टरियों के मालिकों द्वारा शताब्दी-दर-शताब्दी लादी जाती रही, और वह शताब्दी-दर-शताब्दी उसी प्रेम के कारण वर्द्धित इसके असह्य भार को उठाता रहा है। वह कराहता पीड़ा सहता रहा और उस ईश्वर को कोसता रहा, जो उतना ही अबोध था, जितना वह खुद-लेकिन इस ज़िम्मेदारी से वह कभी इनकार नहीं कर पाया।

इसीलिये उसकी शक्ति और अधिक पावन और पहले से भी अधिक निरंकुशतापूर्ण हो गयी। लेकिन जीवन के मालिक अपने अपराधों के लिये उत्तरदायी इस गर्हित प्रतिमा की, शक्ति और कर्तव्य के बोझ से पिसते हुए पिता की सेवाओं को पाकर हमेशा प्रसन्न रहे।

एक सोवियत परिवार पितृसत्तात्मक राजतंत्र नहीं हो सकता है, क्योंकि परिवार की पुरानी आर्थिक प्रेरक शक्ति लुप्त हो गयी है। हमारे यहाँ के विवाह भौतिक कारणों को ध्यान में रखकर नहीं किये जाते, और हमारे बच्चों को परिवार की सीमाओं के अन्तर्गत मूलभूत भौतिक महत्व की कोई भी चीज़ विरासत में नहीं मिलती है।

अब हमारा परिवार पिता के अधिकार की वस्तुओं का अलग-थलग समूह नहीं रहा। हमारे परिवार के सदस्य पिता से लेकर कल ही जन्मे शिशु तक एक समाजवादी समाज के सदस्य हैं। उनमें से प्रत्येक, इस श्रेष्ठ पद के सम्मान व प्रतिष्ठा का रखवाला है।

और सर्वोपरि रूप से : परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये राष्ट्रव्यापी पैमाने पर उपलब्ध रास्ते व अवसर-उनकी अद्‌भुत विविधता-पूर्णतः सुनिश्चित है। अब प्रत्येक व्यक्ति की विजयपूर्ण प्रगति पारिवारिक शक्तियों के बजाय स्वयं उस पर अधिक निर्भर है।

लेकिन हमारा परिवार समाज के सदस्यों का संयोगवशात बना सम्मेल नहीं है। परिवार एक प्राकृतिक सामूहिक निकाय है, हर प्राकृतिक, सामान्य और स्वस्थ वस्तु की तरह यह भी उन अभिशापों से मुक्त समाजवादी समाज में ही विकसित हो सकता है, जिनसे सम्पूर्ण मानवजाति और अलग व्यक्ति सचमुच अपने को मुक्त कर रहे हैं।

परिवार समाज की प्राकृतिक प्राथमिक इकाई बन जाता है, ऐसा स्थल बन जाता है, जहाँ मानव-जीवन की खुशियाँ व्यावहारिक रूप लेती हैं, जहाँ मनुष्य की विजयी शक्तियाँ नयी ताक़त प्राप्त करती है, जहाँ बच्चे-जीवन का प्रमुख उल्लास-रहते तथा

फलते-फूलते हैं।

दूसरी तरफ़, हमारे माता-पिता अधिकारविहीन भी नहीं है, लेकिन उनका अधिकार सामाजिक अधिकार का ही प्रतिबिम्ब होता है। हमारे देश में अपने बच्चों के प्रति पिता की ज़िम्मेदारी समाज के प्रति उसके कर्तव्य का एक विशिष्ट रूप होता है। यह ऐसा ही है मानो हमारा समाज माता-पिताओं से कहता हो :

''आप सद्भाव और प्रेम से परस्पर एकजुट हैं, अपने बच्चों पर प्रसन्न होते हैंतथा उम्मीद करते हैं कि आपकी यह प्रसन्नता बनी रहेगी। यह आपका अपना मामला है, और आपकी अपनी व्यक्तिगत ख़ुशी से सम्बन्धित है। लेकिन प्रसन्नता की इस प्रक्रिया में आपने नये लोगों को जन्म दिया है। एक समय आयेगा, जब ये लोग आपके लिये केवल मात्र एक प्रसन्नता भर नहीं बने रहेंगे, वे समाज के स्वतंत्र सदस्य बन जायेंगे। वे किस प्रकार के लोग होंगे यह समाज के लिये उदासीनता का मामला क़तई नहीं है। आपको किंचित सामाजिक अधिकार देकर सोवियत राज्य आपसे इन भावी नागरिकों के उचित लालन-पालन की माँग करता है। वह आपके मिलन से स्वभावतः उत्पन्न एक विशिष्ट परिस्थिति-आपकी वात्सल्य की भावना-पर ख़ास तौर से भरोसा करता है।

''यदि आप वात्सल्य की भावना के बिना ही एक नागरिक को जन्म देना चाहते हैं, तो, बराय मेहरबानी, समाज को आगाह कर दीजिये कि आप ऐसी धूर्ततापूर्ण चाल खेलने जा रहे हैं। वात्सल्य के बग़ैर पले-बढ़े लोग बहुधा विरूपित लोग होते हैं। और चूँकि समाज में अपने हर सदस्य के लिये, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, वात्सल्य की भावना होती है, अतः आपके बच्चों के प्रति आपकी ज़िम्मेदारी हमेशा ही वास्तविक रूप धारण कर सकती है।''

सोवियत समाज में माता-पिता का अधिकार समाज की प्रतिनिधित सत्ता पर ही नहीं, बल्कि सार्वजनिक नैतिकता की सम्पूर्ण शक्ति पर भी आधारित होता है। यह नैतिकता माता-पिता से माँग करती है कि कम से कम वे चरित्रभ्रष्ट न हों। माता-पिता ऐसे ही प्यार तथा अधिकार सहित परिवार के सामूहिक निकाय के एक विशेष घटक की रचना करते हैं तथा इसी नाते उसके दूसरे घटक-बच्चों-से भिन्न होते हैं।

हमारा सोवियत परिवार, अपने पूर्ववर्ती की ही तरह, एक आर्थिक इकाई की रचना करता है। लेकिन सोवियत परिवार की अर्थव्यवस्था श्रम द्वारा अर्जित पारिश्रमिकों का कुल योग होती है। यदि वे बहुत अधिक भी हों, यदि वे परिवार की सामान्य आवश्यकता से ज़्यादा भी हों, यदि वे संचित भी होती हों, तो भी यह संचय पूँजीवादी समाज के संचय से नितान्त भिन्न प्रकृति का संचय होता है।

हमारे परिवार की अर्थव्यवस्था सामाजिक अर्थव्यवस्था की पूर्णतः नयी दशाओं के अन्तर्गत है और तदनुरूप सामाजिक नैतिकता की पूर्णतः नयी दिशाओं के अधीन

निर्मित हुई है। हमारे परिवार के सम्मुख विद्यमान सम्भावनाओं में असाध्य गरीबी का कोई स्थान नहीं है। दूसरी तरफ़ कोई निजी फ़ैक्टरियाँ या निजी जायदाद नहीं है। अतः सोवियत राज्य में पारिवारिक आर्थिक नीति की समस्या पूर्णतः नये रूपों में प्रकट होती है। सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण यह तथ्य है कि अब परिवार के कल्याणार्थ केवल पिता ही ज़िम्मेदार नहीं हैं। इस कल्याण के लिये परिवार को, सम्पूर्ण सोवियत समाज को उत्तर देना है।

हमारे देश में भी ऐसे परिवार की कल्पना की जा सकती है, जो अपनी ज़रूरतों को प्रयत्न करके और कभी-कभी बहुत अधिक प्रयत्न करके पूरा कर पाता है। हमें ऐसे कुछ परिवारों से वास्ता पड़ा है, जिनका उदाहरण कई लोगों के लिये बहुत शिक्षाप्रद हो सकता है।

संचय की जो सहजवृत्ति पुराने जीवन का निर्देशन करती थी, वह हमारे जीवन से लगभग पूर्णतः मिटा दी गयी है। हमारे एक भी नागरिक के बारे में यह कल्पना करना कठिन है कि वह अपने मन की अन्तर्तम गहराइयों में भी पुराने ज़माने की-सी लालसा रखता हो : ''हाय, कितने दुख की बात है कि मैं एक छोटी-सी दुकान नहीं खोल सकता!''

पुराने समाज में संचय की सहजवृत्ति उपभोग का एक स्थायी नियामक थी। संचय का लोभ कभी-कभी इतना बढ़ जाता था कि वह स्वयं उसी को नकार देता था। लोभ के हाथ इतने लम्बे हो जाते हैं कि केवल लूट-खसोट के ही लायक रह जाते और मालिक की उदर-सेवा भी नहीं कर पाते थे।

हमारे देश में केवल पागल आदमी ही इस आधार पर किसी वस्तु के उपभोग से इनकार करेगा कि उसने थोड़ी-सी पूँजी जमा करने और उसे परिसंचरण में लाने का फ़ैसला किया है।

इस परिस्थिति का विराट राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक महत्व है। पूँजीवादी समाज के मुख्य मूल प्रेरक-संगठित लोभ-को हमारे समाज की नैतिक सूची से हमेशा-हमेशा के लिये मिटा दिया गया है। यह उपभोक्ता-लोभ, जो तर्क के अनुसार हमारे यहाँ भी अनुज्ञेय है, से मनोवैज्ञानिक तथा उद्देश्यों सम्बन्धी कारकों के एक जटिल प्रकार के कारण भिन्न होता है, क्योंकि यह सत्ता की उत्कट लालसा, महात्वाकांक्षा, दर्प, दासता से लगाव तथा आश्रित-पराश्रितों की ऐसी श्रृंखला को आवेष्ठित करता है, जो अनगिनत लोगों तथा वस्तुओं पर व्यापक अधिकार के, अनिवार्यतः, साथ प्रकट होती है।

इस संगठित लोभ को विश्व के इतिहास में पहली बार अक्टूबर क्रान्ति द्वारा मिटा दिया गया। यह तथ्य संविधान* में दर्ज है :

भूमि, उसके खनिज जल-संसाधन और वन, मिलें, कारखाने, खानें, रेलें, बैंक,

---

* सोवियत संघ के संविधान के अनुच्छेदों का पाठ अ.से.मकारेंको द्वारा 1936 के संविधान के अनुसार दिया गया है।-सं.

परिवहन और संचार के साधन, राज्य द्वारा संगठित बड़े कृषि उद्यम (राजकीय फार्म, मशीन व ट्रैक्टर-स्टेशन आदि) और जनोपयोगी सेवाओं और अन्य उद्यमों की सम्पत्ति तथा अधिकांश शहरी रिहायशी इमारतें राज्य की सम्पदा हैं, अर्थात, ये सब सारी जनता के हैं।

यह मानवजाति की नयी नैतिकता का आधार है।

लेकिन हमारा संविधान यह भी कहता है :

अपनी आमदनी और काम से की गयी बचत पर, रिहायशी मकानों पर तथा सहायक घरेलू धन्धों के लिये आवश्यक औज़ारों और अन्य वस्तुओं, दैनिक उपयोग तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति को उत्तराधिकार में पाने का नागरिक अधिकार क़ानून द्वारा सुरक्षित है।

यही वे अधिकार हैं जो मानवजाति के महान संघर्ष के वास्तविक लक्ष्य की रचना करते हैं और जिनका मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण के जरिये हमेशा उल्लंघन होता रहा है।

हमारे देश में ये अधिकार क़ानून द्वारा सीमित नहीं है। वे हमारी राष्ट्रीय सम्पदा की वास्तविक अवस्था से सीमित हैं, और चूँकि यह सम्पदा हर दिन बढ़ रही है, इसलिये व्यक्ति द्वारा उपभोग के अवसर भी हर दिन बढ़ रहे हैं। हमारे राज्य ने अपने लिये सार्विक सम्पदा की उपलब्धि का स्पष्ट और स्वीकृत लक्ष्य निश्चित किया है, इसलिये प्रत्येक परिवार के सामने भौतिक अवसरों का व्यापक क्षेत्र मौजूद है।

सोवियत परिवार का समूह उस घरेलू सम्पदा का एकमात्र स्वामी है, जो केवल श्रम से पैदा की गयी है। पारिवारिक समूह का यह आर्थिक क्षेत्र बहुत हद तक एक शैक्षिक क्षेत्र भी बन जाता है।

हमारा समााज उन्मुक्त और सचेत रूप से कम्युनिस्ट समाज की तरफ़ बढ़ रहा है।

हमारे समाज में मानवीय व्यवहार के औसत स्तर के मुक़ाबले नैतिक माँगें उच्चतर होनी ही चाहिये। नैतिकता समस्त लोगों से सर्वाधिक निर्दोष व्यवहार के अनुकरण की माँग करती है। हमारी नैतिकता पहले से ही कम्युनिस्ट समाज की नैतिकता होनी चाहिये। कम्युनिज़्म के संघर्ष में हमारे लिये ज़रूरी है कि हम अपने में कम्युनिस्ट समाज के सदस्यों के गुणों का अभी विकास करें। जब हम ऐसा करेंगे तभी हम उस ऊँची नैतिक भावना को बनाये रख सकेंगे, जो हमारे समाज को किसी अन्य से इतना अधिक भिन्न बनाती है।

कई लोग कम्युनिज्म के इस महान नियम की अभी भी व्यवहार में कल्पना नहीं कर पाते : ''प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार'', अनेक लोग अभी भी वितरण के ऐसे श्रेष्ठ सिद्धान्त की कल्पना नहीं कर पाते जो ईमानदारी, न्याय, नियम निष्ठता, विवेक, विश्वास और नैतिक चरित्र की शुद्धता के अभूतपूर्व रूपों की पूर्वापेक्षा करता है।

शैक्षिक कार्य का, मुख्यतः पारिवारिक समूह के काम का गहन अर्थ मानवीय

आवश्यकताओं के चयन और प्रशिक्षण में, नैतिकता की श्रेष्ठ भावना में उनके लालन-पालन में निहित है। केवल यही भावना मनुष्य को आगे और अधिक पूर्णता की प्राप्ति के संघर्ष में आगे बढ़ने को प्रेरित कर सकती है। वास्तव में नैतिक दृष्टि से उचित आवश्यकता एक सामूहिकतावादी की आवश्यकता होती है, यानी ऐसे व्यक्ति की, जो सर्वनिष्ठ लक्ष्य की, समान संघर्ष की अपनी भावना द्वारा, समाज के प्रति अपने कर्तव्य की जीवित और निश्चित जागरूकता द्वारा अपने समूह से जुड़ा होता है।

हमारे समाज में आवश्यकता कर्तव्य, उत्तरदायित्व और योग्यता की बहन होती है। यह सामाजिक फ़ायदों के उपभोक्ता के स्वार्थों की नहीं, बल्कि समाजवादी समाज के सक्रिय सदस्य की, उन फ़ायदों को उत्पन्न करनेवाले के हितों की अभिव्यक्ति होती है।

एक किशोर लड़का मुझसे मिलने आया। वह शायद बारह वर्ष के लगभग होगा या, हो सकता है, इससे कुछ कम उम्र का रहा हो। वह मेरे सामने एक आराम-कुर्सी पर बैठा, उसने अपने हाथ से मेज़ के किनारे को रगड़ा और बोलने की-सी कोशिश की, परन्तु बोल नहीं पाया। उसका सिर गोल और घुटा हुआ था, उसके गाल भरे हुए थे और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें सामान्य क़िस्म के आँसुओं से डबडबायी हुई थीं। मैंने देखा कि उसकी क़मीज़ का कालर हिम-सदृश श्वेत था।

यह किशोर बालक एक अभिनेता था। मैंने उसके जैसे कई बच्चे देखे थे : उसके चेहरे पर एक बनावटी भाव था, जो शायद किसी सिनेमा से सीखा गया था, भौंहें सिकुड़ी थीं, माथे की कोमल पेशियों में बनावटी सलवटें पड़ी थीं, जिनसे ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी बूढ़े आदमी की नक़ल उतार रहा हो।

''अच्छा? जो चाहते हो, कहो। तुम्हारा नाम क्या है?'' मैंने पैनी नज़र से उसकी तरफ़ देखते हुए पूछा।

लड़के ने एक बढ़िया आह भरी, मेज़ के किनारे पर फिर हाथ फेरा, अपने सिर को जानबूझकर एक तरफ़ को मोड़ा और बनावटी विषादपूर्ण आवाज़ में कहा :

''कोल्या। लेकिन कहने को क्या है? मेरे पास जीने को कुछ नहीं है। खाने को कुछ नहीं है।''

''तुम्हारे पिता नहीं हैं?''

कोल्या ने आँसुओं को और बढ़ा दिया और ख़ामोशी से हामी भरी।

''और माँ?''

उसने अपने हाथों को घुटनों के बीच रख लिया, थोड़ा-सा आगे को झुका, अपनी आँखें खिड़की की तरफ़ घुमायीं और शानदार ढंग से अभिनय किया।

''माँ! उनकी क्या कहूँ! जब वे महज़ एक क्लोकरूप में... एक क्लब में... काम करती हैं, तो उनसे क्या उम्मीद की जा सकती है!''

लड़के ने अपने आप को इतना क्षुब्ध कर दिया कि उसने अपनी मुद्रा बदलने की

कोई चेष्टा नहीं की और खिड़की से बाहर को ताकता रहा। उसकी आँखें अभी भी आँसुओं से तर थीं।

''यह बात है,'' मैंने कहा। ''तो तब तुम मुझसे क्या चाहते हो?''

उसने मुझ पर नज़र डाली और अपने कन्धों को उचकाया।

''कुछ करना ही होगा। मुझे कालोनी को भेज दीजिये।''

''कालोनी को? नहीं, तुम कालोनी के लिये उपयुक्त नहीं हो। वहाँ का जीवन तुम्हारे लिये कठिन होगा।''

उसने उदास भाव से अपने सिर को हाथ पर टिकाया और उदासी से कहा :

''मैं रहूँगा कैसे? मैं क्या खाऊँगा?''

''लेकिन तुम तो अपनी माँ के साथ रहते हो, रहते हो कि नहीं?''

''क्या कोई पाँच रूबल में गुज़ारा कर सकता है? और फिर कुछ पहनने के लिये भी तो होना चाहिये।''

मैंने फ़ैसला किया कि प्रत्याक्रमण का समय आ गया है।

''अच्छा, अब तुम मुझे एक और बात बताओ, तुमने स्कूल क्यों छोड़ा?''

मुझे यह आशा नहीं थी कि कोल्या सहसा किये गये इस आक्रमण को झेल लेगा। मैंने सोचा था कि उसका बाँध टूट जायेगा और वह रोने लगेगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। कोल्या ने अपना चेहरा मेरी तरफ़ घुमाया और उस्तादी ताज्जुब दिखलाते हुए बोला :

''जब कुछ खाने को ही न हो, तो मैं स्कूल कैसे जा सकता हूँ।''

''तुमने आज सुबह नाश्ता किया?''

कोल्या कुर्सी से उठा और वार करने के लिये तैयार हो गया। आख़िर वह समझ गया था कि टूटे हुए दिलवाले की उस मुद्रा और आँसूभरी आँखों से मुझ पर कोई असर नहीं होगा। मुझ जैसे शंकालुओं के ख़िलाफ़ निर्णायक कार्रवाई की जानी चाहिये। कोल्या सीधा होकर बोला :

''आप मुझसे सवाल क्यों पूछ रहे हैं? अगर आप मदद करना नहीं चाहते, तो मैं कहीं और चला जाऊँगा। नाश्ता! मेरे नाश्ते के बारे में आपको चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। किया तो!''

''अहा, तो तुम इस क़िस्म के हो!'' मैंने कहा, ''तुम लड़ाकू हो!''

''बेशक,'' कोल्या ने फुसफुसाकर कहा, लेकिन आँखें नीची कर लीं।

''तुम धृष्ट हो,'' मैंने धीरे से कहा। ''पूरे धृष्ट!''

कोल्या में तेज़ी आ गयी। उसकी आवाज़ में अच्छे बालकोचित स्वर वापस आ गये और सारे आँसू गायब हो गये।

''आप मुझ पर यक़ीन नहीं करते? नहीं करते? ऐसी बात है? है, तो ऐसा ही कहिये!''

''बेशक, मैं ऐसा ही कहूँगा, मुझे तुम पर यक़ीन नहीं है, और तुम्हारी सब बातें

झूठी हैं। कुछ खाने को नहीं, कुछ पहनने को नहीं! तुम बेचारे भुखमरी से बिल्कुल मर तो नहीं गये!''

''आकर आप यक़ीन करना नहीं चाहते, तो मत कीजिये,'' कोल्या ने दरवाज़े की तरफ़ बढ़ते हुए लापरवाही से कहा।

''नही, रुको,'' मैंने उसे रोका, ''तुमने यहाँ बैठे-बैठै झूठ बोलकर ढेर सारा वक़्त बर्बाद किया है! अब हम चलेंगे।''

''कहाँ चलेंगे?'' कोल्या ने घबराकर कहा।

''घर, तुम्हारी माँ से मिलने।''

''उफ़्! देखिये! मैं कहीं नहीं जा रहा हूँ! और मैं जाऊँ क्यों?''

''क्यों से क्या मतलब है, तुम घर चल रहे हो।''

''मुझे घर जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। आप क्या चाहते हैं, इसकी मुझे कोई परवाह नहीं।''

मैं उस लड़के को देखकर क्रोधित हो गया।

''बहुत बात हो गयी, मुझे अपना पता बताओ! नहीं बताओगे? अच्छी बात है बैठ जाओ और यहाँ इन्तज़ार करो!''

कोल्या ने मुझे अपना पता नहीं बताया, लेकिन वह उस आरामकुर्सी में बैठ गया और चुप बैठा रहा। पाँच मिनट बाद जब वह एक कार के अन्दर बैठा, तो उसने बिना हीला-हवाला किये, यह बता दिया कि वह कहाँ रहता है।

दमित और दयनीय-से नज़र आते हुए वह मुझे नये श्रमिक-क्लब के लम्बे-चौड़े अहाते से होता हुआ ले गया, लेकिन अब उसका दुख एक बच्चे का दुख था, इसलिये उसकी नाक, उसके गाल, काली जैकेट की आस्तीनें और उत्तेजना को घटानेवाली अन्य सभी चीज़ें उसके दुख में सक्रिय रूप से भाग ले रही थीं।

पर्दों, फूलों और पलंग के पास उजले कालीन से सज्जित एक छोटे से साफ़ कमरे में कोल्या सीधे एक कुर्सी में जा बैठा, उसने अपना सिर बिस्तर पर टिकाया और फिर अस्पष्ट स्वर में बड़बड़ाता, किसी के ख़िलाफ़ शिकायत करता रोने लगा, लेकिन इस दौरान अपनी टोपी को मज़बूती से हाथ में पकड़े रहा। उसकी माँ अपने बेटे के ही जैसे भरे गालों और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली एक जवान औरत थी, उसने कोल्या के हाथ से टोपी लेकर उसे एक कील पर टाँग दिया और फिर मेरी ओर देखकर मुस्करायी।

''यह वहाँ क्या कर रहा था? क्या आप उसे यहाँ वापस लाये हैं?''

कोल्या ने एक क्षण के लिये अपनी सुबकियाँ इसलिये रोक दीं, ताकि वह ऐसी किसी भी चाल को विफल कर सके, जो कि मैं उसके ख़िलाफ़ आज़मा सकता था।

''मुझे कोई नहीं लाया! मैं खुद उन्हें लाया हूँ! वे यहाँ आने के लिये ज़ोर देते रहे! अब चलिये, बोलिये मेरे बारे में...''

उसने उस मुलायम बिस्तर में फिर अपना सिर छिपा लिया, लेकिन अब वह

किसी और तरीक़े से, एक ही ओर से रो रहा था, क्योंकि अब वह अपने सिर के दूसरे हिस्से से मेरी और अपनी माँ की बातचीत सुन रहा था।

उसकी माँ बिल्कुल शान्त थी।

''मैं नहीं जानती कि इसका क्या करूँ। वह पहले ऐसा नहीं था, लेकिन बाद में वह चेर्नीगोव प्रदेश में एक राजकीय फ़ार्म के डायरेक्टर-मेरे भाई-के साथ रहने गया-उसका यह नतीज़ा है। यह मत सोचियेगा कि जो वह कहता है, सच है : वह ख़ुद नहीं जानता कि वह क्या चाहता है। जहाँ कहीं भी वह जाता है, उसने चीज़ें माँगते रहना सीखा है। उसने स्कूल छोड़ दिया है, और आप जानते हैं, वह चौथी कक्षा में था। काश, वह पढ़ाई करता, लेकिन वह अध्यक्षों के पास जाता रहता है और उन्हें परेशान करता है। और ज़रा उससे पूछिये कि उसके पास क्या नहीं है। पहनने को कपड़े हैं, पैर में जूते हैं, एक अच्छा पलंग हैं। मैं यह नहीं कहूँगी कि हमारे यहाँ तरह-तरह के भोजन तैयार होते हैं, लेकिन वह कभी भूखा नहीं रहा। पर यह सच है कि डायरेक्टर के यहाँ बेहतर था। आख़िर वहाँ देहाती इलाक़ा है और राजकीय फ़ार्म है तथा उनके घर के पास भी सहायक खेत है।

कोल्या ने रोना बन्द कर दिया, लेकिन अपने सिर को बिस्तर पर ही रहने दिया और पैरों से कुर्सी के नीचे कुरेदने लगा। स्पष्ट था कि वह अपनी किसी बात के बारे में सोच रहा था और अपनी माँ के शालीन विचारों के ख़िलाफ़ अन्दर ही अन्दर विरोध कर रहा था।

मैं उसकी माँ के अद्‌भुत आशावाद को देखकर दंग रह गया। उसके वर्णन से साफ़ ज़ाहिर था कि उसे अपने लड़के को लेकर काफ़ी कठिन जीवन बिताना पड़ रहा था, लेकिन सब कुछ ठीक-ठाक था और वह सभी बातों से सन्तुष्ट थी।

''इससे पहले और भी ख़राब था : नब्बे रूबल, ज़रा सोचिये! लेकिन अब मुझे एक सौ बीस मिल रहे हैं, और सुबह का समय खाली रहता है। मैं अन्य कामों से कुछ अतिरिक्त कमा लेती हूँ। और मैं अध्ययन भी कर रही हूँ। तीन महीने के अन्दर मुझे पुस्तकालय में स्थानान्तरित कर दिया जायेगा, तब मुझे एक सौ अस्सी रूबल मिलने लगेंगे।''

वह शान्त निश्चितता से मुस्कराई। उसके तरीक़े में तनाव का कोई चिह्न नहीं था, उत्तेजना का, या स्वयं पर विश्वास के अभाव का कोई संकेत भी नहीं था। वह मन के अन्तिम तह तक आशावादी थी। उसके उज्जवल चरित्र की तुलना में मुझे उसके बेटे का विवेकहीन, झूठा विद्रोह बहुत ही बेतुका जान पड़ा। लेकिन उसकी माँ को इसमें कोई असामान्य बात नहीं दिखायी पड़ी।

''उसे कुछ समय तक उफ़नने दीजिये। इससे उसे फ़ायदा होगा! यही मैंने उसे बताया है : अगर तुझे मेरे साथ रहना पसन्द नहीं है, तो कोई बेहतर चीज़ खोज ले। अगर तू स्कूल छोड़ना चाहता है, तो छोड़ दे और ख़ुश रह। लेकिन ध्यान रख कि मैं यहाँ, इस कमरे में कोई बड़बड़ाहट नहीं सुनना चाहती। किसी ऐसे अन्य व्यक्ति को

खोज ले जो तुझ जैसे छोटे मूर्ख की बातें सुनना चाहे। वह अपने मामा के यहाँ जाकर बिगड़ गया। वहाँ रोज़ मुफ़्त का सिनेमा! लेकिन मैं सिनेमा के लिये धन कहाँ से ला सकती हूँ! वह एक जगह बैठे और किताब पढ़े! यह कोई बात नहीं, संभल जायेगा! इस समय वह कॉलोनी को जाना चाहता है। वहाँ उसके कुछ दोस्त हैं, इसीलिये...''

कोल्या अब कुर्सी पर चुपचाप बैठा था, और अपनी माँ की मुस्कराती हुई जीवन्त भाव-भंगिमाओं को ध्यानपूर्वक, हार्दिकता के साथ देख रहा था। उसने उसके इस ध्यान को देखा और उसे बनावटी कोमलता के साथ उलाहना देते हुए कहा :

''उँह, वहाँ छोटे-नवाब की तरह बैठा है। उसके लिये माँ के साथ रहना काफ़ी नहीं है! नहीं, मैं तुझसे बात नहीं करूँगी, जा कोई बेहतर जगह खोज ले, कहीं चला जा और वहीं भीख माँगना शुरू कर दे...''

कोल्या ने अपना सिर पीछे को किया और नज़र चुराते हुए दूसरी तरफ़ देखा।

''लेकिन माँ, इस तरह क्यों बोल रही हो? मैं क़तई भीख नहीं माँग रहा हूँ। पर सोवियत शासन में मुझे माँग करने का अधिकार है।''

''किसकी माँग करने का?'' उसकी माँ ने मुस्कराते हुए पूछा।

''कोई भी चीज़ जो मैं चाहता हूँ'', उसने और भी अधिक नज़र चुराते हुए उत्तर दिया।

हमें इसका फ़ैसला नहीं करना चाहिये कि इस झगड़े में दोष किसका है। जब सारे तथ्य ज्ञात न हों तो फ़ैसला करना बहुत ही कठिन काम होता है। मुझे वह लड़का और उसकी माँ दोनों ही अच्छे लगे, मैं आशावाद का बहुत प्रशंसक हूँ।

परन्तु... परन्तु इसके बावजूद कोल्या और उसकी माँ की स्थिति अच्छी नहीं हुई। किसी तरह से यह हुआ कि लड़के की आवश्यकताओं ने एक ऐसी दिशा ग्रहण कर ली, जिसका न तो माँ के दैनिक संघर्ष के साथ कोई वास्ता था और न उसकी सफलताओं और आशाओं के साथ। इसके लिये दोष किसका था? उसके डायरेक्टर मामा का तो निश्चय ही नहीं था। अपने मामा के साथ रहने से कोल्या की अनाकार तथा ग़लत-सलत ढंग से उपार्जित महात्वाकांक्षाओं को उकसावा मात्र मिला।

लेकिन यह बोधगम्य बात है कि हमें स्वच्छन्द रूप से बननेवाली सभी इच्छाओं को आवश्यकता मानने का कोई अधिकार नहीं है। इसका मतलब होगा हर व्यक्तिगत आवेग को बेलगाम चलने देना। उनके फलस्वरूप होने वाले दुष्परिणामों के साथ हर अलग मामले में अलग प्रकार का संघर्ष करना होगा। इन दुष्परिणामों में मुख्य है व्यक्तित्वों की विकृति और उनकी उम्मीदों का बर्बाद होना। यह दुनिया की पुरानी कहानी है, क्योंकि आवश्यकताओं की सनक उत्पीड़कों की सनक होती है।

पहली नज़र में कोल्या का व्यवहार एक ऐसे सोवियत बालक का व्यवहार-सा दिखायी पड़ेगा, जो इतिहास के विकास-क्रम से ऐसा मुग्ध हो गया है कि वह परिवार की गाड़ी की प्रगति से ऊब चुका है। इस मामले का सामान्य वातावरण इतना सुखद

है कि कोल्या की मदद करने और उसकी अस्पष्ट कामनाओं को सन्तुष्ट करने में मदद देने की इच्छा किये बिना नहीं रहा जा सकता है। कई लोग ऐसा करते भी हैं। मैंने ऐसी कृपा पानेवाले अनेक लड़के देखे हैं। वे कभी-कभार ही बेहतर बन पाते हैं। कोल्या जैसे लड़के, चाहे बहुत कम मात्रा में ही क्यों न हों, किसी भी अन्य चीज़ के अलावा स्वेच्छाचारी किशोर ही अधिक होते हैं। पहले वे अपने माता-पिता को अभिभूत करते हैं, फिर अपनी माँगों से राजकीय संस्थानों के प्रतिनिधियों के पीछे पड़ जाते हैं, यहाँ वे अपनी राह पर लगातार ज़ोर देते जाते हैं और उसके समर्थन में जो हाथ आ जाये उसका सहारा लेते हैं : शिकायतों, आँसुओं, अभिनय और धृष्टता का।

कोल्या के सोवियत बाह्य रूप तथा उसकी बचकानी बहानेबाज़ी के पीछे एक नैतिक रिक्तता छुपी होती है, किसी भी प्रकार के ऐसे सामूहिक अनुभव का अभाव होता है, जा बारह वर्ष के हर बच्चे को होना चाहिये। यदि बच्चे के प्रारम्भिक वर्षों में परिवार में जीवन की एकता न रही हो, दैनिक आदतें न रही हों, प्रयत्नों का निश्चित क्रम न रहा हो, सामूहिक आदान-प्रदान का व्यवहार न रहा हो, तो इस प्रकार की रिक्तता हमेशा पैदा हो जाती है। ऐसे मामलों में बच्चे की ज़रूरतें उसकी कल्पना के अलग-थलग विस्तार में विस्तृत होती हैं और उनका अन्य लोगों की ज़रूरतों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता है। नैतिक दृष्टि से मूल्यवान आवश्यकता सामूहिक अनुभव के दौरान ही विकसित हो सकती है। बेशक बारह वर्ष की उम्र में यह एक दृढ़ कामना के रूप में प्रकट नहीं होगा, क्योंकि इसकी जड़ें विशुद्ध कल्पना के झिलमिलाते दृश्य में नहीं, बल्कि अभी तक अपर्याप्त रूप से निर्धारित सामूहिक अनुभव की पेचीदगियों से भरी हुई धरती में, बच्चे के साथ कमोबेश घनिष्ठता से सम्बद्ध अनेक लोगों के चरित्रों के अन्तर्ग्रन्थन में, मानवीय सहायता और मानवीय आवश्यकता की जागरूकता में निर्भरता, दायित्व, ज़िम्मेदारी तथा बहुत-सी अन्य बातों के अहसास में निहित है।

यही कारण है कि बचपन के प्रारम्भिक दिनों में सही ढंग से संगठित एक पारिवारिक समूह इतना महत्वपूर्ण है। कोल्या ऐसे समूह में नहीं रहा-उसे केवल अपनी माँ का संग मिला। उसकी माँ कितनी ही अच्छी व्यक्ति क्यों न रही हो महज़ उसी का साथ होने से कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकल सका। बल्कि इसके विपरीत : एक अच्छे व्यक्ति के निष्क्रिय साहचर्य से ज़्यादा ख़तरनाक और कुछ नहीं है, क्योंकि यह अहंवाद के विकासार्थ सर्वाधिक अनुकूल वातावरण होता है। यह उन मामलों में से एक है जिनमें अनेक भले लोग हताश होकर हाथ झटकते हुए चिल्ला उठते हैं : "इस दुनिया में यह किसके जैसा हुआ है?"

अल्योशा चौदह वर्ष का है। उसके चेहरे पर गुस्से की लाली है और वह मुँह फुलाये बड़ा असन्तुष्ट दिखायी देता है।

"क्या तुम्हारे पास पहले दरजे के टिकट हैं? मैं पहले दरजे से नहीं जाऊँगा!"

उसकी माँ घोर आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखती है।

''क्यों नहीं जायेगा?''

''पिछले साल हम ''डी लक्स'' से गये थे और अब पहले दरजे से, यह क्यों?''

''पिछले साल हमारे पास अधिक पैसे थे...''

''इसका पैसे से क्या मतलब?'' अल्योशा तिरस्कारपूर्वक कहता है। ''पैसे? हुँह, मैं जानता हूँ कि कारण क्या है। इसलिये कि मैं जा रहा हूँ। मेरे लिये कोई भी गाड़ी ठीक है!''

''तू जो सोचता है सोच,'' उसकी माँ रुखाई से उत्तर देती है। ''अगर तुझे यह पसन्द नहीं है, तो तुझे जाने की क़तई ज़रूरत नहीं है।''

''अच्छा तो यह बात है।'' अल्योशा द्वेषपूर्वक ख़ुशी से कहता है। ''मुझे जाने की क़तई ज़रूरत नहीं! बेशक, तुम सब ख़ुश होगे! बल्कि तुम मेरा टिकट बेच भी सकोगे। वह तो सब पैसा है, है कि नहीं!''

उसकी माँ कन्धे उचका देती है और आगे बढ़ जाती है, उसे ऐसे त्रासदायी प्रश्नों से निबटने के उपायों के बारे में सोचने के लिये वक़्त चाहिये।

लेकिन अल्योशा की बड़ी बहन नाद्या ऐसी सीधी-सरल नहीं है, वह मामले को कभी टालती नहीं। नाद्या को गृहयुद्ध के दिनों की मुसीबतें याद हैं, अपना घर छोड़कर लोगों से भरे माल-गाड़ी के डिब्बों में बैठकर जाना, मोर्चे के निकटवर्ती क़स्बों में रहने को संयोगवश जगहों का मिलना याद है; उसे संघर्ष के समय कसे दाँतों तथा ज्वलन्त आवेगों की याद है, आनेवाले दिनों की अनिश्चितता और विजय पर प्रेरणादायी विश्वास की याद है।

नाद्या चिढ़ाने के अन्दाज से अपने भाई की तरफ़ देखती है और जिस तरह से वह होंठ काटती है, उससे अल्योशा समझ जाता है कि वह भी उसकी निन्दा करती है। वह जानता है कि उसकी बहन अपनी बालिका-सदृश अवहेलना के पूरे वज़न के साथ किसी भी समय उस पर टूट पड़ेगी। अल्योशा अपनी कुर्सी से उठ खड़ा होता है और यह दिखलाने के लिये एक धुन गुनगुनाने लगता है कि वह कितना शान्त है। लेकिन सब व्यर्थ, एक अल्प और कर्णभेदी ''धमाके'' से उसकी धुन में व्याघात पड़ जाता है।

''नहीं, तू दुधमुँहा छोकरा, तू मुझे यह समझा कि तुझे डी लक्स से जाने की आदत कहाँ से पड़ी?''

अल्योशा इधर-उधर ताकता है और एक बालकोचित टालू जवाब खोज निकालता है :

''क्या मैंने यह कहा कि मुझे उसकी आदत है? मुझे तो योंही दिलचस्पी थी। किसी को भी दिलचस्पी हो सकती है, नहीं हो सकती क्या...''

''किसी संयोग से तुझे तीसरे दर्जे के डिब्बे में दिलचस्पी क्यों नहीं है?''

''हाँ, उसमें भी है, पर मैं तो सिर्फ़... वह तो बाद में होगा... अगली बार। जो भी हो तुम्हारा इससे क्या मतलब?

‘‘मेरा मतलब है!’’ उसकी बहन ने गम्भीरता से कहा। ‘‘अव्वल तो यह है कि तुझे सागर तट जाने का कोई अधिकार नहीं है। क़तई कोई अधिकार नहीं है! तू बिल्कुल स्वस्थ है और तूने कोई और क़तई ऐसा काम नहीं किया कि तुझे छुट्टी बिताने का हक़ दिया जाये। समझा? हम तेरे जैसे लोगों से लाड़-दुलार क्यों करें? बता, क्यों करें?’’

अच्छा तो तुम यह सोच रही हो?’’ अल्योशा शंका के साथ बात शुरू करता है। ‘‘तो तुम्हारे कहने के मुताबिक़ मुझे खाना खाने का कोई अधिकार नहीं है, मैं उसके लायक़ भी नहीं हूँ...’’

लेकिन वह रणनीतिक पलायन की आवश्यकता को महसूस करता है। शाम को क्या होगा कोई नहीं बता सकता। नाद्र्या कोई भी गन्दी चाल चलने में समर्थ है और सागर-तट की यात्रा की सम्भावना उस दूरस्थ युग को खिसक सकती है, जो ‘‘वयस्कों’’ के युग कहलाते हैं। पन्द्रह मिनट के अन्दर अल्योशा अपने हाथों को मज़ाकिया ढंग से उठाता है।

‘‘मैं आत्मसमर्पण करता हूँ! यदि तुम चाहो, तो मैं मालगाड़ी के डिब्बे में भी चला चलूँगा।’’

‘‘डी लक्स’’ डिब्बे से जाने की अल्योशा की ज़रूरत उसकी कल्पना में नहीं उपजी-वह अनुभव से उपजी थी, लेकिन इसके बावजूद हर कोई यह समझता है कि यह ज़रूरत कुछ हद तक अनैतिक थी। उसकी माँ भी समझती है, पर वह इस परिस्थिति को बदलने में अक्षम है।

हमारा परिवार, बुर्जुआ परिवारों की तरह, एक संवृत सामूहिक निकाय नहीं है। यह सोवियत समाज का एक अभिन्न अंग है, और यह समाज की नैतिक माँगों से स्वतंत्र रूप में अपने निज के अनुभव के निर्माण के जो प्रयत्न करता है, वे अवश्यम्भावी रूप से एक अलार्म की घण्टी की तरह से बेमेल, अनुपातहीनता को जन्म देंगे।

अल्योशा के परिवार की अनुपातहीनता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि माता या पिता की ज़रूरतें यांत्रिक रूप से उनके बच्चों की ज़रूरतें बन जाती हैं। पिता की आवश्यकताएँ सोवियत समाज में उसके विशेष, दायित्वपूर्ण एवं सघन श्रम से, सोवियत राज्य में उनके श्रम के महत्व से उत्पन्न होती हैं। अल्योशा की ज़रूरतें किसी भी सामूहिक श्रम की बदौलत पैदा नहीं हुईं, इसलिये उचित नहीं ठहरायी जा सकतीं। वे उसके पिता की उदारता का परिणाम है; उसकी यह ज़रूरतें पिता का एक अनुदान हैं। सिद्धान्ततः, ऐसा परिवार पुरातनतम प्रकार का पितृसत्तात्मक राजतंत्र है, किसी एक प्रकार का प्रबुद्ध निरंकुशतंत्र है।

हमारे देश में ऐसे परिवार अपवाद हैं। उनमें मौखिक सोवियत विचारधारा को पुराने क़िस्म के अनुभव से मिला दिया जाता है। ऐसे परिवार के बच्चे ऐसी सन्तुष्टि में नियमित रूप से भाग लेते हैं, जो न्यायपूर्ण नहीं है। ऐसे बच्चों का दुखद भविष्य स्पष्ट है। आगे चलकर उन्हें एक कठिन दुविधा का सामना करना होगा : या तो वे

वयस्क अवस्था में नये सिरे से अपनी आवश्यकताओं की प्राकृतिक वृद्धि की अवस्था से गुज़रना शुरू करें, या फिर वे समाज को ऐसा महान और अत्यन्त कुशल श्रम प्रदान करें, ताकि वे इस योग्य हो सकें कि समाज उनकी विशेष और जटिल आवश्यकताओं को स्वीकृति प्रदान कर सके। इनमें से दूसरा विकल्प केवल असाधरण मामलों में ही सम्भव है।

मैंने इस विषय पर विभिन्न साथियों से विचार-विमर्श किया है। उनमें से कुछ भयाक्रान्त हो जाते हैं :

''आप इसमें क्या कर सकते हैं? यदि मैं अपने परिवार के साथ अवकाश बिताने जाता हूँ, तो क्या आप यह समझते हैं कि मैं एक डिब्बे में जाऊँ और मेरा परिवार दूसरे में?''

इस प्रकार की घबराहट सिर्फ़ एक बात की पुष्टि करती है : समस्या के मूल में जाने की और नये रुख़ के निर्माणार्थ आवश्यक सक्रिय चिन्तन की अनिच्छा। एक ''डी लक्स'' डिब्बा एक बच्चे की नियति से ज़्यादा क़ीमती नहीं है, लेकिन यह महज़ डिब्बे का मामला नहीं है। यदि परिवार में समुचित माहौल न हो, सुस्थिर और स्वस्थ पर्यावरण न हो, तो कोई भी करामात स्थिति को सुधार नहीं सकती है।

किन्हीं ख़ास अवसरों पर पिता के साथ किसी भी दरजे के डिब्बे में यात्रा करना ज़रा भी हानिकारक नहीं है, बशर्ते यह स्पष्ट हो कि यह ख़ुशगवार मौका बच्चों क अत्यधिक सुविधा के किसी अधिकार से पैदा नहीं हुआ है, बल्कि अपने पिता के साथ रहने की उनकी कामना से उत्पन्न हुआ है। ऐसे कई अन्य सोवियत परिवार हैं, जहाँ बच्चों की ज़रूरतें उनके पिता की सेवाओं के साथ जुड़ी हुई नहीं हैं, उस मामले में अल्योशा का निर्देशक तर्क भिन्न होगा।

इस सब का तात्पर्य यह निश्चय ही नहीं है कि यहाँ बच्चों के लिये विशेष प्रकार का व्यावहारिक कार्यक्रम स्वीकार किया जाये। समस्या को सम्पूर्ण परिवार की सामान्य शैली से हल किया जाता है। और यदि पिता को एक नागरिक की हैसियत से किसी अतिरिक्त सुविधा का अधिकार है तो उसे परिवार के सदस्य की हैसियत से ख़ुद भी संयम बरतना चाहिये। सादगी के कुछ मानक उसके लिये भी अनिवार्य हैं...

नैतिक गहनता और पारिवारिक समूह के अनुभव की एकता सोवियत लालन-पालन की अपरिहार्य आवश्यक शर्त है। यह बात उन परिवारों पर भी लागू होती है, जिनके पास काफ़ी ही काफ़ी है और उन पर भी, जिनके पास काफ़ी से कम है।

हमारे देश में केवल वही आदमी श्रेष्ठ है, जिसकी आवश्यकताएँ और कामनाएँ एक सामूहिकतावादी की आवश्यकताएँ और कामनाएँ हैं। हमारा परिवार ऐसी सामूहिकता को पालने-पोसने के लिये उर्वर भूमि प्रस्तुत करता है।

तीसरा अध्याय

स्तेपान देनीसोविच वेत्किन से मेरी भेंट 1926 के ग्रीष्मारम्भ में हुई। मैं आज भी उसके आगमन को किंचित संकोच के साथ याद करता हूँ। वह युद्ध की घोषणा किये बग़ैर, एक शत्रु सेना के सहसा किये गये आक्रमण के समान था।

लेकिन इसके बावजूद उस घटना में युद्ध जैसी कोई चीज़ नहीं दिखायी देती थी। स्तेपान देनीसोविच मेरे अध्ययन कक्ष में शान्तिपूर्वक, सकुचाता हुआ आया, अपनी टोपी को अपने आगे दोनों हाथों से थामे, नम्रता से झुका और बोला :

''यदि आप बहुत व्यस्त हैं तो मैं आपको परेशान करने के लिये क्षमा चाहता हूँ-मुझे एक अल्पतम निवेदन करना है।''

स्तेपान देनीसोविच ''अल्पतम'' शब्द का उपयोग करते समय भी मुस्कराया नहीं उसकी मुद्रा संयमित, गम्भीर और उदास होने के बजाय व्यग्रतापूर्ण अधिक थी।

वह मेरी ओर मुख़ातिब एक कुर्सी पर बैठ गया। अब मैं उसके चेहरे को अधिक अच्छी तरह से देख सकता था। उसकी मूँछें खूब घनी थीं और उनसे उसका मुँह ढँका हुआ था, अपनी मूँछों तले वह अपने होंठों को बड़े ही रुचिकर ढंग से दबाता था, ऐसा लगता था मानो वह कोई चीज़ चूस रहा हो, पर वास्तव में उसके मुँह में कुछ नहीं था-उसकी यह चेष्टा चिन्ता को भी व्यक्त करती थी। स्तेपान देनीसोविच की अरुणवर्णी दाढ़ी दायीं ओर को थोड़ी सी ऐंठी हुई थी, शायद इसलिये कि वह अपने दायें हाथ से उसे अक्सर खींचा करता था।

स्तेपान देनीसोविच ने कहा :

''देखिये, बात यह है कि मैं एक अध्यापक हूँ, यहाँ से ज़्यादा दूर नहीं, मतोविलोव्का में...''

''यह तो आपने अच्छी बात कही, यानी हम सहयोगी हैं...''

लेकिन स्तेपान देनीसोविच ने मेरे उत्साह में हिस्सा नहीं बँटाया। उसने अपनी अरुणवर्णी दाढ़ी के एक बड़े हिस्से को पकड़ लिया और बग़ल को देखते हुए, अपेक्षाकृत शुष्कता से, स्पष्टीकरण पेश किया :

''मैं यह ज़रूर कहूँगा कि यह एक अच्छी बात है। मैं अपने काम को निश्चय ही पसन्द करता हूँ, लेकिन नितान्त निष्कपट भाव से कहता हूँ-बात बनती नहीं यानी जहाँ तक अध्यापन का सम्बन्ध है यह बिल्कुल ठीक है, लेकिन संगठन की दृष्टि से यह काम नहीं देता है।''

''ख़राबी क्या है?''

''वस्तुतः संगठनात्मक दृष्टि से तो नहीं, यानी, यह कहना चाहिये कि दैनिक जीवन के दृष्टिकोण से। मैं चाहूँगा कि आप मुझे एक काम दें-लोहार के रूप में।''

मैंने अपने आश्चर्य को प्रकट नहीं होने दिया। उसने मुझ पर एक उड़ती निगाह डाली और पहले से भी अधिक शुष्कता से, एक ऐसी विशेष आकर्षक गम्भीरता से अपनी बात जारी रखी, जिससे उसके शब्दों में पक्का विश्वास हो जाता था।

''मैं एक अच्छा लोहार हूँ। असली लोहार। मेरे पिता भी लोहार थे। शिल्प-कला स्कूल में। इसीलिये मैं एक अध्यापक बन सका। यहाँ आपकी एक छोटी-सी फ़ैक्टरी है*, आपको एक अच्छे लोहार की ज़रूरत है। और मैं अध्यापक भी हूँ।''

''ठीक है,'' मैं सहमत हो गया। ''क्या आपको एक फ़्लैट की ज़रूरत है?''

''जी, मैं... अब कैसे कहूँ? बेशक, एक कमरा या दो कमरे। मेरा परिवार बड़ा है,... ख़ासा बड़ा है।''

स्तेपान देनीसोविच ने अपने होंठ दबाये और अपनी कुर्सी में बैठे-बैठे जगह बदली।

''अध्यापक होना एक अच्छा धन्धा है, लेकिन यह मेरे जैसे परिवार का भरण-पोषण नहीं कर सकता। इसके अलावा हम गाँव में रहते हैं। बच्चे कहाँ जायेंगे?''

''आपके कितने बच्चे हैं?''

उसने मेरी तरफ़ देखा और पहली बार मुस्कराया। उस मुस्कान में मैंने, अन्ततः असली स्तेपान देनीसोविच को देखा। उसके चिन्तित चेहरे और उस मुस्कान में कोई समानता नहीं थी। जब वह मुस्कराया, तो दांत स्पष्ट दिखायी दिये, धवल और चमकीले। अपनी इस मुस्कान के साथ स्तेपान देनीसोविच अधिक दयावान और अधिक ईमानदार प्रतीत हुआ।

''यह प्रश्न मेरे लिये सबसे ज़्यादा कठिन है। इसका उत्तर देते हुए मुझे सचमुच लज्जा आती है, लेकिन आप जानते हैं, मुझे बहुधा इसका उत्तर देना पड़ता है।''

उसकी मुस्कान एक बार फिर चमकी और मूँछों के पीछे बिलायमान हो गयी। उसके होंठ फिर व्यग्रता से दबे और उसने अपनी निगाहें मुझसे फिर अलग हटा लीं।

''तेरह। तेरह बच्चे!''

''तेरह?!'' मैं घोर आश्चर्य से चिल्ला पड़ा। ''आपने यही कहा ना?''

स्तेपान देनीसोविच ने कोई उत्तर नहीं दिया और अपनी कुर्सी पर और अधिक व्यग्रता से कुलबुलाया। और मुझे इस रुचिकर व्यक्ति के लिये अफ़सोस होने लगा तथा उसे मदद देने की एक दुर्निवार इच्छा ने मुझे जकड़ लिया, लेकिन इसके साथ ही मुझे वैरभाव की अनुभूति भी हुई-उस तरह के वैरभाव की जो उस हालत में हमेशा पैदा होती है, जब कोई व्यक्ति इस तरह से काम करता है कि उसका काम आपको

---

* 1926 में अ.स.मकारेंको अ. स. गोर्की के नाम पर बनी श्रम-बस्ती के प्रभारी अधिकारी थे। यहाँ इसका तात्पर्य उन उत्पादन कार्यशालाओं से है, जहाँ उनके शिक्षार्थी स्कूल के पाठ पढ़ने के बाद चार घण्टा प्रतिदिन काम करते थे।-सं.

स्पष्टतः विवेकहीनता लगता है। मेरी ये सारी भावनाएँ एक ऐसे उद्‌गार के रूप में फूटीं कि उससे मुझे खुद आश्चर्य हुआ।

''वज्र पड़े मुझ पर! लेकिन कैसे... ऐसा कौन सा भूत आप पर सवार हो गया?''

उसने मेरे अशिष्ट उद्‌गार क्लान्ति और चिन्तावाली अपनी पहली मुद्रा में सुने और मूंछों के सिरे से मुस्कराया :

''एक परिवार में एक से लेकर अठारह तक बच्चे हो सकते हैं। मैंने पढ़ा है कि कभी-कभी अठारह होते हैं। मेरे तेरह हो पड़े।''

'' 'हो पड़े' से आपका क्या मतलब है?''

''वरना और कैसे? अगर कुछ लोगों के अठारह होते हैं, तो किसी जगह पर तेरह होने ही चाहिये। और मेरे इतने ही हो पड़े।''

स्तेपान देनीसोविच के साथ हमारा शीघ्र ही एक समझौता हो गया। हमें एक अच्छे लोहार की सचमुच ही ज़रूरत थी। स्तेपान देनीसोविच का ख़्याल था कि लोहार की हैसियत से वह अध्यापक के मुकाबले अधिक कमा सकेगा और इस मामले में हमारे संगठन ने आगे बढ़कर उसकी मदद की।

फ़्लैट का प्रश्न अधिक कठिन था। विशेष प्रयत्न करके मैं उसके लिये एक कमरा निकाल पाया और इसके लिये सिलसिलेवार कई स्थानान्तरण और उठाने-धरने का काम करना पड़ा। यह सच है कि हमारे श्रमिकों को ऐसे असाधारण परिवार में इतनी दिलचस्पी हो गयी थी कि विरोध करने की बात किसी ने सोची भी नहीं। इस मसले पर हमारे भण्डारी पिलिपेंको को कुछ कहना था :

''लेकिन मैं समझता हूँ यह सुअरपन है। छूट देने में मैं कोई भी एतराज़ नहीं करता हूँ, लेकिन एक आदमी में थोड़ी-सी अक़्ल और सहजबुद्धि तो होनी ही चाहिये। मैं कहता हूँ, जो आप चाहते हो करो, लेकिन एक नज़र तो रखो। मान लीजिये, मिसाल के लिये आपके तीन हैं। तीन, चार, फिर आप एक नज़र डालिये और देखिए कि नम्बर पाँच आ धमका है! मैं कहता हूँ, गौर करो, पाँच का मतलब है अब तुम्हें गिनते रहना चाहिये-अगला होगा तो छह हो जायेंगे। आपको अपने होश-हवाश में होना चाहिये और गणना करनी चाहिये।''

लेकिन पुराने औज़ार निर्माता कामरेड चूब, जिसके छह बच्चे थे, ने समझाया कि सामान्य अंकगणित से समस्या हल नहीं होगी।

''तो तुम यह कहते हो, कहते हो न : गिनो! तुम समझते हो कि मैंने नहीं गिना। लेकिन, भई, इस मामले में तुम कर क्या सकते हो। जो चीज़ यह काम करती है वह है ग़रीबी! एक अमीर आदमी के पास दो चारपाइयाँ होती हैं, और वह, अकेला सो जाता है। बस, मामला खत्म। लेकिन एक ग़रीब आदमी एक चारपायी से काम चलाता है। अब गिनो, जितना मर्ज़ी गिनो, इसका असर तो होगा ही और तुमको पता भी नहीं चल पायेगा...''

''...कि चूक हो जायेगी,'' भण्डारी ने वाक्य खत्म किया।

''बेशक, कभी-कभी ग़लत गिनती हो ही जाती है!'' चूब ने हँसते हुए कहा, वह मजाक करने के लिये हमेशा तत्पर रहता था। गोलमटोल मोटे एकाउण्टेण्ट पिजोव ने उनके वार्तालाप को कृपापूर्वक सुना और फिर इस असाधारण व्यापार की व्याख्या में अपना योगदान किया :

''ऐसे मामलों में ग़लत गिनती बिल्कुल सम्भव है। यहाँ मुख्य कारक अतिरिक्त गुणांक है। यदि आपका एक बच्चा है और दूसरा, जैसा कि कहते हैं, होनेवाला हो तो आप उसमें सौ प्रतिशत और जुड़ने की अपेक्षा कर रहे हैं। एक सतर्क आदमी क्षणभर के लिये सोचेगा, सौ प्रतिशत, यह तो बहुत बड़ा गुणांक है। लेकिन अगर आपके पाँच पहले से हैं, तो छठा केवल बीस प्रतिशत है-यह कोई ख़ास गुणांक ही नहीं। कोई भी आदमी अपने कन्धे उचकायेगा : आने दो उसे, बीस प्रतिशत, ज़ोखिम कोई बड़ा नहीं है।''

हर कोई हँसा। गुणांकों के इस कलपनातीत चक्कर से तो चूब ख़ास तौर से प्रभावित हुआ और उसने इस सिद्धान्त को तुरन्त अपने मामले में लागू करने की माँग की :

''अरे, फटकार पड़े मुझ पर! इसका मतलब यह कि अगर मेरा नम्बर सात पैदा होने वाला हो तो यह कितना बनेगा, यह...''

''नम्बर सात?'' पिजोव ने महज़ आकाश की तरफ़ नज़र डाली और सही-सही उत्तर दे दिया :

''इस मामले में गुणांक होगा सोलह दशमलव छह प्रतिशत।''

''नहीं के बराबर!'' चूब ने ख़ुशी की साँस ली, ''चिन्ता की कोई बात ही नहीं!''

''इसी तरह यह आदमी तेरहवें पहुँचा'', भण्डारी ने उल्लास से कहा।

''बिल्कुल यही बात,'' एकाउण्टेण्ट पिजोव ने पुष्टि की ''तेरहवें का गुणांक है आठ दशमलव तीन प्रतिशत।''

''वाह, यह तो ध्यान देने लायक़ भी नहीं है।'' चूब इस क्षेत्र की इस ताज़ातरीन खोज से अभिभूत हो गया था।

जब स्तेपान देनीसोविच फ़्लैट को देखने के लिये दूसरी बार आया, तो सबने इसी ख़ुशमिज़ाज वातावरण में उसकी अगवानी की। स्तेपान देनीसोविच ने बुरा नहीं माना, वह समझता था कि गणित के नियम अप्रतिकार्य होते हैं।

हमारे सारे समूह ने फ़्लैट का निरीक्षण किया। कमरा औसत आकार का था, लगभग 15 वर्गमीटर। यह उन कुटीरों में से एक था, जिन्हें हमारी फ़ैक्टरी ने पुराने शासन से विरासत में प्राप्त किया था। कमरे को देखते समय स्तेपान देनीसोविच बेचैनी से होंठों को चूसता-चबाता-सा रहा।

''लेकिन वहाँ मेरे पास दो कमरे थे...'' उसने उदास होकर ऐसे स्मरण किया मानो अपने आप से बोल रहा हो ''ख़ैर, क्या करें, हमें किसी तरह से काम चलाना ही पड़ेगा...''

मैं क्या कर सकता था? किंकर्तव्यविमूढ़ सा होकर मैंने स्तेपान देनीसोविच सर्तक एक मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ डाला :

''क्या आपके पास काफ़ी फर्नीचर है?''

वेत्किन ने मुश्किल से ही नज़र आने वाले उलाहने से भरी निगाहों से मेरी तरफ़ देखा।

''फ़र्नीचर? क्या आप समझते हैं कि मुझे फ़र्नीचर की चिन्ता है? उसे रखने की तो कहीं कोई जगह नहीं।''

सहसा एक अद्भुत मुस्कान से उसका चेहरा खिल उठा, मानो वह मुझे मेरी शर्मिन्दगी दूर करने में मदद कर रहा हो।

''असलियत यह है कि बेजान चीज़ों को रखने के लिये जगह नहीं है।''

चूब ने बग़ैर हजामत बनी अपनी ठोड़ी को खुजलाया और एक आँख सिकोड़ी।

''ऐसी वस्तुगत दशाओं में हमारे साथी को फ़र्नीचर नहीं, बंकों की ज़रूरत है, वैसे ही बंकों की जैसे कि औज़ारों के शेड में बने हैं, यदि अध्यक्ष को एतराज़ न हो, तो हम कुछ बंक लगा सकते हैं!''

उसने अपनी निगाहों से कमरे की ऊँचाई मापी।

''एक के ऊपर एक तीन कतारें और चौथे के लिये फ़र्श में जगह।''

''तुम यहाँ तेरह नहीं बना सकते।'' भण्डारी पिलिपेंको ने उदास होकर कहा। ''साँस लेने के लिये कितनी घन मीटर जगह रहेगी? बिल्कुल भी नहीं। और ऊपर से आप दो और।''

वेत्किन ने कभी एक सलाहकार की तरफ़ देखा कभी दूसरे की तरफ़, लेकिन वह परेशान नज़र नहीं आया। सम्भव है कि उसने इन परिस्थितियों का पहले ही अन्दाज़ा लगा लिया था और उन्हें अपनी सामान्य योजना में समायोजित कर लिया था। उसने अपना पहले का निर्णय दोहराया :

''अच्छा, तो मैं दस तारीख़ को अपना परिवार यहाँ लाऊँगा। क्या आप हमें किसी तरह से एक टट्टू दे सकते हैं? कुछ छोटी-मोटी चीज़ें लानी होंगी और छोटे बच्चे स्टेशन से यहाँ तक पैदल नहीं चल पायेंगे।''

''एक टट्टू? बेशक! अगर आप चाहें तो दो दे सकते हैं।''

''धन्यवाद, दो निश्चय ही बेहतर होंगे, क्योंकि आख़िर सारा परिवार ही... स्थानान्तरित किया जा रहा है।''

रविवार 10 मई को वेत्किन परिवार का हमारी फ़ैक्टरी के इलाके में आगमन हुआ। फ़ैक्टरी शहर से बहुत दूर नहीं थी और फ़र्शी पत्थरों से पटी एक सड़क द्वारा उससे जुड़ी हुई थी। तड़के सवेरे फ़ैक्टरी के दो टट्टू नगर की ओर दो वाहनों को, जो वैगन भी हो सकते थे और सामान्य गाड़ियाँ भी, शहर की ओर खींच कर ले गये। दोपहर तक उस सड़क में ख़ूब भीड़-भाड़ हो गयी थी। ऐसा लगता था कि परिवारों के जोड़े बाहर निकल आये हैं और ताज़ी हावा में साँस लेने तथा स्थानीय दृश्यावलियाँ

का आनन्द उठाने के वास्ते रविवासरीय भ्रमण पर निकले हैं।

दोपहर बाद, दो बजे एक जुलूस आता हुआ दिखायी दिया-इसका वर्णन करने के लिये और कोई समुचित शब्द नहीं है। एक तीन वर्षीय बालक पहली गाड़ी में बैठा था और हाथ में एक खेलने का झण्डा लिये हुए था, इससे जुलूस की विजयी प्रकृति और भी अधिक प्रभावशाली हो गयी थी।

दो गाड़ियाँ सबसे आगे थीं। वे मुख्य रूप से तरह-तरह की ''छोटी-मोटी'' वस्तुओं से भरी थीं। लेकिन पहली में वह झण्डाबरदार और दूसरी में दो छोटे बच्चे बैठे थे। ''छोटी-मोटी'' वस्तुओं में, पहली गाड़ी के बीचोंबीच रखी एक आलमारी के सिवा, सब छोटे आकार की वस्तुएँ थीं। आलमारी से गाड़ी में एक स्थिर गम्भीरता का-सा भाव पैदा हो गया था। वह आलमारी मनुष्य-जाति का सबसे ज़्यादा ख़ुशगवार आविष्कार था-एक आलमारी और साथ ही एक मेज़ भी। इस प्रकार की वस्तुओं में एक अनोखी हार्दिकता की, ताज़ा सेंकी हुई रोटियों और बच्चों की ख़ुशी की गन्ध होती है। आलमारी की बग़ल में मैंने एक बड़ा-सा समोवार, किताबों के दो बण्डल और तकियों का एक गट्ठर देखा। शेष सभी वस्तुएँ सामान्य घरेलू चीज़ें थीं।

दूसरी गाड़ी की बग़ल में लगभग सत्रह बरस की एक लड़की चल रही थी, वह नंगे पेर और नंगे सिर थी और एक पुराना सूती फ़्राक पहने थी, जिसका रंग उड़ चुका था। यह समझ में आ सकता था कि वह हमेशा वैसे ही रहती-सहती होगी, क्योंकि ग्रीष्म अभी शुरू हुआ ही था, पर उसके बालों का रंग काफ़ी हल्का पड़ गया था और उसका चेहरा गहरा श्यामल लाल था और गालों की खाल उतरने भी लगी थी। इस सबके बावजूद उसका चेहरा बहुत आकर्षक था : सुघड़ मुख, गम्भीर भाव। उसकी हल्की नीली आँखें उसकी सीधी चतुर भौंहों के नीचे स्वच्छ व शान्त चमक रही थीं।

गाड़ियों के पीछे, लगभग बराबर उम्र और ऊँचाई के दो लड़के धारीदार कपड़े से ढँके एक बॉयलर को लिये चले आ रहे थे। इन दो की आयु तेरह के लगभग होगी। उनके पीछे पाँच से लेकर बारह वर्ष तक की उम्र के लड़के-लड़कियों का मुख्य समूह चल रहा था। सबसे छोटे-भरे-भरे गुलगुले गालोंवाली दो नन्ही लड़कियाँ-एक-दूसरे का हाथ थामे साफ़, गर्म फ़र्शी पत्थरों पर, नंगे पैरों से छोटे-छोटे क़दम रखती चल रही थी और बहुत चिन्तित नज़र आ रही थीं : यद्यपि गाड़ियाँ धीरे-धीरे चल रही थीं फिर भी इन नन्हें पैदल यात्रियों को उनके साथ-साथ चलने में कठिनाई हो रही थी।

बड़े लड़के इस दल का शेष भाग थे। वे सभी हाथों या कन्धों में कुछ न कुछ लेकर चल रहे थे-शीशा, चौखटों का बण्डल, और सबसे बड़ा एक ग्रामोफ़ोन का भोंपू लेकर चल रहा था।

इस सारे दल ने मुझ पर अनपेक्षित रूप से अनुकूल प्रभाव डाला : सबके बाल कटे थे, उनके धूप से झुलसे चेहरे साफ़ दिखायी पड़ते थे और उनके नंगे पैरों पर भी सिर्फ़ आज ही की लगी धूल थी। पेटी किसी के पास नहीं थी, लेकिन उनकी सूती

कमीजों के बटन साफ़-सुथरे ढंग से लगे थे। कपड़ों में कोई छेद नज़र नहीं आता था, जो लड़का ग्रामोफ़ोन का भोंपू ले जा रहा था, केवल उसी के घुटने में एक ताज़ा पैबन्द लगा था। जिस बात से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई वह यह थी कि इस जुलूस के किसी भी सदस्य के चेहरे पर गन्दे या अरुचिकर भाव नहीं थे : कोई घाव नहीं, फोड़ा नहीं, मानसिक पिछड़ेपन का कोई चिह्न नहीं। उन्होंने हमें शान्तिपूर्वक और किसी भी प्रकार के संकोच से मुक्त होकर देखा, पर उदासीनता से घूरा नहीं। कभी-कभी वे अपनी आवाज़ नीची किये बिना एक-दूसरे से बातचीत करते, पर उसे ज़रूरत से ज़्यादा निर्बन्ध नहीं होने देते थे।

मैंने उनके ऐसे एक वार्तालाप के चन्द शब्द सुने :

...यहाँ एक ख़ुश्क जगह है... और वहीं एक विलो वृक्ष हैं''

''उससे टोकरियाँ बना सकते हैं।''

''डैडी निश्चय ही ऐसा करेंगे।''

इस सारी फ़ौज का नेता और जन्मदाता डैडी खफ़द सबसे पीछे था और अपने हाथों में ग्रामोफ़ोन के बक्से को सावधानी से थामे हुए थे। उसकी बग़ल में एक सुन्दर गुलाबी गालों वाली औरत इत्मीनान से चल रही थी। उसके काले बालों पर बँधा उजला पीला रुमाल कन्धों पर उतर आया था। वह हमारी ओर देखकर अपनी बड़ी-बड़ी तरल आँखों से मुस्करा रही थी। जब स्तेपान देनीसोविच हमारे पास से गुज़रा, तो अपनी अद्‌भुत मुस्कान बिखेरता, टोपी को हाथ से ऊपर उठाकर बोला :

''लीजिये हम आ गये! अब जो चाहे करिये लेकिन हम आ ही गये हैं! आपके आदमी किंचित आश्चर्य से देख रहे हैं, हैं ना! यह मेरी पत्नी है, आन्ना सेम्योनोव्ना!''

आन्ना सेम्योनोव्ना ने शिष्टाचारपूर्वक सिर झुकाया और अपना हाथ आगे बढ़ाया, फिर अपनी काली आँखों से चारों ओर एक तेज़ नज़र डाली।

''उन्हें कुछ चिन्ता करने को चाहिये : आश्चर्य से देख रहे हैं!'' उसने स्थिर मध्यम स्वर में कहा। ''वे इसके आदी हो जायेंगे। जब वे भले हैं और हमें तिरस्कार से नहीं देखते हैं, तो मुझे कोई चिन्ता नहीं।''

उस क्षण पर उस तमाशाई भीड़ में कुछ गति हुई। औजार-निर्माता, चूब, की पत्नी, जो एक हृष्ट-पुष्ट कामकाजी प्रौढ़ महिला थी और जो अब तक इस जुलूस की तरफ़ अपेक्षाकृत नापसन्दगी से देख रही थी, ने अपने हाथ उठाये और चिल्लाकर बोली : ''अरे रे, भगवान बचाये, दैया रे दैया! ऐसे चुटकी भर के नन्हे-मुन्ने और स्टेशन से यहाँ पैदल! इन्होंने यह कमाल किया कैसे?''

वह लपककर एक नन्ही बच्ची की तरफ़ बढ़ी और उसे अपनी बाँहों में उठा लिया। उस नन्ही बच्ची का छोटा, अभी भी बेचैनी से भरा चेहरा उसके कन्धों के ऊपर दिखायी पड़ा, उसकी हल्की नीली आँखें व्यग्रता से दुनिया को निहार रही थीं। पल भर में चुटकी भर के दूसरे नन्हे-मुन्ने को किसी और के कन्धे पर चढ़ा लिया गया। हमारे लोग उस जुलूस में घुल-मिल गये। एकाउण्टेण्ट पिजोव वेत्किन के पास

आया और अपना हाथ बढ़ाकर बोला : ''घर में आपका स्वागत है। दिल छोटा न कीजिये, यही मुख्य बात है! आप ठीक कर रहे हैं : भावी कार्मिक!''

ग्रीष्म ऋतु का लाभ उठाकर स्तेपानी देनीसोविच ने अपनी फ़ौज के मुख्य भाग को खुले में टिकाने का फ़ैसला किया। इसके लिये उसने कुटीर के सामने बरामदा जैसी कोई चीज़ बनायी। हमारे आँगन के विभिन्न कोनों में ढेर सारी फ़ालतू चीज़ें पड़ी थीं। स्तेपान देनीसोविच ने मेरी अनुमति से उनका इस्तेमाल किया तथा उन्हें उचित स्थान पर पहुँचाने के काम को अंजाम देने के लिये अपनी फ़ौज के संरक्षित-बल को नियुक्त किया और फ़ौज की मुख्य शक्ति को निर्माण कार्य में लगाया।

वेत्किन परिवार के आने से पहले ही मुझे एक महत्वपूर्ण शैक्षिक समस्या पर दिलचस्पी हो गयी थी : क्या इस परिवार में किसी प्रकार की संगठनात्मक संरचना है, या यह तथाकथित अनाकार समूह मात्र है? जब स्तेपान देनीसोविच किसी मामले के बारे में मुझसे मिलने आया, तो मैंने इस सवाल को सीधे-सीधे उसके सामने पेश कर दिया।

वेत्किन को मेरे प्रश्न पर आश्चर्य नहीं हुआ और वह अनुमोदन के अन्दाज़ में मुस्कराया।

''यह सही है, यह, जैसा कि आप इसे कहते हैं, संरचना का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। बेशक, इसमें एक संरचना है, पर वह एक ख़ासी कठिन समस्या है इसमें ग़लत दिशा की तरफ़ चल पड़ना निहायत आसान है...''

मसलन?''

''मसलन, मैं समझाता हूँ। आप इसे उम्र के अनुसार कर सकते हैं, तब यह काम-धन्धों के लिये सही होगा, पर शैक्षिक दृष्टि से ग़लत, क्योंकि जो छोटे हैं वे क़ाबू से बाहर हो सकते हैं। इसका लुब्बे-लुबाब यह है कि इस समस्या को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखना होगा। घरेलू कामों के लिये मेरे पास चार जनों-वान्या, वित्या, सेम्योन तथा एक अन्य छोटा वान्या-वान्यूश्का-की एक मुख्य टीम है। बड़ा वान्या पन्द्रह वर्ष का है और वान्यूश्का दस का, लेकिन वह चतुर भी है और ढेर सारे काम कर सकता है।''

''आपके यहाँ दो वान्या कैसे हो गये?''

''कुछ गड़बड़ में ऐसा हो गया। बड़ा वान्या यह ठीक है, मुझे यह नाम पसन्द है, वैसे आजकल ईगोर और ओलेग का खूब प्रचलन हो रहा है। और दूसरा 1916 में लड़ाई के दौरान पैदा हुआ। अध्यापक की हैसियत से मुझे छूट थी, लेकिन न जाने क्यों वे मुझे सेना के पास घसीट ले गये और एक पखवारे तक मुझे वहीं रोके रहे। तब मेरी पत्नी ने एक बच्चा जना ही था। लड़ाई की परेशानियाँ, अभावों और उत्तेजनाओं के बीच क्या होता, रिश्तेदार सब हैं फूहड़ लोग और ऊपर से धर्मपिता भी अपना काम भूल गये थे, आप जानते ही हैं कि देहातों में कैसा होता है। पादरी को ज़रूर ही जल्दी रही होगी, उसने कैलेण्डर पर एक नज़र भर डाली और देखा कि वह किस

सेण्ट का दिन है, सेण्ट शहीद ईवान। बस पवित्र जल में एक डुबकी के साथ उसका नाम ईवान रख दिया गया। पर वास्तव में इसमें कोई बुराई नहीं है। कदाचित बाद में उनके नामों से भूल हो जाये, पर अभी कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा है : एक वान्या है और दूसरा वान्यूश्का और उन दोनों को इसकी आदत पड़ भी गयी है। वान्या के बाल हल्के रंग के हैं, लेकिन छोटे वान्या के, अपनी माँ की तरह, गहरे रंग के हैं।''*

''तो यह है आपकी घरेलू टीम?''

''हाँ, यह है घरेलू टीम, वे साथ-साथ स्कूल जाते हैं और घर में अगर कुछ करना हो, तो वे हमेशा मिलकर करते हैं। वे अच्छे श्रमिक बनेंगे। और वे सबके सब लड़के हैं। यहाँ आपके के लिये एक संरचना मौजूद है। इसके अलावा दूसरी टीम है, अगर इसी तरह कह सकें। आठ साल का वास्या शरद में स्कूल जायेगा। वह बड़े लड़कों की टीम में शामिल होने के लिये लगभग क़ाबिल हो गया है, पर फ़िलहाल स्कूल नहीं जाता है। फिर उसके अलावा ल्यूबा है, वह सात साल की है और कोल्या-छह साल का। ये अभी घर के अन्दर कोई ख़ास काम के नहीं है, लेकिन वे कुछ काम के आदी हो गये है : चीज़ों को लाना और ले जाना सीख रहे हैं, हो सकता है कि उनमें से कोई कभी दुकान से कुछ ले आया करे। वे पढ़ सकते हैं और बीस तक की उनकी गिनती सन्तोषजनक है।''

''इस समय सामान लानेवाले वे ही हैं न?''

''हाँ, वे ही हैं। वास्या, ल्यूबा और कोल्या-यह काम उन्हीं का है। और इनके बाद छुटके-मुटके आते हैं : मरूस्या अभी सिर्फ़ पाँच बरस की है और अन्य, वेरा व ग्रीशा उससे भी छोटे हैं। कात्या और पेत्या सबसे छोटे हैं-वे जुड़वाँ हैं और पिछले साल ही पैदा हुए हैं।''

''सबसे बड़ी लड़की है क्या?''

''हाँ, है, ओक्साना! ओक्साना उनसे बहुत ही आगे है। उसकी विशेष स्थिति है। पहली बात तो यह कि वह सयानी हो गयी है, दूसरी, वह सभी कुछ कर सकती है। मैं यह भी कह सकता हूँ कि वह घर के कामों में अपनी माँ से बहुत पीछे नहीं है। उसके लिये ख़ास तौर से सोचने की ज़रूरत है। वह एक उत्तम नागरिक बनेगी और वह ''रबफ़ाक''** में भर्ती होना चाहती है। मैं इस पर शरद में विचार करूँगा।''

---

* धार्मिक अनुष्ठान के अनुसार पादरी (पवित्र पिता) चर्च कैलेण्डर के मुताबिक़ नवजात शिशु का नामकरण करता था। चर्च के कैलेण्डर में सन्तों के नामों की सूची दिनों के अनुसार बनी होती है। इस अनुष्ठान में नवजात शिशु के माता-पिता के प्रतिनिधि-''गॉड फादर'' और ''गॉड मदर''-भाग लेते थे।**-सं.**

** रबफ़ाक ('श्रमिक संकाय') 1920-1930 में सोवियत संघ में विद्यमान शिक्षा-संस्थान। ''रबफ़ाको'' में शिक्षार्थियों को माध्यमिक शिक्षा दी जाती थी तथा उन्हें उच्चतर शिक्षा-संस्थानों की पढ़ाई के लिये तैयार किया जाता था। ''रबफ़ाकों'' में विभिन्न उद्यमों तथा सोवियत सत्ता-निकायों द्वारा भेजे हुए शिक्षार्थियों को दाखिला दिया जाता था। शिक्षार्थियों को वजीफ़े भी मिलते थे।**-सं.**

बड़े वान्या की पहली टीम बरामदे के निर्माण में लगी थी। स्तेपान देनीसोविच ने उन्हें ख़ुद बहुत कम सहायता दी, क्योंकि उसने हमारे लोहारखाने में काम शरू कर दिया था, और वह चार बजे के बाद ही अपने बिखरे बालों वाले सिर को उठाकर बरामदे के तैयार ढाँचे पर नज़र डाल सकता था। उसने ख़ास तौर से बरामदे की छत बनाने का दायित्व लिया था। लेकिन शाम को भी प्रबन्ध का काम करनेवाला वान्या ही था।

''उधर मत चढ़िये,'' यह बात मैंने उसे अपने पिता से कहते सुनी। ''सवेरे हम इसे ख़ुद करेंगे। अच्छा होता कि अगर आप कुछ कीलों का बन्दोबस्त कर देते। हमारे पास कीलों की कमी है।''

इस टीम के पास सिर्फ़ वे कीलें थीं, जिन्हें वान्यूश्का ने पुराने तख़्तों से खींच निकाला था। वह दिन भर अपने इस काम पर बैठता और कीलें निकालने के लिये संड़सी और जम्बूरी-हथौड़े का उपयोग कर रहा था। वान्यूश्का के सीमित उत्पादन से निर्माण-कार्य में एक गत्यावरोध पैदा हो गया, और बड़े वान्या ने सामग्री लानेवाले रिज़र्व दल को हुक्म जारी कर रखा था : ''चीज़ों को यों ही नीचे न फेंको। अगर उसमें एक कील है, तो उसे वान्यूश्का के पास ले जाओ और अगर नहीं है तो मुझे दे दो।''

रिज़र्व दल के मुखिया ने, आठ-साला वास्या, जो बड़े माथेवाला हृष्ट-पुष्ट गम्भीर लड़का था, अपने दल के काम में रुकावट नहीं आने दी, उसने ''छुटके-मुटकों'' के एक प्रतिनिधि पंचवर्षीय मरूस्या को काम में लगा दिया। अनोखा ख़ुश-मिज़ाज, गुलाबी गालों वाला नन्हा प्राणी मरूस्या हर तख़्ते को ध्यान से देखती, सन्देहास्पद लगने वाले हर निशान में दोष खोजती और अपने पहले से ही गुलगुले गालों को फुलाती हुई किसी तख्ते को एक तरफ़ रखती और किसी अन्य को दूसरी तरफ। अपना काम करती हुई वह कोमल स्वर में गुनगुनाती जाती : ''कील सहित... बिना कील... कील सहित... तीन कीलें... और यह... बिना कील... और यह कील सहित।''

कभी-कभी वह तख़्ते में धँसे तार के किसी सन्देहास्पद से नज़र आनेवाले टुकड़े को चौकन्नी होकर देखती और चिन्तित होकर वान्या या वित्या के पास पहुँचती।

''क्या यह भी कील है?'' वह नाटकीय ढंग से पूछती। ''या, यह कोई और चीज़ है। तुम इसे कीलों के साथ नहीं चाहते?''

वेत्किन परिवार के बच्चों की आश्चर्यजनक सौम्यता से आस-पास के लोग चकित थे। उस विशाल परिवार में रोने-धोने की कोई आवाज़ शायद ही कभी सुनाई देती थी। यहाँ तक कि सबसे छोटे बच्चे, जुड़वाँ कात्या और पेत्या भी वैसा कानफोड़ शोरगुल कभी नहीं मचाते थे जैसा कि, मसलन, चूब परिवार से कभी-कभी सुनायी पड़ता था। चूब परिवार के बच्चे ख़ुशमिज़ाज और तेज होने के अलावा उद्यमी और जुझारू थे। वे ख़ूब खेलते थे, हमारे अहाते के सभी बच्चों को संगठित करते, कई तरह की शरारतें और मज़ाक किया करते और उनकी आवाज़ें यहाँ-वहाँ, सब जगह,

सुनायी पड़ती थीं। कभी-कभी ये आवाज़ें स्पष्ट रूप से ऊँचे स्वर में आतीं और कभी-कभी लगातार बढ़ते हुए उलाहने और ठेस की भावना से भरपूर एक ऐसी अनिष्टकारी हूक में बदल जातीं, जो और भी अधिक बढ़कर सहसा एक ख़ूनी चीख़ के स्वरोत्कर्ष तक पहुँच जातीं। बच्चों के माता-पिता ऐसी ज़्यादतियों के ख़िलाफ़ लड़ते, ख़ुद चिल्लाते, बच्चों को डाँटते, कभी-कभी गालियाँ भी देते और आत्यन्तिक मामलों में एक-आध घूँसा, अच्छा-ख़ासा तमाचा या ज़ोर-ज़बरदस्ती की कोई और विधि का सहारा लेते। लेकिन वास्तव में, इस मामले में कोई दुखद बात नहीं थी।

चूब परिवार के बच्चे गला फटने तक चिल्लाने और अनुशासनिक रीति के अनुसार उसका अन्तिम फल चखने के बाद अपने आँसू पोंछते और अपने उन आघातों तथा संकटों को भूल जाते, जिनमें उनके वे आग्रह-दुराग्रह भी शामिल होते, जो झगड़े का फ़ौरी कारण थे। फिर वे अपने सुखी बचपन का जीवन जीने के लिये अपने हँसमुख चेहरों के साथ अहाते के दूसरे छोर की तरफ़ चल पड़ते। उनके माता-पिता भी मन में कोई बात न रखते। इसके विपरीत माता-पिता के कर्तव्य को पूरा करने की उनकी चेतना उस ऊर्जा को बढ़ा देती थी, जिसकी उन्हें अपने अन्य घरेलू काम पूरे करने के लिये ज़रूरत थी।

वेत्किन परिवार में इस तरह की कोई बात नहीं होती थी। यहाँ तक कि कात्या और पेत्या भी, अपनी सर्वाधिक निराशावादी मनोदशा में, एक अल्प रिरियाहट तक ही महदूद रहते और यह भी मुख्य रूप से प्रतीकात्मक होती थी। वेत्किन परिवार के बड़े बच्चे कभी भी रिरियाते-पिपियाते नहीं थे। पारिवारिक झगड़े सामाजिक क्षेत्र में कभी नहीं लाये जाते थे, और यह भी हो सकता था कि वहाँ कोई झगड़े होते ही न हों।

हमारी फ़ैक्टरी के लोगों को वेत्किन परिवार की इस विशेषता को देखने में देर नहीं लगी, हर कोई इसे किसी न किसी तरीक़े से स्पष्ट करने का प्रयत्न करता था। पर ऐसा करने में, माता-पिता की शैक्षणिक प्रतिभा का ज़िक्र कोई नहीं करता था।

‘‘ये ऐसे चरित्र हैं,’’ चूब ने कहा ‘‘प्रकृति ने उन्हें ऐसा ही बनाया है। और अगर आप भली भाँति देखें तो यह कोई अच्छी चीज़ नहीं है यह ज़रूरी है कि लोग सब कुछ करने में समर्थ हों। ऐसे आदमी का क्या उपयोग, जिसे दूध और चूने में फ़र्क मालूम न हो! अगर कोई ग़लत बात है, तो आदमी को ज़रूर ही चिल्लाना चाहिये-उसके अन्दर एक दिल होना ही चाहिये। एक बच्चे के लिये रोना बिल्कुल सामान्य बात है : वह एक जीवित व्यक्ति है, कठपुतला नहीं। मैं आपको बता रहा हूँ, जब मैं लड़का था, तो अन्य सबके मुक़ाबले सबसे ज़्यादा हंगामा मचानेवाला था और सच कहूँ ख़ूब घूँसे-डण्डे भी खाता था, लेकिन अब मैं कोई हंगामा नहीं करता, वैसे अगर कोई ऐसा करने के लिये मजबूर करे तो ठीक है, मैं चीख़ना-चिल्लाना भी जानता हूँ, यह स्वाभाविक है।’’

एकाउण्टेण्ट पिजोव की राय भिन्न थी।

''कामरेड चूब, मुद्दा यह नहीं है, यह चरित्र का मामला नहीं, बल्कि आर्थिक आधार का है। जब तुम्हारे यहाँ एक या दो हों, तो वे कुछ चीज़ देखते हैं-यह दीजिये! ठीक है, यह लो! मुझे यह दीजिये! यह लो! मुझे वह दीजिये! बेशक, फिर आप तंग आ जाते हैं, आप हर समय यह सिलसिला जारी नहीं रख सकते! तब चीखना-चिल्लाना शुरू होता है, क्योंकि पहले आपने दिया था और अब आप इनकार करते हैं। लेकिन वेत्किन के यहाँ तेरह हैं। अब कर लो, जो मर्ज़ी-कहीं न कहीं कमी या तंगी होती ही है। यहाँ कोई भी ''दीजिये'' चिल्लाने की बात नहीं सोचता! ''दीजिये'' इसका कोई मतलब नहीं। मैं कहाँ से ला सकता हूँ? मैं ख़ुद आश्चर्य में हूँ कि स्तेपान देनीसोविच एक लेखाकार के बग़ैर काम कैसे चलाता है उसके जैसे परिवार में आपको ऐसी हर चीज़ पर विचार करना होता है जो सामूहिक कोष में आती है, प्रत्येक व्यक्ति को कितने ग्राम दिये जायें। और यह महज़ उसके विभाजन का मामला नहीं है। आपको विभेदक पद्धति का इस्तेमाल करना होता है, अधिक उम्रवालों के लिये एक चीज़, कम उम्रवालों के लिये दूसरी। यही कारण है कि उनका स्वभाव इतना शान्त है : अपने हिस्से के लिये हर कोई प्रतीक्षा करता बैठा रहता है, चीख़ने-चिल्लाने से किसी तरह का कोई लाभ नहीं।''

''कामरेड पिजोव, अब आप इसे वैज्ञानिक तरीके से पेश कर रहे हैं,'' चूब ने तुरन्त उत्तर दिया। ''मेरे भी छह बच्चे हैं। आप किसी भी पद्धति का उपयोग क्यों न करें, आप किसी हालत में हर चीज़ का विभाजन नहीं कर सकते, जो हर हालत में कम हो, लेकिन वह चिल्लायेगा ज़रूर, समझे, और उसे रोका नहीं जा सकता :

दीजिये, दीजिये, दीजिये! और नतीजा यह होता है कि जो सबसे ज़्यादा चिल्लाता है, उसी को सबसे ज़्यादा मिलता है। और अगर उसे चिल्लाकर नहीं मिलता, तो वह ज़बर्दस्ती करेगा। मेरा वोलोद्या ऐसा ही है-ज़ल्दबाज जैसा।''

वेत्किन ने इन दार्शनिक बातों को श्रेष्ठता की दबी मुस्कान के साथ सुना और उत्तर दिया : ''यदि एक व्यक्ति ज़ल्दबाज है तो प्रश्न यह होता है कि उसे होना चाहिये या नहीं। एक ज़ल्दबाज आदमी दूसरे ज़ल्दबाज आदमी पर झपटेगा और छुरियाँ चलने में देर नहीं लगेगी! ज़रूरत है, अच्छे वातावरण की, अच्छे समूह की, तब कुछ किया जा सकता है। लेकिन अगर आप अमुक-तमुक के ज़ल्दबाज होने के बारे में बातें करने लगे, तो आप कुछ भी नहीं कर पाते हैं। और जहाँ तक बच्चों के चीखने और चिल्लाने की बात है यह महज़ अधीरता है। क्या आप यह समझते हैं कि सिर्फ़ आप ही में अधीरता है? उनमें भी है। बाहर से देखने में एक लड़का ठीक-ठाक, हँसमुख और हर तरह से सही नज़र आ सकता है, पर वास्तव में आप देखेंगे कि उसकी धैर्य धारण करने की क्षमता उतनी ही ख़राब है, जितनी आपकी रानी साहिबा की। यही कारण है कि वह चिल्लाता है। यदि आप जन्म से ही उसके धैर्य को चौपट न करें, तो वह क्यों चीख़ेगा?''

''मेरे बच्चों में धैर्य नहीं?'' चूब हैरत से चिल्लाया। ''ओहो, क्या ख़ूब बात कही!''

‘‘ओहो, ऊहू क्या कर रहे हैं?’’ वेत्किन ने उत्तर दिया और अपनी मुस्कान को हाथ से छिपाते हुए अपनी दाढ़ी को सहलाया। ‘‘जो हो, तुम्हारी तो अपनी ही धीरता कूड़े के लायक है।’’

वेत्किन को अपने परिवार के लिये पर्याप्त भोजन जुटाने में कठिनाई होती थी। यह सच है कि हमने उसकी ज़रूरतों के लिये एलाटमेण्ट पर एक ख़ासा बड़ा भूखण्ड उसे सौंप दिया था, और अन्ना सेम्योनोव्ना व ओक्साना शीघ्र ही उस पर काम करने लगी थीं। हमने एक-दो अन्य मामलों में भी वेत्किन की सहायता की : एक घोड़ा तथा हल, बीज और एक बहुत महत्वपूर्ण वस्तु-आलू। लेकिन फ़िलहाल इस एलाटमेण्ट का मतलब सिर्फ़ काम और खर्च था।

स्तेपान देनीसोविच ने शिकायत नहीं की, लेकिन उसने अपनी कठिनाइयों को छुपाया भी नहीं।

‘‘मैं हिम्मत नहीं हार रहा हूँ। अभी मुख्य चीज़ रोटी है। यदि प्रारम्भ में काफ़ी रोटी हो, तो सब कुछ ठीक-ठाक होगा। जो भी हो, रोटी की निरपेक्ष न्यूनतम आवश्यकता आधे पूड की है, प्रत्येक के लिये 500 ग्राम, वस्तुतः काफ़ी कम हिस्सा। आधा पूड प्रतिदिन!’’

हम सब समझ गये थे कि वेत्किन परिवार के हर सदस्य में सर्प जैसी बुद्धिमत्ता होगी। वेत्किन ने ख़ुद इस बुद्धि को काम में व्यावहारिक रूप दिया। वह सचमुच एक अच्छा लोहार था और उसका अध्यापक का प्रशिक्षण भी उसके लिये बहुत सहायक था। इसकी वजह से उसका वेतन हमारे श्रमिकों के औसत वेतन से काफ़ी अधिक था।

लेकिन मैं इस बात से बहुत ही आश्चर्यचकित हुआ कि जब मैंने उससे शाम के समय ओवरटाइम काम करने का प्रस्ताव किया तो उसने उत्तर दिया : ‘‘यदि फ़ैक्टरी को इसकी ज़रूरत हो, तो मैं इनकार नहीं करूँगा-वह एक भिन्न बात है। लेकिन अगर आप यह सुझाव केवल मुझे मदद देने के लिये कर रहे हैं तो कोई बात नहीं, क्योंकि इस दिशा में चलने पर व्यर्थ झंझट पैदा हो सकता है...’’

वह अटपटे ढंग से मुस्कराया और अपनी मुस्कान छिपा नहीं सका, वैसे उसने अपनी मूँछों के मोटे पर्दे के पीछे उसे दबाये रखने की भरसक कोशिश की। इसका मतलब था कि वह किंचित संकोच का अनुभव कर रहा था।

‘‘एक आदमी को सात घण्टे रोज काम करना ही चाहिये, लेकिन अगर वह ज़्यादा काम करता है, तो उसकी कार्यशक्ति जल्द वापस नहीं लौट पाती। बच्चे पैदा करो और मर जाओ-ज़िन्दगी के बारे में यह विचार मेरा नहीं है। ऐसे तो... याद नहीं, कौन-सा कीड़ा या एक तितली है, वह एक दिन जीती है, अण्डे देती है और फिर नमस्ते : इसके अलावा और कुछ करना ही नहीं। शायद तितली के लिये यह बात ठीक हो, क्योंकि उसके पास इसके सिवा और कुछ करने को नहीं होता, परन्तु एक आदमी को बहुत कुछ करना होता है। ढलाईशाला में सात घण्टे का काम मेरे लिये काफ़ी है।’’

''लेकिन,'' मैंने एतराज़ करते हुए कहा, ''आपने अभी-अभी कहा कि अगर फ़ैक्टरी के लिये ज़रूरी हो तो...''

''वह बिल्कुल दूसरा मामला है। यदि फ़ैक्टरी को इसकी ज़रूरत हो-यह है वह बात। लेकिन क्या मेरे बच्चों को मेरी ज़रूरत नहीं है? उन्हें ज़रूरत है एक बाप की, जो उनके लिये बाप हो, न कि एक घोड़ा जैसे कि मैंने कभी-कभी देखा है। धुँधली-धुँधली आँखें, पीठ में कोई कूबड़ है, किसी भी काम के लिये उत्साह नहीं, स्नायुओं में गड़बड़ और लगभग उतनी ही आत्मा जितनी कि एक मुर्दा बत्तख में होती है। मैं जानना चाहूँगा कि ऐसे बाप का क्या उपयोग है? सिर्फ़ रोज़-ब-रोज़ रोटी कमाना। बेहतर होगा कि ऐसे बाप को सीधे-सीधे दफ़न कर दिया जाये और बच्चों का पोषण राज्य करे-राज्य इसका बुरा नहीं मानेगा। मैंने एक-दो ऐसे बाप देखे हैं : वह अपनी सारी शक्ति खपा देता है, कुछ समझ नहीं पाता और किसी दिन फ़र्श पर मुर्दा पड़ा मिलता है, बच्चे यतीम हो जाते हैं, और अगर वे अनाथ नहीं होते तो महामूर्ख होते हैं, क्योंकि परिवार में उल्लास होना ही चाहिये, हर समय दुख-शोक नहीं होना चाहिये। और लोग डींगें हाँकते हैं : 'मैंने बच्चों की ख़ातिर सब कुछ छोड़ दिया है।' मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूँ, अच्छा, अगर आपने ऐसा किया है तो आप मूर्ख हैं-आपने सब कुछ छोड़ दिया और बच्चों को धेला भी नहीं मिला। हो सकता है हमारा भोजन बहुत अच्छा न हो, लेकिन हमारे परिवार में थोड़ा-बहुत जीवन है, साहचर्य है। मैं ठीक हूँ, माँ ख़ुशमिज़ाज है और उन सबकी कायाओं में आत्माओं का वास है।''

मुझे यह स्वीकार करना ही चाहिये कि उन दिनों स्तेपान देनीसोविच की ओर से दिया गया ऐसा तर्क, मेरे लिये वस्तुतः अरुचिकर न होने पर भी, प्रभावहीन रहा। तार्किक दृष्टि से उससे असहमत होना कठिन था, लेकिन यह समझना भी कठिन था कि ऐसे दर्शन और अहंवाद या घोर आलसीपन के बीच की सीमारेखा कहाँ हो सकती है। मुझे यह सोचने की आदत पड़ गयी थी कि कर्तव्य की भावना तभी कारगर और नैतिक दृष्टि से ऊँची हो सकती है, जब उसका गणित या शुद्ध दुकानदारी के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध न हो।

मैं यह जानना चाहता था कि स्तेपान देनीसोविच ने अपने सिद्धान्त को कौन-सा व्यावहारिक रूप दिया है। लेकिन मैं वेत्किन परिवार के घर जाने के लिये अभी भी समय नहीं पा सका था-यह भी तब, जबकि उसकी स्थिति धीरे-धीरे सुधर रही थी। वेत्किन की कुटीर के दूसरे हिस्से में दो लड़कियाँ रहती थीं। इन लड़कियों ने अपनी ही इच्छा से अपना कमरा वेत्किन परिवार को दे दिया और खफ़द एक दूसरी कुटीर में अपनी एक सहेली के साथ रहने लगीं। स्तेपान देनीसोविच अपने मकान को नये सिरे से व्यवस्थित करने में जुट गया।

एक दिन मैं और औज़ार-निर्माता चूब शहर की तरफ़ जा रहे थे, तब अगस्त का महीना शुरू हो चुका था। हम शाहबलूत के एक नये वन के बीच एक तंग और टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होकर चल रहे थे। चूब, हमेशा की तरह, लोगों के बारे में बातचीत कर रहा था।

''वेत्किन ने अपने लड़के को एक परीक्षा देने के लिये भेजा है-बड़े वान्या को। वह शहर में अपने चाचा के साथ रहेगा। इस समय वह वहीं गया हुआ है। मुझे भी एक ऐसा ही चाचा मिल जाये, तो मैं तेरह नहीं, तीस बच्चों को पाल-पोस के दिखा दूँ। हर कोई अपने-अपने ढंग से ख़ुशक़िस्मत है : किसी के पास अच्छा दिमाग़ है, किसी और के पास बढ़िया दाढ़ी है और अगले के पास एक चाचा है!''

''वह किस तरह का चाचा है?''

''अरे वाह! मौज-मज़े की ज़िन्दगी बिताता है। चार कमरे, एक पियानो, सोफ़े, गज़ों कपड़ा, स्वादिष्ट खाना-एक ज़ार की तरह!''

''क्या? क्या वह ये सब चुराता है?''

''चुराता है? अरे नहीं, ख़रीदता है। आप तो जानते ही हैं, अपनी दुकान से तो हमेशा ही ढेरों माल ख़रीदा जा सकता है। इसे कहते हैं नयी आर्थिक नीति*। आप ज़रा स्तेपान देनीसोविच से पूछिये कि उसने चाचा के साथ मामला तय क्यों किया? क्या वह वान्या को हमारे फ़ैक्टरी व कार्यशाला स्कूल** में नहीं रख सकता था? अजी नहीं, उसे तो अपने चाचा के पास ही जाना चाहिये था, क्योंकि वहाँ नयी आर्थिक नीति जो है।''

उसी क्षण शाहबलूत के वृक्षों के पीछे से, उसी टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर स्तेपान देनीसोविच और वान्या आते हुए दिखायी दिये। वान्या पीछे से भटकता हुआ आ रहा था और एक सण्टी से छोटे-छोटे वृक्षों को पीटता हुआ चल रहा था। उसके चेहरे पर वही जटिल भाव अंकित था, जो लड़कों के चेहरों पर तब दिखायी देता है, जब वे अपने बड़ों के प्रति सम्मान और प्यार के कारण उनके निर्णयों को स्वीकार कर लेते हैं।

---

* **नयी आर्थिक नीति**-सोवियत संघ में पूँजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के दौरान इस नीति पर चला गया था। इसका कार्यान्वयन 1921 में शुरू हुआ और 1930 के उत्तरार्ध में सोवियत संघ के अन्दर समाजवाद की विजय के साथ समाप्त हुआ। नयी आर्थिक नीति का मूल सार श्रमिक वर्ग व किसानों के बीच संश्रय को सुदृढ़ बनाना, समाजवादी उद्योग तथा छुटपुट जिंसों का उत्पादन करनेवाली किसान अर्थव्यवस्था के बीच, जिंस मुद्रा सम्बन्धों के व्यापक उपयोग तथा समाजवादी निर्माण में किसानों की सहभागिता के ज़रिये, आर्थिक आधार पर सम्बन्ध क़ायम करना था। नयी आर्थिक नीति में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख तत्वों को समाजवादी राज्य के नियंत्रण में रखते हुए पूँजीवादी तत्वों के किंचित विकास की अनुमति दी गयी थी।**-सं.**

** **फ़ैक्टरी व कार्यशाला स्कूल**-1920-1940 में मुख्य प्रकार के सोवियत व्यावसायिक प्रशिक्षण स्कूल। बड़े उद्यमों में प्राथमिक शिक्षाप्राप्त 14-18 वर्षीय युवजन को कुशल श्रमिक बनाने के लिये फ़ैक्टरी व कार्यशाला स्कूल खोले गये थे। उन स्कूलों में प्रशिक्षणार्थियों को तीन या चार साल तक प्रशिक्षण दिया जाता था।

1930-1939 में वे स्कूल सिर्फ़ उन युवजनों को प्रशिक्षित करते थे, जिनकी माध्यमिक शिक्षा अपूर्ण थी (7 वर्ष) और प्रशिक्षण की अवधि को घटा दिया गया था।

सातवें दशक से सोवियत संघ में 'पेतेऊ', व्यावसायिक स्कूल चल रहे हैं, जिनमें कुशल श्रमिकों को पूर्ण माध्यमिक शिक्षा दी जाती है।**-सं.**

लेकिन अपने हृदय के अन्तर्तम भाग में अपने ही किसी सिद्धान्त को बरक़रार रखते हैं। यह बात उनके चेहरों पर मुश्किल से ही नज़र आनेवाली, पर फिर भी स्थिर व व्यंग्यपूर्ण मुस्कान से तथा उनकी उदास आँखों में उसी व्यंग्य के हल्के प्रभाव से स्पष्टतः समझी जा सकती थी।

अभी वे दूर ही थे कि चूब चिल्लाया : ''क्या वह पास हो गया?''

स्तेपान देनीसोविच मुस्कराया तक नहीं।

''हाँ, हो गया,'' उसने हल्की भारी आवाज़ में कहा और पीछे अपने लड़के पर क्रुद्ध दृष्टि डालते हुए हमारे पास से गुजर गया।

फिर सहसा रुका और जमीन की ओर देखता हुआ बोला :

''क्या आपने कभी अभिजातवर्गीय घमण्ड के बारे में सुना है? क्योंकि, अगर आपने नहीं सुना है, तो यह आपके लिये एक उदाहरण है!''

वेत्किन ने किंचित नाटकीय ढंग से वान्या की तरफ़ इशारा किया। अभिजात-वर्ग के उस प्रतिनिधि के एक हाथ में जूते थे और दूसरे में वह सण्टी, जिससे अब वह अपने नंगे पैरों के पास की मिट्टी कुरेद रहा था और कुरेदन को उसी पेचीदा भाव से देख रहा था जो दो भावनाओं का मिश्रण था : एक उदासी व क्षोभ की और दूसरी चतुराईभरी और हठपूर्ण। उसका दूसरा भाव, शायद सचमुच ही एक अभिजातवर्गीय विचार को प्रतिबिम्बित कर रहा था।

स्तेपान देनीसोविच ने ग़ुस्से से भरी नज़र से वान्या को पस्त करने का प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हुआ : वान्या काठ का बना सिद्ध हुआ। तब स्तेपान देनीसोविच ने हमसे अपील की :

''सेब! अगर वह किसी उद्यान से झपट कर उन्हें पा जाये, तो उसे सेब खाने का ख़ूब ही चाव होता है, लेकिन अगर वे मेज़ पर हों, तो उसे उनसे कुछ लेना-देना ही नहीं!''

सेबों के प्रति ऐसे खिझानेवाले रवैये को शब्दों में निश्चय ही व्यक्त नहीं किया जा सकता था। अतः स्तेपान देनीसोविच ने एक बार फिर वान्या की तरफ़ आँख तरेरकर देखा।

वान्या ने कई भिन्न-भिन्न दिशाओं में अपना सिर घुमाया, जिसका कोई अर्थ निकालना नामुमकिन था, और कहा :

''क्या यह सिर्फ़ सेब ही सेबों की बात है? यह केवल सेबों की वजह से नहीं है, जो भी हो... मैं वहाँ नहीं रहूँगा! मुझे उनके सेबों की क्या ज़रूरत है, या उनकी मिठाइयों की या वह... स्टर्जियन की?''

सहसा वान्या की हँसी फूट निकली, उसने अपने शर्माते हुए चेहरे को दूसरी तरफ़ मोड़ लिया और किंचित संकोच से फुसफुसाया :

''स्टर्जियन...''

इस स्वादिष्ट व्यंजन की याद ने वान्या को देर तक प्रसन्न नहीं रखा, और इसके अलावा उसकी हँसी दरअसल व्यंग्यात्मक थी। अगले ही क्षण वान्या ने हमें अपने

व्यंग्य का गम्भीर पहलू दिखलाया और वास्तविक निन्दा की अभिव्यक्ति के साथ कहा : ''हमारे घर में उस तरह की कोई चीज़ नहीं है और मैं इसे नहीं चाहता, नहीं चाहता और बस!''

प्रतीत होता था कि इन शब्दों में वान्या की अन्तिम राय निहित है, क्योंकि इन शब्दों को बोलने के बाद वह सीधा खड़ा हो गया और सण्टी से अपने पैरों पर इतने ज़ोर का सपाका मारा मानो वह सण्टी नहीं, घुड़सवारी का चाबुक हो, और फिर उसने अपने पिता की तरफ़ देखा। उस क्षण पर वान्या की आकृति में सचमुच ही कुछ अभिजातवर्गीय अन्दाज़ था।

स्तेपान देनीसोविच ने अपनी मूँछों के दायें कोने में कुछ किया, मानो वह मुस्करानेवाला हो, पर उसने अपना ख़्याल बदल दिया और तिरस्कारपूर्वक कहा : ''क्या घमण्ड है, ज़रा अपने पर एक नज़र तो डाल।''

वह झटके के साथ मुड़ा और फ़ैक्टरी की तरफ़ चल दिया। वान्या ने पहले तो ऐसी तेज़ी से हमारी ओर निगाह डाली मानो हमारा कोई अपराध पकड़ना चाहता हो, फिर शान्तिपूर्वक अपने पिता के पीछे चल दिया।

चूब ने लड़के की दूर जाती हुई आकृति पर हार्दिकतापूर्ण नज़र डाली, खांसा और फिर तम्बाकू के लिये अपनी जेब टटोलने लगा। उसने सिगरेट के एक तुड़े-मुड़े काग़ज़ की सलवटें सीधी करने में थोड़ा वक़्त लगाया, उस पर तम्बाकू डाला और इस दौरान विचारमग्न-सा लगातार उस दिशा की तरफ़ देखता रहा, जहाँ को वान्या गया था। उसकी ज़बान तभी खुली जब उसने सिगरेट के काग़ज़ को अपनी जीभ से गीला किया, सिगरेट बनायी, उसे होठों से लगाया और गन्दी जैकेट की गहरी जेब में दियासलाई के लिये हाथ डाला, वह रूखी आवाज़ में बोला :

''हूँ, यह है लड़का... लेकिन, आप क्या कहते हैं, वह सही है या नहीं?''

''मैं समझता हूँ वह सही है।''

''सचमुच?''

चूब ने अपनी दूसरी जेब में दियासलाई खोजनी शुरू कर दी, फिर अपनी पतलून की जेब में और फिर कहीं अस्तर के अन्दर, फिर मुस्कराया :

''दुनिया हर चीज़ आसानी से तय कर लेती है। मिसाल के लिये आप अपने को ले लीजिये। आपने फ़ौरन कह दिया : 'वह सही है', पर हो सकता है वह ग़लत हो. . यह रही मेरी दियासलाई, कभी-कभी इसे खोजने में सब कुछ उलटना-पलटना पड़ जाता है... और इस मामले में यह ज़िन्दगी की बात है, ज़िन्दगी की सचाई की, जिसकी आपको तलाश है! 'वह सही है' से आपका क्या मतलब है? आपके लिये तो ऐसी बातें करना ठीक-ठाक है, लेकिन वेत्किन के तेरह बच्चे हैं। क्या इस फटीचर छोकरे को ऐसी ज़ोर-ज़बरदस्ती का हक़ है? सेब, स्टर्जियन, देखो ज़रा! लेकिन अगर उसके बाप के पास आलू भी काफ़ी न हो तो?''

''ठहरो चूब, अभी-अभी तो तुम वेत्किन की निन्दा कर रहे थे...''

"हाँ, कर रहा था और क्यों न करूँ। इसमें भला क्या है? उनका वह चाचा, वह कुतिया का वंशज, और वेत्किन भी घी के कुप्पे में हाथ मारना चाहता है।"

"अच्छा, तो?"

"लेकिन यह एक अलहदा सवाल है। यह मुद्दा बापम के ख़िलाफ़ है, बेटे को इससे क्या मतलब? उसे समझना चाहिये कि यह उसके पिता के लिये कठिन मामला है और उसके पिता का ख़्याल है कि उसके लिये सबसे अच्छा रास्ता यही है... अहा, दियासलाई मिल गयी, देखिये कहाँ जा पहुँची है!.. आजकल के लड़के ऐसे ही हैं-सब कुछ ख़ुद करना चाहते हैं और सब कुछ ख़ुद समझना चाहते हैं, पर जवाबदेही आपको करनी पड़ती है!"

वान्या ने अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ काम किया और हमारी फ़ैक्टरी के प्रशिक्षण स्कूल में भर्ती हो गया।

जिस प्रकरण का मैंने विवरण दिया है उसमें मुझे कई पक्षों से दिलचस्पी थी। मैं वान्या के पूरे चरित्र को अधिक गहराई से समझना चाहता था और एक दूसरी चीज़ के लिये स्पष्टीकरण की ज़रूरत थी : ऐसे चरित्रों का निर्माण कैसे होता है। हम शिक्षाविदों के लिये दूसरे प्रश्न का महत्व इतना अधिक है कि मुझे वेत्किन परिवार जैसे अव्यवसायिक शिक्षण संगठन से भी कुछ बातें सीखने में कोई शर्म नहीं थी। इसके अलावा मैं यह नहीं सोच सकता था कि वान्या की प्रकृति अच्छे शैक्षिक काम का परिणाम नहीं प्रकृति का वरदान था।

हमारी तथाकथित "व्यापक जनता" के बीच यह बात सुज्ञात है कि लोम्ब्रोज़ो* का सिद्धान्त ग़लत है और कि अच्छा लालन-पालन किसी भी सामान्य सामग्री से दिलचस्प और स्वस्थ चरित्र का निर्माण कर सकता है।

यह एक सही और रुचिकर विश्वास है, लेकिन दुर्भाग्यवश इससे हमेशा व्यावहारिक परिणाम नहीं निकलते। ऐसा इसलिये होता है कि हमारे शिक्षाविदों की एक ख़ासी बड़ी संख्या लोम्ब्रोज़ो के सिद्धान्त के प्रति अपने तिरस्कार को केवल सैद्धान्तिक विचार-विमर्शों में, रिपोर्टों और भाषणों में, वाद-विवादों और सम्मेलनों में ही अभिव्यक्ति देती है। इन मौकों पर वे लोम्ब्रोज़ो के ख़िलाफ दृढ़ता से बोलते हैं, लेकिन काम के समय, दैनिक व्यावहारिक क्षेत्र में लोम्ब्रोज़ के ये विरोधी यह नहीं जानते कि चरित्र

---

* **लोम्ब्रोज़ो, चेज़ारे** (1835-1909)-इतालवी अपराध मनोविज्ञान के विशेषज्ञ व नृतत्व-वैज्ञानिक। लोम्ब्रोज़ो का कहना था कि अपराध जीवन और मृत्यु की ही तरह एक प्राकृतिक घटना है। वे तथाकथित जन्मजात अपराधी के सिद्धान्त के जन्मदाता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, लोग अपराधी बनते नहीं, पैदा होते हैं। लोम्ब्रोज़ो का विश्वास था कि चपटी नाक, अघन दाढ़ी, छोटा माथा, आदि क़िस्म के शारीरिक लक्षण (दूषण) अपराधियों के चिह्न हैं।

अपनी बाद की रचनाओं में लोम्ब्रोज़ो ने अपराध में सामाजिक कारणों की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया था, इससे लोम्ब्रोज़ो के सिद्धान्त को जैव-सामाजिक सिद्धान्त कहने का आधार बना था।**-सं.**

निर्माण के काम को सही और वांछनीय ढंग से कैसे किया जाये, और उनमें कठिन स्थितियों में हमेशा चुपके से खिसक चलने और प्राकृतिक मूल सामग्री को उसके मूल-रूप में छोड़ दने की प्रवृत्ति होती है।

इस व्यवहार की वजह से यह अनेक तर्कहीन लेखों तथा सिद्धान्तों के लिये आधार बना। इसीलिये पेडोलॉजी*, और इसीजिए, चतुर निष्क्रिय प्रतिरोध के रूप में, अनौपचारिक शिक्षा का सिद्धान्त भी बना और इसीलिये, इनसे भी अधिक स्वाभाविक रूप से, कठिन मामलों में हाथ-पैर छोड़ देने की वह आम व्यावहारिक आदत बनी, जिसके साथ यह सामान्य भाव व शब्द हमेशा जुड़े रहते हैं :

''विकट लड़का है!''

''एक़दम निकम्मा छोकरा है!''

''हम तो नितान्त असमर्थ हैं!''

''उसका सुधार असम्भव है!''

''हम इसका कुछ नहीं कर सकते!''

''एक विशेष अनुशासन पद्धति की ज़रूरत है।''

पेडोलाजी का विनाश तथा ''अनौपचारिक-शिक्षा'' का राष्ट्रव्यापी पतन हमारी अपनी ही आँखों के सामने हो गया। लेकिन इसकी वजह से असफल अध्यापकों का काम और भी कठिन हो गया, क्योंकि अब उनके पास व्यावहारिक असमर्थता को, बल्कि अधिक स्पष्टता से कहें तो अपने अपराजेय आलसीपन को छिपाने के लिये कोई सिद्धान्त नहीं रहा।

लोम्ब्रोज़ो को केवल एक ही उपाय से जमीन्दोज किया जा सकता है-चरित्र की शिक्षा पर विशेष व्यवहारिक काम से। और यह काम आसान क़तई नहीं है; इसके लिये प्रयत्नों की, धैर्य और लगन की ज़रूरत है। हमारे अनेक शिक्षाविद नितान्त ईमानदारी से यह सोचते हैं कि खण्डित लोम्ब्रोज़ो पर थोड़ी सी उछल-कूद मचाना उसके ख़िलाफ़ कुछ धिक्कार-वाक्य बोलना काफ़ी है, और इतना करने के बाद उनके कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है।

परन्तु यह सारा ''व्यावहारिक'' संकट महज़ आलसीपन का परिणाम नहीं है। अधिकांश मामलों में एक असली, हार्दिक और गुप्त धारणा होती कि वस्तुतः यदि एक आदमी डाकू के रूप में जन्मा है, तो वह डाकू के रूप में ही मरेगा, कि केवल

---

* **पेडोलॉजी**-ग्रीक भाषा से अनूदित। इसका अर्थ बाल-विज्ञान है। पेडोलॉजी-बाल-विज्ञान की एक विचारधारा है। वास्तव में यह बच्चे के विकास की मनोवैज्ञानिक, जैविक और समाजवैज्ञानिक संकल्पनाओं का समाहार है। 19वीं शताब्दी के अन्त में अमरीका और पश्चिम यूरोप में उसका आविर्भाव हुआ। यह बच्चे के बारे में इस अवैज्ञानिक धारणा पर आधारित है कि उसकी नियति कथित रूप में वंशानुगतता तथा सामाजिक परिवेश द्वारा अपरिहार्य रूप से पूर्वनिर्धारित है। सोवियत संघ में विज्ञान-विरोधी सिद्धान्त के रूप में पेडोलाजी का 1930 के दशक में ही पर्दाफ़ाश कर दिया गया था।**-सं.**

क़ब्र ही कुबड़ेपन का इलाज करती है और कोई भी सेब के वृक्ष से दूर जाकर नहीं गिरता है।

मैं शैक्षिक कार्य की असीम शक्ति में, विशेषतः सोवियत संघ से सम्बन्धित सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत, अकूत, बेधड़क और बेहिचक विश्वास करता हूँ। मुझे एक भी ऐसे मामले की जानकारी नहीं है, जहाँ वास्तविक रूप से मूल्यवान चरित्र स्वस्थ शैक्षिक पृष्ठभूमि के बिना बना हो, या, इसके विपरीत, जहाँ सही शैक्षिक कार्य के बावजूद किसी विकृत चरित्र का विकास हुआ हो। इसलिये मुझे इस बारे में कोई सन्देह नहीं था कि वान्या की प्रकृति की श्रेष्ठता के प्राकृतिक स्रोत को कहाँ खोजा जाये-बुद्धिमत्तापूर्ण और समझदारी से किये जानेवाले पारिवारिक लालन-पालन में।

और मैंने पहले सुविधाजनक अवसर पर वान्या से बातचीत की। मेरी यह बातचीत उसी वन में, पर नगर को जानेवाले उस टेढ़े-मेढ़े रास्ते से काफ़ी दूरी पर जंगल के सघन हिस्से में हुई। वह छुट्टी का दिन था और मैं अकेले रहने तथा जीवन की विभिन्न समस्याओं पर विचार करने की सम्भावना के लालच में यों ही इधर-उधर घूम रहा था। वान्या खुम्बियाँ बटोर रहा था। कुछ समय पहले स्तेपान देनीसोविच ने मुझसे कहा था :

''खुम्बियाँ-यह अच्छी चीज़ है। जब आदमी के पास धन की कमी हो, तो वह जाकर खुम्बियाँ बटोर सकता है। यह एक स्वादिष्ट व्यंजन है और मुफ़्त में उपलब्ध है। बेरियाँ भी ऐसी ही होती हैं। इसके अलावा बिच्छू-घास भी हैं, लेकिन वे ताज़े नये पौधे होने चाहिये।''

वान्या एक बड़ी-सी टोकरी में खुम्बियाँ एकत्र करता घूम रहा था। उसकी टोकरी के अन्दर आर्द्र खुम्बियों का रुचिकर ढेर दिखायी दे रहा था और वान्या ने अपनी कमीज़ के एक छोर से एक प्रकार की अतिरिक्त झोली बना ली थी, अपनी नयी खोजों को वह इसी झोली में रख रहा था। उसने मेरा अभिवादन किया और कहा :

''पिताजी को खुम्बियाँ बेहद प्रिय हैं। तली और नमकीन। पर यहाँ ''श्वेत'' खुम्बियाँ नहीं हैं वे ''श्वेत'' खुम्बियों को ही सबसे ज़्यादा पसन्द करते हैं।

मैं पेड़ के एक ठूँठ पर बैठ गया और एक सिगरेट जलायी। वान्या मेरे सामने घास पर बैठ गया और उसने अपनी टोकरी को एक पेड़ से टिका दिया। मैंने अपना प्रश्न सीधे उसके सामने पेश किया।

''वान्या, मुझे एक ख़ास प्रश्न में दिलचस्पी है। तुमने घमण्ड के कारण अपने चाचा के यहाँ रहने से इनकार कर दिया... क्या इस मामले में तुम्हारे पिता सही थे?''

''घमण्ड से नहीं,'' वान्या ने अपनी स्वच्छ नीली आँखों से सीधे मुझे देखते हुए कहा, ''घमण्ड से क्यों? सीधी बात है, मैं नहीं चाहता, मुझे उस चाचा की ज़रूरत ही क्या है?''

''लेकिन तुम्हारे चाचा के यहाँ सब कुछ बेहतर है और यह तुम्हारे परिवार के लिये एक सहायता होती।''

मैंने यह बात कही और कहते ही अपने अन्तःकरण में एक टीस का अनुभव किया, मैं अपराध-भावना से मुस्कराया भी, पर वान्या की नीली आँखें पहले की ही जैसी स्वच्छ रहीं।

''हाँ, यह पिताजी के लिये कठिन है, परन्तु... हम एक-दूसरे से अलग क्यों हो जायें? यह तो पहले से भी अधिक कठिन होगा।''

बहुत सम्भव है कि उस क्षण पर मेरे चेहरे में कोई विशेष मूर्खतापूर्ण भाव रहा होगा, क्योंकि वान्या खूब उल्लसित होकर हँसने लगा, यहाँ तक कि उसके नंगे पैर भी खिल्ली उड़ाते हुए जैसे घास पर ऊपर-नीचे थिरकने लगे।

''आप क्या सोचते हैं? पिताजी ने मुझे चाचा के पास किसलिये भेजा? क्या आप यह सोचते हैं कि उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि यहाँ हमारी तादाद कम हो जाये? ऐसा कोई डर नहीं! हमारे पिताजी चतुर हैं... वे एक असली... असली बूढ़ी लोमड़ी जैसे हैं! वे चाहते थे कि यह मेरे लिये बेहतर हो। आप समझे कि वे किस क़िस्म के हैं!''

''और तुमने एक बेहतर प्रस्ताव ठुकरा दिया?''

''क्यों, इसमें बेहतर क्या है?'' वान्या ने कहा, अब गम्भीर हो गया था। ''क्या आप पिताजी को बीच मँझधार में छोड़ने को अच्छा कहते हैं? क्या यह अच्छी बात है? और इसमें कुछ भी बेहतर नहीं है, यह सब और भी बुरा है। वे वहाँ अच्छा खाना खाते हैं, यही एकमात्र चीज़ है। लेकिन घर में इससे कहीं अधिक अच्छा है। मेज़ पर बैठ भर जाइये, असली आनन्द आ जाता है। हमारे पिताजी विलक्षण व्यक्ति हैं और अम्मा भी वैसी ही हैं। बेशक हम स्टर्जियन नहीं खाते। लेकिन आप समझते हैं कि स्टर्जियन बढ़िया होती है?''

''हाँ, समझता हूँ।''

''उँह, मुझे वह क़तई पसन्द नहीं! एक़दम कूड़ा! लेकिन आलू और खुम्बियों के बारे में आप क्या कहते हैं? पूरी कड़ाही भर! और बीच-बीच में पिताजी के दिलचस्प चुटकुले। और मेरे भाई-बहन भी अच्छे हैं। वहाँ न जाने से मुझे कोई अभाव नहीं खलेगा।''

तो, उस बातचीत का कोई नतीज़ा नहीं निकला। वान्या ने घमण्ड की बात स्वीकार नहीं की। और मुझे आश्वस्त किया कि उसका घर वहाँ से बेहतर है। जब हम विदा हुए तो उसने स्नेहपूर्वक, लेकिन चुनौती के स्वर में मुझसे कहा :

''आज आइये, और शाम का खाना हमारे साथ खाइये। आलू और खुम्बियाँ। आप सोचते हैं कि सबके लिये पर्याप्त नहीं होगा? अरे, आप आइये और देखिये तो।''

''अच्छी बात है, तो मैं आऊँगा।''

''सच्ची बात, शाम के भोजन पर आइयेगा! सात बजे। बिल्कुल ठीक?''

सात बजे मैं वेत्किन के घर को चल पड़ा। बरामदे में खड़ी एक मेज़ पर बैठा स्तेपान देनीसोविच अख़बार पढ़ रहा था। पास ही, बाहर खुली रसोई में आन्ना

सेम्योनोव्ना और ओक्साना काम में व्यस्त थीं। ओक्साना ने कड़ाही से हाथ हटाये बिना मेरी तरफ़ देखा और हार्दिकता से मुस्कराते हुए अपनी अम्मा से कुछ कहा। आन्ना सेम्योनोव्ना ने मुड़कर देखा, अपने पेशबन्द को उठाया, हाथ पोंछे और मुझसे मिलने के लिये आगे बढ़ आयी।

''आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हई! वान्या ने कहा था कि आप आयेंगे। स्तेपान, आओ, अपने मेहमान से मिलो, राजनीति का अध्ययन करने के लिये तुम्हें काफ़ी समय मिल गया है।''

स्तेपान देनीसोविच ने अपना चश्मा उतारा, उसे अख़बार के ऊपर रखा, अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा और होंठों को सिकोड़ना शुरू कर दिया, लेकिन यह सत्कारशीलता की व्यग्रता थी और उसमें किंचित व्यंग्य का पुट था। कुटीर के दरवाज़े पर, द्वार के सिरे को पकड़े, बड़ा वान्या मुस्कराता खड़ा था। वास्या उसकी एक बाँह के नीचे से निकलकर कुटीर में घुसा और दूसरी बाँह के नीचे से गुलाबी गालों वाली मरूस्या अपने हाथ घुटनों पर रखे झाँक रही थी और अपनी आँखों पर बल डालते हुए मुझे ताक रही थी।

पाँच मिनट बाद हम बड़ी मेज़ के गिर्द बैठ गये। उस पर मेज़पोश नहीं बिछा था, लेकिन उसकी कुदरती लकड़ी साफ़ और चमकीली थी। जब मैं बैठ गया, तो उस मेज़ की सुरुचिपूर्ण, सफ़ेद सतह पर दुलार भरे ढंग से हाथ फेरे बिना नहीं रह सका। स्तेपान देनीसोविच ने मेरे इस भाव को देख लिया।

''आपको यह पसन्द है? मैं भी सादे क़िस्म की मेज़ पसन्द करता हूँ। यह असली चीज़ है, इसमें किसी भी तरह का कोई बहाना नहीं है। आप जानते हैं कि मेज़पोश के मामले में कुछ लोग जानबूझकर गहरे रंग का मेज़पोश ख़रीदते हैं, ताकि मैल दिखायी न पड़े। पर इसमें, असली सफ़ाई है और कोई असंगत बात नहीं है।''

स्तेपान देनीसोविच अपने घर में एक भिन्न आदमी था, अधिक आत्मविश्वासी ख़ुशमिज़ाज। उसके चेहरे की पेशियाँ अधिक उन्मुक्त भाव से काम कर रही थीं। चूल्हे के पास, जो एक सफ़ेद पर्दे के पीछे था, बड़ा वान्या, वित्या, सेम्योन और वान्यूश्का खड़े थे-सारी की सारी प्रमुख टीम। वे सब मुस्कराते हुए अपने पिता की बातें सुन रहे थे।

सहसा, सातवर्षीय ल्यूबा कमरे में दौड़ी आयी-वेत्किन परिवार में उसका रंग सबसे ज़्यादा गहरा था, लगभग जैतून का-सा। अन्य बच्चों से भिन्न वह कार्नेल की लाल बेरियाँ की माला पहने हुई थी।

''ओह,'' ल्यूबा बोली, ''देर हो गयी, मुझे देर हो गयी! वान्यूश्का, लाओ, दो!''

गम्भीर, भूरी आँखों वाला वान्यूश्का आलमारी के सबसे नीचेवाले खाने के पास झुका और ल्यूबा को सिलसिलेवार पावरोटी के कटे हुए टुकड़ों से भरी छोटी टोकरी और फिर कुछ गहरी तश्तरियाँ, कई चाकू, दो नमकदानियाँ और एल्युमिनियम की चाय की चम्मचें थमाने लगा। वान्यूश्का की बहन ने उसकी गम्भीरता का उत्तर मेज़ के चारों तरफ़ ज़ोरदार कामकाज से दिया। इससे सारे कमरे में एक तरह की एक

पुरजोश, मित्रतापूर्ण हवा-सी चल पड़ी।

जिस समय ल्यूबा और वान्यूश्का मेज़ सजा रहे थे, उसी समय बड़े वान्या और वित्या ने एक बंक के नीचे से लकड़ी के दो छोटे कैंचीनुमा ढाँचे निकाले और उन पर एक चौड़ा तख़्ता रख दिया। यह तख्ता भी मेज़ ही के समान साफ़-सुथरा था। इस तरह मेज़ की बग़ल में एक कैम्प-टेबल लग गया और जैतूनी रंग की ल्यूबा की थिरकती आकृति उस पर तुरन्त तश्तरियाँ सजा गयीं। मेरे मुड़कर देखते-देखते ही उस टेबल पर पूरा एक दल आ जुटा : मरूस्या, वेरा, ग्रीशा, कात्या और पेत्या-परिवार के सारे ''छुटके-मुटके''। उनमें से प्रत्येक कोई न कोई फ़र्नीचर लेकर आया। दो जुड़वाँ, कात्या और पेत्या, दूसरे कमरे से आये होंगे। वे गम्भीर मुद्रा में किंचित चिन्तित से, अपने बैठने की जगहों से सटाकर छोटे-छोटे स्टूल पकड़े पूरी तरह से लैस होकर आये थे। वे अपने-अपने स्टूलों को वैसे ही पकड़े, उस काम चलाऊ टेबल में अपने लिये जगह बनाकर घुसे और फिर बैठ गये और बैठते ही गम्भीर प्रत्याशा लगाये ख़ामोश हो गये।

दूसरी तरफ़, चार वर्षीय वेरा असाधारण रूप से हँसमुख व्यक्ति थी। वह मरूस्या से बहुत मिलती-जुलती थी। वैसे ही लाल-लाल गाल, वैसी ही सक्रियता, अन्तर केवल यह था कि मरूस्या के बाल लम्बे थे और वेरा के छोटे-छोटे। मेज़ पर बैठते ही उसने अपनी एल्युमिनियम का चम्मच पकड़ा और मुँह चिढ़ाना शुरू कर दिया। वह किसी व्यक्ति विशेष की तरफ़ नहीं, बल्कि धूप से उजली खिड़की की ओर देखती हुई मुँह बना रही थी और अपने चम्मच से मेज़ को ठकठका रही थी। वान्यूश्का ने आलमारी के पास से उसे देखा और उसकी चम्मच की तरफ़ देखते हुए क्रोध से भौं सिकोड़ी. .. तब वेरा ने उसे मुँह चिढ़ाना शुरू कर दिया, अपने गालों को तिरछे अन्दाज़ में भीतर को सिकोड़ते हुए उसने अपनी चम्मच से तश्तरी पर मारने के अन्दाज़ में हाथ ऊपर उठाया। उसके मुँह से एक अट्टहास फूटने ही को था कि बड़े वान्या ने चम्मच सहित उसके उठे हुए हाथ को पकड़ लिया। वेरा ने अपनी बड़ी-बड़ी प्यारी आँखें ऊपर उठायीं और कोमलता से निवेदन-सा करते हुए मुस्करायी। वान्या उसके हाथ को छोड़े बग़ैर नीचे झुका और उसके कान में कुछ फुसफुसाया और वेरा ने मेरी ओर को तिरछी नज़र से देखते हुए ध्यान से सुना। इसके बाद वह ज़ोर से गूँजती हुई ऐसी फुसफुसाहट करती हुई बोली जैसी केवल चार बरस के बच्चे ही कर सकते हैं : ''आहा... आहा... मैं नहीं करूँगी... नहीं करूँगी।''

मैं इस खेल को देखकर मुग्ध-विस्मित हो गया और सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षण को देखने से चूक गया : हमारी मेज़ तथा ''छुटके-मुटकों'' की कैम्प-टेबल दोनों ही में आलू से भरे लोहे के बर्तन आ गये, हमारे लिये बड़े और ''छुटके-मुटकों'' के लिये छोटे। अन्ना सेम्योनोव्ना रसोई में काम करने के अपने श्यामल पेशबन्द को बदलकर एक साफ़ गुलाबी पेशबन्द पहन चुकी थीं। ओक्साना और सेम्योन तली हुई खुम्बियों से भरे दो गहरे बर्तन लाये और उन्हें मेज़ पर रख दिया। परिवार के सदस्यों ने

शान्तिपूर्वक अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। मुझे आश्चर्य में डालते हुए वान्या हमारी मेज़ पर नहीं, बल्कि कैम्प-टेबल पर मरूस्या की बग़ल में बैठ गया। प्रसन्नता के साथ भौंहें सिकोड़ते हुए उसने बर्तन का ढक्कन उठाया-एक घनी, सुगन्धित भाप बाहर निकली। मरूस्या ने अपने गालों को फुलाकर बर्तन में झाँका, वह उसमें से निकलती हुई गर्म भाप से प्रफुल्लित हो रही थी। भोजन की टेबल पर बैठे अन्य छुटके-मुटके बच्चों पर नज़र फिराते हुए उसने सहसा ताली बजाते हुए ज़ोर-ज़ोर से गाना शुरू कर दिया :

"कुरता पहने आलू आये। आलू आये कुरता पहने!"

हमारी मेज़ के लोगों ने सहानुभूति के साथ छोटों की तरफ़ देखा, लेकिन उन्होंने हम पर कोई ध्यान नहीं दिया। वेरा ने भी गाना और ताली बजाना शुरू कर दिया, उसने अभी आलुओं पर नज़र भी नहीं डाली थी। कात्या और पेत्या सांसारिक माया-जाल से अलग हमेशा की तरह गम्भीर ही बने रहे और उन्होंने लोहे के बर्तन को देखा तक नहीं।

"वेरा मध्यम-स्वरीय गायिका होगी," स्तेपान देनीसोविच ने कहा, "सुनिये वह कैसे अनुकरण करती है? थोड़ा अधिक तीखा स्वर है, बस थोड़ा ही।"

बड़ा वान्या वेरा की तश्तरी में आलू रखने लगा था और मज़ाक ही मज़ाक में उसे डरा रहा था।

"वेरा तू इतना तीखा क्यों गाती है?"

वेरा ने गाना बन्द कर दिया और आलू की तश्तरी तथा अपने भाई के प्रश्न के बीच उलझ गयी।

"क्या?"

तेरी आवाज़ इतनी तीखी क्यों है?"

"तीखी?" वेरा ने फिर पूछा, तब तक उसका सारा ध्यान आलुओं पर केन्द्रित हो चुका था और वह अपने भाई के बारे में भूल गयी।

आन्ना सेम्योनोव्ना ने मेरी, अपने पति की तथा स्वयं अपनी तश्तरी में भोजन परोसा और फिर शेष काम की ज़िम्मेदारी ओक्साना को सौंप दी। पर तभी बड़ा वान्या घबराहट भरी चीख़ मारता हुआ उठ खड़ा हुआ :

"हम हेरिंग को तो भूल ही गये हैं!"

सभी ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। केवल स्तेपान देनीसोविच ने उलाहना सा देते हुए वान्या की तरफ़ देखा :

"तुम बड़े महान हो! तुम तो हमें हेरिंग से वंचित ही कर देते।"

वान्या भागकर कुटिया से बाहर गया और दोनों हाथों में प्याज मिली, नमकीन और कटी हुई हेरिंग से भरे दो गहरे बर्तन लेकर हाँफता-हाँफता भीतर आया।

"हेरिंग तैयार करने का विचार उसका अपना था," स्तेपान देनीसोविच ने कहा। "वाह रे, अजीब आदमी, उसे लगभग भूल ही गया!"

वान्या के भुलक्कड़पन पर मैं भी मुस्कराया और इस सुखद संगत में मुझे हर समय मुस्कराते रहने की इच्छा हो रही थी। मैं पहले भी कई बार लोगों के घरों में मिलने जाता रहा, लेकिन मुझे याद नहीं है कि मैं पहले भी कभी ऐसे एकताबद्ध परिवार में गया होऊँ। ऐसे मौक़ों पर सामान्यतः बच्चों का किसी पारिवारिक कोने में पहुँचा दिया जाता, एक साथ दावत उड़ाना वयस्कों के लिये रिज़र्व होता। इस सांध्य-भोजन के कई विवरणों ने भी मेरा ध्यान आकृष्ट किया। मसलन, मुझे बच्चों का वह तरीक़ा बहुत पसन्द आया, जिससे वे एक अतिथि के रूप में मुझ पर अपनी दिलचस्पी तथा भोजन पर अपनी दिलचस्पी के बीच मेल बैठाते थे और अपने कर्तव्यों का याद रखने के साथ ही अपने मतलब की नन्ही-नन्ही बातों को भूलते भी नहीं थे। टेबल के मामलों को व्यस्तता से निबटाते हुए उनकी आँखें प्रसन्नता से चमकती थीं, लेकिन बीच के अन्तरालों पर वे ''बाहरी'' विषयों को याद करने के लिये समय निकाल लेते थे। यह मेरे लिये एक रहस्य था, क्योंकि मैंने उनके वार्तालाप के कुछ अंश सुने थे : ''कहाँ? नदी पर?'' या ''वोलोद्या कोरी गप्प सुना रहा था, उसने देखा नहीं...''

यह वोलोद्या, निश्चय ही, चूब परिवार का वोलोद्या था। वोलोद्या को पड़ोसी बच्चों को कोरी गप्पें सुनाने की आदत थी।

मैंने इन सभी बातों में दिलचस्पी ली और उनसे मुझे प्रसन्नता हुई, लेकिन साथ ही मुझे खूब खाने की असली लोभियों जैसी क्षुधातुरता का अनुभव भी हुआ। मुझे, अचानक, आलू और खुम्बियाँ खाने की चाह होने लगी। और यहाँ नमक लगी हेरिंग भी थी वह किसी विशेष तंग तश्तरी में पंक्तिबद्ध ढंग से नहीं रखी गयी थी और प्याज़ के छल्ले उसका सम्मान-सा करते हुए उसे घेरे हुए नहीं थे, उसमें कोई भी बनावट कहीं नहीं थी। यहाँ हेरिंग, गहरे अरुण-श्वेत पात्र में, अस्त-व्यस्त सी सुस्वादु प्रचुरता में किनारे तक लबालब भरी थी, और प्याज़ के सफ़ेद-सफ़ेद टुकड़े, सूरजमुखी के तेल में डूबे, उसके साथ मैत्रीमय एकता में घुलेमिले हुए थे।

भोजन के समय बातचीत नये और पुराने जीवन पर थी।

''मेरी पत्नी और मैं पुराने दिनों में भी किसी चीज़ से नहीं डरते थे,'' स्तेपान देनीसोविच ने कहा, ''लेकिन वस्तुतः डरने के लिये बहुत कुछ था : पहले, ग़रीबी थी, दूसरे, पुलिसमैन था, तीसरे, ज़िन्दगी उबाऊ थी। मुझे उबाऊ ज़िन्दगी से अधिक घृणा और किसी चीज़ से नहीं है।''

''क्या आपको आजकल ज़्यादा आनन्द आता है?'' मैंने पूछा।

''यह इस बात पर निर्भर है कि आनन्द से आपका क्या अर्थ है,'' स्तेपान देनीसोविच ने मुस्कराते हुए आलू के बर्तन की तरफ़ देखा। ''उधर ओक्साना है, वह 'रबफ़ाक' में पढ़ना अभी शुरू कर ही रही है। इस आप जो चाहें समझें, पर आठ साल में वह निर्माण इंजीनियर हो जायेगी। मेरे पिता ने साठ साल में जितने स्वप्न देखे, उन्हें आप गिनें तो लगभग 20 हज़ार होंगे। तो प्रश्न यह है कि उन्होंने क्या

सपने देखे? मैं समझता हूँ कि हर प्रकार की निरर्थक बातों के! लेकिन मैं यक़ीनन कहता हूँ कि उन्होंने यह सपना कभी नहीं देखा होगा कि उनकी लड़की निर्माण इंजीनियर बनेगी।

''लेकिन तुमने इसका सपना देखा था?'' आन्ना सेम्योनोव्ना ने उसकी तरफ़ पैनी नज़र से देखते हुए पूछा।

''तो तुम्हें विश्वास नहीं? मैंने कल रात ही यह सपना देखा कि ओक्साना घर आयी है और मुझे समूर का एक कोट उपहार में दे रही है, लेकिन सपने में मैं यह नहीं समझ पाया कि समूर किसका था। और मैंने उससे कहा : 'मुझे इस तरह के समूर के कोट की क्या ज़रूरत है, ढलाईशाला में इस तरह के कोट से तो मुझे बहुत परेशानी होगी।' 'यह ढलाईशाला के लिये नहीं है', उसने कहा, 'आओ हम निर्माण-कार्य का चलें, मैं सेवेरनाया ज़ेमल्या में एक रेडियो स्टेशन का निर्माण कर रही हूँ' और वह ख़ुद भी बोयारों के जैसा एक बड़ा-सा कोट पहने हुए हैं।''

ओक्साना, जो मेरी बग़ल में बैठी थी, की सुस्पष्ट और बुद्धिमत्तापूर्ण भौंहें संकुचित हुईं और वह शर्मा गयी, अपने पिता की बातों से नहीं, बल्कि सब लोगों का ध्यान अपनी ओर को आकृष्ट होता देखने की वजह से-सेवेरनाया ज़ेमल्या में एक रेडियो स्टेशन के भावी निर्माता को देखना सभी को अच्छा लग रहा था।

''ओक्साना!'' वास्या ने कहा, ''मैं पिताजी के साथ तुमसे मिलने आऊँगा। तुम मेरे लिये फ़ेल्ट के जूते ले देना।''

मेज़ पर बैठे सब लोग हँसे और इसी तरह के कई अन्य व्यावहारिक प्रस्ताव पेश किये गये।

''डैडी, किसी संयोग से आपने मेरे बारे में तो कोई सपना नहीं देखा?'' बड़े वान्या ने अपनी मुस्कान छुपाये बिना पूछा, ''मेरे लिये उसका बहुत महत्व है!''

''हाँ, देखा,'' स्तेपान देनीसोविच ने हामी भरते हुए अपनी दाढ़ी को हास्यजनक विश्वास के साथ तश्तरी के ऊपर हिलाते हुए कहा। ''बेशक मैंने देखा, लेकिन वह अच्छा सपना नहीं था। मैंने देखा कि तुम अपने चाचा से मिलने गये थे और तभी कुछ लोग दौड़ते-चिल्लाते मेरे पास आये, 'जल्दी-जल्दी, तुम्हारे वान्या के पेट में दर्द है, उसने अपने चाचा का एक सेब खा लिया। सेब खाकर वह विषाक्त हो गया है!'''

हर कोई खिलखिलाकर हँसने लगा और वित्या तो मेज़ के पार से चिल्लाया, ''और स्टर्जियन से भी, वहीं की स्टर्जियन से ऐसा हुआ!''

अब हर कोई उल्लासपूर्ण, प्रसन्न दृष्टि से वान्या की तरफ़ देखने लगा था और वह बिना किसी संकोच के अपने पिता की तरफ़ देखता हुआ हँस रहा था। फिर उसने ज़ोर से और प्रसन्नता से पूछा : ''तो क्या मैं मर गया था... विषाक्तता से?''

''नहीं,'' वेत्किन ने उत्तर दिया, ''तुम मरे नहीं, लोग दौड़कर एम्बुलेंस ले आये और तुम्हारे प्राण बचा लिये गए''।

आलू खा लिये जाने के बाद स्तेपान देनीसोविच ख़ुद एक बड़ा, चमचमाता हुआ

समोवार लेकर आया और हमने चाय पीनी शुरू कर दी। चाय सादी और असली थी। बेंत की बनी प्लेटों में शूकर-वसा युक्त दो उक्राइनी केक लाये गये, प्रत्येक केक का व्यास आधे मीटर से कम नहीं था। मैंने ऐसे केक पहले भी देखे थे और उनकी भव्यता से हमेशा ही चकित हो जाता था।

कोर्ज़-ज़-सालोम नामक इस उक्राइनी केक के भीतरी भाग में शूकर-वसा के छोटे-छोटे शंकु बिखरे होते हैं, उनके गिर्द पेस्ट्री बहुत स्वादिष्ट, आर्द्र और किंचित नमकीन लगती है। केक के ऐसे भाग का मुँह में आना और उसे खाना सुस्वादु व्यंजनों के भोग का मूल सार है, ऊपरी भाग एक मैदान-सा है, कुछ हिस्सों में सफ़ेद और कहीं गुलाबी। इस मैदान में छोटे-छोटे मृदु टीलों के उतार-चढ़ाव होते हैं और ये टीले पतली शुष्क पर्पटी से बने होते हैं। किसी कारणवश कोर्ज़-ज़-सालोम को चाकू से नहीं काटा जा सकता है, बल्कि तोड़ना पड़ता है, और इसके गर्म पपड़ीदार टुकड़े भी कुछ ऐसी चीज़ होती है, जिसे कोई भी और कहीं भी नहीं भूलता।

वेत्किन परिवार ने उल्लासपूर्ण चीत्कारों के साथ कोर्ज़ का स्वागत किया। ‘‘छुटके-मुटकों’’ की टेबल में असली उल्लास उफ़न पड़ा, यहाँ तक कि जुड़वाँ बच्चे कात्या और पेत्या ने भी अपनी गम्भीर शान्ति को त्यागकर लजीली, अनिश्चित सी हँसी की कोमल धारा बहा दी।

हमारी मेज़ पर सेम्योन और वित्या, जिन्हें, स्पष्टतः, कोर्ज़ के बारे में पहले नहीं बताया गया था, आश्चर्य से आँखें फाड़े देखने लगे और फिर एक स्वर से चिल्लाये, ‘‘ओ-हो! को-र्ज़!’’ स्तेपान देनीसोविच भी प्रसन्नता से हाथ मलने लगा।

रात का यह भोजन वेत्किन परिवार के साथ मेरी घनिष्ठ पहचान का समारम्भ था। मुझे वेत्किन परिवार से ढेर सारी बातें सीखनी थीं और सबसे बड़ी बात यह थी कि उनसे सोचने-विचारने के लिये ढेर सारी सामग्री प्राप्त होती थी।

स्तेपानी देनीसोविच का अपने परिवार के लालन-पालन का तरीक़ा कदाचित तकनीकी पूर्णता की दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है, पर यह सोवियत शैक्षिक चिन्तन के सर्वाधिक संवेदनशील तन्तुओं को स्पर्श करता है, इसमें एक अच्छी, स्वस्थ, सामूहिक भावना है तथा विपुल परिमाण में अच्छा रचनात्मक आशावाद है और छोटी-छोटी बातों तथा विवरणों का वह संवेदनशील विमर्श है, जिसके बिना वास्तविक शैक्षिक कार्य घोर असम्भव होता है। विवरणों का ऐसा विमर्श आसान नहीं है। इसके लिये ध्यान की ही आवश्यकता नहीं होती, बल्कि अनवरत व धैर्यपूर्ण चिन्तन की ज़रूरत भी होती है। छोटी-छोटी बातें मुश्किल से ही सुनने में आ पाती हैं, ऐसी छोटी-छोटी बातें बहुत होती हैं और उनकी आवाज़ें आपस में मिलकर ध्वनि के एक उलझन भरे शोर में तब्दील हो जाती हैं। और इस सारी उलझन को सुलझाना ही नहीं होता, बल्कि उन महत्वपूर्ण भावी घटनाओं की योजना भी बनानी पड़ती है, जो परिवार की सीमाओं से बहुत दूर तक जाती है।

हाँ स्तेपान देनीसोविच ने अपने परिवार को घर में निर्मित उपकरणों की मदद से एक सामूहिक निकाय में एकजुट किया, लेकिन उसने ऐसा अविचल भाव से तथा धैर्य से किया। सच है कि परिवार में खामियाँ थीं और उसने ग़लतियाँ कीं। कदाचित उसके बच्चे ज़रूरत से ज़्यादा अनुशासित और शान्त थे-यहाँ तक कि ''छुटके-मुटकों'' में भी एक प्रकार की संयतता थी। हमारे प्रांगण के बाल-समाज में वेत्किन-परिवार के बच्चे हमेशा शान्ति की वकालत करते थे। वे ख़ुशमिज़ाज, ज़िन्दादिल, सक्रिय और सूझबूझवाले थे, लेकिन वे झगड़ो-टण्टों से दृढ़तापूर्वक बचते थे।

एक दिन वालीबाल के मैदान में मज़बूत काठी के चौदहवर्षीय गुस्सैल वोलोद्या चूब ने बॉल फेंकने की अपनी पारी को उचित समय पर छोड़ने से इंकार कर दिया। उसकी टीम ने उसका कोई विरोध नहीं किया, क्योंकि वोलोद्या बॉल फेंकन में सचमुच अच्छा था। उसकी विरोधी टीम का कप्तान सेम्योन वेत्किन था। यह रेफ़री के बग़ैर खेला जाने वाला अव्यवस्थित खेल था। सेम्योन ने बॉल को अपने हाथ में पकड़े रखा।

''यह ठीक नहीं है,'' उसने कहा।

''तुमसे मतलब,'' वोलोद्या चिल्लाया। ''अपनी टीम में भी लगातार बॉल फेंकनेवाले किसी खिलाड़ी को रख लो।

इस स्थिति में कोई भी दूसरा लड़का निश्चय ही तू-तू, मैं-मैं करता या खेल छोड़कर चला जाता, क्योंकि न्याय के प्रश्नों को किशोर लड़के जिस बारीकी से जाँचते हैं वैसे न्याय की कोई देवी भी नहीं कर सकती है। लेकिन सेम्योन सिर्फ़ मुस्कराया और उसने फिर से खेल चालू कर दिया। पर पहले उसने कहा :

''तो ठीक है! यह उसकी कमज़ोरी है। उन्हें किसी न किसी तरह जीतना है।''

पर इसके बावजूद वोलोद्या की टीम हार गयी। इस पर गुस्से से भरे और चिढ़े हुए वोलोद्या ने सेम्योन पर स्पष्टीकरण करने के लिये माँगों की बौछार कर दी :

''अपने शब्दों को वापस लो, 'हम कमज़ोर हैं' से तुम्हारा क्या मतलब है!''

वोलोद्या के हाथ उसकी जेब में थे और एक कन्धा आगे बढ़ा हुआ था-यह आक्रमण का निश्चित चिह्न था। सेम्योन, जो अब भी मुस्करा रहा था, ने वोलोद्या को पूर्णतः सन्तुष्ट कर दिया :

''मैं अपने शब्दों को वापस लेता हूँ। तुम्हारी टीम बहुत मज़बूत है। इतनी कि!''

उसने अपने अर्थ को स्पष्ट करने के लिये अपने हाथ को भी आकाश की ओर उठा दिया। अपनी नैतिक विजय पर गर्व करते हुए वोलोद्या बोला : ''ये शब्द ठीक हैं! आओ, एक गेम और खेलें, तब तुम देखोगे।''

सेम्योन सहमत हो गया और इस बार खेल हार गया। लेकिन खेल के मैदान से वह उसी शान्तिपूर्ण मुस्कान के साथ गया। जब वे विदा हुए तभी उसने वोलोद्या से कहा : ''लेकिन मैं यह सलाह नहीं दूँगा कि तुम हमेशा ही ऐसा करो। हमारी बात भिन्न है क्योंकि यह दोस्ताना मैच था। परन्तु गम्भीर खेलों में रेफ़री तुम्हें मैदान से बाहर कर देगा।''

लेकिन अब वोलोद्या अपनी जीत पर ख़ुश था और उसने सेम्योन की बात का बुरा नहीं माना :

''बाहर करेगा तो करने दो, जो भी हो इस बार तो हमीं जीते।''

बहुत-से अन्य अवसरों की तरह इस मौके पर शैक्षिक सिद्धान्तों का एक ख़ासा उलझा हुआ अन्तर्द्वन्द्व उभरकर ऊपर आया। अंशतः मैं वोलोद्या की क्रोधभरी ''अन्यायपूर्ण'' जल्दबाी से तथा विजय की उसकी चाह से कुछ ख़ुश भी था, जब कि व्यंग्य से मिश्रित सेम्योन की विनीतता सन्देहास्पद लग सकती थी। मैंने यह बात सीधे-सीधे स्तेपान देनीसोविच से कही और उसके मुँह से एक सुनिश्चित, सही उत्तर सुनकर चकित रह गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि उसे इस समस्या में भी केवल दिलचस्पी ही नहीं थी बल्कि उसने इस पर भली-भाँति विचार भी किया है।

''मैं सोचता हूँ कि यह सही है,'' स्तेपान देनीसोविच ने कहा। ''मेरा सेम्योन एक चतुर लड़का है-उसने सही काम किया है।''

''यह सही काम कैसे हा सकता है? वोलोद्या धृष्टता कर रहा था और जो वह चाहता था वही हुआ। एक संघर्ष इस तरह समाप्त नहीं होना चाहिये।''

''उसे कुछ भी नहीं मिला। एक-आध बॉल फेंक देने का कोई अर्थ नहीं। वस्तुतः वोलोद्या ने कमज़ोरी दिखलायी और सेम्योन ने शक्ति और वह भी बहुत प्रबल शक्ति। क्या आप ऐसा नहीं समझते? यह इस पर निर्भर है कि झगड़ा किस बात पर है। यहाँ एक नहीं, दो झगड़े हैं। एक बॉल के लिये है और दूसरा, अधिक महत्वपूर्ण,-लोगों के बीच समझौते का है। क्यों, ख़ुद आप ही ने बतलाया-वे लड़े नहीं, उन्होंने झगड़ा नहीं किया, बलिक एक अतिरिक्त गेम भी खेला। यह बहुत अच्छी बात है।''

''लेकिन मुझे इस पर संशय है, स्तेपान देनीसोविच, ऐसा समझौता, आप समझिये...''

''यह निर्भर करता है कि कब,'' वेत्किन ने विचारपूर्वक कहा। ''मैं समझता हूँ कि अब समय आ गया है जब हमें विभिन्न चीजों के बारे में झगड़ने-लड़ने की आदत छोड़ देनी चाहिये। लोग, पहले, जानवरों की तरह रहते थे। किसी आदमी की गर्दन पकड़ लीजिये तो आप ठीक हैं, लेकिन फिर छोड़िये नहीं, वरना वह आपकी गर्दन में दांत गड़ा देगा। यह हमारे लिये उपयुक्त नहीं है। हमें एक-दूसरे का साथी होना चाहिये। आख़िर, अगर एक कामरेड ज़ोर-जबरदस्ती करता है, तो उसे चेतावनी दी जा सकती है, इसके लिये हमारे पास व्यवस्था है। यहाँ रेफ्री नहीं था-बुरी व्यवस्था है, लेकिन इससे क्या? यह कुछ ऐसी बात नहीं है कि हम एक-दूसरे की गर्दन दबोचने लगें।''

''और अगर सेम्योन एक असली दुश्मन से टकरा पड़े तो?''

''तो यह दूसरी बात है। अगर ऐसा होता है और वह असली दुश्मन है, तो सेम्योन के बारे में चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं। अगर आवश्यकता होगी तो कोई फिक्र नहीं, वह उसकी गर्दन दबोच लेगा और उसे जाने नहीं देगा!''

मैंने स्तेपान देनीसोविच की बातों पर विचार किया, सेम्योन के चेहरे की याद की और मैं यह बात स्पष्टतः समझ गया कि स्तेपान देनीसोविच सही था। सेम्योन असली दुश्मन को निश्चय ही नहीं छोड़ेगा।

तब से अब तक अनेक वर्ष बीत गये। मैंने वेत्किन परिवार को रहते-सहते, विकसित और समृद्धतर होते देखा। उनके सुदृढ़ आपसी रिश्ते कभी खत्म नहीं हुए, और उनके चेहरों में परेशानी का भाव तथा हर समय आवश्यकताओं के रहते हुए भी अपर्याप्तता का भाव कभी भी नहीं दिखायी पड़ा।

लेकिन ज़रूरतें भी धीरे-धीरे घट गयी। बच्चे बड़े हो गये और अपने पिता की मदद करने लगे। शुरू में वे अपने पारिवारिक कोष में अपने वजीफों का योगदान करते रहे और बाद में अपने वेतन भी लाकर देने लगे। ओक्साना सचमुच निर्माण इंजीनियर बन गयी और वेत्किन परिवार के अन्य सदस्य भी अच्छे सोवियत नागरिक बने।

फ़ैक्टरी में हम सभी वेत्किन परिवार को पसन्द करते थे तथा हमें उन पर गर्व था। स्तेपान देनीसोविच की सामाजिक प्रकृति बहुत ही गहन थी और वह हर काम तथा हर समस्या में किसी न किसी रूप में भाग लेता था और सभी कामों में अपनी चिन्तनशीलता, शान्ति तथा मुस्कानभरे आत्मविश्वास का योगदान करता था। 1930 में हमारे पार्टी संगठन ने असली समारोह के साथ उसे पार्टी की पांतों में सम्मिलित किया।

वेत्किन परिवार के लालन-पालन की शैली को मैंने बहुत ध्यान से देखा तथा उसका अध्ययन किया। अन्य लोगों ने भी उनसे सीखा। वेत्किन परिवार के उल्लेखनीय प्रभाव से ही चूब का परिवार भी सुधर गया। वैसे वह स्वयं भी बुरा परिवार नहीं था। चूब के परिवार में अधिक अव्यवस्था थी, अधिक अनपेक्षित घटनाएँ होती थीं, अधिक स्वेच्छारिता चलती थी और काफ़ी कुछ अधूरा ही रह जाता था। लेकिन उनमें ढेर सारा उत्तम कोटि का सोवियत आवेग था और एक प्रकार की कलात्मक रचनात्मकता थी। चूब ने ख़ुद अपने परिवार में शायद ही कभी निरंकुश पिता की तरह काम किया। वह एक अच्छा सहृदयतापूर्ण नागरिक प्रकृति का व्यक्ति था, इसी कारण से उसका परिवार एक भरे-पूरे स्वस्थ सामूहिक निकाय की तरह विकसित हुआ।

चूब दम्पति वेत्किन परिवार की प्रभावशाली सांख्यिक श्रेष्ठता से किंचित ईर्ष्या करते थे। जब चूब परिवार में सातवां बच्चा, एक लड़का, पैदा हुआ, तो चूब ख़ुद ख़ुशी से लगभग उछल ही पड़ा और उसने सबके लिये एक शानदार समारोह का आयोजन किया और उस समारोह में अपने परिवार तथा अतिथियों के सामने कुछ इस प्रकार का एक भाषण दिया :

‘‘सातवें बच्चे का होना एक ख़ास अवसर है। मैं ख़ुद भी अपने पिता का सातवां बच्चा था। और औरतों ने मुझसे कहा : सातवां बच्चा ख़ुशक़िस्मत होता है। यदि वह एक मुर्गी के अन्तिम अण्डे को अपनी कांख में रखे और चालीस दिन तथा चीस रातों तक इसी तरह दबाये रखे तो उस अण्डे से निश्चय ही एक दानव जन्म

लेगा, घरेलू कामों के लिये उपयुक्त एक छोटा-सा दानव। वह दानव तुम्हारी हर आज्ञा का पालन करेगा। बता नहीं सकता कि कितने अण्डे मैंने बर्बाद किये! पिताजी ने मेरी पिटाई भी की, पर वह दानव कभी नहीं निकला : आप शाम तक उसे कांख में दबाये रख सकते थे, पर शाम को वह या तो दबकर फूट जाता या गिर जातां यह एक कठिन काम है-अण्डे से अपना ख़ुद का दानव पैदा करनां''

''लोग कितने हजार वर्षों से इन दानवों की खातिर परेशानियाँ उठाते रहे हैं,'' एकाउण्टेण्ट पिजोव ने कहा। ''वे कहा करते थे कि हर किसी के साथ एक दानव संलग्न होता है, लेकिन सब बातों को देखते हुए जीवन के अधिशेष पर इसका बहुत ही कम प्रभाव था और इन दानवों की उत्पादकता सचमुच ही बेहद कम थी।''

स्तेपानी देनीसोविच अपनी दाढ़ी सहलाते हुए मुस्कराया :

''चूब, तुम्हारे घर पर कुछ नन्हे दानव इस समय भी संवर्धित हो रहे हैं। अगर तुम अपनी चारपायी के नीचे देखो, तो शायद एक वहीं पर बैठा हो।''

''अरे नहीं,'' चूब ने हँसते हुए कहा, ''वहाँ कोई नहीं है। सोवियत शासन के अन्तर्गत हमें उनकी ज़रूरत नहीं है। अच्छा, तो आप लोग पीजिये, यह जाम है वेत्किन परिवार के बराबर पहुँचने और उसे पीछे छोड़ने के लिये।''

हमने ख़ुशी-ख़ुशी अपने प्याले टकराये, क्योंकि यह ऐसा बुरा जाम नहीं था।

चौथा अध्याय

धन! मनुष्य के सारे आविष्कारों में यह एक ऐसा आविष्कार है, जो शैतान के निकटतम पहुँचा है। नीचता और धोखाधड़ी की हरकतों के लिये इससे अधिक व्यापक क्षेत्र कोई नहीं है और पाखण्ड के संवर्धन के लिये इससे अधिक अनुकूल ज़मीन और कोई कहीं नहीं मिलती।

ऐसा प्रतीत होगा कि सोवियत जीवन में पाखण्ड के लिये ऐसा कोई स्थान नहीं होगा। पर इसके बावजूद इसके रोगाणु इधर-उधर पनप ही जाते हैं, और हमें उनके बारे में भूलने का ठीक वैसे ही कोई अधिकार नहीं, जैसे कि इन्फ्लुएंजा, मलेरिया, टाइफस तथा अन्य बीमारियों के रोगाणुओं के बारे में हमें कतई भूलना नहीं चाहिये।

पाखण्ड का फ़ार्मूला क्या है? अहंवाद, मानवद्वेष, आदर्शवादी मूर्खता की नीरस पृष्ठभूमि और बनावटी दीनता के गर्हित सौन्दर्यबोध का कुल जोड़। इन तत्वों में से एक भी तत्व सोवियत जीवन में टिक नहीं सकता। जहाँ परमेश्वर और शैतान मनुष्य के आन्तरिक मामलों में दखलन्दाज़ी करते हैं तथा नेतृत्व के अधिकार का दावा करते हैं, वहाँ की बात फ़र्क है। पाखण्डी के पास एक जेब धन के लिये होती है और दूसरी प्रार्थना पुस्तक के लिये-पाखण्डी व्यक्ति परमेश्वर और शैतान दोनों की सेवा करता है और दोनों ही को बेवकूफ भी बनाता है।

पुरानी दुनिया में जो आदमी धन-संचय करता था, वह न्यूनाधिक परिमाण में पाखण्डी हुए बिना नहीं रह पाता था और यह ज़रूरी नहीं था किहर समय 'तारतुफ़'* की भूमिका अदा की जाये। अन्त में पाखण्ड के लिये भी शालीन रूप खोज लिये गये, जो आदिम भावभंगिमा तथा उपहासास्पद सरलता से मुक्त थे। सर्वाधिक घातक क़िस्म के शोषकों ने यह सीख लिया कि श्रमिकों से कैसे हाथ मिलाये जाते हैं, सर्वहारा के साथ विभिन्न मामलों पर बातचीत कैसे की जाती है, कन्धे कैसे थपथपाये जाते हैं, हास-परिहास कैसे किया जाता है और संरक्षण तथा परोपकारिता के साथ समुचित शालीनता और किंचित लज्जा का प्रदर्शन कैसे किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप एक अत्यन्त मनोरम और आकर्षक चित्र बन जाता था। उन्हें प्रभु की कीर्ति फैलाने की कोई जल्दी तो नहीं ही होती थी, साथ ही वे इस बात का बहाना भी बनाते थे कि उन्हें उससे कुछ लेना-देना नहीं है और सामान्यतः न पृथ्वी पर

---

*तारतुफ़-इसी शीर्षक से लिखे फ़्रासीसी नाटककार मॉलियर (1622-1663) के नाटक का एक पात्र। तारतुफ़ ढोंग, पाखण्ड तथा लोभ जैसे मानवीय दुर्गुणों को दर्शाने वाला एक पद बन गया है।-सं.

आभार मानने की ज़रूरत है न स्वर्ग में। वह एक शानदार ढंग से बनी चालाकी की नीति थी। कोई एक 'तारतुफ़' प्रभु को खुश करने के लिये अपने को बिछा देता था, उसकी चाटुकारी सक्रिय, अड़ियल और अबाध होती थी, लेकिन इसी वजह से इस प्रकार के 'तारतुफ़' में से दस मील की दूरी से ही शैतान की गन्ध आने लगती थी और शैतान अपने को छुपाने की कोशिश भी नहीं करता था तथा वहीं उसी जगह आराम से अड्डा जमाये, तम्बाकू पीता था और जनता के बीच आने के लिये अपनी बारी का इत्मीनान के साथ इन्तज़ार करता था।

वह पाखण्ड का अभद्रतम रूप था। आधुनिक काल के पश्चिमी पाखण्डी ने हर चीज़ ईर्ष्याजनक पूर्णता के साथ व्यवस्थित कर ली है-परमेश्वर नहीं, सन्त नहीं और कम से कम यह कि उसमें से शैतान की गन्ध नहीं आती है, वस्तुतः उसमें से सिवाय इत्र के और कोई गन्ध आती ही नहीं।

लेकिन यह सब शुद्धता सौन्दर्यात्मक तकनीक मात्र है और इसके सिवा और कुछ नहीं है। जैसे ही भीड़-भाड़ खत्म होती है व परिवार के अन्तरंग अंचल में माताजी और पिताजी ही रह जाते हैं तथा जैसे ही उनके सामने अपने बच्चों को शिक्षा देने की समस्या आती है वैसे ही हमारे दोनों दोस्त फ़ौरन रंगमंच पर आ धमकते हैं : साफ़-सुथरे, हज़ामत बने, सुशीलता से मुस्काते परमेश्वर और बदनाम तथा सड़े-गले दाँतोवाला, *धृष्टता से खीस निपोरता* शैतान। इनमें से पहला ''आदर्शों'' की आपूर्ति करता है और दूसरे के पास खनखनाते हुए रुपये-पैसों से भरी थैली होती है-और यह भी आदर्शों से कम सुखद जिन्स नहीं है।

ऐसा उस परिवार में होता था, जहाँ ''सामाजिक'' युक्तियों की कोई ज़रूरत नहीं थी, जहाँ सर्वशक्तिमान जैविकी वृत्तियों तथा अशान्ति का बोलबाला था, जहाँ उसकी जीवित अनिराकार्य सन्तानें खुले में डोलती थीं, यही वह जगह थी जहाँ उस अन्यायपूर्ण, रक्तपिपासु, निर्लज्ज व्यवस्था ने लगभग आतताइयों जैसी शिष्टाचारहीनता से अपने को उद्घाटित किया, जिसके घृणास्पद चेहरे को किसी भी सौन्दर्य के प्रसाधन से छिपाना असम्भव था। इस व्यवस्था के नैतिक अन्तर्विरोध, उसकी व्यावहारिक, कारोबारी निर्लज्जता बच्चे की मूल पवित्रता के लिये अपमानजनक जान पड़ती थी।

इसलिये यहीं, बुर्जुआ परिवार के अन्दर, शैतान को उसके धन तथा शैतानी चालबाज़ियों सहित किसी दूरस्थ कोने में भगाने के लगातार प्रयत्न किये जाते थे। यही कारण था कि बुर्जुआ परिवार सम्पत्ति के स्रोतों को गुप्त रखने का प्रयत्न करता था। वह बुर्जुआ परिवार ही था जिसने बचपन को धन से पृथक रखने के व्यर्थ प्रयत्न किये, यहीं पर ''श्रेष्ठ नैतिक चरित्र'' सहित शोषक के लालन-पालन के लिये निष्फल कोशिशें की गयीं। अपने आदर्शवादी परहितवाद की योजनाओं, काल्पनिक ''दयालुता'' और अनुपार्जनशीलता सहित वे प्रयत्न उसी परिष्कृत पाखण्ड की शिक्षा देने की कोशिशों के सिवा और कुछ नहीं थे।

निकोलाई निकोलायेविच बाबिच एक ख़ुशमिज़ाज व्यक्ति जान पड़ता था। वह अपनी जीवन्त व सुखी प्रकृति को दर्शाने के लिये अपने कारोबारी वार्तालाप में कुछ अजीब और अनावश्यक शब्दों का पुट छोड़ता जाता था, मसलन, "भला करो, भगवान!" या "ओ पवित्र माता!" जब मौक़ा मिलता तो वह कोई "मज़ोकिया" क़िस्सा सुनना पसन्द करता था और बहुत ज़ोर से तथा विस्तार के साथ सुनाता था। उसका चेहरा गोल था, लेकिन उस गोलाई में सद्प्रकृति और सुजनता की रेखायें नहीं थीं, उन रेखाओं में सुनम्यता बहुत कम थी और वे एक भावविहीन मुखौटे जैसी गतिहीन थीं। उसका माथा बड़ा और बाहर को उभरा हुआ था और उसमें बनी झुर्रियों की रेखाएँ बहुत सीधी थीं, जो कभी हिलतीं तो ऐसे हिलती थी मानो सैनिक आदेश पर ऐसा कर रही हों।

निकोलाई निकोलायेविच हमारे कारख़ाने में कार्यालय में प्रधान था।

हम एक ही बंगले में रहते थे। वह बंगला शहर के किनारे पर उस अवधि में बना था जब हमारे देश में बंगले बनाने का बहुत प्रचलन था। हमारे बंगले में चार फ़्लैट थे। वे सब हमारी फ़ैक्टरी के थे। अन्य फ़्लैटों में रहनेवाले थे, प्रमुख इंजीनियर निकीता कोंसतान्तीनोविच लिसेंको, प्रधान एकाउण्टेण्ट इवान प्रोकोफ़्येविच पिजोव-दोनों ही मेरे पुराने सहयोगी थे और उसी समय से मेरे साथ थे जब हमारा वेत्किन से परिचय हुआ था।

यह बंगला हमारे पारिवारिक मामलों का स्थल था और सभी की पारिवारिक बातें हम सबके लिये सुज्ञात थीं। यहीं मैंने पारिवारिक समूह के अन्दर धन की समस्या को अपने लिये सुस्पष्ट किया। इस समस्या के प्रति मेरे पड़ोसियों का रुख़ एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न था।

निकोलाई निकोलायेविच बाबिच के साथ अपने परिचय के प्रारम्भिक दिनों से ही मैं उसके परिवार की ठोस उदासी को देखकर हैरान रह गया था। उसके फ़्लैट की हर वस्तु मोटे, भारी-भरकम टाँगों पर टिकी थीं; कुर्सियों, मेज़ और चारपाइयों पर भी-गम्भीरता और सत्कारहीनता की मोटी परत चढ़ी थी। बल्कि जब किन्हीं क्षणों में मेज़बान मुस्कराता था तो ऐसा लगता था कि उसके फ़्लैट की दीवारें और फ़र्नीचर आदि सभी वस्तुएँ मकान मालिक पर पहले से भी ज़्यादा नाक-भौं सिकोड़ रही हैं। अतः निकोलाई निकोलायेविच की मुस्कान से उसके अतिथियों में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती थी, लेकिन इससे उसे कोई चिन्ता नहीं होती थी।

जैसे ही उसे अपने बेटे या बेटी को सम्बोधन करना होता, तो उसकी मुस्कान ऐसी असाधारण आकस्मिकता के साथ गायब हो जाती थी, मानो उसका कभी अस्तित्व ही नहीं था। अब मुस्कान के स्थान पर एक विचित्र भाव, आदतन परोपकार करनेवाले व्यक्ति का क्लान्त भाव, दिखायी देने लगता था। उसके बच्चे लगभग एक ही उम्र के थे, तेरह और पन्द्रह वर्ष के बीच के। उनके चेहरों में अपने पिता ही की जैसी गतिहीन भावहीनता दिखायी देने लगी थी।

मैं बाबिच परिवार में कभी-कभार ही जाता था, लेकिन जब कभी भी जाता, तो लगभग हमेशा ही निम्नांकित क़िस्म का वार्तालाप सुनता :

"डैडी, मुझे बीस कोपेक दे दीजिये।"

"किसलिये?"

"मुझे एक नोटबुक ख़रीदनी है।"

"कैसी नोटबुक?"

"अंकगणित की।"

"क्या, पहली वाली अभी से भर गयी?"

"अब उसमें सिर्फ़ एक पाठ की जगह बाक़ी है।"

मैं कल तुम्हारे लिये दो नोटबुकें ख़रीद दूँगा।"

या फिर निम्नांकित वार्तालाप :

"डैडी, नाद्या और मैं सिनेमा देखने जा रहे हैं।"

"अच्छी बात है।"

"लेकिन पैसों का क्या होगा?"

"टिकट कितने के होते हैं?"

"पचासी कोपेक का एक।"

"मेरा ख़्याल है अस्सी का होता है।"

"नहीं पचासी का।"

निकोलाई निकोलायेविच आलमारी के पास जाता है, अपनी जेब से कुछ चाबियाँ निकालता है, एक दराज़ खोलता है, कुछ चीज़ खोजकर निकालता है, दराज़ में ताला लगाता है और मेज़ पर ठीक एक रूबल और 70 कोपेक लाकर रख देता है।

उसका लड़का पैसे उठाता है, उन्हें अपनी मुट्ठी में पकड़ता है, "धन्यवाद" कहता है और चला जाता है। इस सारी कार्यवाही में लगभग तीन मिनट लगते हैं और इस दौरान लड़के का चेहरा लाल और अधिकाधिक लाल होता जाता है और कार्यवाही की समाप्ति तक उसके कान तक लाल होकर चमकने लगते हैं। मैंने ग़ौर किया कि लालिमा की गहराई वांछित धन के परिमाण के विलोम अनुपात में थी और अपनी गहनतम सीमा पर तब पहुँची, जब लड़के ने कहा :

"डैडी, मुझे दस कोपेक दे दीजिये।"

"ट्राम के लिये?"

"हाँ।"

आलमारी की दराज़ में अब फिर वही अनुष्ठान दोहराया गया और मेज़ पर पाँच-पाँच कोपेक के दो सिक्के रख दिये गये। लड़का झेंपता हुआ उन्हें उठाता है, "धन्यवाद" कहता है और चला जाता है। एक बार लड़के ने दस के बजाय 20 कोपेक माँगे और बात समझाते हुए कहा कि बाक़ी 10 कोपेक नाद्या के ट्राम के भाड़े के लिये हैं।

निकोलाई निकोलायेविच आलमारी तक गया, चाभी के लिये जेब में हाथ डाला,

पर सहसा रुक गया और लड़के की तरफ़ मुड़कर बोला :

''मुझे यह पसन्द नहीं है कि अपनी बहन की तरफ़ से तुम माँगो, उसके पास भी ज़बान है, नहीं है क्या?''

इस बार सारी कार्यवाही की समाप्ति तक तोल्या की झेंप अपनी अधिकतम सीमा पर पहुँच गयी।

'' वह अपना स्कूल का काम कर रही है।''

''नहीं, तोल्या इससे काम नहीं चलेगा। अगर उसे पैसों की ज़रूरत है, तो वह ख़ुद माँगे। अन्यथा तुम तो एक क़िस्म के ख़ज़ांची बन जाओगे। हमें तुम्हारे लिये बटुवा ख़रीदना होगा, ताकि तुम उसमें पैसे रख सको। इससे क़तई काम नहीं चलेगा। जब तुम ख़ुद कमाने लगोगे तब दूसरी बात होगी। यह रहे दस कोपेक, और नाद्या अपने लिये माँगने ख़ुद आ सकती है।''

पाँच मिनट बाद नाद्या दरवाज़े पर प्रकट हुई। उसके कान पहले से ही आग जैसे लाल हो गये थे, उसने अपनी अभियाचिका तुरन्त पेश नहीं की, उसने पहले किंचित मुस्कराने का असफल प्रयत्न किया। निकोलाई निकोलायेविच ने उलाहना-सा देते हुए उसकी तरफ़ देखा, तो उसकी मुस्कान तुरन्त ग़ायब हो गयी और उसकी उलझन और भी बढ़ गयी : नाद्या की पलकें तक लाल हो गयीं।।

''डैडी मुझे ट्राम के लिये कुछ पैसे दे दीजिये।''

निकोलाई निकोलायेविच ने कोई प्रश्न नहीं पूछा। मैंने सोचा था कि वह नाद्या को वे दस कोपेक दे देगा, जो पहले से ही उसकी जेब में थे। लेकिन नहीं, वह फिर आलमारी की तरफ़ बढ़ा, फिर अपनी चाभियाँ निकालीं और वही सारी कार्यवाही दोहरायी। नाद्या ने मेज़ से दस कोपेक उठाये, फुसफुसाते हुए ''धन्यवाद'' कहा और कमरे से बाहर चली गयी।

निकोलाई निकोलायेविच अपनी निस्तेज पवित्र निगाहों से तब तक उसे देखता रहा जब तक कि दरवाज़ा बन्द नहीं हो गया, तब वह फिर से चुस्त-दुरुस्त हो गया।

''तोल्या, लानत है इस लड़के पर! यह पहले ही कहीं कुछ बिगड़ गया है। उसके उन संगी-साथियों की सोहबत में यही हो सकता था। और पड़ोसी! आप जानते ही हैं, लिसेंको परिवार में वे कैसे रहते हैं? हे, प्रभु की पवित्र माता, आहोहो! उनके बच्चे कितने भ्रष्ट हैं, कृपा करो प्रभु! और पिजोव के मामले में तो आपको महज़ हाथ ही झटक देने होते हैं! अपने को बड़ा चतुर समझता है वह इवान प्रोकोफ़्येविच! शैतान उसकी खाल उधेड़े! मैं कहता हूँ, यहाँ बच्चों के सामने जो मिसालें हैं, उनके बीच उन्हें पालना असम्भव है, रक्षा करो, रक्षा करो! लेकिन मेरी बिटिया, वह तो शालीनता का अवतार है, आपने देखा? ज़िन्दगी की बाजी लगा के कहा जा सकता है, हाँ इतनी पवित्र जैसी कि हो सकती है! बेशक, वह बड़ी होगी, वह तो ख़ैर अपने क़ाबू के बाहर की बात है। लेकिन पवित्रता का भाव बचपन से ही कूट-कूटकर भर देना चाहिये। वरना, यहाँ आसपास का जो हाल है, उसका कौन जाने क्या हो-हर

गली में लड़के अपनी जेबों में पैसे खनकाते हैं-मैं नहीं जानता कि उनके माँ-बाप क्या सोचते हैं! शैतान की मार उन पर!"

प्रमुख इंजीनियर निकीता कोंस्तान्तीनोविच लिसेंको का चेहरा सद्प्रकृति का था। वह लम्बा और किंचित रूखी अस्थि का आदमी था, लेकिन उसकी रूपाकृति पर नेक स्वभाव की पक्की छाप-सी पड़ी थी। जो उसके चेहरे पर इस क़दर छायी रहती थी कि हमारी फ़ैक्टरी में, लगभग, महाविपत्ति की दशाओं में भी वह अपना सुस्थापित आसन नहीं छोड़ती थी और महज़ यह देखती रहती थी कि निकीता कोंस्तान्तीनोविच की आत्मा की अन्य शक्तियाँ किसी ख़तरनाक आग अथवा किसी अन्य आसन्न खतरे से कैसे निबट रही हैं।

निकीता कोंस्तान्तीनोविच की प्रणाली बाबिच से सर्वथा भिन्न प्रकार की थी। शुरू में मैंने सोचा था कि वह उसकी व्यक्तिगत सद्प्रकृति का फल होगी और उसमें उसके संकल्प की कोई सहभागिता नहीं थी तथा उसके लिये कोई सैद्धान्तिक रचनात्मक प्रयत्न नहीं किया गया था, लेकिन बाद में मैं अपनी ग़लती समझ गया। यह सच है कि उसमें सद्प्रकृति की कुछ भूमिका थी, परन्तु प्रसंगतः यह भूमिका उतनी सक्रिय नहीं थी जितनी कि निष्क्रिय-एक निश्चित प्रकार के ख़ामोश-अनुमोदन और शायद थोड़ी सी सुखानुभूति की।

लेकिन लिसेंको परिवार में लालन-पालन के मामले की मुख्य अधिकारी माँ थी। येव्दोकीया इवानोव्ना एक दृढ़ स्वभाव की पढ़ी-लिखी महिला थी। येव्दोकीया इवानोव्ना को हाथों में पुस्तक लिये बग़ैर शायद ही कभी किसी ने देखा हो। यद्यपि उसका सारा जीवन पढ़ने के लिये समर्पित था, तथापि वह किसी भी हालत में एक निष्फल आवेग नहीं था। दुर्भाग्यवश वह हमेशा ही गन्दी दाग़दार ज़िल्दों में बँधी, पीले-पीले पन्नोंवाली पुरानी किताबें ही पढ़ती थी। यदि उसने नयी किताबें पढ़ी होतीं तो वह अच्छी सोवियत महिला बन सकती थी। लेकिन अब वह महज़ एक ऐसी "चिन्तक महिला" थी, जिसका चिन्तन केवल मात्र "अच्छाई" की विभिन्न क़िस्मों से उत्पन्न आदर्शों के एक मिश्रण के कारण किंचित बेढंगा हो गया था।

हमारी जवानी के दिनों में पुजारी अच्छाई करने का आदेश देते, दार्शनिक उसके बारे में लिखा करते, व्लादीमिर सोलोव्योव ने अच्छाई को समर्पित एक मोटा ग्रन्थ* लिख डाला था। परन्तु इस विषय पर अत्यधिक ध्यान दिये जाने के बावजूद अच्छाई एक सामान्य दैनिक विषय नहीं बन सका, वास्तविकता यह थी कि यह असल में अच्छे काम और अच्छे स्वभाव के लिये एक बाधा ही जो बन गयी। अपने मुलायम पेखों को लेकर अच्छाई दुनिया में जहाँ भी मँडराती वहीं मुस्कराहटें ग़ायब हो जातीं, ऊर्जा साथ छोड़ देती, संघर्ष बन्द हो जाता, हर किसी को अपना अन्तर निबिड़ होता

* सोलोव्योव, व्ला. से. (1853-1900)-रूसी धार्मिक दार्शनिक, कवि, पत्रकार और आलोचक।-सं.

जान पड़ता और उनके चेहरों में एक कड़ुवा, ऊब भरा घाव छा जाता। उस दुनिया में बेतरतीबी का राज्य था।

यही बेतरतीबी लिसेंको के परिवार में भी थी। येव्दोकीया इवानोव्ना ने इसे नहीं देखा था, क्योंकि किसी अजीब ग़लतफहमी के कारण व्यवस्था या अव्यवस्था न तो अच्छाई की नाम-सूची में पायी जाती थी न बुराई की।

येव्दोकीया इवानोव्ना सदगुणों की औपचारिक सूची पर बहुत ध्यान देती थी और अन्य प्रश्नों में दिलचस्पी नहीं लेती थीं।

''मित्या झूठ बोलना अच्छी बात नहीं है! तुम्हें हमेशा सच बोलना चाहिये। जो आदमी झूठ बोलता है उसके लिये कोई चीज़ पवित्र नहीं होती। सत्य दुनिया में किसी भी वस्तु से अधिक मूल्यवान है। तुमने पिजोव परिवार के बच्चों से कह दिया कि हमारी चायदानी चाँदी की है, जबकि यह चाँदी की नहीं, बल्कि इसमें सिर्फ़ निकेल की कलई चढ़ी है।''

मित्या जो बड़े-बड़े लाल कानों, बग़ैर भौंहों और चित्तीदार चेहरे का लड़का था, अपनी तश्तरी में रखी चाय पर फूँके मारता है और अपनी माँ की दी हुई ताड़ना का उत्तर देने में कोई जल्दी नहीं करता है। जब वह अपनी तश्तरी खाली कर देता है तभी बोलता है : ''माँ तुम हमेशा बात को बढ़ाकर कहती हो। असल में मैंने उसे चाँदी का नहीं बताया, मैंने कहा उसका रंग चाँदी जैसा है। और पाव्लूशा पिजोव ने कहा कि चांदी के रंग की चायदानियाँ होती ही नहीं। तो मैंने कहा : तो वे किस रंग की हैं? वह बोला : महज़ निकेल की कलई का रंग है। वह कुछ नहीं जानता, निकेल की कलई का रंग! चायदानी में निकेल की कलई ज़रूर है, पर उसका रंग चाँदी का है।''

उसकी माँ मित्या की बात को क्लान्त भाव से सुनती है। चाँदी और निकेल की कलई के रंगों के चक्कर में उसे नैतिक समस्या का कोई चिह्न नहीं दिखायी देता। जो भी हो मित्या विचित्र लड़का है : आप यह नहीं बता सकते कि उसमें अच्छाई का सिद्धान्त कहाँ पर है और बुराई का कहाँ। कल ही तो उसने अपने पति से कहा था : ''आजकल के बच्चे किसी न किसी प्रकार अनैतिक ढंग से विकसित होते जान पड़ते हैं।''

फिर वह बच्चों पर ग़ौर करती है। सबसे बड़ा कोंस्तान्तीन दसवीं में पढ़ता है और दिखने में बड़ा शालीन लगता है। वह एक स्लेटी जैकेट और टाई पहनता है; साफ़-सुथरा, ख़ामोश और प्रतिष्ठित दिखायी देता है। कोंस्तान्तीन पारिवारिक वार्तालाप में कभी भी हिस्सा नहीं लेता, उसके अपने ही मामले तथा अपनी ही रायें हैं, पर वह उनके बारे में दूसरों को बताना ज़रूरी नहीं समझता।

मित्या बारह वर्ष का है। लिसेंको परिवार में वह सर्वाधिक सिद्धान्तहीन लगता है, कदाचित इसलिये कि वह बहुत बातूनी है और बातें करते वक़्त सचमुच ही अनैतिक स्वतंत्रता का प्रदर्शन करता है। कुछ समय पहले येव्दोकीया इवानोव्ना ने सोचा था कि वह अपने बेटे को सद्-कार्यों के लिये प्रेरित करेगी : अपने बीमार

मामा को यानी येव्दोकीया इवानोव्ना के भाई से मिलने जाने के लिये। लेकिन मित्या ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया : ''माँ, ज़रा सोचो, इसमें क्या तुक है? मामा जी पचास साल के हैं और उन्हें कैंसर है। ऐसी बीमारी में तो डाक्टर भी कुछ नहीं कर सकता है, और मैं डॉक्टर नहीं हूँ। वह तो हर हालत में मरेंगे, और इसमें दख़लन्दाजी की कोई ज़रूरत नहीं है।''

ल्येना अभी छोटी ही है अभी उसके स्कूल जाने में एक साल बाक़ी है। चेहरे में प्रचुरता से दिखायी देनेवाली अलस-उदासीनता के मामले में वह अपने पिता से मिलती-जुलती है। इससे उसकी माँ को यह उम्मीद हो गयी है कि भविष्य में ल्येना लड़कों के मुक़ाबले अच्छाई के ख़्याल की अधिक सक्रिय प्रतिनिधि बनेगी।

ल्येना प्याला हटाकर उठती है और कमरे में टहलती है। उसकी माँ स्नेहपूर्ण निगाहों से उसे देखती है और फिर अपनी पुस्तक में लीन हो जाती है।

लिसेंको का कमरा धूलभरे फ़र्नीचर से भरा है और कमरे में पुराने अख़बार, पुस्तकें, मुरझाये हुए फूल, गर्दभरी, टूटी-फूटी बेकार की चीज़ें-बड़े जग और छोटे जग, संगमरमर और मिट्टी के कुत्ते, बन्दर, गड़रिये, राखदानियाँ और तश्तरियाँ-बिखरी पड़ी हैं।

ल्येना किनारे पर लगी मेज़नुमा आलमारी के पास रुकती है, अपने पंजों पर खड़े होकर उसकी खुली दराज़ में झाँकती है।

''रुपये-पैसे कहाँ गये?'' वह चहकती है और उल्लसित होती हुई तथा प्रश्नसूचक अपनी माँ की तरफ़ मुड़ती है।

मित्या कुर्सी को ख़रखराते हुए पीछे धकेलता है और लपककर दराज़ के पास जाता है। वह उस दराज़ के अन्दर रखी वस्तुओं की घिचपिच में सब कुछ उलट-पलट कर देखता है और दूसरे हाथ को दराज़ के अन्दर धँसाता है, फिर क्रोध से ल्येना की तरफ़ देखता है और माँ की ओर घूमता है।

''क्या तुमने सारा पैसा पहले ही खर्च कर दिया? कर दिया क्या? और अगर मुझे सैर पर जाने के लिये पैसों की ज़रूरत हुई तो?''

उसकी माँ अन्तोन गोरेमीका* की मार्मिक जीवन-कथा में खोयी थी। वह तुरन्त समझ नहीं पायी कि उससे किस चीज़ की क्या माँग की जा रही है।

''सैर के लिये? अरे तो कुछ ले ले, शोर क्यों मचा रहा है?''

''लेकिन यहाँ तो धेला भी नहीं है!'' मित्या दराज़ की तरफ़ इशारा करके चीखता है।

''मित्या, इस तरह से चिल्लाना अच्छी बात नहीं है...''

''लेकिन मेरी सैर का क्या होगा?!''

येव्दोकीया इवानोव्ना मित्या के आवेशित चेहरे को अलसाई नज़र से देखती हैं और अन्ततः स्थिति को समझ लेती हैं।

---

* आशय रूसी साहित्यकार, **ग्रिगोरोविच, द.व.** (1822-1899) की एक रचना से है। 'ग्राम' (1846) और 'अन्तोन गोरेमीका' (अभागा अन्तोन) (1847) उनके सबसे अधिक महत्वपूर्ण लघु उपन्यास थे। वे प्रकृतिवाद की शैली में लिखे गये थे और दास प्रथा के विरुद्ध थे।**-सं.**

''बिल्कुल नहीं है? असम्भव! अन्नुश्का ने सारी रकम खर्च निश्चय ही नहीं की होगी! जा, अन्नुश्का से पूछ।''

मित्या दौड़कर रसोईघर में जाता है। ल्येना खुली दराज़ के पास खड़ी है और किसी चीज़ की कल्पना कर रही है। उसकी माँ अपनी किताब का पन्ना पलटती है। मित्या रसोईघर से दौड़ता हुआ आता है, घबराहट में चीखता है : ''वह कहती है कि उसमें तीस रूबल बचे थे! मगर वहाँ कुछ भी नहीं है।''

येव्दोकीया इवानोव्ना नाश्ते की अस्त-व्यस्त पड़ी मेज़ पर बैठी अभी भी उन्नीसवीं शताब्दी में रह रही थी। वह दुख-कष्टों की उस सुखद कथा से ध्यान हटाना और एक शताब्दी आगे तक की छलाँग लगाना नहीं चाहती, वह तीस रूबल की समस्या पर अपना यान वापस लाना नहीं चाहती। और आज उसकी क़िस्मत अच्छी है। गम्भीर, अगम्य कोंस्तान्तीन ठण्डी आवाज़ में कहता है :

''यह गुलगपाड़ा क्यों मचा रहे हो? तीस रूबल मैंने लिये हैं। मुझे उनकी ज़रूरत है।''

''और तुमने एक भी बाक़ी नहीं छोड़ा। तुम इस ठीक समझते हो?'' मित्या अपने क्रुद्ध चेहरे को उसकी तरफ़ बढ़ाता है।

कोंस्तान्तीन कोई उत्तर नहीं देता। वह अपनी मेज़ पर जाता है और अपने काम में व्यस्त हो जाता है। मित्या कितना ही क्षुब्ध क्यों न हो वह अपने बड़े भाई की आत्मविश्वासपूर्ण शान-बान की तारीफ़ किये बिना नहीं रह सकता। मित्या जानता है कि उसके भाई के पास चमड़े का बना एक बड़ा-सा बटुवा है और बटुवे में कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं, जो रहस्य में डाल देती हैं और उसकी दिलचस्पी जगाती हैं; बटुवे में धन होता है, छोटे-छोटे नोट होते हैं और थियेटर के टिकट होते हैं। कोंस्तान्तीन अपने इस बटुवे के बड़े रहस्य के बारे में किसी को नहीं बताता, लेकिन मित्या अपने भाई को अपना बटुवा अक्सर व्यवस्थित करता हुआ देखता है।

मित्या इन लुभावने ख़्यालों से जबरन अपना ध्यान हटाता है और दुखी होकर ऊँचे स्वर में कहता है : ''लेकिन मेरी सैर का क्या होगा?''

उसकी बात का जवाब कोई नहीं देता। उधर चारपाई के दूसरे सिरे पर ल्येना ने माँ का हैण्ड-बैग खोल दिया है। उसके तले में दो रूबल और कुछ रेज़गारी पड़ी है। ल्येना की ज़रूरतें ज़्यादा नहीं हैं : किंडरगार्टन में कुछ ख़रीदने को नहीं होता, लेकिन सड़क के कोने पर आइसक्रीम बिकता है, उनकी क़ीमत ठीक पचास पैसे होती है। ल्येना अपने निचले होंठ काटते हुए रेज़गारी चुन लेती है। उसकी वित्तीय समस्या पूरी तरह से हल हो जाती है। अब उसे वयस्कों से कुछ नहीं कहना है और अभी-अभी जो गड़बड़ी हुई थी उसे भी वह भूल चुकी है। लेकिन सहसा, उसकी यह छोटी-सी ख़ुशक़िस्मती उसका साथ छोड़ देती है। मित्या का धृष्ट हाथ ल्येना के हाथ से फ़ौरन रेज़गारी छीन लेता है। ल्येना ऊपर देखती है, अपना खाली हाथ मित्या के आगे फैलाती है और शान्ति से कहती है : ''उसमें अभी कुछ और भी है, यह आइसक्रीम के लिये है।''

मित्या बैग में देखता है, सारी रेज़गारी बिस्तर पर उलट देता है। ल्येना ज़रा भी

जल्दी किये बिना नारंगी पलंगपोश पर पड़े पैसे उठाती है और अपनी माँ के पास से होते हुए दालान की तरफ़ निकल जाती है। मित्या भी अपनी सफलता की बात माँ को नहीं बतलाता, और बैग को बन्द करने की भी चिन्ता नहीं करता। फिर से सब कुछ ठीक हो गया, और वह कमरा अपनी गर्द भरी ख़ामोश अव्यवस्था में फिर से लौट आया। मक्खियाँ मेज़ पर जूठन का नाश्ता उड़ाने में मशगूल है। कमरे से बाहर जानेवालों में कोंस्तान्तीन अन्तिम था, लेकिन इससे पहले वह अपनी दराज़ में सावधानी से ताला लगा गया। येव्दोकीया इवानोव्ना पुस्तक के पन्ने से नज़र हटाये बिना तकियों से लदे सोफ़े पर जा बैठती है।

बाद में शाम को निकीता कोंस्तान्तीनोविच भी उसी आलमारी की दराज़ में देखता है, क्षण भर उस पर विचार करता है, चारों ओर नज़र डालता है और कहता है : ''येव्दोकीया, क्या सारी रक़म ख़र्च हो गयी? अभी तो तनख़्वाह मिलने को पाँच दिन बाक़ी है! ऐसा कैसे हुआ?...''

''बच्चों ने पैसे ले लिये... उन्हें ज़रूरत थी।''

निकीता कोंस्तान्तीनोविच दराज़ को देखकर कुछ विचार-सा करता है, फिर अपनी बग़ल की जेब टटोलता, एक बेडौल-से बटुवे को निकालता है, उसमें देखता है और अपनी पढ़ाकू पत्नी की तरफ़ मुड़ता है।

''जो भी हो, येव्दोकीया, हमें किसी तरह का... किसी तरह का हिसाब-खाता या कुछ ऐसा ही अवश्य शुरू करना चाहिये... देखो ना, पाँच दिन... तनख़्वाह को अभी पूरे पाँच दिन हैं।''

येव्दोकीया इवानोव्ना अपने पुराने ढंग के सुनहरे चश्मे से अपने पति को देखती है।

''मैं समझी नहीं, कैसा हिसाब-खाता?''

''अरे,... किसी तरह का लेखा-जोखा, आख़िर, धन...''

''ओ निकीता, तुम ''धन'' ऐसे स्वर में कह रहे हो जैसे वही मुख्य सिद्धान्त हो। मान लो, धन न हो। उसका यह मतलब नहीं कि हम अपने सिद्धान्त ही बदल डालें।

निकीता कोंस्तान्तीनोविच अपना कोट उतारता है, बच्चों के शयनकक्ष में खुलनेवाला दरवाज़ा बन्द करता है। उसकी पत्नी चिन्तित दृष्टि से, लड़ाई के लिये तत्पर होकर उसे देखती है। लेकिन निकीता कोंस्तान्तीनोविच बहस करने का इरादा नहीं रखता। वह अपनी पत्नी के सिद्धान्तों में बहुत पहले से ही विश्वास व्यक्त कर चुका है, और इस समय चिन्ता का कारण सिद्धान्त नहीं है। उसे इस समस्या की चिन्ता है कि तनख़्वाह मिलने से पहले धन कहाँ से प्राप्त किया जाये।

पर इसके बावजूद येव्दोकीया इवानोव्ना अपने पति के नैतिक चरित्र को और अधिक बल प्रदान करना आवश्यक समझती है।

''बच्चों को इस छोटी उम्र में हर तरह की धन सम्बन्धी समस्याओं के बारे में सिखलाने की कोई ज़रूरत नहीं है। वयस्कों के लिये हर समय हिसाब लगाते रहना

अच्छा नहीं है, पर उन्हें छोड़िये, वे वयस्क हैं। धन, धन, धन! हमारे बच्चों का लालन-पालन ऐसे सिद्धान्तों से दूर ही रहकर होना चाहिये : धन! और यह बड़ा अच्छा है कि हमारे बच्चों को धन की बहुत चाह नहीं है, वे बेहद ईमानदार हैं और सिर्फ़ उतना ही लेते हैं, जितने की उन्हें ज़रूरत है। अब देखिये, कैसी भयावह बात है : बारह वर्ष की अवस्था में हिसाब लगाना और हर समय गिनते रहना। धन-लोलुपता की इस भावना ने हमारी सभ्यता को पहले ही इतना अधिक विषाक्त कर दिया है। क्यों तुम्हारा क्या ख़्याल है?''

निकीता कोंस्तान्तीनोविच को सभ्यता की नियति में बहुत दिलचस्पी नहीं है। वह समझता है कि उसका कर्तव्य एक सोवियत फ़ैक्टरी को अच्छी तरह से चलाना है। जहाँ तक सभ्यता का सम्बन्ध है, निकीता कोंस्तान्तीनोविच धन-लोलुपता की भावना द्वारा विषाक्त होने के परिणामस्वरूप उसकी असमय बर्बादी के लिये नितान्त उदासीन रहने के लिये तैयार है। लेकिन उसे अपने बच्चों से बहुत लगाव है और उसकी पत्नी के शब्दों में कुछ ऐसा था, जो बहुत सांत्वनाप्रद और सुखद था। वास्तव में, वह सही कहती है : बच्चे धनलोलुप क्यों हों? और इस तरह निकीता कोंस्तान्तीनोविच अपनी पत्नी के शब्दों से विरचित सद्‌गुणों के वातावरण में चैन की नींद सो गया। जब वह ऊँघता हुआ निद्राभिभूत हो रहा था, उस समय उसने तय किया कि वह कल प्रमुख एकाउण्टेण्ट पिजोव से 50 रूबल का कर्ज़ लेगा।

जब निकीता कोंस्तान्तीनोविच नींद की पकड़ में आ ही चुका था, तब पिजोव की उल्लसित आकृति की एक झलक अन्तिम बार उसकी चेतना में प्रकट हुई और कहीं दूर, वास्तविकता के आख़िरी तन्तुओं के बीच यह विचार कौंधा कि पिजोव एक धन-लोलुप व्यक्ति है और कि उसकी हर चीज़ का लेखा-जोखा और हिसाब निश्चित है : धन, बच्चे भी... और स्वयं जीवन की ख़ुशी... मुस्कानें भी... मुस्कानों का नफ़ा-नुकसान भी...

लेकिन वह तो अभी एक स्वप्न का प्रारम्भ था।

सुबह निकीता कोंस्तान्तीनोविच हमेशा की तरह, नाश्ता किये बग़ैर काम पर चला गया। एक घण्टे बार येव्दोकीया इवानोव्ना बच्चों के कमरे में प्रविष्ट हुई और बोली :

''कोस्त्या क्या तुम्हारे पास कुछ पैसे हैं?''

कोस्त्या ने अपना फूला हुआ चेहरा उसकी ओर घुमाया और कुशल व्यावहारिकता के साथ पूछा :

''क्या तुम्हें ज़्यादा चाहिये?''

''नहीं... लगभग बीस रूबल...''

''तुम उन्हें लौटाओगी कब?''

''तनख़्वाह के दिन, पाँच दिन के अन्दर...''

कोस्त्या कुहनी के सहारे से ऊपर को उठा, अपनी पतलून की जेब से नया भूरा चमड़े का बटुवा निकाला और दस-दस रूबल के दो नोट चुपचाप अपनी माँ को दे दिये।

उसकी माँ ने नोट लिये और दरवाज़े पर आकर ही एक लम्बी साँस ली। उस यह अनुभूति हुई कि उसके लड़के में धन-लोलुपता की भावना पनपने लगी है।

इवान प्रोकोफ़्येविच पिजोव आश्चर्यजनक रूप से स्थूलकाय था। वास्तव में, मैंने अपने जीवन में उससे ज़्यादा मोटा आदमी देखा नहीं था। हो सकता है कि उसे मोटापे की पुरानी बीमारी हो, लेकिन वह इसकी कभी शिकायत नहीं करता था, खूब स्वस्थ, सक्रिय और युवकों जैसा अक्लान्त जान पड़ता था। वह कभी-कभार ही हँसता था, लेकिन उसकी कोमल रूपाकृति में इतना उल्लास और स्वस्थ संयमित परिहास झलकता था कि उसे हँसने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी। हँसी के बजाय उसके चेहरे पर उल्लासमय तरंगें उठती रहती थीं, वे लोगों को पिजोव की जबान के मुकाबले कहीं अधिक बतला देती थीं, वैसे उसकी ज़बान भी ख़ासी अभिव्यंजनापूर्ण थी।

पिजोव परिवार पेचीदा क़िस्म का परिवार था। उसके तथा उसकी पत्नी-जो बड़ी-बड़ी आँखोंवाली छरहरे बदन की औरत थी-के अलावा उसके परिवार में नौ और चौदह वर्ष के दो लड़के, एक भतीजी, जो भरे बदन की लम्बी सुन्दर लड़की थी और सोलह वर्ष की होते हुए भी काफ़ी अधिक उम्र की लगती थी, और एक गोद ली हुई लड़की, दस वर्षीया वर्यूशा, जिसे इवान प्रोकोफ़्येविच ने एक दोस्त से ''विरासत'' में पाया था। इनके अलावा एक दादी भी थीं, जो निपट बूढ़ी होने के बावजूद बहुत ही ख़ुशमिज़ाज व सक्रिय प्रकृति की थी और खूब ही मजाकिया ढंग से बोलती थीं।

पिजोव परिवार में हमेशा ही खूब आनन्द आता था। उसके साथ मेरे परिचय के बारह वर्षों के दौरान मुझे एक भी ऐसा दिन याद नहीं, जब उस परिवार में हास-परिहास न सुनायी दिया हो। वे सब एक दूसरे का मज़ाक बनाना पसन्द करते थे और जानते थे कि कोई मज़ाकिया बात कैसे बनायी जाये और उसे कैसे खोजा जाये। अक्सर ऐसा जान पड़ता था कि वे घात लगाये बैठे हैं और चालाकी के साथ इन्तज़ार कर रहे हैं कि उनके पड़ोसी पर कोई मुसीबत पड़े, ताकि वे उसकी क़ीमत पर खुलकर हँस सके। ऐसी आदत का फल झुँझलाहट तथा रंग में भंग ही होना चाहिये था, लेकिन उस परिवार में ऐसी चीज़ का कभी कोई चिह्न तक नहीं था। इसके विपरीत ऐसा प्रतीत होता था कि उस ''विश्वासघात'' का आविष्कार ही इसलिये जानबूझकर किया गया था कि जीवन की विभिन्न अरुचिकर बातों तथा संकटों को पनपने से पहले ही ख़त्म किया जा सके। कदाचित इसी वजह से उस परिवार में दुख और आँसू, तू-तू मैं-मैं और झगड़े-टण्टे, बदमिज़ाजी और निराशावादी मनोदशाओं का प्रकोप कभी नहीं होता था। इस मामले में वे वेत्किन परिवार से बहुत मिलते-जुलते थे, लेकिन वेत्किन परिवार में प्रकट उल्लास, हँसी और व्यावहारिक-परिहास कम होता था।

पिजोव परिवार के सदस्य शायद ही कभी बीमार पड़ते थे। मुझे एक ही ऐसे मौक़े की याद है, जब इवान प्रोकोफ़्येविच इन्फ़्लुएंज़ा से ग्रस्त हो गया था। मुझे इसकी सूचना बड़े लड़के पाव्लूशा ने दी। वह धड़धड़ाता हुआ मेरे कार्यालय में आया

और उसने उत्तेजित तथा प्रसन्न मुद्रा में एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कान से मुझे देखा और फिर मेरी मेज़ पर पड़े मशीनी पुर्जों पर जानकारों की-सी नज़र डाली।

''आज हमारे पिताजी लड़खड़ा ही गये! इन्फ्लुएंजा! डाक्टर को बुलाया है। वे चारपाई पर पड़े ब्राण्डी पी रहे हैं और काम पर नहीं आ सकते हैं। मुझे यह बात आपको बतानी है... देखिये क्या हुआ? वे कहा करते थे, मैं कभी बीमार नहीं होता, उन्होंने शेखी बघारी थी, लेकिन इस बार हो ही गये।''

''क्या डाक्टर ने कहा कि उन्हें इन्फ्लुएंजा हुआ है?''

''हाँ, कहा, यह रोग ख़तरनाक नहीं होता, है ना? हाँ, इस बार वे लड़खड़ा ही गये, क्या उन्हें देखने आप हमारे यहाँ आयेंगे?''

इवान प्रोकोफ़्येविच बिस्तर में लेटा हुआ था और उसकी बग़ल में एक छोटी-सी मेज़ पर ब्रांडी की बोतल और कई गिलास रखे हुए थे। शयन-कक्ष के दरवाज़े से लगा परिवार का सबसे छोटा बच्चा सेवा तथा वर्यूशा अपने पिता को शरारती नज़रों से देख रहे थे। स्पष्ट था कि इवान प्रोकोफ़्येविच ने इस जोड़े के धावे का अभी-अभी जवाब दिया था, क्योंकि उसके चेहरे के आरपार जीत की तरंगें तेज़ी से आ-जा रही थीं और उसके होंठ सन्तोष की एक मुस्कराहट में भिंचे हुए थे।

मुझे देखते ही सेवा ने उछलकर ज़ोर से हँसना शुरू कर दिया।

''वे कहते हैं, ब्राण्डी दवा होती है। और डाक्टर ने पी, और-और पी, फिर कहने लगा : 'तुमने तो मुझे पिला-पिलाकर धुत्त कर दिया है! लानत है तुम पर!' यह भी कहीं दवा है?''

सफ़ेद दरवाज़े के एक पल्ले पर झूलते हुए वर्यूशा ने द्वेषपूर्ण व्यंग्य से कहा :

''उन्होंने कहा था कि पहला व्यक्ति, जो बीमार पड़ेगा, सबसे घटिया होगा। अब वे ख़ुद बीमार पड़ गये हैं...''

इवान प्रोाकोफ़्येविच ने बनावटी नफ़रत से भौंहें सिकोड़कर वर्यूशा को देखा। ''बेशर्म लड़की! कौन पहले बीमार हुआ? मैं?''

''तो कौन हुआ?''

''वह जो सबसे ज़्यादा घटिया थी-वर्यूशा पिजोवा...''

पिजोव ने दुखी मुखड़ा बनाया और 'शहज़ादा-इगोर' ऑपेरा की एक धुन पर गाने लगा, ''ओ डैडी, ओ ममी!''

वर्यूशा ने आश्चर्यचकित होकर उसकी तरफ़ देखा।

''कब? कब? कब मैंने इस तरह का गाना गाया?''

क्यों, उस दिन, जब तुम्हारे पेट में दर्द उठा था?''

पिजोव ने अपना पेट पकड़ लिया और अपना सिर अगल-बग़ल को हिलाया। वर्यूशा ऐसे खिलखिलाकर हँसी कि सोफ़े पर लोट-पोट हो गयी। अपनी जीत से प्रसन्न होकर पिजोव मुस्कराया, उसने बोतल उठायी और मुझसे याचना की।

''कृपा करके उस दुष्ट लड़के को यहाँ से ले जाओ, ले जाओगे ना? उसे रेंड़ी का

तेल पीने की आदत है और वह मुझे भी वही तेल पिलाना चाहता है।''

इस अनपेक्षित आघात से सेवा तिलमिला गया : उसने अपना मुँह खोला, पर कुछ कह नहीं पाया। पिजोव का चेहरा एक मुस्कराहट से खिल उठा : ''अहा!''

''एक चुस्की लगाओ?'' उसने मुझसे कहा।

मैं हैरान रह गया।

''तुम बीमार हो? या फिर यह कोई मज़ाक है? चुस्की क्यों?''

''क्यों नहीं? ज़रा सोचो : आठ साल से कभी बीमार नहीं पड़ा। यह तो ऐसी ही बढ़िया है जैसे आपने अपना वर्ष का हिसाब मिलाने का काम अभी-अभी ख़त्म किया हो। तुम ब्राण्डी पी सकते हो, किताबें पढ़ सकते हो, हर चीज़ तुम्हारे पास लायी जाती है, लोग तुमसे मिलने आते हैं। यह त्योहार है! उठाओ एक गिलास, उठाओ!''

कहीं से डगमगाती चलती हुई दादी आयी और रोगी की देखभाल में व्यस्त हो गयी, बीच में मज़ाकिया ढंग से बोली :

''ऐसी बात भी किसी ने सुनी है, ग्रीष्मकाल में बीमार! वे इसे फ़्लू कहते हैं। अरे, हमारे ज़माने में तो ऐसी बात किसी ने सुनी भी न थी। शरद में ज़ुकाम हो सकता था, बुख़ार आ सकता था और गठिया-वात हो सकता था। हम इस सबका इलाज वोद्का से किया करते थे। मेरे पिता ने इसके अलावा कोई दवा देखी ही नहीं। यह गले के नीचे उतरी, तो सीधे पैर के अंगूठे में पहुँची, और बाहर से रगड़ी भी गयी, तो आप कैसे ही विकल-बेकल हों यह नाच-नचा ही देगी आपको।''

सेवा और वर्यूशा अब एक साथ सोफ़े में बैठ गये थे और अपनी ख़ुशमिज़ाज दादी को कौतूहलपूर्ण विनोद के साथ निहार रहे थे। रसोईघर से भतीजी, सुन्दर फ़ेन्या आयी। अपने हाथों को पीछे की तरफ़ करके उसने उजले बालों वाले सिर को हिलाया और अपनी स्वच्छ भूरी आँखों से मुस्कायी।

''यह दवाई तन्दुरुस्त आदमियों के लिये भी फ़ायदेमन्द है क्या?''

हमारे हाथों के सुनहरे तरल से झिलमिलाते गिलास उसकी तरफ़ ख़ामोश हामी भरते हुए ऊपर उठे। इवान प्रोकोफ़्येविच ने अपने सिर को एक तरफ़ झुकाया।

''फ़ेन्या, तुमने क्या चतुराई की बात कही है, ज़रा ऐसी ही चतुराई भरी कोई बात और कहो तो!''

फ़ेन्या झेंप गयी, उसने अपने चेहरे की मुस्कान को बनाये रखने की कोशिश की, पर असफल रही। वह रसोई को वापस भाग गयी। सोफ़े पर बैठे दर्शक हर्षोल्लास से चिल्लाये।

अपनी ख़ुशी प्रकट करने के बाद सेवा ने आवेशित होकर मुझसे कहा :

''आज तो वे सबको मात किये दे रहे हैं, क्योंकि वे बीमार हैं। लेकिन जब वे ठीक हो जायेंगे-अरे नहीं, तब देखियेगा उन्हें कोई भी नहीं छोड़ेगा।''

सेवा ने मुस्काना बन्द कर दिया और ख़ीस निपोरकर अपने पिता की तरफ़ देखा कि उन पर उसकी बात का क्या असर पड़ा है।

उसके पिता ने अपनी एक आँख सिकोड़ी और अपनी गर्दन खुजलायी।

''हाँ, हाँ, कहे जाओ। अब इसके बारे में तुम्हार क्या ख़्याल है? वह इसे बीमार का मुलाहिज़ा करना कहता है। सच है, मैं बीमार हूँ, वरना उसकी टाँग पकड़कर खींच न लेता...''

इस ख़ुशमिज़ाज परिवार में, इस सबके बावजूद कड़ा अनुशासन था। पिजोव परिवार अनुशासन के दायित्वों की गम्भीरता को ज़रा भी कम किये बग़ैर उसे सुखद और उल्लासमय बनाने की दुर्लभ कला में पारंगत हो गया था। बच्चों के जीवन्त चेहरों में काम की उत्सुकतापूर्ण तत्परता और अपने पर्यावरण के प्रति सजगता को हमेशा पढ़ा जा सकता है। इसके बिना कोई भी अनुशासन सम्भव नहीं है।

पिजोव परिवार के वित्तीय संगठन ने मुझे ख़ास तौर से आकृष्ट किया। ऐसा लगता था कि वह अनुभव की कसौटी में परखी और पुरानी तथा सुपरिचित परम्परा से अलंकृत एक निर्दोष व्यवस्था थी।

इवान प्रोकोफ़्येविच ने इस व्यवस्था के आविष्कारक का सम्मान लेने से इन्कार कर दिया।

''मैंने कोई आविष्कार नहीं किया,'' वह कहता। ''वस्तुतः, एक परिवार एक आर्थिक इकाई होती है। धन हासिल किया जाता है और ख़र्च किया जाता है, इसका तो मैंने आविष्कार नहीं किया। और जब धन हो, तो सुव्यवस्था होनी ही चाहिये। आप धन को अव्यवस्थित रूप से केवल तभी ख़र्च कर सकते हैं, जब आपने उसे चुराया हो। लेकिन जब जमा और ख़र्च का खाता है तो व्यवस्था होनी ही चाहिये। इसमें आविष्कार करने के लिये है क्या! इसके अलावा, बच्चों की सोचिये। आप उन्हें कब सिखलायेंगे? इसके लिये सही वक़्त यही तो है।''

मुझे सबसे ज़्यादा आश्चर्य इस बात से हुआ कि इवान प्रोकोफ़्येविच घर में कोई हिसाब-किताब नहीं रखता था। वह कोई भी हिसाब क़ागज़ में लिखता नहीं था और उसने बच्चों को भी ऐसा करना नहीं सिखलाया।

''खाते की ज़रूरत नियंत्रण के लिए होती है लेकिन हम सात प्राणी हैं और अपने लिये हमारा नियंत्रण काफ़ी है। लेकिन जब आप उनसे हर चीज़ क़ागज़ में लिखवाना शुरू कर देंगे, तो वे दफ़्तरशाह बन जायेंगे-यह भी एक ख़तरा है। तुम्हें पता है, दुनिया में सबसे ज़्यादा दफ़्तरशाह हम एकाउण्टेण्टों में से ही बनते हैं। यह काम ही ऐसा है!''

इवान प्रोकोफ़्येविच की विनोदी आँखें किसी भी प्रकार का लेखा-जोखा रखे बिना ही अपने परिवार की वित्तीय कार्यवाहियों के सारे ब्यौरों को देख-समझ सकती थीं।

सप्ताहान्त में वह समारोह के अन्दाज़ में ख़ुद ही जेब-खर्च बाँटा करता था। उस शाम भोजन के बाद कोई भी मेज़ छोड़कर नहीं जाता था। फ़ेन्या मेज़ से तश्तरियाँ उठाकर रसोई में ले जाती और फिर इवान प्रोकोफ़्येविच की बग़ल में भी बैठ जाती। वह अपने बटुवे को मेज़ पर रखता और पूछता : ''अच्छा तो सेवा, हफ़्ते के लिये तुम्हारे पास काफ़ी पैसे थे?''

सेवा अपने हाथ में क़ागज़ का बना एक मैला-सा बटुवा पकड़े हुए है। बटुवे में कई खाने हैं, जो खुले रूप में किसी उत्खनक के खनन-उपकरणों की पाँत जैसे नज़र आते हैं। सेवा बटुवे को मेज़ पर उलटता और उसमें से एक 20 कोपेक और दूसरा 5 कोपेक का सिक्का नीचे गिर जाता है।

"यह लीजिये, कुछ बच भी गये हैं," सेवा कहता है, "पच्चीस कोपेक।"

वर्यूशा अपने बटुवे को मिठाई के एक टिन में रखती है और वह भी सेवा के बटुवे के जैसे ही पेचीदा ढंग से बना हुआ है। उसका बटुवा साफ़ और बेदाग़ है। उसके भरे-भरे से खानों की तरफ़ सेवा की व्यंग्यपूर्ण नज़र पड़ती है :

"वर्यूशा फिर से पैसे जमा कर रही है।"

इवान प्रोकोफ़्येविच की आँखें फैल जाती हैं : "फिर से पैसे जमा कर रही है? भयानक, इसका क्या नतीजा होगा? तुम्हारे पास कितनी रक़म है?"

"रक़म?" वर्यूशा अपने बटुवे के खानों की गम्भीरता से जाँच करती है। "यह रहा एक रूबल, यह रहा दूसरा... और यह तीसरा।"

वह मासूमियत से इवान प्रोकोफ़्येविच की तरफ़ देखती है और बटुवे की बग़ल में दो नये रूबल और कुछ रेज़गारी रख देती है।

"ओहा, ओहो," सेवा कुर्सी में उचककर बैठ जाता है।

बड़े बच्चे इस हिसाब-किताब को दोस्ताना सहानुभूति से देखते हैं, अपने बटुवे बाहर नहीं निकालते और अपनी रक़म भी नहीं दिखलाते।

"वर्यूशा समुद्रतट की सैर के लिये बचत कर रही है," पाव्लूशा मुस्कराता है।

"समुद्रतट के लिये नहीं, किसी और चीज़ के लिये, अपनी गुड़िया के वास्ते एक टी-सेट, छोटी मेज़, और एक लैम्प के लिये।"

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा," इवान प्रोकोफ़्येविच कहता है।

मैं हमेशा इस बात पर आश्चर्य करता था कि इवान प्रोकोफ़्येविच अपने बच्चों से कभी नहीं पूछता था कि वे अपना पैसा किस तरह खर्च कर रहे हैं या करने वाले हैं। बाद में मैं समझा कि इसकी कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि परिवार में किसी का कोई राज़ नहीं था।

इवान प्रोकोफ़्येविच अपने बटुवे से रेज़गारी निकालता है और बच्चों को बाँटता है।

"यह लो, एक रूबल तुम्हारे लिये, और एक रूबल तुम्हारे लिये। अगर तुम इसे खो दोगे, तो मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ। काउण्टर को छोड़ने से पहले अपनी-अपनी रकम जाँच लो।"

सेवा और वर्यूशा अपनी रक़म की सावधानी से जाँच करते हैं। वर्यूशा दस कोपेक के सिक्कों को आगे-पीछे करती है, उसकी आँखें चमकती हैं और वह तिरछी निगाह से इवान प्रोकोफ़्येविच को देखती हैं और हँसती हैं।

"कैसे चतुर हैं! लाइये, एक और दीजिये।"

"बिल्कुल नहीं, पूरे दस सिक्के दिये हैं।"

"देखिये : एक, दो, ती..."

लेकिन इवान प्रोकोफ़्येविच रेजगारी अपनी तरफ़ खींचता और जल्दी-जल्दी गिनने लगता है।

"एक, दो, तीन, चार, पाँच, सात, आठ, नौ, दस। क्यों?"

वर्यूशा उलझन में पड़कर अपनी कुर्सी पर ऊपर चढ़ जाती है और एक उँगली से सिक्कों को ठेलती है। सेवा ज़ोर से खिलखिलाकर हँसने लगता है।

"अहा! उन्होंने गिना कैसे? सही नहीं गिना। पाँच फिर सात, छह का क्या हुआ?"

"अच्छा, तो आओ तुम जाँच लो," इवान प्रोकोफ़्येविच गम्भीरता से कहता है।

सब लोग मिलकर गिनने लगते हैं। पता लगता है कि वहाँ सचमुच पूरे दस हैं। इवान प्रोकोफ़्येविच का भारी भरकम शरीर हँसी से दोलायमान हो जाता है। सिर्फ़ फ़ेन्या अपने मुँह को हाथ से ढँक लेती है, वह चमकती आँखों से अपने चाचा को देख रही है : उसने उसे अपने बटुवे के नीचे से दस पैसे का एक अतिरिक्त सिक्का सरकाते हुए देख लिया था।

छोटे बच्चे अपने पेचीदा क़िस्म के बटुवे में धन रखने लगते हैं।

बड़े बच्चों की बारी आ गयी है। पाव्लूशा को हर हफ़्ते तीन रूबल मिलते हैं और फ़ेन्या को पाँच रूबल।

"काफ़ी हैं?" इवान प्रोकोफ़्येविच पैसे देते समय पूछता है। वे सिर हिलाते हैं : हाँ काफ़ी है।

"नहीं है तो भी काफ़ी बनाओ। हम पहली जनवरी तक अपने वेतन में कोई बढ़ती की उम्मीद नहीं कर रहे हैं। यदि वे हमारे वेतन बढ़ा दें, तो हम देखेंगे, क्यों, है न यही बात?"

इवान प्रोकोफ़्येविच ही नहीं, बल्कि फ़ेन्या और पाव्लूशा भी बढ़ती होने की आशा कर रहे थे। पाव्लूशा फ़ैक्टरी के प्रशिक्षण स्कूल में और फ़ेन्या तकनीकी स्कूल में पढ़ रहे हैं। वे अपने सारे वजीफ़े पारिवारिक कोष में दे देते हैं, यह एक अटूट नियम है और इसके औचित्य पर किसी को सन्देह नहीं है। सब का जेब खर्च दे चुकने के बाद इवान प्रोकोफ़्येविच अपनी पारिवारिक परिषद में कभी-कभी कहता है : आय : मेरा वेतन 475, पाव्लूशा का 40, फ़ेन्या का 65, कुल 580। अब गृहस्थी के लिये अम्मा को 270, तुम्हारा जेबख़र्च 50 ठीक? यह हुआ कुल 320, बचे 260, आगे?"

"मैं जानती हूँ, वे क्या चाहते हैं," कोने से दादी की खरखराती आवाज़ सुनायी देती है, "एक रेडियो, कोई चार वाल्व का या ऐसा ही कुछ। पिछले महीने भी उसकी चर्चा ख़त्म ही नहीं होती थी। वे कहते थे, 200 रूबल। यही रट लगाते थे, मानो इस संस्कृति से अच्छी चीज़ होती ही न हो।"

"हाँ सच ही तो है," पाव्लूशा हँसता है, "रेडियो, यह संस्कृति, है कि नहीं?"

"मैं इसे संस्कृति नहीं समझती-ढेर सारी खरखराहट, चीख़-पुकार और सीटियों के लिये रुपये-पैसे खर्च करना। अच्छा दिखना तो संस्कृति है, जूतों का एक अच्छा

जोड़ा ख़रीदो और सजे-धजे घूमो! और फ़ेन्या के जूतों का क्या हुआ।''

''मैं इन्तज़ार कर लूँगी,'' फ़ेन्या कहती है, ''पहले एक रेडियो ख़रीद लेते हैं।''

पिजोव के यहाँ बजट सम्बन्धी ऐसी बातें अक्सर नहीं होती। ऐसी समस्याओं के पैदा होने पर उनसे निबटा जाता है और ऐसे हल कर लिया जाता है कि उसकी तरफ़ किसी का ध्यान तक नहीं जाता। इवान प्रोकोफ़्येविच आम बहस को सबसे अच्छा तरीक़ा समझता है।

''एक-एक बात कहता है और दूसरा दूसरी, कोई न कोई सही बात अवश्य कहेगा! वे हर बात समझते हैं, हाँ एकाउण्टेण्ट के बच्चे सब कुछ समझते हैं।''

पिजोव परिवार के सदस्यों का एक सद्‌गुण यह था कि वे अपनी सुदूर भविष्य की उन कामनाओं और स्वप्नों को भी अभिव्यक्ति देने में नहीं हिचकते, जो फिलहाल बिल्कुल अलभ्य जान पड़ते हैं। इस रूप में प्रकट होने वाली पहली चीज़ चार वाल्व का रेडियो था। सेवा के लिये एक स्लेजगाड़ी तथा अन्य वस्तुओं की ख़रीद का सुझाव भी ऐसे ही पेश किया गया। अधिक सामान्य वस्तुओं के बारे में स्वप्न देखने की कोई ज़रूरत नहीं थी। एक दिन तकनीकी स्कूल से घर आने पर फ़ेन्या ने पाव्लूशा से सहज भाव से कहा :

''ये मेरी अन्तिम जुराबें हैं। मैंने इन्हें दसियों बार रफ़ू किया है, लेकिन अब रफ़ू से भी काम नहीं चलता। देखो ना, अब मेरे पास नयी जुराबें होनी ही चाहिये।''

और शाम को उसने इवान प्रोकोफ़्येविच से भी ऐसे ही सहज भाव से बातें कीं।

''मुझे जुराबें ख़रीदने के लिये कुछ पैसे दीजिये।''

''क्या तुम वेतन मिलने तक इन्तज़ार कर सकती हो?''

''नहीं।''

''तो यह लो।''

जुराबें जेब-ख़र्च से नहीं आयीं। वह रकम साबुन, दन्तमंजन तथा अन्य प्रसाधनों, सिनेमा, मिठाइयों, आइसक्रीमों, कलमों, नोटबुकों और पेंसिलों के लिये थी।

धन सम्बन्धी सख़्त नियमोंवाले इस प्रसन्नचित्त परिवार को देखकर मुझे हमेशा ख़ुशी होती थी। यहाँ धन से न तो भद्र परमेश्वर की गन्ध आती और न चालाक शैतान की। वह तो जीवन की एक ऐसी सामान्य सुविधा मात्र थी, जिसके लिये किसी नैतिक तनाव की ज़रूरत नहीं थी। पिजोव परिवार के सदस्य धन को दैनिक काम के लिये एक उपयोगी सहायक उपकरण की तरह देखते थे। यही कारण था कि उनका धन न तो दराज़ों में पड़ा रहता था न कंजूसों जैसी आशंकाओं व भय के साथ छुपाकर जमा किया जाता था। इवान प्रोकोफ़्येविच किसी भी अन्य आवश्यक वस्तु की तरह सहज और विश्वसनीय गम्भीरता से उसकी देख-रेख करता था।

पाँचवाँ अध्याय

परीकथाओं, पौराणिक आख्यानों, उत्कृष्ट गाथागीतों और कविताओं में अक्सर ऐसे सुखी राजा और रानियों की कहानियाँ कही जाती हैं, जिन्हें ईश्वर ने इकलौता बेटा या इकलौती बेटी दी हो। ये राजकुमार और राजकुमारियाँ शहजादे और शहजादियाँ अपने साथ हमेशा मोहक सौन्दर्य और उल्लास लेकर आती हैं। इन कहानियों में दुष्ट आत्माओं की दखलन्दाज़ी (जो किसी कुटिल परी की भविष्यवाणी होती है) के कारण होने वाली सबसे ज़्यादा ख़तरनाक और दुस्साहसिकता की घटनाएँ भी नायक की क़िस्मत में लिखी सफलता पर बल देने के लिये होती हैं। यहाँ तक कि मौत-घोर निराशा और पूर्णतः अविजेय जान पड़नेवाली मौत-भी ऐसे राजकुमार का सामना पड़ने पर हार मान लेती है और वह राजकुमार दयालु जादूगरों, संजीवनी और अमृत मुहैया करनेवालों और बाद में ओपेरा व बैले गीतकथा तथा संगीतरचना करने वाले इतने ही मेहरबान लोगों की मदद पर हमेशा भरोसा कर सकता है।

पाठकों और दर्शकों के लिये इन भाग्यशाली नायकों में एक प्रकार की आशावादी मोहिनी होती है। यह मोहिनी क्या है? यह न कार्यक्षमता है, न अक्ल, न प्रतिभा और चालाकी भी नहीं है। यह कथा की विषय-वस्तु में पहले से ही निर्धारित है : राजकुमार राजा का इकलौता बेटा है। इस विषय-वस्तु के लिये ख़ुशक़िस्मती और जवानी के सिवा और किसी तर्क की कोई ज़रूरत नहीं है। राजकुमार तो महत्ता, सम्पदा, शानोशौक़त और सर्वजनीन स्नेह का सुखोपभोग करना अपनी क़िस्मत में लिखवा के लाया है। उसके सामने भविष्य की अवश्यम्भावी सुनिश्चितता भी है और ख़ुशहाली का ऐसा अधिकार भी है जो किसी भी प्रतिद्वंद्वी या बाधा से सर्वथा मुक्त है।

राजकुमार की ऐसी विषय-वस्तु वैसी महत्वहीन नहीं है जैसी कि पहली नज़र में प्रतीत होती है और हमारे जीवन से क़तई दूर नहीं है। इस क़िस्म के राजकुमार महज़ कल्पना के ही फल नहीं हैं। पाठकों तथा दर्शकों के बीच कई माताओं और पिताओं के घरों में, उनके सामान्य परिवारों में ठीक ऐसे ही राजकुमार और ऐसी ही राजकुमारियाँ विद्यमान हैं, सफलता के ठीक ऐसे ही दावेदार मौजूद हैं और ठीक वैसे ही यह विश्वास करते हैं कि वे, ख़ास तौर से, ऐसी सफलता का ही सुख उठाने के लिये पैदा हुए हैं।

सोवियत परिवार को एक सामूहिक निकाय के सिवा और कुछ कभी नहीं होना चाहिये। एक सामूहिक निकाय के रूप में अपना विशिष्ट गुण गँवा देने पर शिक्षा और सौख्य के एक संगठन रूप में उसका काफ़ी कुछ महत्व भी जाता रहता है। एक सामूहिक निकाय के विशिष्ट गुण कई तरह से समाप्त हो सकते हैं। इनमें सर्वाधिक

व्यापक है तथाकथित ''इकलौते बच्चे की व्यवस्था''।

एक इकलौते बेटे का लालन-पालन सर्वाधिक सौभाग्यशाली और सर्वोत्तम मामलों में भी, सर्वाधिक प्रतिभावान व सावधान माता-पिता के हाथों में भी एक अत्यन्त कठिन काम होता है।

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच केतोव एक केन्द्रीय विभाग में काम करता है। नियति ने उसे सुखी बनाया है और यह, किसी भी दशा में, उसकी कृपा का फल नहीं है। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच एक शक्तिशाली व्यक्ति है, वह स्वयं नियति के लिये, यदि नियति उसके हाथों में पड़ जाये, तो बहुत कुछ कर सकता था।

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच कुशाग्र बुद्धि का है, वह विश्लेषण का महापण्डित है, लेकिन वह उसमें कभी भी लथपथ पड़ा, या लोट लगाता ही नहीं रहता। वह भविष्य को हमेशा ध्यान में रखता है। उसकी शानदार राहों को निहारता हुआ वह हमेशा ख़ुश भी हो सकता है, हँस सकता है और एक किशोर की भाँति स्वप्न भी देख सकता है, अपनी ताज़गी, चतुर आँखों की शान्त सतर्कता और बातें करने के अपने विचारशील व विश्वासप्रेरक ढंग को बनाये भी रख सकता है। वह अनेक लोगों से मिलता है और जिससे भी मिलता है उसकी बात को समझने का सहज गुण भी रखता है। दुनिया में रहते-सहते समय भी वह उसी सही विश्लेषण का उपयोग करता है, कुछ लोगों के लिये राह छोड़ देता है, कुछ अन्य के साथ सहर्ष चल पड़ता है, किसी तीसरे की बग़ल में गम्भीरता से चलता है, चौथे का कालर पकड़ लेता है और स्पष्टीकरण की माँग करता है।

उसका घर अपनी स्वस्थ और सुखकर व्यवस्था से किसी को भी आकर्षित करता है। सुपठित पुस्तकों की कई क़तारें, फ़र्श पर स्वच्छ और किंचित घिसा हुआ कालीन, पियानो और उस पर सजी बीथोवन की मूर्ति।

और प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने अपने पारिवारिक जीवन की समुचित व सुखकर ढंग से व्यवस्था की है। जवानी में उसने अपनी हार्दिकतापूर्ण व संवेदनशील आँखों से सुन्दर महिलाओं के आकर्षण का मूल्यांकन किया, उनका सही सुखद विश्लेषण किया और नीलारुण आँखोंवाली एक शान्त, किंचित स्वाभिमानी हँसमुख महिला, नीना वसील्येव्ना, को पसन्द किया। उसने अपनी भावनाओं को सचेत अभिव्यक्ति दी और उसे हमेशा के लिये गहराई से प्यार करने लगा। उसने अपने इस प्यार को दोस्ती और पुरुष की गूढ़ व बाँकी श्रेष्ठता से सँवारा। नीना वसील्येव्ना ने अपनी उसी मधुर व्यंग्यपूर्ण अवज्ञा के साथ पुरुष की श्रेष्ठता को स्वीकार किया, वह प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच की साहसिक शक्ति और उसकी ख़ुशमिज़ाज बुद्धिमानी के साथ गहराई से प्यार करने लगी।

जब वीक्तर का जन्म हुआ, तो प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने अपनी पत्नी से कहा : ''धन्यवाद, वह अभी कच्चा माल है, लेकिन हम उसे एक असाधारण नागरिक

बनायेंगे।''

और एक सुखद, स्नेहमयी मुस्कान के साथ नीना वसील्येव्ना ने उत्तर दिया : ''तुम्हारा बेटा और कुछ हो भी कैसे सकता है?''

लेकिन प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच अपने पुरखों के गुणों को और वंशानुगतता की गारण्टी को बढ़ाने-चढ़ाने को तत्पर नहीं था। उसे शिक्षा की शक्ति पर गहरा विश्वास था, उसे पक्का यक़ीन था कि, कुल मिलाकर, लोगों का लापरवाही से लालन-पालन होता है, कि लोग यह नहीं जानते थे कि शिक्षा का काम समुचित ढंग से कैसे किया जाता है : गहनता से, तर्कसम्मत तरीके से और दृढ़ता से। उसने माता-पिता के महान रचनात्मक कार्य की कल्पना की।

जब वीक्तर दो वर्ष का था तो नीना वसील्येव्ना ने प्यार से पूछा : ''तुम्हारा नागरिक तो चलने और बोलने लगा है। क्या तुम अपने बेटे से प्रसन्न हो?''

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच वीक्तर की सराहना के सुख से अपने को वंचित नहीं रखता था-वीक्तर एक बड़ा, स्वस्थ व सुखी बच्चा था-उसने उत्तर दिया : ''मैं अपने बेटे से बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने उसे बहुत शानदार ढंग से पाला है। हम यह मान सकते हैं कि हमारे काम की पहली अवस्था पूरी हो गयी है। और अब हम आगे का काम शुरू करेंगे।''

उसने वीक्तर को अपनी तरफ़ खींचा, उसे अपनी गोद में बिठाया और एक बार फिर उसे वात्सल्यपूर्ण चेतावनी दी : ''शुरू करेंगे कि नहीं!''

''कलेंगे,'' वीक्तर ने कहा, ''तुम कैछे छुलू कलोगे?''

वीक्तर ने दुख-दर्दों से मुक्त निरापद ज़िन्दगी की ख़ुशी और शान्ति की साँस ली। इस भावी नागरिक का सब कुछ इतना स्वस्थ व पवित्र था, उसकी निगाहें इतनी सौम्य और स्वच्छ थीं, पिता का जैसा सम्भावनापूर्ण माथा और नीलारुण आँखों में अपनी माँ जैसी व्यंग्यपूर्ण अवज्ञा का ऐसा हल्का-सा पुट था कि उसके माता-पिता उस पर गर्व किये बिना और उसके अद्भुत भविष्य की प्रत्याशा किये बिना नहीं रह सकते थे।

नीना वसील्येव्ना अपनी आँखों के सामने एक महान सफलता को परिपक्व होता देख सकती थीं। उसका बेटा अधिकाधिक सुन्दर, स्नेहशील और आकर्षक होता जा रहा था, उसकी वाक-शक्ति शीघ्र व सुन्दर ढंग से विकसित हो रही थी, वह विश्वासपूर्ण तथा बालकोचित लास्य के साथ चलता और दौड़ता था, उसका हास-परिहास, हँसी और प्रश्न किसी का भी दिल जीत सकते थे। यह लड़का उसके लिये ऐसा वास्तविक और जीवित आह्लाद था कि उसका भावी नागरिक रूप भी किंचित धुँधला होकर पृष्ठभूमि में चला गया था।

नीना वसील्येव्ना के लिये वर्तमान ऐसा अनोखा था कि वह भविष्य की बात सोचना ही नहीं चाहती थी। वह महज़ उस जीवन के साथ रहना चाहती थी, जिसकी उसने रचना की थी-उसकी सराहना करते हुए, अपने मातृत्व की सफलता पर गर्व

करते हुए वह अनेक अजनबी बच्चों से मिलती, उन्हें सावधानी से जाँचती, और उसे एक दुर्लभ मानवीय मुक्ति का अनुभव करना सुखद लगता था-उसे किसी से भी ईर्ष्या नहीं थी।

फिर सहसा उसमें एक ऐसे ही, इतने ही अनोखे एक और शिशु जीवन की रचना करने की प्रबल इच्छा पैदा हुई। उसने वीक्तर के साथ ही साथ, एक नन्ही लड़की की, उजले बालों वाली, प्रज्ञावान माथे और मुस्कराती नीलारुण आँखोंवाली एक ऐसी बालिका की कल्पना की जिसे वह... लीदा कहकर बुलायेगी। वह वीक्तर से बहुत मिलती-जुलती होगी, पर साथ ही उसमें उसका अपना भी कुछ होगा, कुछ ऐसा, जो दुनिया में पहले कभी नहीं था, जिसकी कल्पना करना बहुत कठिन है, क्योंकि वैसा पहले कभी था ही नहीं, और वह कुछ केवल नीना वसील्येव्ना की मातृत्वपूर्ण प्रसन्नता से ही रचा जा सकता है।

''पेत्रूस्य, मैं एक लड़की चाहती हूँ।''

''कैसी लड़की?'' प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच आश्चर्य में पड़ जाता है।

''मुझे एक बेटी चाहिये।''

''तुम्हारा मतलब यह है कि तुम एक और बच्चे को जन्म देना चाहती हो?''

''नहीं, मैं उसे बढ़ते हुए देखना चाहती हूँ। एके बेटी, समझे? मेरी भावी बेटी।''

''लेकिन नीना तुम्हें कैसे पता कि वह निश्चय ही बेटी होगी? मान लो, बेटा हुआ तो?''

नीना वसील्येव्ना ने पल भर सोचा। एक और बेटा? यह तो निश्चय ही बेटी होने से कम अनोखी बात नहीं होगी। और... उसका एक तीसरा बच्चा भी हो सकता है, एक बेटी। अहा, कैसा सुन्दर साथ होगा!

उसने उल्लास और सलज्ज स्त्रियोचित भावना की बाढ़ से अपने पति को अभिभूत कर दिया।

''सुनो पेत्रूस्य, तुम कैसे दफ़्तरशाह हो, यह भयावह है! वीक्तर जैसा बेटा, समझे? और साथ ही साथ हू-ब-हू वैसा ही नहीं, बल्कि भिन्न भी, समझे, तुम्हारा लाडला... विशिष्ट! बेटी बाद में भी आ सकती है! कैसा परिवार होगा, ज़रा सोचो, कैसा परिवार!''

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने अपनी पत्नी का हाथ चूमा और अपनी उस श्रेष्ठता से मुस्कराया, जो पहले से ही स्वीकार्य थी।

''नीना, यह एक गम्भीर प्रश्न है, हमें इस पर विचार करना चाहिये।''

''तो ठीक है, आइये, कर लेते हैं।''

नीना वसील्येव्ना को पूरा यक़ीन था कि जिस सुन्दर परिवार की तस्वीर उसकी कल्पना में इतनी सुस्पष्ट थी, वह उसे भी लुभावनी लगेगी और वह अपनी श्रेष्ठता के रूखेपन का परित्याग कर देगा। लेकिन जब उसने बोलना शुरू किया, तो उसे महसूस हुआ कि जिन्दा और शानदार अभिव्यक्तियों के बजाय वह साधारण शब्दों, उद्गारों, हाथों की निराशाजनक चेष्टा के सिवा, औरतों की निहायत मामूली बकवास के सिवा

और कुछ भी पेश नहीं कर सकी। उसके पति ने स्नेहपूर्ण कृपा के साथ उसे देखा और वह लगभग एक आह-सी भरकर ख़ामोश हो गयी।

''नीना ऐसी आदिम सहज-वृत्तियों को निर्बन्ध नहीं किया जा सकता है।''

''कैसी सहज-वृत्तियाँ? मैं तुमसे लोगों के बारे में, भावी लोगों के बारे में बातें कर रही हूँ...''

''तुमको ऐसा लगता है, लेकिन ये वास्तव में सहज-वृत्तियाँ ही हैं...''

''प्योत्र!''

''ठहरो, ठहरो प्रिय नीना! इसमें शर्मिन्दा होने की कोई बात नहीं है। यह एक उत्तम सहज-वृत्ति है। मैं तुम्हारी बात समझता हूँ और ख़ुद भी ऐसा महसूस करता हूँ। तुम जिस सुन्दर परिवार की बातें कर रही हो, वह मुझे आकृष्ट कर सकता है, लेकिन एक ध्येय इससे भी अधिक श्रेष्ठ है, अधिक सुन्दर है, सुनो।''

उसने विनीत ढंग से अपना सिर उसके कन्धे में रख दिया और वह उसका हाथ सहलाते हुए, किताबों की आलमारी के शीशे के दरवाज़ों की तरफ़ इस तरह निहारता हुआ बातें करने लगा मानो जिनके बारे में वह बातें कर रहा था उन्हें उन शीशों की चमकीली पारदर्शिता में सचमुच ही देख रहा हो।

उसने कहा कि बड़े परिवार में सिर्फ़ एक औसत व्यक्तित्व का ही लालन-पालन हो सकता है; जन-साधारण का लालन-पालन ऐसे ही हुआ है, और उसी कारण से महान मानवीय व्यक्तित्व इतने दुर्लभ हैं और जो हैं, वे उस धूसर रंगहीन भीड़भाड़ में संयोगवश होनेवाले अपवाद हैं। उसे विश्वास है कि औसत प्रकार का आदमी बहुत ऊँचा हो सकता है। एक महान आदमी को शिक्षा देना तभी सम्भव है जब माता-पिता का सारा प्यार, सारी तर्क-बुद्धि और सारी क्षमता को इस काम में लगा दिया जाये। इस सामान्य समूहवादी विचार का निश्चय ही परित्याग कर देना चाहिये कि परिवार बच्चों का एक ऐसा झुण्ड है, जिसके लिये अनियमित देखभाल तथा पेट भरने व कपड़े पहनाने की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा किसी प्रकार की शिक्षा देने की व्यवस्था करनी होती है। नहीं, जिस चीज़ की ज़रूरत थी, वह भी आपके बेटे पर सघन मेहनत करने की, शिक्षा की बारीक ज़रदोज़ी काम की। इस प्रकार का काम कई बच्चों के होते हुए नहीं किया जा सकता है। किसी को गुणवत्ता के लिये उत्तरदायी होना ही चाहिये और गुणवत्ता तभी सम्भव है, जब रचनात्मक शक्तियों को संकेन्द्रित किया जाये।

''इसकी कल्पना करो नीना, हम केवल एक व्यक्ति की रचना करेंगे, लेकिन वह सामान्य क़िस्म का नहीं होगा, वह सचमुच कुशाग्र बुद्धि का होगा, जीवन का अलंकरण होगा...''

नीना वसील्येव्ना ने आँखें बन्द करके अपने पति की बातें सुनीं, जब उसने हाथ उठाया, तो उसके कन्धों की मद्धिम गति को महसूस किया, उसकी मृदु, सुकोमल मूँछों के सिरे को देखा और बच्चों की सुन्दर संगति की कल्पना एक धुन्ध में विलीन

हो गयी और उसकी जगह पर एक साहसी, अद्‌भुत, सुशिक्षित, कुशाग्र बुद्धि के युवक की, एक महान सार्वजनिक व्यक्तित्व की, भविष्य के एक महान आदमी की छवि उभर आयी। परन्तु यह छवि न जाने क्यों, एक दूरस्थ परीकथा के पात्र की भाँति, सिनेमा के पर्दे की आकृति के समान मांसविहीन और रुधिरविहीन थी। उसके विगत दिन के सपने इससे कहीं अधिक जीवन्त थे, प्यारे थे, लेकिन उसके पति की परीकथा, उसकी आवाज़, उसके विचारों की श्रृंखला, जिसकी शक्ति और साहसिकता उसके लिये अभी भी नयी थी, और पुरुष के बल पर विश्वास करने की स्त्रियों की युगों पुरानी आदत-इस सबसे एक ऐसी सघन पूर्णता की रचना हो गयी, जिसका नीना वसील्येव्ना ने विरोध करना नहीं चाहा। गहन अन्तर में छुपी उदासी के साथ उसने मातृत्व के अपने सपने को विदा कर दिया।

‘‘ठीक है प्रिय, बिल्कुल ठीक है। तुम दूर तक देखते हो। जैसा तुम सोचते हो, वैसा ही होने दो। लेकिन... इसका मतलब... इसका मतलब है कि अब हमारे कभी भी कोई बच्चे पैदा नहीं होंगे?’’

‘‘नीना! नहीं ही होने चाहिये, कभी भी नहीं होने चाहिये।’’

नीना वसील्येव्ना के जीवन में एक परिवर्तन आ गया। उसके आस-पास की हर चीज़ अधिक गम्भीर हो गयी। स्वयं जीवन पहले से अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और ऐसा दायित्वपूर्ण हो गया, मानो उसने अन्ततः अपनी गुड़ियों को किनारे रख दिया हो और अपनी क्वाँरी सौम्यता से हमेशा के लिये विदाई ले ली हो। विचित्र लगने पर भी यह सच है कि माँ के रचनात्मक काम का परित्याग करने के बाद ही उसे माँ के कामों के सारे बोझ का अहसास हुआ।

अब वीक्तर उसे एक भिन्न प्रकार की प्रसन्नता देता। पहले भी वह उसकी आँख का तारा था और वह उसे गँवाने के ख़्याल को भी बर्दाश्त नहीं कर सकती थी, लेकिन पहले उसका जीवित आकर्षण जीवन के सारे आकर्षणों को जन्म देता था, मानो उसकी सत्ता किसी प्रकार की जीवनदायी किरणें बिखेरती थी। अब केवल वही था, पहले ही जैसा ही प्यारा और सुन्दर, परन्तु अब ऐसा प्रतीत होता था कि उसके अलावा और कुछ नहीं है, कोई सपना नहीं, कोई ज़िन्दगी नहीं। इससे वीक्तर और भी प्यारा, और भी आकर्षक हो गया, लेकिन अब प्यार के साथ ही एक शंका भी आ घुसी थी और उसने उसके मन में घर कर लिया था। शुरू में नीना वसील्येव्ना ने यह सोचने की भी कोशिश नहीं की कि वह किस प्रकार की शंका थी। वह विवेकसम्मत अथवा आवश्यक थी भी या नहीं। यह बात महज़ इतनी थी कि जब भी वह अपने बेटे के चेहरे को देखती, तो उसमें उसे कभी तो एक सन्देहास्पद पीलापन, कभी एक प्रकार की सूजन और कभी आँखों में एक सुस्ती नज़र आती। वह उसकी मनोदशाओं, उसकी खुराक पर सशंक होकर निगाह रखती थी और हर छोटी बात में एक महाविपत्ति के संकेत की कल्पना करने लगती।

प्रारम्भ में यह संवेद बहुत तीव्र था। फिर दूर हो गया। वीक्तर बड़ा हुआ, विकसित

हुआ, तो नीना वसील्येव्ना का भय परिवर्तित हो गया। अब वह पहले की तरह उसके दिल को आक्रान्त नहीं करता और उसे मूर्च्छित-सा करता हुआ सहसा प्रकट नहीं होता था। वह एक ऐसे भय में बदल गया था जो उसके दैनिक जीवन की आदत का अंग बन गया था।

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने अपनी पत्नी के जीवन में कोई ख़राबी नहीं देखी। सुमधुर व्यंग्यपूर्ण अवज्ञा का उसका भाव लुप्त हो गया था। उसके चेहरे की शान्त मृदु रेखाऐं एक निष्ठुर सौन्दर्य के ढाँचे में रूपान्तरित हो गयी थीं, उसके नीलारुण नेत्रों की तरल तेजोमयता तिरोहित हो गयी थी और वे अधिक स्वच्छ व पारदर्शी हो गये थे। उसने इसके बारे में सोचा और एक स्पष्टीकरण खोज निकाला : जीवन चलता जाता है, जवानी मिटती जाती है और उसके साथ ही सौन्दर्य और रेखाओं की कमनीयता भी मलिन पड़ जाती है। लेकिन सब कुछ अद्भुत है, आगे जीवन की नयी निधियाँ हैं और कौन जाने, कदाचित वे जवानी की निधियों से अधिक श्रेष्ठ हों। उसने अपनी पत्नी में एक नयी व्यग्रता पैदा होते देखी, लेकिन निष्कर्ष यह निकाला कि वह भी एक नेमत थी-शायद व्यग्रता माँ की ख़ुशी का वास्तविक सार हो।

जहाँ तक उसका अपना सम्बन्ध था, उसमें भय का लेशमात्र भी नहीं था। उसने अपने समय को अपने काम तथा बेटे के बीच पक्की तरह से बाँट दिया; दोनों विभागों में बहुत मेहनत की जाती। वीक्तर में रोज़-ब-रोज़ नयी उज्ज्वल सम्भावनाएँ प्रकट होतीं। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच को महसूस हुआ कि मानो वह एक ऐसे नये देश को खोज रहा है, जो प्राकृतिक वरदानों और अनपेक्षित सौन्दर्य से लबालब भरा है। वह अपनी पत्नी को इस सम्पूर्ण विपुलता के दर्शन कराता और वह उससे सहमत होती।

''देखो, हम लड़के पर कितनी मेहनत कर रहे हैं,'' वह कहता।

उसकी पत्नी मुस्कराकर उसे देखती और उसकी निर्मल पारदर्शी आँखों में उसे आह्लाद की मुस्कान नज़र आती, जो और भी अधिक सुन्दर होती, क्योंकि वह कभी-कभार ही प्रकट होती थी।

वीक्तर ने तेज़ी से प्रगति की। पाँच साल की आयु में वह जर्मन और रूसी भाषाएँ सही-सही बोलने लगा, दस वर्ष की उम्र में उसने क्लासिकी साहित्य से परिचय प्राप्त किया, बारह वर्ष में वह शिलर का मूल भाषा में अध्ययन करने लगा और उससे बहुत प्रभावित हुआ। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच लड़के के साथ चलता और उसकी तीव्र प्रगति से स्वयं चकित था। वह अपने लड़के की अनथक मानसिक ऊर्जा की चमक, उसकी प्रतिभा की अगम गहराई को तथा यह देखकर हक्का-बक्का रह जाता कि उसका लड़का विचारों के सर्वाधिक कठिन व गूढ़ अर्थों व शब्दों के सम्मिश्रों को समझने में किस आसानी के साथ पारंगत होता जा रहा है।

वीक्तर का जितना अधिक विकास होता, उसका चरित्र भी उतना ही निश्चित होता जाता था। उसकी आँखों से युवकोचित स्वतःस्फूर्ति की चमक जाने में देर नहीं लगी, वे अधिकाधिक निरन्तरता से सोचे-विचारे संयम और शंसा को अभिव्यक्त करने

लगीं। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच इसे प्रसन्नतापूर्वक देखता और इसमें उसे विश्लेषण की अपनी ही विशेष प्रतिभा के दर्शन होते। वीक्तर कभी भी दुर्व्यवहार नहीं करता था। स्नेहशील था तथा अन्य लोगों के साथ मिल-जुलकर रहता था, लेकिन उसके मुँह की गतियों में शीघ्र ही जानकारों की-सी अवज्ञा का ऐसा भाव पैदा हो गया मानो कुछ है, जिसे वह और केवल वही जानता है। यह उसकी माँ की युवावस्था की व्यंग्यपूर्ण मुस्कान से मिलता-जुलता था, लेकिन उसमें अलगाव और उदासीनता अधिक थी।

अवज्ञा का यह भाव शेष सारी दुनिया के लिये ही नहीं उसके अपने माता-पिता के लिए भी था। आत्मबलिदान के उनके कष्ट-साध्य काम, माता-पिता होने की उनकी ख़ुशी और विजय की उनकी भावना का वीक्तर द्वारा उनके योग्य यथोचित मूल्यांकन होता था। वह अच्छी तरह से जानता था कि उसके माता-पिता उसके वास्ते एक असाधारण जीवन-वृत्ति की तैयारियाँ कर रहे हैं और वह अपने को वैसा ही असाधारण होने में पूरी तरह से सक्षम समझता था। वह अपने बारे में अपनी माँ की आशंकाओं को जानता था और अच्छी तरह से जानता था कि वे किस क़दर बेबुनियाद हैं और वह जानकारों जैसी उसी मुस्कान से मुस्कराता। वीक्तर ग़लत नहीं था : वह अपने माता-पिता के प्यार, देख-रेख और विश्वास का एकमात्र पात्र था, परिवार का केन्द्र था, उसका एकमात्र सिद्धान्त था, उसका धर्म था। विश्लेषण की उसी, समय पूर्व जाग्रत शक्ति से, वयस्कों की पहले से ही उपार्जित तार्किक-क्षमता से वह घटनाओं के कार्यकारण-सम्बन्ध को स्वीकार करता था : उसके माता-पिता असहाय उपग्रहों की तरह उसके गिर्द घमूते हैं। यह एक सुविधाजनक आदत और एक रुचिकर कलात्मकता में विकसित हो गयी। यह माता-पिता को ख़ुशी देती थी, बेटा विनीत संयम के साथ उनका विरोध न करने के लिये तैयार था।

स्कूल में उसने शानदार तरक्की की और हर किसी को पीछे छोड़ दिया। उसके संगी-साथी क्षमता ही में नहीं, बल्कि जीवन के प्रति अपने रुख़ में भी उससे कमज़ोर थे। वे बातूनी, आसानी से उत्तेजित होनेवाले, आदिम प्रकार के खेलों में, मैदान पर नक़ली तुच्छ लड़ाइयों में हिस्सा लेकर सुखी होने वाले मामूली बच्चे थे। वीक्तर ने स्कूल में आसानी से परीक्षाएँ पास कर लीं। उसने छोटे-मोटे टकरावों में ऊर्जा बरबाद नहीं की और संयोगवशात उत्पन्न होनेवाली रुचियों में अपनी शक्ति नहीं लगायी।

केतोव परिवार का जीवन सुखपूर्वक चलता रहा। नीना वसील्येव्ना ने अपने पति के फ़ैसले की सच्चाई को स्वीकार किया : उनका लड़का एक अद्‌भुत आदमी के रूप में विकसित हो रहा था। उसे अपने पुराने सपनों का अफ़सोस नहीं रहा। उसके अन्तर की जिस कोमलता ने अपनी कल्पना में एक बड़े परिवार की तस्वीर बनायी थी, वह अब वीक्तर के लिये चिन्ता में तब्दील हो गयी थी। अपनी चिन्ता के कारण ज्ञान-शून्य होने की वजह से वह अपने बेटे में अवज्ञापूर्ण संयम की शुरुआत को देखने-समझने में अक्षम थी, इसे उसने बलशालिता का चिह्न समझा। उसने यह नहीं देखा कि उनके परिवार में भावनाओं की हार्दिकता खत्म हो गयी है और उसका स्थान

यथाक्रम यौक्तिकीकरण तथा लफ़्फाज़ी ने ले लिया है। यह बात न तो वह देख सकी न उसके पति कि एक विपरीत प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी : अब बेटा अपने माँ-बाप के व्यक्तित्वों की रचना करने लगा था। यह काम वह अचेतन रूप से, अपनी दैनिक इच्छाओं से निर्देशित होकर, बग़ैर किसी सिद्धान्त और लक्ष्य के कर रहा था।

अपने अध्यापक के सुझाव पर वीक्तर ने नवीं कक्षा की पढ़ाई ''छोड़ दी'' और विजयोल्लास के साथ विश्वविद्यालय की ओर बढ़ा। उसके माता-पिता ने दम साधकर उसके इस विजय-प्रयाण को देखा। इसी समय से माँ अपने बेटे की दासीवत सेवा करने लगी थी। अब केतोव परिवार के अन्दर शक्तियों का पुनर्वितरण आश्चर्यजनक रफ़्तार से पूरा हो गया और बेटे को शिक्षा देने का बारीक ज़रदोज़ी काम बग़ैर किसी झमेले की बातों के ख़ुद-ब-ख़ुद बन्द हो गया। पिता अभी भी अपने बेटे से कभी-कभार विभिन्न समस्याओं पर बातचीत कर लेते थे, पर उसमें पहले की विश्वासपूर्ण श्रेष्ठता का अभाव था, इसके अलावा अब उसके सामने ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसे शिक्षा लेने की ज़रूरत हो।

सत्रह वर्ष की अवस्था में वीक्तर को गणित संकाय में भर्ती कर लिया गया और वह अपने पाण्डित्य से, अपनी कुशाग्र बुद्धि और गणित की गहराइयों में पैठने की अपनी प्रबल क्षमता से प्रोफ़ेसरों को चकित करने लगा। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने अपना अध्ययन-कक्ष लगभग अनजाने ही उसे सौंप दिया। वह कक्ष एक पवित्र वेदी बन गया, क्योंकि अब वहाँ एक उच्चतर प्राणी के चरण जो पड़ने लगे थे-गणित का भावी विद्वान, नयी पीढ़ी का एक ऐसा प्रतिनिधि, जो मानवता के इतिहास को निस्सन्देह तड़ित वेग से आगे बढ़ायेगा। अपने गोपनीय चिन्तन में प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने कल्पना की कि इस पीढ़ी के काम व उसकी प्रगति निश्चय ही विस्मयजनक होंगे; उसने तथा उसके जैसे अन्य लोगों ने उसके वास्ते रास्ता साफ़ करने के लिये बहुत कुछ किया, ख़ास तौर पर गुणवत्ता के संकेन्द्रण के बारे में उसके बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय से वीक्तर जैसी असाधारण प्रतिभा की राह का निर्धारण हुआ। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच के अन्तर में पिता होने का नया गर्व जाग उठा, लेकिन उसके बाहरी व्यवहार पर निर्भरता के चिह्न पैदा हो गये। वह वीक्तर (''विजेता'') नाम का उच्चारण लगभग रहस्यमय सम्मान के रंग से करने लगा। अब वह काम से लौटने के बाद अपने आस-पास प्रसन्न दृष्टि से नहीं देखता, मज़ाक नहीं करता और मुस्कराता भी नहीं। वह अपनी पत्नी को देखकर सिर हिलाता है और अपने लड़के के बन्द दरवाज़े की तरफ़ देखता हुआ फुसफुसाकर पूछता है :

''क्या वीक्तर घर में है?''

''वह अध्ययन कर रहा है,'' नीना शान्ति से उत्तर देती है।

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच कहीं से पंजों के बल पर चलना सीख लाया है। अपने हाथों से सन्तुलन कायम करता हुआ वह दरवाज़े के पास आता है और उसे सतर्कता से खोलता है।

“क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?” वह कमरे के अन्दर सिर डालता हुआ पूछता है।

वह आनन्दित और आह्लादित होकर अपने बेटे के कमरे से वापस आता है और दबी जबान में कहता है : “वीक्तर बहुत अच्छा काम कर रहा है। बेहद अच्छा। उन्होंने उसे प्रोफेसर के पद के लिये तैयार करना तय कर लिया है।”

नीना वसील्येव्ना विनम्रता से मुस्कराती है।

“कैसी दिलचस्प बात है! लेकिन, मुझे चिन्ता हो रही है, तुम देखो ना, वह कुछ ज़्यादा मोटा जान पड़ता है। वह इतना ज़्यादा काम करता है, मुझे उसके हृदय के बारे में डर लगता है।”

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच घबराकर अपनी पत्नी की तरफ़ देखता है :

“क्या तुम समझती हो कि उसे हृदयरोग है?”

“मैं नहीं जानती, मुझे तो केवल डर लगता है...”

यह नयी चिन्ताओं और नयी आशंकाओं की शुरुआत थी। माता-पिता कई दिनों तक अपने बेटे के चेहरे को देखते हैं और प्रसन्नता, आस्था और शंका की मिली-जुली भावनाओं का अनुभव करते हैं। फिर नयी खुशियाँ और नयी ग़लतफ़हमियाँ पैदा होती हैं, वे जीवन को सराबोर कर देती हैं, ज्वार की तरंगों की तरह उमड़कर उसके तरों को आप्लावित कर देती हैं और जीवन की छोटी-मोटी घटनाएँ दृष्टि से ओझल हो जाती हैं। यह तथ्य छिप जाता है कि उनका बेटा काफ़ी लम्बे समय से स्नेहशीलता छोड़ चुका है, कि वह नेक शब्दों का उपयोग कभी नहीं करता, कि उसके पास दो-दो नये सूट हैं और उसके पिता के पास एक ही पुराना घिसा-पिटा लिबास है, कि उसकी माँ उसके नहाने का सरंजाम जुटाती है और उसके नहाने के बाद सफ़ाई करती है, पर उसका बेटा उससे “धन्यवाद” कभी नहीं कहता है। यह बात उससे छिप गयी है कि उसके माता-पिता बूढ़े हो रहे हैं कि पिता में सचमुच एक गम्भीर बीमारी के आशंकाजनक संकेत प्रकट हो रहे हैं।

वीक्तर ने अपने एक सहपाठी की अन्त्येष्टि में भाग नहीं लिया और घर पर बैठा एक पुस्तक पढ़ता रहा। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने आश्चर्य से इस बात पर ग़ौर किया :

“क्या तुम अंत्येष्टि में शामिल नहीं हुए?”

“ना, नहीं हुआ,” वीक्तर ने पुस्तक से आँख उठाये बिना कहा।

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने तीक्ष्ण दृष्टि से अपने बेटे को देखा और सिर भी हिलाया-उसे घोर अरुचि और बेचैनी की अनुभूति हुई। लेकिन इस अनुभूति का प्रभाव भी जल्द ही मिट गया और ठीक उसी तरह से बिसरा दिया गया जैसे कि ग्रीष्म के सुखद दिनों में कोई बुरा दिन भुला दिया जाता है।

माता-पिता ने एक नयी चौंकानेवाली विषयवस्तु को प्रकट होते हुए भी नहीं देखा : वीक्तर कितनी ही कुशाग्रबुद्धि से अध्ययन क्यों न करता हो वह अपने आपको सुखों से वंचित नहीं रखता था। वह अक्सर बाहर जाता और कभी-कभी शराब तथा औरतों की गन्ध लेकर वापस लौटता। उसकी अनवरत मुस्कान में स्मृतियाँ मँडराती

रहतीं, परन्तु वह अपने जीवन के इस पक्ष के बारे में पिता या माता को एक शब्द भी नहीं बताता था।

जब उसका लड़का उच्चतर शिक्षा के चौथे वर्ष में प्रविष्ट हो रहा था, तो प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच के पेट में अल्सर हो गया। वह दुर्बल हो गया और उसका वज़न घट गया। डाक्टरों ने शल्य चिकित्सा की राय दी और उसे आश्वस्त किया कि इससे वह बिल्कुल ठीक हो जायेगा, नीना वसील्येव्ना को इस ख़्याल से ही बेहोशी आ गयी कि उसके पति के पेट का एक टुकड़ा काट दिया जायेगा। पर वीक्तर रोज़ की तरह अपनी दूरस्थ ज़िन्दगी बिताता रहा। वह या तो अपने कमरे में ही रहता था या घर से बिल्कुल बाहर चला जाता था।

शल्य-चिकित्सा के बारे में कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच का एक पुराना दोस्त, जो एक सुज्ञात शल्यचिकित्सक था, बीमार की खाट के पास बैठा था और बहुत क्रोधित हो गया था। नीना वसील्येव्ना की समझ में नहीं आता था कि दुर्भाग्य के समय किसका मुँह जोहे।

ठाठ-बाट से कपड़े पहने, इत्र की खुश्बू उड़ाते हुए वीक्तर घर में आया। अपनी मुस्कान या भाव-भंगिमा को बदले बग़ैर उसने शल्य-चिकित्सक से हाथ मिलाया और कहा, ''अभी भी अपाहिज की चारपाई पर बैठे हैं? क्या समाचार है?''

प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने प्रसन्न होकर अपने लड़के की तरफ़ देखा :

''हम शल्यक्रिया की बात सोच रहे हैं। वे मुझे इसके लिये राजी कर रहे हैं...''

वीक्तर ने अपनी रोज़ की मुस्कान के साथ अपने पिता की बात काट दी :

''डैडी, आपके पास पाँच रूबल तो नहीं हैं? मेरे पास थियेटर का टिकट है... सिर्फ़ इसलिये चाहिये कि कहीं ज़रूरत न पड़ जाये। मैं तो दिवालिया हो रहा हूँ।''

''अच्छा,'' प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने कहा। ''नीना, तुम्हारे पास कुछ रूबल हैं, हैं ना? वे कहते हैं कि यह आपरेशन जल्दी ही होना चाहिये, लेकिन नीना घबरा रही है। और मैं ख़ुद समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ...''

''इसमें डर की क्या बात है? तुम्हें मिल गये?'' वीक्तर अपनी माँ के पाँच रूबल लेते हुए कहा। ''आप जानते हैं, यह ज़रा भद्दा लगता है... थियेटर में बिना पैसे के बैठना।''

''तुम किसके साथ जा रहे हो?'' प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने अपने अल्सर का कष्ट भूलकर पूछा।

''यों ही कोई है,'' लड़के ने टालते हुए कहा और ख़ुद भी पिता के अल्सर की बात भूलते हुए माँ से कहा, ''माँ, हो सकता है मुझे देर हो जाये, मैं चाभी साथ ले जाऊँगा।''

शल्यचिकित्सक की तरफ़ विदाई के अन्दाज में झुकते हुए तथा अपनी सहज मुस्कान के साथ वह चलता बना।

और उसके माँ-बाप ने ऐसे देखा जैसे कोई विशेष बात हुई ही न हो।

कुछ दिन बाद प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच को गम्भीर दौरा पड़ा। उसका शल्यचिकित्सक दोस्त जब आया तो वह बहुत नाराज़ था :

''तुम क्या हो? सुसंस्कृत लोग हो या जंगली?''

उसने अपनी आस्तीन समेटी, देखा, सुना, खाँसा और खरी-खोटी सुनाई। नीना वसील्येव्ना दवाफ़रोश के यहाँ दौड़ी और कुछ दवाओं के आर्डर दे आयी। जब वह वापस लौटी, तो उसका चेहरा भय से पीला पड़ गया था।

''हाँ, तो वे अब कैसे हैं?'' वह बारम्बार पूछती और हर समय घड़ी की तरफ़ देखती रहती कि कब आठ बजे-आठ बजे दवा तैयार हो जानी थी। बीच-बीच में वह बर्फ़ लाने के लिये रसोई की ओर दौड़ती थी।

वीक्तर अपने कमरे से निकला और बाहर जानेवाले दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। उसकी माँ रसोईघर से भागी-भागी आयी और थकी-थकी काँपती-सी आवाज़ में बोली :

''वित्या, तुम दवाफ़रोश के यहाँ जा सकते हो ना? अब दवा तैयार होगी और... उसकी कीमत अदा कर दी गयी है। उन्हें दवा देनी ही है।''

अस्त-व्यस्त बाालोंवाले अपने सिर को घुमाते हुए प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच ने अपने बेटे की तरफ़ देखा और जबरन मुस्कराया। पेट का अल्सर होने पर भी अपने जवान प्रतिभावान लड़के को देखना सुखद था। वीक्तर ने अपनी माँ की तरफ़ देखा और वह भी मुस्कराया : ''नहीं मैं नहीं जा सकता। मैं जल्दी में हूँ। मैं चाभी अपने साथ ले जाऊँगा।''

शल्यचिकित्सक उछलकर खड़ा हो गया और झपटकर उनकी तरफ़ लपका। यह स्पष्ट नहीं था कि वह क्या करने जा रहा है, लेकिन उसका चेहरा फक पड़ गया था। परन्तु उसने हार्दिकतापूर्ण सहज स्वर में यही कहा, ''उसे क्यों परेशान किया जाये? बेशक मैं दवा ला सकता हूँ। यह तो निहायत मामूली बात है!''

उसने लपककर नीना वसील्येव्ना के हाथ से नुस्खा ले लिया। दरवाज़े पर वीक्तर उसका इन्तज़ार कर रहा था।

''आप शायद दूसरी तरफ़ जा रहे हैं, दूसरी तरफ़?''उसने कहा, ''मैं केन्द्र की ओर जा रहा हूँ।''

''बिल्कुल सही, दूसरी तरफ़,'' डाक्टर ने कहा और धड़धड़ाते हुए सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

जब वह दवा लेकर लौटा, तो प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच उसी करवट लेटा हुआ था, अस्त-व्यस्त बालोंवाला उसका सिर तकिये पर टिका था, उसकी उजली, बुखार से जलती आँखें वीक्तर के कमरे के दरवाज़े पर टिकी थीं। वह अपने दोस्त को धन्यवाद देना भी भूल गया और उस सारी शाम सामान्यतः कुछ अधिक बोला भी नहीं। केवल जब उसका दोस्त चलने लगा, तो उसने निर्णायक स्वर में कहा, ''आपरेशन कर दो... मुझे कोई चिन्ता नहीं।''

नीना वसील्येव्ना धम से कुर्सी पर बैठ गयी : उसके जीवन में यह पता लगाना

बेहद कठिन हो गया था कि सुख कहाँ पर खत्म हुआ और दुख कहाँ से आरम्भ हुआ। सुख और दुख सहसा अनपेक्षित रूप से एक जैसे प्रतीत होने लगे।

प्रसंगतः आपरेशन सफल रहा।

मैंने इकलौते राजकँवर से पुत्र की सिर्फ़ एक कहानी सुनायी है। ऐसी अनेक कहानियाँ हैं। इकलौते बच्चे वाले माता-पिता को मेरे ख़िलाफ़ शस्त्र उठाने की कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि मैं उन्हें डराना नहीं चाहता। मैं सिर्फ़ उस घटना का वर्णन भर कर रहा हूँ, जिसे मैंने होता हुआ देखा है।

ऐसे परिवारों में कुछ अच्छे मामले भी होते हैं। कुछ माता-पिताओं में असाधारण संवेदनशीलता होती है, जो उन्हें सही ढंग की पारिवारिक भावना बनाने और अपने बेटे के लिये साहचर्य का संगठन करने में, जो कुछ हद तक भाइयों और बहनों की कमी को पूरा कर सकता है, उन्हें समर्थ बनाती है। अपने देश में मैं अकेली रहने वाली माताओं या विधुर पिताओं के इकलौते बच्चों से बहुधा ऐसे बच्चों से मिलता हूँ, जो बहुत उच्चतम चरित्र के होते हैं। इस मामले में, अकेलेपन की असन्दिग्ध कठिनाई अथवा भारी हानि बच्चों के प्यार तथा उनके माता-पिता की देखरेख को प्रबल प्रेरणा देती है, और अहंवाद के विकास को रोक देती है। लेकिन ऐसे मामले दुख के वातावरण में पैदा होते हैं और वे स्वयं में अस्वास्थ्यकर होते हैं तथा इकलौते बच्चे की समस्या को किसी भी तरह से हल नहीं करते हैं। इकलौते बच्चे पर माता-पिता के प्रेम का संकेन्द्रण बड़ी भूल है।

बड़े परिवारों के बच्चों की भारी सफलता की पुष्टि के लिये लाखों-जी हाँ, लाखों-उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसके विपरीत इकलौते बच्चे की सफलता के मामले बहुत कम ही होते हैं। जहाँ तक मेरे व्यक्तिगत अनुभव का सम्बन्ध रहा है, सबसे ज़्यादा बेलगाम अहंवाद, जो माता-पिता की ख़ुशी को ही चौपट नहीं करता, बल्कि स्वयं बच्चों की सफलता को भी नष्ट कर देता है, लगभग हमेशा इकलौते बेटों और बेटियों में ही होता है।

सोवियत परिवार में इकलौता बच्चा देखभाल का ऐसा केन्द्र बिन्दु बन जाता है, जो उसे नहीं बनना चाहिये। माता-पिता, चाहने पर भी, हानिकारक केन्द्राभिसारी दासता से मुक्त नहीं हो सकते। ऐसे स्थितियों में माता-पिता का अस्वाभविक रूप से दुर्बल प्यार ही कुछ हद तक इस ख़तरे को कम कर सकता है। लेकिन अगर यह प्यार सामान्य क्षमता का है, तो परिस्थिति पहले से ही ख़राब है : इस एक बच्चे पर माता-पिता की ख़ुशी की सारी संभावनाएँ आधारित हैं, उसे गँवाने का मतलब है सब कुछ गवाँ देना।

एक बड़े परिवार में एक बच्चे की मृत्यु से गहरा दुख होता है, लेकिन यह महाविपत्ति कभी नहीं होती, क्योंकि शेष बच्चों के लिये तब भी, पहले की ही तरह, प्यार की और देखभाल की ज़रूरत होती है। वे, वस्तुतः, परिवार के सामूहिक निकाय की बरबादी के ख़िलाफ़ बीमे का काम करते हैं। और हाँ, सूने कमरों के अन्दर माँ

और बाप के अकेले पड़े रह जाने के दृश्य से अधिक दुखद दृश्य और कोई नहीं होता। वे ख़ाली कमरे उन्हें हर क़दम पर उस मृत बच्चे की याद दिलाते हैं। इसीलिये यह बात बिल्कुल अनिवार्यतः सही है कि यदि परिवार में एक ही बच्चा है, तो चिन्ता, अन्धा प्यार, शंका और घबराहट उसी पर संकेन्द्रित हो जाती है।

साथ ही ऐसे परिवार में ऐसी कोई चीज़ नहीं होती, जो सहज ही इसका प्रतिकार कर सके। भाई और बहनों-बड़े अथवा छोटे- के न होने से दूसरों का लिहाज़ करने का अनुभव नहीं होता, खेल का, प्यार और सहायता का, अनुकरण और सम्मान का अनुभव नहीं होता और, अन्तिम बात, मिल-जुलकर हिस्सा बँटाने का, सर्वनिष्ठ उल्लास व श्रम का भी कोई अनुभव नहीं होता-संक्षेप में उस परिवार में कुछ नहीं होता, सामान्य साहचर्य भी नहीं होता।

कुछ विरले ही मामले ऐसे होते हैं जहाँ स्कूल व्यक्तिवाद के विकास पर स्वाभविक रोक को फिर से लागू करने में कामयाब हो जाता है। स्कूल के लिये यह बहुत कठिन काम है, क्योंकि परिवार की परम्पराएँ पहले की ही दिशाओं में काम करती हैं। ऐसी समस्या बच्चों के संवृत संस्थानों, जैसे दृज़ेर्जीन्स्की कम्यून, की ही समस्याओं के दायरे में आती है और सामान्यतः यह कम्यून मसले को आसानी से सुलझा लेता है। लेकिन स्पष्ट है कि ऐसी रोक की व्यवस्था स्वयं परिवार में करना बेहतर है।

किसी सोवियत परिवार में इकलौते बच्चे के लालन-पालन का ख़तरा वस्तुतः इस तथ्य के बराबर है कि परिवार में सामूहिक निकाय के गुण नहीं रहे। ''इकलौते बच्चे'' की व्यवस्था के अन्तर्गत सामूहिकता यांत्रिक ढंग से लुप्त हो जाती है : परिवार को एक समूह बनाने के लिये पर्याप्त भौतिक तत्व नहीं रहते, परिणाम और विविधता दोनों ही दृष्टियों से पिता-माता और बच्चा एक ऐसी कमज़ोर संरचना की रचना कर पायेंगे, जो अनुपात बिगड़ने के पहले ही संकेत पर धराशायी हो जाती है और अनुपात का ऐसा बिगाड़ हमेशा बच्चे की केन्द्रीय स्थिति से पैदा होता है।

एक पारिवारिक समूह को इसी तरह की ''यांत्रिक'' प्रकृति के अन्य आघात भी लग सकते हैं। माता-पिता में से किसी एक की मृत्यु ऐसे आघात का एक उदाहरण हो सकता है। ऐसे मामलों में से अधिकांश में इस प्रकार का भयावह आघात भी महाविपत्ति नहीं लाता और उससे परिवार की सामूहिकता छिन्न-भिन्न नहीं होती। सामान्यतः परिवार के शेष सदस्य उसकी पूर्णता को बनाये रखते हैं। जो भी हो जिन आघातों को हम सशर्त ''यात्रिक'' कहते हैं, वे सर्वाधिक विनाशक नहीं होते।

पारिवारिक समूह के लिये उन विनाशक प्रभावों को बर्दाश्त करना कहीं अधिक कठिन होता है, जो विघटन की लम्बी प्रक्रिया से सम्बन्धित होते हैं। इन प्रक्रियाओं को पहले की ही भाँति सशर्त ''रासायनिक'' प्रक्रियाएँ कहा जा सकता है। मैं पहले ही संकेत कर चुका हूँ कि इकलौता बच्चा होने से सामूहिकता की जो हानि होती है, उससे इसी तथ्य के कारण विफलता हाथ आती है कि यह माता-पिता के वात्सल्य की अतिवृद्धि के रूप में अनिवार्यरूपेण एक ''रासायनिक'' अनुक्रिया को जन्म देती

है। परिवार में ''रासायनिक'' अनुक्रिया का होना सर्वाधिक भयानक होता है। ऐसी अनुक्रिया के कई रूपों की चर्चा की जा सकती है, लकिन मैं उस एक की ख़ास तौर से चर्चा करना चाहता हूँ, जो सबसे ज़्यादा ख़राब और अधिकतम हानिकारक है।

रूसी और विदेशी लेखकों ने मानव मन की अन्तरतम गहराइयों को देखा है। जैसा कि हर कोई जानता है, साहित्य ने अपराधी चरित्र को या सामान्यतः अस्वस्थ चरित्र को सामान्य, साधारण या सकारात्मक नैतिक व्यक्ति के चरित्र के बजाय ज़्यादा अच्छी तरह से उजागर किया है। हम अनेक साहित्यिक रूपों में, हत्यारों, चोरों, गद्दारों, धोखेबाजों और छोटे-मोटे ठगों की मानसिकता से परिचित हैं।

साहित्य के महारथियों के प्रति न्याय करने के लिये यह कहना होगा कि वे अपने पतित नायकों के प्रति क्रूर कभी नहीं रहे, इन लेखकों ने हमेशा ऐतिहासिक मानववाद के प्रतिनिधियों की हैसियत से अपनी बात कही, जो निस्सन्देह एक उपलब्धि है, मानवजाति का एक आभूषण है। ऐसा प्रतीत होता है कि सारे अपराधों में केवल विश्वासघात ही ऐसा अपराध है जिसे साहित्य में, सिवाय लेओनीद अन्द्रेयेव* के 'जूदास इस्कारियत'** के, कोई सहानुभूति नहीं मिली। बल्कि इस मामले में अन्द्रेयेव की सफाई भी बेहद कमज़ोर और अस्वाभाविक है। शेष सभी मामलो में अपराधी या टुच्चे-बदमाश के अन्धकारपूरित अन्तर में हमेशा एक उजाला कोना, एक मरुद्यान होता है, जिसकी कृपा से नीचतम मनुष्य भी मनुष्य बने रहते हैं।

बहुधा, यह कोना अपने या किसी और के बच्चों के प्रति प्यार का कोना होता था। बच्चे मानवीय विचार का एक अभिन्न अंग हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि वे उस सीमा के निशान हैं, जिससे अधिक नीचे कोई आदमी गिर नहीं सकता है। बच्चों के विरुद्ध अपराध मानवता की सीमा से नीचे हैं और बच्चों के प्रति प्यार से सर्वाधिक नीच व्यक्ति का भी किंचित औचित्य सिद्ध हो जाता है।

लेकिन साहित्य की शिकायत करने का भी कारण है। एक ऐसा अपराध है, जिस पर इसने काम नहीं किया है, और यह ऐसा ही अपराध है, जिसमें बच्चों को हानि होती है। मुझे ऐसी किसी भी कृति की याद नहीं है जिसमें ऐसे पिता या माता की मानसिकता का चित्रण हो जिन्होंने नन्हे बच्चों के प्रति अपनी माता-पिता की ज़िम्मेदारी का परित्याग करके उन्हें क़िस्मत के भरोसे जीने के लिये छोड़ दिया हो। साहित्य में परित्यक्त अवैध बच्चों की चर्चा तो अवश्य मिलती है, लेकिन ऐसे मामलों में सर्वाधिक मानवीय लेखकों ने भी माता-पिता की समस्या के बजाय एक सामाजिक

---

* ले.नि. अन्द्रेयेव (1871-1919) रूसी लेखक। जूदास इस्कारियत' उनकी एक रचना है।**-सं.**

** जूदास इस्कारियत-धार्मिक शिक्षा के अनुसार, ईसा मसीह के बारह शिष्यों में एक, जिसने चाँदी के तीस सिक्कों की ख़ातिर अपने गुरु के साथ विश्वासघत किया। जूदास इस्कारियत का नाम विश्वासघाती के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किा जाता है।**-सं.**

समस्या को ही देखा है। वास्तव में उन्होंने इतिहास का सही चित्रण किया है। जिस भूस्वामी ने एक किसान लड़की को बच्चे सहित त्याग दिया उसने अपने को पिता नहीं माना, उसके लिये सिर्फ़ वही लड़की और उसका बच्चा ही नहीं, बल्कि लाखों अन्य किसान भी ऐसे ''पशु'' थे, जिनके साथ वह किसी भी नैतिक दायित्व से नहीं बँधा था। इस मामले में वह किसी प्रकार के पैतृक या दाम्पतिक सम्बन्धों को महज़ इसलिये नहीं जानता था कि ''नीच वर्ग'' किसी भी प्रकार के सम्बन्धों की सीमा से परे थे।

एक पिता, जो बच्चों को छोड़कर (कुछ मामलों में जीवन-निर्वाह के साधन के बिना ही) चला जाता है, उसके मामले को भी हम एक यांत्रिक घटना मानने को प्रवृत्त हो सकते हैं, ऐसा मानने पर हमें उस परिवार की स्थिति के बारे में अधिक आशावादिता का अहसास होगा। जब उसने उन्हें छोड़ दिया, तो छोड़ ही दिया और आप इस मामले में कुछ नहीं कर सकते हैं-परिवार से पिता की मूर्ति ग़ायब हो गयी, स्थिति स्पष्ट है : पारिवारिक समूह को बग़ैर पिता के रहना होगा, आगे के संघर्ष के लिये अपनी सारी सामर्थ्य को एकजुट करना होगा। यदि ऐसा है, तो परिवार की स्थिति उस स्थिति से ज़रा भी भिन्न नहीं होगी, जो पिता के मरने पर परिवार के यतीम हो जाने पर होती है।

परन्तु इन मामलों में से बहुत अधिक ऐसे होते हैं, जिनमें परित्यक्त बच्चों की स्थिति यतीमों से कहीं ज़्यादा पेचीदा और ख़तरनाक होती है।

अभी कुछ ही समय पहले तक येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना का जीवन अच्छा था। उसके मन में भी अभी भी अपने उस प्यार की जीवन्त व सौम्य स्मृतियाँ शेष थीं, जो उसकी जवानी में सुख की आँधियाँ लेकर आया था। उस प्यार ने जीवन के एक बड़े कार्य के रूप में, उस परिवार के रूप में अपनी शान्तिमय छाप छोड़ी थी, जिसने उसे इस पूर्णता का अहसास कराया कि उसका जीवन ईमानदारी से, बुद्धिमानी से और सुन्दरता से ऐसे जिया जा रहा है जैसे कि जिया जाना चाहिये। अगर बसन्त बीत गया, तो क्या हुआ, प्रकृति के उसी कठोर नियम से शान्त ग्रीष्म की अगवानी करो। भविष्य में अभी भी पर्याप्त ऊष्मा है, धूप और उल्लास है।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना अपने परिवार का दायित्व अपने पति जूकोव से मिलकर निभाती थी। अभी कुछ ही समय तक जूकोव और वह एक-दूसरे को प्यार करते थे। उनके बीच अभी भी कोमलता की, साहचर्यपूर्ण कृतज्ञता और मैत्रीपूर्ण सरलता की भावनाएँ थीं। जूकोव का चेहरा लम्बा और नाक ज़ीन जैसी थी। उसे जीवन ने हर मोड़ पर कम लम्बे चेहरे और अधिक सुन्दर नाक वाले लोग पेश किये थे, लेकिन उनके सन्दर्भ में प्यार की, ख़ुशी की, तय की हुई राहों की, भविष्य के सुखों की कोई भी यादें नहीं थीं और येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना उस पेशकश से कभी ललचायी नहीं थी। जूकोव एक अच्छा, ध्यान देने वाला पति, प्यार करने वाला पिता और एक सज्जन

व्यक्ति था।

अचानक और क्रूरता के साथ उसका जीवन बर्बाद कर दिया गया। एक शाम जूकोव काम से घर नहीं लौटा और दूसरे दिन सुबह येव्गेनिया को एक छोटा-सा पत्र मिला।

''येव्गेनिया, मैं अब तुमको अधिक धोखा देना नहीं चाहता। तुम समझ जाओगी- मैं अन्तिम दम तक ईमानदार रहना चाहता हूँ। मुझे आन्ना निकोलायेव्ना से मुहब्बत है और अब मैं उसके साथ रह रहा हूँ। मैं बच्चों के लिये तुम्हें दो सौ रुपये प्रतिमास भेजता रहूँगा, मुझे क्षमा करना। हर बात के लिये धन्यवाद।''

जब येव्गेनिया ने यह पत्र पढ़ा, तो उसने सिर्फ़ यह महसूस किया कि कोई भयावह बात हो गयी है, लेकिन वह क्या हुआ है, इसकी वह कल्पना नहीं कर पायी। उसने पत्र को दूसरी बार पढ़ा, और फिर तीसरी बार पढ़ा। धीरे-धीरे हर पंक्ति ने अपना रहस्य उद्घाटित कर दिया, और हर रहस्य लिखित पंक्तियों से बेहद भिन्न था।

येव्गेनिया ने असहाय होकर इधर-उधर देखा, माथे पर उँगलियाँ फेरीं और फिर वापस उस पत्र को पढ़ने लगी, मानो उसमें कोई ऐसी चीज़ थी, जिसे उसने अभी तक नहीं पढ़ा था। और तब उसने सचमुच ही कुछ नया देखा : मैं अन्तिम दम तक ईमानदार रहना चाहता हूँ।'' पल भर के लिये उसे आशा की एक हलकी झलक-सी दिखायी दी, और फिर, उसी भय के साथ उस महाविपत्ति का अहसास हुआ, जो उस पर टूट पड़ी थी।

उसके दिमाग़ में ढेरों अनचाहे तुच्छ विचार का बवण्डर उठा : दो सौ रूबल, बड़ा ऐशो-आराम का फ़्लैट, दोस्तों के चेहरे, किताबें, पुरुष के सूट। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने अपने सिर को हिलाया, भौंहें सिकोड़ी और सहसा सबसे भयानक और असली अपमान को समझ लिया : वह एक परित्यक्ता पत्नी थी! नहीं, यह कैसे हो सकता है?! लेकिन बच्चों का क्या होगा?! उसने संत्रस्त होकर अपने चारों ओर देखा : वहाँ सब कुछ सामान्य था, शयन-कक्ष में पाँच बरस की ओल्या कुछ फड़फड़ा रही थी, बग़ल के फ़्लैट से हल्की ठकठक आवाज़ आ रही थी। अचानक एक असह्य संवेद उसे बींध गया-येव्गेनिया को लगा कि किसी ने उसे ईगोर और ओल्या सहित एक पुराने अख़बार में लापरवाही से लपेटकर कूड़ेदान में फेंक दिया है।

एक दिन स्वप्नवत बीत गये। इनमें से कुछ में शान्ति विवेक के ऐसे क्षण भी थे, जब येव्गेनिया लिखने की मेज़ पर, कुर्सी में बैठी, एक के ऊपर एक बँधी मुठ्ठियों पर सिर को टिकाये विचार करती थी। शुरू में उसके विचार सिलसिलेवार चलते-दर्द और दुख और आगे की कठिनाइयाँ और जूकोव के प्रति प्यार के कुछ अवशेष उसके सामने इस तरह क़तार बाँधे खड़े हो जाते मानो वे यह चाहते हों कि वह उनका ग़ौर से मुआयना करे और इस सारी गुत्थी को सुलझाये।

लेकिन उसके अनजाने ही एक मुट्ठी खुलती है और उसका हाथ आँखों को ढँक लेता है, उनसे आँसू बहते हैं और उसके विचारों में केई व्यवस्था नहीं रह जाती,

सिर्फ़ वेदना की ऐंठन और अकेलेपन का असह्य अहसास बचा रहता है।

उसके बच्चे उसके इर्द-गिर्द वैसे ही रहते, खेलते और हँसते थे। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना घबराहट में उनकी तरफ़ नज़र डालती, जल्दी-जल्दी ख़ुद को सँभालती, मुस्कराती और कुछ सार्थक शब्द कहती। लेकिन उसकी आँखों में जो भय का भाव था, उसे वह छुपा नहीं पाती थी और बच्चे उसकी तरफ़ आश्चर्य से देखने भी लगे थे। पहले दिन जब उसे याद आया कि उसे बच्चों को पिता की अनुपस्थिति का कारण समझाना होगा, तो उसे लगा कि उसका हृदय व्यथा से आक्रान्त हो गया और उसके दिमाग़ में जो पहली बात आयी, वही कह डाली।

'डैडी दूर चले गये हैं और कुछ समय तक वापस नहीं आयेंगे। उन्हें किसी काम पर भेजा गया है, दूर, बहुत दूर!

लेकिन 'कुछ समय' और 'बहुत दूर' शब्दों का पाँचवर्षीय ओल्या के लिये कोई ख़ास अर्थ नहीं था। जब भी घण्टी बजती वह द्वार की ओर दौड़ जाती, और फिर उदास होकर माँ के पास लौट आती।

''वह कब वापस आयेंगे?''

इस अशुभ स्वप्न में खोयी हुई येव्गेनिया को यह भी पता नहीं लग पाया कि उसे जो आघात लगा था, उसका दुष्प्रभाव दूर होने लगा है : अब, जब वह सुबह उठती, तो उसे संत्रास का अनुभव नहीं होता था, वह व्यावहारिक बातों के बारे में सोचने लगी, उसने तय किया कि किन वस्तुओं को पहले बेचना है। उसका रोना भी कम हो गया था। आठ दिन बाद जूकोव ने एक रूखे पुर्ज़े के साथ एक अजनबी औरत को भेजा।

''कृपया इस पत्र-वाहक को मेरे अंगवस्त्र और सूट दे देना तथा मेरा रेजर-सेट व वे एल्बम दे देना, जो मुझे काम पर उपहार में मिले थे और मेरा जाड़े का कोट व पत्रों का वह बण्डल भी देना, जो डेस्क की बीचवाली दराज़ में-पीछे की तरफ़ है।''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने हैंगर पर लटके तीन सूटों को उतारा, उन्हें लपेटने के लिये सोफ़े के ऊपर कई अख़बार फैलाये। तभी उसे याद आया कि उसने अंगवस्त्र और रेज़र-सेट व चिट्ठियाँ भी मँगायी है, वह सोचने लगी। दस वर्षीय ईगोर उसकी बग़ल में खडा था और अपनी माँ को ध्यान से देख रहा था। उसकी उलझन को देखकर वह बोला, 'माँ, इन्हें मैं लपेट दूँ, मैं लपेट दूंगा, माँ?''

''हे भगवान!'' येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना सोफ़े पर बैठ गयी और उसकी रुलाई लगभग फूट ही निकली थी कि उस अजनबी औरत की ख़ामोश आकृति पर उसकी नज़र पड़ गयी और वह चिढ़कर बोली : ''तुम इस तरह आते समय क्या सोच रही थी... यों खाली हाथ! तुम यह उम्मीद कैसे करती हो कि मैं सब पैक कर दूँगी?''

उस औरत ने सोफ़े पर फैले अख़बारों की तरफ़ समझदारों की-सी सहानुभूति के साथ देखा और मुस्कराई।

''उन्होंने मुझे बताया कि तुम कुछ न कुछ कर लोगी, कोई टोकरी या कोई सूटकेस...''

ईगोर उछला और चिल्लाया, 'टोकरी? मम्मी, यहाँ एक टोकरी है। टोकरी ... तुम जानती हो कहाँ है? आलमारी के पीछे! आलमारी के पीछे! क्या मैं उसे ले आऊँ?'

''कौन-सी टोकरी?'' येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने अस्पष्ट-सा प्रश्न पूछा।

''वह आलमारी के पीछे है! तुम जानती हो, हॉल की आलमारी! क्या मैं उसे ले आऊँ?''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने ईगोर की आँखों में देखा। उनमें टोकरी को लाने की उत्फुल्लित कामना अभिव्यक्त होती थी। इससे सांत्वना पाकर येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना मुस्करा उठी :

''तुम कैसे ला सकते हो, बेटे! मेरे बच्चे, तुम तो ख़ुद भी टोकरी से बड़े नही हो, मेरे लाड़ले।''

येव्गेनिया ने अपने बेटे को अपनी तरफ़ खींचा और उसका माथा चूमा। लेकिन ईगोर के मन में टोकरी बसी थी।

''वह हल्की है!'' वह अपने आप को छुड़ाते हुए ज़ोर से बोला। ''वह तो बिल्कुल हल्की है। माँ, तुम्हें पता नहीं कितनी हल्की है!''

इस शोर से आकर्षित होकर ओल्या शयन-कक्ष में चली आयी, उसका खिलौने का भालू उसके हाथ में था। ईगोर झपट कर हॉल को गया और वहाँ से खुरचने और चरमराने की सी आवाज़ें आयीं।

''हे प्रभो, हे प्रभो!''येव्गेनिया ने कहा और उस औरत की तरफ़ मुड़ते हुए कहा, ''कृपया मुझे वह टोकरी लाने में मदद करो।''

सब मिलकर टोकरी लाये और उसे कमरे के बीच में खड़ा कर दिया। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने टोकरी को पैक करना शुरू कर दिया। अगर वह उन्हें बुरी तरह से पैक करती, तो उसे शर्मिंदगी उठानी पड़ती, इसलिये उसने जैकेटों के मोड़ों और किनारों को सावधानी से व्यवस्थित किया और पतलूनों की जेबों और टाइयों को सीधा किया। इस कार्यवाही को ओल्या और ईगोर ने गम्भीर दिलचस्पी से देखा और जब उनकी माँ को पैक करने में कठिनाई हुई, तो मुँह बनाया। उसके बाद येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने अंगवस्त्र टोकरी में रखे।

''तुमने कमीज़ों का कैसा ढेर लगा दिया,'' ईगोर ने कहा, ''सूटों की इस्तरी ख़राब हो जायेगी।''

''हाँ ऐसा ही है...'' येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने हामी भरी। सहसा उसमें रोष का ज्वार-सा उमड़ आया।

''अरे, भाड़ में जायें ये चीज़ें! वे इस्तरी कर सकते हैं! इसका मुझसे क्या लेना-देना!''

ईगोर ने हैरानी से उसकी तरफ़ देखा। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने रुष्ट होकर पत्रों के तीन बण्डलों और रेजर-सेट को टोकरी में पटक दिया। लाल खोल खुल गया और नीले क़ागज़ों में लिपटे ब्लेड बिखर गये।

''अरे, तुमने यह क्या कर दिया!'' ईगोर असन्तुष्ट होकर चिल्लाया और ब्लेडों

को जमा करने लगा।

''जहाँ तुम्हारी ज़रूरत नहीं है, वहाँ बेकार दख़ल मत दो!'' येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने ईगोर के हाथ खींचकर अलग हटाते ओर टोकरी का ढक्कन झटक कर बन्द करते हुए कहा। ''ले जाओ इसे,'' उसने इस औरत से कहा।

''कोई सन्देसा?''

''कैसा सन्देसा?! कौन सन्देसा! जाओ यहाँ से!''

उस औरत ने मौके की नज़ाकत को देखते हुए कोई और प्रश्न नहीं पूछा, टोकरी को उठाकर कन्धे पर रखा, दरवाज़े से सावधानी के साथ निकली और चली गयी।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने निस्तेज निगाहों से उसे जाते देखा, सोफ़े पर बैठी और रोने लगी। बच्चे ताज्जुब से उसे ताकते रहे। ईगोर ने अपनी नाक सिकोड़ी और लिखने की मेज़ के मेज़पोश में बने उस छेद में उँगली डालने लगा, जो बहुत समय पहले जूकोव की सिगरेट से जलने पर हो गया था। ओल्या अविनीत ढंग से भौंहें सिकोड़ती दरवाज़े से टिक गयी और उसकी तिरछी नज़र माँ को देखती रही। उसने अपने खिलौने को फ़र्श पर पटक दिया। जब उसकी माँ सँभली, तो वह उसके पास गयी और अप्रसन्नता से बोली :

''वह औरत टोकरी क्यों ले गयी? क्यों ले गयी? वह कौन थी?''

माँ की ख़ामोशी को पहले जैसी ही अविनय से बर्दाश्त करते हुए वह फिर बड़बड़ायी, ''उसमें डैडी की कमीज़ें और जाकेटें थीं... वह उन्हें क्यों ले गयी?''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने उसकी गहरी पतली आवाज़ सुनी, उसे सहसा याद आया कि बच्चों को अभी भी कुछ ज्ञात नहीं है।

सूटों का भेजा जाना ओल्या के लिये भी एक सन्देहास्पद घटना थी। जहाँ तक ईगोर का सम्बन्ध था, वह शायद पहले से ही सब कुछ जानता था, हो सकता है उसे अहाते में किसी ने बता दिया होगा। यह स्वाभाविक था कि जूकोव के ग़ायब होने की घटना ने सभी का ध्यान आकृष्ट किया था।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने ईगोर को घूरकर देखा। कुल मिलाकर उसकी मुद्रा और ध्यानावस्था के दर्द भरे भाव में कोई उलझाने वाली चीज़ थी। ईगोर ने अपनी माँ की तरफ़ देखा, और फिर मेज़पोश के उसी छेद की तरफ़ नज़र झुका ली। ओलया, जो अभी भी अपने प्रश्न के उत्तर की धैर्य से प्रतीक्षा कर रही थी, को नज़रअन्दाज़ करते हुए उसने ईगोर का हाथ पकड़ लिया। वह आया और विनयपूर्वक उसके सामने खड़ा हो गया।

''तुम कुछ जानते हो?'' येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने व्यग्रता से पूछा।

ईगोर ने आँखें झपकायीं और मुस्कराया।

''मैं समझा नहीं कि तुम्हारा क्या मतलब है! मुझे क्या मालूम होना चाहिये?''

''तुम पिता के बारे में कुछ जानते हो?''

ईगोर गम्भीर हो गया।

‘‘पिता के बारे में?’’

खिड़की से बाहर की ओर देखते हुए उसने अपना सिर हिलाकर हामी भरी। ओल्या ने अपनी माँ की आस्तीन खींची और उसकी पतली क्रुद्ध आवाज़ ने ईगोर के ख़ामोश उपेक्षाभाव को अधिक सबल बना दिया।

‘‘वह औरत उनकी कमीज़ों को उनके पास क्यों ले गयी, ममी बताओ, क्यों ले गयी?’’

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना निर्णायक ढंग से उठी और कमरे के पार तक चली।

उसने एक बार फिर बच्चों की तरफ़ देखा। अब वे एक दूसरे की तरफ़ देख रहे थे और ओल्या अपने भाई की तरफ़ खेल के अन्दाज़ में आँखों से इशारा करने लगी थी, उसे जीवन में किसी असुखद चीज़ की कोई अपेक्षा नहीं थी और वह इस तथ्य से बेख़बर थी कि उनके पिता उन्हें त्याग कर चले गये थे। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को सहसा अपनी प्रतिद्वन्द्वी आन्ना निकोलायेव्ना की याद आ गयी। काले रेशम का लिबास पहने उसके आकर्षक यौवन की, उसकी छोटे-छोटे बालों और नीलारुण आँखों में किंचित धृष्टतापूर्ण चमक की याद हो आयी। उसने अपनी कल्पना में लम्बे जूकोव को इस सुन्दर औरत की बग़ल में देखा : उसके मन में उसके प्रति वासना के सिवा और क्या भावना है?

‘‘पिता कब वापस आयेंगे?’ ईगोर ने अनपेक्षित रूप से उसी सहज विश्वासपूर्ण आवाज़ में पूछा जैसी आवाज़ में वह पहले दिन बोला था।

उसने और ओल्या दोनों ने अपनी माँ की तरफ़ देखा। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने फ़ैसला कर लिया :

‘‘वह अब कभी वापस नहीं आयेंगे ...’’

ईगोर पीला पड़ गया और वह आँखें मिचकाने लगा। ओल्या ने ख़ामोशी से और इस तरह सुना जैसे वह कुछ न समझी हो, फिर पूछा : ‘‘लेकिन ममी, वे वापस कब आयेंगे?’’

अब येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना सख़्ती से और निष्ठुरता से बोली :

‘‘वह कभी वापस नहीं आयेगा! कभी भी नहीं! तुम्हारे पिता नहीं है, कोई पिता नहीं हैं, समझे?’’

‘‘तो वे मर गये हैं?’’ ईगोर ने अपने विवर्ण चेहरे को अपनी माँ की तरफ़ घुमाते हुए पूछा।

ओल्या ने अपने भाई की तरफ़ देखा और वह उसकी अनुगूँज की तरह बोली, ‘‘...मर गये हैं?’’

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने बच्चों को अपनी तरफ़ खींचा और उनसे बहुत ही वात्सल्यपूर्ण व ऐसे कोमल स्वर में बोली कि उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी निकलने लगी और उसकी आवाज़ की कोमलता दुख के साथ घुलमिल गयी।

‘‘पिता ने हमें छोड़ दिया है, समझे? छोड़ दिया है! वह हमारे साथ रहना नहीं

चाहते। अब वह एक और औरत के साथ रह रहे हैं और हम उनके बिना रहेंगे। हम तीनों साथ रहेंगे : ईगोर, ओल्या और मैं, इनके अलावा और कोई नहीं।''

''तो उन्होंने शादी कर ली है?'' ईगोर ने निराशापूर्वक सोचते हुए पूछा।

''हाँ, शादी कर ली है।''

''क्या तुम भी शादी कर लोगी?'' ईगोर ने अपनी माँ की तरफ़ एक ऐसे नन्हे बच्चे की कठोर नज़रों से देखा, जो वयस्कों की कठिन पहेलियों को ईमानदारी से समझने का प्रयत्न कर रहा हो।

''मेरे प्यारे बच्चो, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगी,'' येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने सुबकते हुए कहा। ''डरो नहीं, सब कुछ ठीक होगा।''

उसने दृढ़ता से अपने को सँभाला।

''जाओ, खेलो। ओल्या तुम्हारा 'भालू' उधर है ...''

ओल्या अपनी माँ के घुटनों से टालती हुई अपनी उँगलियों से ऊपरी होंठ को दबाती रही। अन्त में उसने अपने आपको माँ से अलग किया और शयन-कक्ष की तरफ़ भटकती चली। दरवाज़े पर वह अपने खिलौना-भालू पर झुकी, उसे एक पैर से उठाया और लापरवाही से घसीटती हुई अपने बिस्तर के कोने तक ले आयी। अपने भालू को खिलौनों के एक ढेर पर फेंकते हुए ओल्या एक छोटे से रंजित स्टूल पर बैठी और सोचने लगी। वह समझ गयी थी कि उसकी माँ दुखी है, कि उसकी माँ रोना चाहती है, इसलिये उसे फिर उसके पास नहीं जाना चाहिये और वह प्रश्न पूछना नहीं चाहिये, पर जिसका उत्तर किसी भी कीमत पर मिलना ही चाहिये।

''लेकिन वह वापस कब आयेंगे?''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना की पहली भावना और किसी चीज़ के बजाय आक्रोश की ही अधिक थी।

उसे यह सोचने पर चोट पहुँची थी कि उसका जीवन, एक युवा, सुन्दर और सुसंस्कृत नारी का जीवन तथा उसके बच्चों का, इतने अच्छे और चतुर बच्चों का जीवन, सम्पूर्ण परिवार का जीवन, उसका सम्पूर्ण आशय और उल्लास किसी भी आधार, सावधानी अथवा सहानुभूति के बग़ैर एक निहायत मामूली चीज़ की तरह इतनी आसानी से, छोटे-से पुर्ज़े द्वारा निराकृत कर दिया गया। क्यों? क्योंकि जूकोव को औरतों की विविधता पसन्द है।

लेकिन आक्रोश की इस भावना पर शीघ्र ही ज़रूरत हावी हो गयी। यद्यपि शुरू में उसे आक्रोश का ही अधिक अनुभव हुआ था।

परिवार के बारह वर्षीय अस्तित्व के दौरान सारे घरेलू ख़र्च येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना के ही हाथ से होते थे। यद्यपि उसे यह ज्ञात नहीं था कि उसका पति कितना कमाता है, पर वह उसे हमेशा पर्याप्त रक़म दे दिया करता था। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना हमेशा यही महसूस करती थी कि उस धन पर उसका तथा बच्चों का अधिकार है, कि जूकोव के लिये परिवार महज़ एक आमोद नहीं, बल्कि उसका कर्तव्य भी है। अब

ज़ाहिर हो गया है कि ऐसा नहीं था : वह येव्गेनिया को वह रक़म उसके प्यार के लिये, उसके बिस्तर का सहभागी होने के लिये देता था। जैसे ही वह उससे ऊब गया वैसे ही दूसरी औरत के बिस्तर का सहभागी होने के लिये चला गया, और येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना तथा उसके बच्चों का अधिकार महज़ खोखले शब्दों जैसा, प्रेमी के बिल का एक अतिरिक्त हिस्सा पर सिद्ध हुआ। अब सारा कर्तव्य और सारा दायित्व अकेली माँ पर है और उसे उस ऋण का भुगतान अपने जीवन, अपनी जवानी और अपनी ख़ुशी से करना पड़ेगा।

दो सौ रूबल का यह पिष्टोदक अब उसे विशेष अपमानजक लगा। निद्रारहित रातों के अपने चिन्तन में येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को यह शब्द याद आते, तो उसे लज्जामिश्रित क्रोध आने लगता : ''मैं बच्चों के लिये 200 रूबल प्रतिमाह भेजूँगा।'' उसने बच्चों के मनमाने दाम लगा लिये। सिर्फ़ दो सौ रूबल! देखभल और चिन्ता के अन्तहीन वर्ष नहीं, दायित्व की व्यग्र भावना नहीं, प्यार नहीं, जीवित हृदय नहीं, जीवन नहीं, लिफ़ाफ़े में ठुँसा हुआ महज़ नोटों का एक पुलिन्दा!

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना हर रात याद करती कि जब उसने एक सन्देशवाहक से पहले-पहल यह रक़म ली थी, तो उसने अपनी शर्म को किस तरह छुपाया था, वाहक के निवेदन पर किस तरह सावधानी से लिफ़ाफ़े पर दस्तखत किये थे, जब वह चला गया था, तो दौड़ी-दौड़ी दुकान गयी थी और बाद में-उसी शाम को उसने कैसी निर्लज्ज प्रसन्नता के साथ बच्चों को उम्दा केक खिलाये थे। उसने बच्चों को देखा और हँसी भी थी और स्त्रियोचित मान तथा मानवीय प्रतिष्ठा को हृदय के किसी गहरे कोने में छुपा लिया था। उसमें इतनी ही शक्ति भर शेष रह गयी थी कि उसने स्वयं को केक खाने से रोक लिया था।

दिन बीतते गये और हर दिन के साथ वह उन दो सौ रूबलों की आदी होती गयी। एक नये कृपालु अन्तर्विवेक ने उसे एक तर्कसम्मत बहाना सुझा दिया कि जूकोव निश्चिन्त होकर सुखोपभोग क्यों करे, उसे माह-दर-माह इस रक़म की अदायगी से किंचित चिन्ता होने दो, उसे रक़म अदा करने दो, उसकी उस सुन्दरी को किंचित कष्ट भोगने दो।

उसकी कल्पना में जूकोव की मूर्ति धुँधली पड़ गयी, लेकिन शायद उसे साफ़ करने का मौक़ा नहीं मिला। उसके प्रति लगाव बहुत पहले ही ख़त्म हो गया था, अब उसकी कल्पना में वह एक पुरुष और पति के रूप में कभी भी नहीं आया। जूकोव एक बदमाश था, कमीना और तंग दिल का मर्द था, भावना और प्रतिष्ठा से हीन आदमी था-यह बात निश्चित थी, लेकिन येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना में इस निन्दा से भी कुछ कर गुज़रने का आवेश या कामना नहीं पैदा होती थी। कभी वह सोचती कि उस आदमी में कुछ भी ऐसा नहीं था, जिस पर अफ़सोस किया जाता, शायद वह बेहतर ही हुआ कि इस बदमाश के साथ उसका रहना-सहना समाप्त हो गया!

और जब येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को एक बड़े ट्रस्ट में सचिव का काम मिल गया, और जब वह काम करने और नियमित वेतन पाने लगी, तो जूकोव की मूर्ति उसके भोगे हुए दुख की धुन्ध में लिपटे निश्चित रूप से दूर अतीत में खो गये-उसने उसके बारे में सोचना बन्द कर दिया। यहाँ तक कि उन दो सौ रूबलों का भी जूकोव से कोई वास्ता नहीं रहा, वह महज़ एक रक़म थी, उसकी क़ानूनी और नियमित आय थी।

सप्ताह बीते और महीनों में तब्दील हो गये। उनमें दुख की विशिष्टता समाप्त हो गयी और वे एक दूसरे के समान हो गये, महज़ मामूली महीने और उनकी उबाऊ पृष्ठभूमि में उसके अन्दर की नारी जाग उठी, यौवन कुलबुलाने लगा।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना कुल तैंतीस वर्ष की थी। इस 'क्लासिकी'' आयु की कई कठिनाइयाँ हैं। यौवन की प्रारम्भिक ताज़गी खत्म हो जाती है। आँखें अभी भी सुन्दर होती हैं और छायाचित्र में वे ''देवी'' प्रतीत हो सकती हैं, लेकिन वास्तविक जीवन में वे चाहे और कुछ क्यों न हों तैंतीस वर्ष की ही होती हैं। आँखों को अपेक्षा की उत्तेजक दीप्ति प्रदान करने के लिये निचली पलक को अभी भी ऊपर उठाया जा सकता है, लेकिन साथ ही वह एक विश्वासघाती सलवट को भी उद्घाटित कर देती है और चुनौती साहसिक नहीं रह पाती, उसमें शैली की छाप लगी होती है। इस आयु में एक सुन्दर लिबास, नये फ़ैशन की कॉलर, लिबास के अलंकरण, रेशम की मन्द, मधुर सरसराहट जीवन-दर्शन को किंचित सुधार देती है।

और येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना इस नारी जगत की तरफ़, अपनी देखभाल की तरफ़, दर्पण की तरफ़ वापस लौट आयी। आख़िर वह अभी भी जवान थी, सुन्दर थी, उसकी आँखों में चमक थी और उसकी मुस्कान में अभी काफ़ी कुछ सम्भावनाएँ थीं ...

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को अभी-अभी एक पत्र मिला, तीसरा पत्र :

''मेरे लिये हर माह दो सौ रूबल देना बहुत कठिन हो रहा है। अब छुट्टियों के दिन आ रहे हैं। मैं सुझाव देता हूँ कि तुम ईगोर और ओल्या को गर्मियाँ बिताने के लिये उमान में मेरे पिता के पास भेज दो। वे वहाँ सितम्बर तक रह सकते हैं-यह उनके लिये एक अवकाश हो जायेगा और स्वास्थ्यकर होगा। पिता जी और माता जी को बहुत ख़ुशी होगी, मैं उन्हें पहले ही लिख चुका हूँ। यदि तुम सहमत हो, तो मुझे बताना, मैं सारा बन्दोबस्त कर दूँगा।''

पत्र पढ़ने के बाद येव्गेनिया ने उसे अवज्ञापूर्वक मेज़ पर फेंक दिया और सन्देशवाहक को यह बताने के लिये तत्पर हो गयी कि इसका कोई उत्तर नहीं है, पर तभी उसे कोई एक महत्वपूर्ण बात याद आ गयी। वह उसके दिमाग़ में अस्पष्ट रूप से झिलमिलायी और ऐसा सुझाव-सा देती हुई प्रतीत हुई कि उमान में अवकाश बच्चों के लिये सचमुच अच्छा होगा। लेकिन कुछ ही मिनटों के अन्दर ''उसका'' यह बचकाना छद्म उतर गया और वह बात अपनी तरफ़ ध्यान देने की माँग करने लगी। येव्गेनिया

अलेक्सेयेव्ना दरवाज़े पर रुकी, बग़ल में निगाह डालकर दर्पण में अपनी छवि देखी और मुस्कराई। दर्पण की चमकीली धुन्ध में एक छरहरी, काली बड़ी-बड़ी आँखों वाली युवती ने उज्ज्वल मुस्कान से उसका उत्तर दिया। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना बाहर सन्देशवाहक के पास गयी और कहा कि वह इस प्रस्ताव पर विचार करेगी और अगले दिन इसका उत्तर भेज देगी।

वह सोफ़े पर बैठी, कमरे में घूमी, बच्चों पर नज़र डाली और फिर सोचने लगी। बच्चों के लिये हँसी-ख़ुशी का सचमुच अभाव था। देहात के बीचोबीच एक नये स्थान पर, प्रकृति के, बाग़-बगीचों के पर्यावरण में रहना, आवेश-प्रदर्शन और भावुकता से मुक्ति-यह एक अच्छा ख़याल था। बच्चों को ऐसी यात्रा का अवसर देकर जूकोवने सद्भावना का काम किया था।

पिछले कुछ समय से येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने बच्चों पर बहुत विचार नहीं किया था। ईगोर स्कूल जाता था। अहाते में उसके कई दोस्त थे, जिनसे वह बहुधा झगड़ा करता था, लेकिन यह तो सामान्य बात थी। वह अपने पिता को कभी याद नहीं करता था। जूकोव के दिये हुए उपहार, पुस्तकें और खिलौने आलमारी के निचले खाने में सुव्यवस्थित ढंग से सजे थे, लेकिन ईगोर ने उन्हें छुआ नहीं था। वह अपनी माँ से स्नेह और सच्चाई का बरताव करता था, लेकिन खुलकर बातें करने से बचता था; वह विभिन्न प्रकार के छोटे-छोटे विषयों पर, बाड़े और स्कूल में होने वाली घटनाओं के बारे में गपशप करना पसन्द करता था। साथ ही यह भी बिल्कुल स्पष्ट था कि वह अपनी माँ को देखता रहता था, उसके मनोभावों पर ग़ौर करता था, उसकी टेलीफ़ोन वार्ताओं को सुनता था, हमेशा यह जानना चाहता था कि वह किससे बातें कर रही है। जब उसकी माँ देर से घर आती, तो बुरा मान जाता था और मुँह फुलाकर उसकी अगवानी करता था, लेकिन यदि वह पूछती कि तुम्हें क्या हुआ है, तो वह उसकी बात टाल देता और अपने बनावटी आश्चर्य को छिपाने का असफल प्रयास करते हुए कहता : ''मुझे क्या हुआ है? मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है!''

ओल्या एक ख़ामोश लड़की बनती जा रही थी। वह अच्छी प्रकार से खेलती, कमरों में भटकती और अपने ही कामों में व्यस्त रहती, किंडरगार्टन जाती, हमेशा की तरह स्थिरचित घर लौटती, उसे न बातें करने की इच्छा होती न हँसने-मुस्कराने की।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना बच्चों की शिकायत नहीं कर सकती थी, लेकिन उनके व्यवहार में किसी और ही गुप्त ज़िन्दगी के चिह्न दिखायी देते थे, और उनकी माँ को इस गुप्त ज़िन्दगी का पता नहीं था। लेकिन उसने यह फ़ैसला किया कि स्थिति स्पष्ट है : पर्यावरण में बदलाव उनके लिये लाभदायक होगा।

लेकिन येव्गेनिया केवल बच्चों के ही बारे में नहीं सोच रही थी। उसके विचारों ने अनचाहे ही एक और दिशा ग्रहण कर ली और उसे आक्रोश के साथ यह याद आया कि पिछले छह महीनों से उसका अपना कोई भी जीवन नहीं था। काम, कैन्टीन, बच्चे, पकाना, मरम्मत और रफ़ू करना और... और कुछ भी नहीं। उसके फ़्लैट में

टेलीफ़ोन की घण्टी का बजना कम से कमतर होता गया-वह यह याद ही नहीं कर पायी कि उसका टेलीफ़ोन अन्तिम बार कब बजा था। सारा शिशिर बीत गया और वह एक बार भी थियेटर नहीं गयी। वह एक पार्टी में गयी थी, बच्चों को सुलाकर और पड़ोसी से ''ज़रा ध्यान रखने'' को कहकर देर से रवाना हुई थी।

पार्टी में एक गोल चेहरे और उजले वालों वाले सरातोव के ख़ुश-मिज़ाज अतिथि ने उसके साथ स्नेहालाप किया था। वह किसी प्रकाशन गृह या ऐसे ही किसी संगठन का डायरेक्टर था। उस अतिथि ने उसे मदिरा के दो जाम पिला दिये और उसके बाद क़ागज़ की तंगी की कोई बात नहीं की, बल्कि यह बताना शुरू कर दिया कि, समय आने पर, सोवियत समाज ''समस्त सुन्दर औरतों को उराल के सारे मूल्यवान हीरे-जवाहरातों से'' किस प्रकार निश्चय ही ''अलंकृत कर देगा। क्योंकि अगर ऐसा नहीं होगा, तो ऐसी कोई जगह ही नहीं होगी जहाँ उन्हें रखा जा सके।''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना मिट्टी की मूरत तो थी नहीं, भोज के समय उसे थोड़ा बहुत हँसी-मजाक पसन्द था :

''वाहियात बात!'' उसने उत्तर दिया, ''हमें जवाहरातों की ज़रूरत नहीं है। जवाहरात अमीरों के लिये हैं, ताकि वे अपने को सजा सकें, हमारी औरतें जैसी हैं वैसी ही सुन्दर हैं। क्या आप ऐसा नहीं सोचते?''

अतिथि रहस्यमय ढंग से मुस्कराया :

''न-न्ना, मैं यह नहीं कहूँगा। कुरूपता को बनाने के लिये जवाहरातों पर भरोसा करना व्यर्थ है। किसी विकृतांग बाला को बढ़िया वस्त्र पहना दीजिये, वह पहले से भी ज़्यादा बदसूरत नज़र आयेगी। एक सुन्दर नारी जवाहरातों को ही अधिक समृद्ध, अधिक आकर्षक बना देगी और उसका सौन्दर्य सचमुच ही... सचमुच ही शानदार बन जायेगा। मसलन, पुखराज आपके लिये उपयुक्त होगा, अद्‌भुत होगा।''

''आहा, सचमुच, जैसे मुझे केवल पुखराज का ही अभाव हो!''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने हँसकर कहा।

शीशे के पार से सरातोव के उस अतिथि की प्रशंसापूर्ण निगाहें उस पर पड़ रही थीं।

''वास्तव में यह तो कोरी बातें हैं। आप जैसी हैं, बहुत सुन्दर है।''

''अच्छा! यह बात है!''

''हाँ, सच, मैं ईमानदारी से कह रहा हूँ-किसी बड़े सयाने आदमी की तरह... अगर आप नहीं चाहती हैं कि मैं बोलूँ, तो मुझे बताइये कि यहाँ आपकी जिन्दगी कैसी है...''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने उसे मास्को के बारे में, थियेटर के बारे में, फ़ैशनों के बारे में, लोगों के बारे में बताया, उसे उल्लास और रुचिकरता की अनुभूति हो रही थी, लेकिन सहसा उसे याद आया कि बारह बजने ही वाले हैं। फ़्लैट में बच्चे बिल्कुल अकेले हैं। उसे पार्टी की समाप्ति से पहले ही घर को भागना है। उसके मेज़बान रुष्ट थे, उजले बालोंवाला अतिथि बुरा मान गया था, लेकिन किसी ने भी उसे घर

तक पहुँचाने का प्रस्ताव नहीं किया और वह अपने बच्चों के लिये व्यग्र तथा जल्दबाजी में यों उठकर आने की लज्जा से बचने के लिये वीरान सड़कों से होती हुई घर को वापस भागी।

उस उजले बालोंवाले अतिथि की बात तो सोचो! यह मुलाक़ात यों ही गुजर गयी थी, और कितनी ऐसी मुलाक़ातों का इसी तरह अन्त होगा?

उसने अपने को ख़ुद अपने-आपसे कटु प्रश्न पूछते पाया : सब कुछ समाप्त तो नहीं हो गया, ज़िन्दगी खत्म तो नहीं हो गयी? क्या अब सिर्फ़ मरम्मत और सफ़ाई करना और... बुढ़ापा भोगना ही बाकी रह गया है?

सुबह येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने डाक द्वारा जूकोव को एक पत्र भेजा, जिसमें बच्चों को उनके दादा के यहाँ भेजने की सहमति दी गयी थी। भोजन के समय उसने बच्चों को अपना फ़ैसला सुनाया। ओल्या ने अपनी गुड़ियों की ओर देखते हुए, उदासीनता से ख़बर सुनी, लेकिन ईगोर को कुछ व्यावाहरिक प्रश्न पूछने थे : ''हम कैसे जायेंगे? रेलगाड़ी से? क्या वहाँ मछलियाँ पकड़ी जा सकती हैं? क्या वहाँ स्टीम-बोट चलती है? क्या वहाँ हवाई जहाज उड़ते हैं?''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने सिर्फ़ पहले सवाल का उत्तर विश्वास के साथ दिया। ईगार ने आश्चर्य से अपनी माँ की ओर ताका :

''लेकिन वहाँ, वहाँ क्या है?'' उसने पूछा।

''वहाँ दादा और दादी हैं।''

ओल्या ने खिन्नता से इसकी प्रतिक्रिया दर्शायी, वह अभी भी अपनी गुड़ियों की तरफ़ देखती जा रही थी।

''दादा और दादी वहाँ क्यों हैं?''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने कहा कि दादा और दादी बहुत अच्छे लोग हैं और वहाँ रहते हैं। इस स्पष्टीकरण से ओल्या सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने उसे सुना ही नहीं और वह अपनी गुड़ियों से खेलने चली गयी।

भोजन के बाद ईगोर अपनी माँ के पास आया, उसके कन्धे के सहारे अपने को टिकाकर पूछने लगा : ''तुम जानती हो माँ? क्या वे दादा डैडी के हैं? मूछोंवाले?''

''हाँ।''

''तुम जानती हो? मैं दादा के यहाँ नहीं जाना चाहता।''

''क्यों?''

''क्योंकि उनमें से गन्ध आती है, और बहुत बुरी गन्ध आती है,'' ईगोर ने हाथ हिलाकर दर्शाया कैसी दुर्गन्ध आती है।

''वाहियात बात,'' येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने कहा। उनमें से ज़रा भी गन्ध नहीं आती। तुम बात बना रहे हो...''

''हाँ, आती है,'' ईगोर ने दृढ़ता से फिर कहा। वह शयनकक्ष में चला गया और येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने आँसुओं से भीगी उसकी दृढ़ता और ज़ोर से बोलने की

आवाज़ सुनी : ''तुम जानती हो, मैं दादा के यहाँ नहीं जाऊँगा।''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को अपने श्वसुर की याद आयी-वे पिछली ग्रीष्म-ऋतु में अपने लड़के से मिलने के लिये आये थे। उनकी सचमुच ही बड़ी-बड़ी, पुरानी क़िस्म की घनी मूँछे थीं। वे साठ वर्ष से अधिक आयु के हो गये थे, लेकिन वे ख़ूब तन्दुरुस्त थे, सीधे खड़े होते थे, गिलासों में भर-भर कर वोद्का पीते थे और उन पुराने दिनों के संस्मरण सुनाते जाते थे, जब वे एक मदिरालय में शराब बेचने का काम करते थे। दादाजी के आस-पास वैसी ही तीव्र, अप्रिय गन्ध उड़ती रहती थी जैसे लम्बे अर्से तक न नहानेवाले बूढ़ों के बदन से निकलती है। लेकिन येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को अपने इस रिश्तेदार के प्रति वितृष्णा मुख्यतः उसकी मज़ाक करने की तथा एक ख़ास अन्दाज़ से कुड़कुड़ाते-फुनफुनाते हुए हँसने की आदत से हुई थी। वह अपनी बात कहने के बाद आँख मारता तथा देर तक एक दबी हँसी से आन्दोलित होता रहता।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने सोचा कि अपने दादा के यहाँ बच्चों पर हो सकता है अच्छी न बीते।

आख़िर बूढ़ों के पास जीने के लिये क्या होता है? उनकी पेन्शन? लेकिन कुटीर उनका अपना था। उनके पास एक तरह का बाग़-सा भी था। हो सकता है कि उनका बेटा उन्हें कुछ भेजता हो। ख़ैर इससे क्या? इसकी चिन्ता जूकोव करे।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना के अन्तर में शंका और उदासी जैसी कोई चीज़ खदबदायी; दो सौ रूबल अदा करने के बारे में जूकोव की शिकायत भी सन्देहास्पद थी, लेकिन वह किसी न किसी परिवर्तन की, भाग्य की किसी नयी मुस्कान की अस्पष्ट उम्मीद अभी भी सँजाये बैठी थी।

कुछ दिनों बाद जूकोव ने एक पत्र भेजा, जिसमें उसने सविस्तार बताया था कि बच्चे अपने दादा के घर तक कैसे यात्रा करेंगे। वह उन्हें उमान तक पहुँचाने के लिये किसी व्यक्ति को भेज रहा था; वही मार्गदर्शक यह पत्र भी लाया था। वह लगभग बीस वर्ष का नौजवान था, ताज़गी से भरापूरा और मुस्कराता हुआ रुचिकर व्यक्ति था। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को कुछ राहत-सी मिली, लेकिन पत्र के एक अंश से उत्पन्न एक अरुचिकर अनुभूति अभी भी शेष थी। उस अंश में लिखा था :

''मैं इस मार्गदर्शक की वापसी का टिकट भाड़ा दे दूँगा। क्या तुम उसे बच्चों के टिकटों के लिये लगभग 60 रूबल दे दोगी? ओल्या का सिर्फ़ चौथाई भाड़ा लगेगा-इन दिनों मैं बहुत मुश्किल में हूँ।''

लेकिन येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने जो जैसा था वैसे ही सब कुछ होने दिया। वह इस ख़्याल से अधिकाधिक उत्तेजित होती जा रही थी कि वह दो या तीन महीने तक अपने फ़्लैट में अकेली होगी, एक ख़ाली फ़्लैट में नितान्त अकेली। वह सोयेगी, पढ़ेगी, बाहर जायेगी, पार्क में घूमेगी, अपने दोस्तों से मिलने जायेगी। इन सब बातों के अलावा उसके जीवन तथा भविष्य को बदलने वाली कोई काफ़ी बड़ी बात होनी

ही चाहिये-इसका उसने स्वप्न में भी साहस नहीं किया था, लेकिन यही वह चीज़ थी, जिसने उसमें मुक्ति और प्रसन्नता की भावनाएँ भर दी थीं।

बच्चों ने उसकी ख़ुशी को धूमिल नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता था कि ईगोर अपना हाल का प्रतिरोध भूल गया है। वे एक यात्रा की और नयी जगहों को देखने की सम्भावनाओं से विभोर हो गये थे। उन्होंने अपने मार्गदर्शक के साथ ख़ुशी-ख़ुशी दोस्ती कर ली।

''क्या रेलगाड़ी में खिड़कियाँ हैं?'' ओल्या ने उससे पूछा। ''क्या आप सब कुछ देख सकते हैं? खेत? खेत कैसे होते हैं?''

उस मार्गदर्शक को उसके प्रश्नों में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं दिखायी दी। वह उत्तर में केवल मुस्कराता रहा। लेकिन ईगोर उन्हें बहुत ही महत्वपूर्ण मानता था, उसने उत्तेजित स्वर में ओल्या को बतलाया : ''वहाँ खिड़कियाँ ऐसी होती हैं... कमरे की जैसी नहीं होतीं, वे ऊपर-नीचे भी हो जाती हैं। जब तुम बाहर देखो, तो वहाँ तेज़ हवा चलती हाती है और बाहर हर चीज़ झपाटे से पीछे को भागती रहती है।''

''और, खेत कैसे होते हैं?''

''वे मीलों-मीलों तक फैले होते हैं और वहाँ घास होती है, पेड़ होते हैं, और वे. .. कुटियाएँ, या क्या कहते हैं उनको, होती हैं। और इधर-उधर चलती हुई गायें और भेंड़े होती हैं। ढेरों!''

ईगोर को ऐसे विषयों का ख़ूब ज्ञान था, क्योंकि वह अपने जीवन में कई बार यात्राएँ कर चुका था। इस वार्तालाप से दादा की गन्ध से उसका ध्यान हट गया। लेकिन जब जाने का दिन आया, ईगोर ने सुबह उठते ही रोना-धोना शुरू कर दिया और एक कोने में बैठकर रट लगाने लगा : ''सुन लो, मैं क्या कह रहा हूँ। मैं वहाँ रहूँगा नहीं। तुम देख लेना, मैं क्या करता हूँ, भाग जाऊँगा! आख़िर हमें वहाँ क्यों जाना चाहिये? और तुम क्यों नहीं जा रही हो? कैसी छुट्टी? तुम हमारे बिना तंग आ जाओगी, देख लेना क्या होगा! देख लेना!''

ओल्या दिन भर अपने रंगीन स्टूल पर विचारमग्न बैठी रही। जब स्टेशन जाने का समय आया, तो उसकी असली रुलाई फूटी, उसने अपने नये जूतों को उतार फेंका और अपनी बाहें लगातार माँ की तरफ़ फैलाती रही। उसकी यह आदत शैशवावस्था से अब तक बरक़रार थी और यही एकमात्र ऐसी मुद्रा थी, जिसका कोई निश्चित अर्थ था, क्योंकि उसकी अश्रुधारा के बीच निकलने वाला एक भी शब्द स्पष्ट नहीं सुनायी देता था।

मार्गदर्शक आ चुका था और प्रसन्नतापूर्वक ओल्या को मना रहा था।

''यह क्या, इतनी अच्छी लड़की रो रही है! ऐसा कैसे हो सकता है?''

ओल्या ने अपने आँसू-भीगे हाथ से उसे एक तरफ़ कर दिया और पहले से भी ज़्यादा ज़ोर से रोने लगी : ''हाँआ... माँ... म्माम...'' इसके अलावा और कोई बात समझ में नहीं आती थी।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना उन्हें रेलगाड़ी की खिड़कियों की, गायों और खेतों की याद दिलाकर, दादाजी के जादुई बाग़ तथा श्वेत स्टीमरों तथा भरे-भरे पालों वाली मछुओं की नावों के बारे में बताकर बड़ी ही मुश्किल से सांत्वना देने से कामयाब हुई। इसके बाद रेलगाड़ी के छूटने तक वह यही सोचती रही कि अपनी हताशा में उसने कैसा भयावह क़दम उठा लिया है :

''आओ बच्चो, हम स्टेशन को चलें, उदास मत होओ, सब कुछ प्यारा-प्यारा होगा। और स्टेशन में तुम डैडी से मिलोगे! डैडी आयेंगे और तुम्हें विदाई देंगे...''

यह सुनते ही ओल्या ने उल्लासपूर्ण किलकारी भरी और उसके नन्हे से आँसू-भरे चेहरे में प्रसन्नता की चमक आ गयी। ईगोर ने कुछ सन्देह के साथ अपनी नाक सिकोड़ी, लेकिन ख़ुशी से कहा : ''अहा, बढ़िया! अब हम देखेंगे कि डैडी कैसे लगते हैं। हो सकता है कि अब वे फ़र्क हो गये हों?''

गली में जूकोव के दफ़्तर की कार उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। ड्राइवर वही पुराना, कभी भी दाढ़ी न बनाने वाला हमेशा की तरह गम्भीर, निकीफ़र, इवानोविच था। ईगोर ख़ुशी से पागल हो गया।

''ममी! देखो : निकीफ़र इवानोविच!''

निकीफ़र इवानोविच ने अपनी सीट से मुड़कर देखा और उसने सबके साथ ऐसी प्रसन्नता के साथ हाथ मिलाया जैसे पहले कभी देखने में नहीं आया था।

''ईगोर, तुम्हारे क्या हालचाल हैं?'' उसने पूछा।

''लेकिन निकीफ़र इवानोविच, अब तो तुम ज़रा भी चिड़चिड़े नहीं रहे। मेरे हाल ठीक...'' ईगोर अचानक शर्मा गया और जल्दी से दूसरे प्रश्न पर पहुँच गया। ''अब तक तुम्हारी कार कितने हज़ार किलोमीटर चल चुकी है? सत्ताईस! बाप रे...''

स्टेशन में जूकोव उपाहार-कक्ष में उनका इन्तज़ार कर रहा था। उसने बनावटी नम्रता से येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को नमन किया, तभी फ़ौरन ओल्या के फैले हाथों ने उसे पकड़ लिया। उसने उसे चूमा और अपनी गोद में बिठा लिया। ओल्या इतनी उलझन में पड़ गयी कि कुछ भी न कह सकी और अपने पिता की स्लेटी सूट के किनारों को पकड़ महज़ हँसती रही। अन्त में, उसने अपने सिर को एक तरफ़ झुकाकर कोमलता से कहा :

''क्या यह नयी जाकेट है? अब आप कहाँ रहते हैं?''

जूकोव वयस्कों के उसी भाव से मुस्कराया, जिसे वे बच्चों की चतुराई से प्रसन्न होने पर अपने चेहरे पर ओढ़ लेते हैं।

ईगोर अपने पिता से किंचित भोंडे ढंग से मिला, उसने अपने सिर को झुकाकर पिता की तरफ़ देखा और एक पैर को चंचलता से ऊपर-नीचे किया। जूकोव ने उसकी तरफ़ हाथ बढ़ाया और ठीक वही शब्द कहे, जो निकीफ़र इवानोविच ने कहे थे : ''ईगोर! तुम्हारे क्या हालचाल हैं?''

ईगोर इसका उत्तर नहीं दे पाया, वह किंचित अजीब ढंग से खाँसा, मुँह का थूक

निगला, झेंप से उसका चेहरा लाल हो गया और उसने अपना चेहरा दूसरी तरफ़ घुमा लिया। सहसा, न जाने कैसे, उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये, ईगोर ने डबडबायी आँखों से मेज़ पर रखे चमचमाते बर्तनों, बड़े फूलों और कैफ़े के काउण्टर पर रखे सुनहरे गोले को निहारा।

जूकोव कुछ खीझ-सा गया उसने ओल्या को सावधानी से उठाया और फ़र्श पर खड़ा कर दिया। उसके नन्हे-नन्हे हाथ उसकी नयी जाकेट के किनारों पर अन्तिम बार सरके उसकी बग़ल में आ लगे। उसकी मुस्कान भी वहीं कहीं ढुलक गयी और उसकी गालों पर उस मुस्कान के दो टेढ़े-मेढ़े निशान भर बाक़ी रह गये।

जूकोव ने अपना बटुआ निकाला और मार्गदर्शक को उसका टिकट थमा दिया।

''देखना, खोना नहीं, यह वापसी टिकट है। यह रहा पत्र। स्टेशन में कोई तुमसे मिलने आयेगा, और अगर नहीं भी आयेगा, तो कोई बात नहीं, वह बहुत दूर नहीं।''

''अच्छा बच्चों,'' उसने उल्लासपूर्वक बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा, ''अलविदा, तुम छुट्टी मनाने जा रहे हो। लेकिन मेरा काम मेरा इन्तज़ार कर रहा है। यही काम, जिसका अन्त नहीं है, है न ईगोर?''

स्टेशन से लौटने पर येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अस्त-व्यस्तता से ग्रस्त हो गयी है। कमरे में भी अस्त-व्यस्तता थी-प्रधान के बाद की बची बेतरतीबी और उसकी आत्मा में भी अस्त-व्यस्तता थी। जूकोव ने वायदा किया था कि वह उसे घर पहुँचाने के लिये कार वापस भेजेगा। वह कार का इन्तज़ार करते-करते आधे घण्टे तक स्टेशन पर बैठी रही, फिर उसके आने की उम्मीद छोड़कर बस की लाइन में खड़ी हुई। लेकिन जो भी हो, लानत है उस जूकोव पर। उसने उस मार्गदर्शक को जो टिकट दिया था वह भी सम्भवतः मुफ़्त का पास था।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना सफ़ाई करने में जुट गयी, फिर उसने पानी गर्म किया और नहाया। जब उसके आस-पास की सारी वस्तुएँ अधिक सामान्य हो गयीं, तो उसका सन्तुलन वापस लौट आया। फ़्लैट की वह असामान्य ख़ामोशी, निस्तब्धता और स्वच्छता लगभग एक उत्सव जैसा लगने लगा। ऐसा मालूम पड़ा कि मानो खुली खिड़की से आने वाली हवा के प्रवाह की ताज़गी को, घड़ी की टिक-टिक को और फ़र्श पर बिछे कालीन की सुखद मृदुता को उसने पहली बार महसूस किया हो।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने अपने बाल बनाये, दराज़ के निचले तल से एक भूले-बिसरे रेशमी गाउन को खोज निकाला और दर्पण के सामने देर तक खड़े होकर अपने अंगवस्त्र के लेस और नीले फ़ीते के अन्तरंग आकर्षण को, अपनी सुडौल टाँगों और जाँघों की सुदर्शन गोलाई को जाँचती-निहारती रही।

''मूर्ख है वह जूकोव! येव्गेनिया, तू अभी भी एक सुन्दर नारी है!'' उसने उल्लासपूर्ण विश्वास से कहा।

वह दर्पण के सम्मुख एक बार फिर घूमी, फिर थिरकती हुई, पुस्तकों की आलमारी के पास पहुँची और ओ. हेनरी की एक पुस्तक छाँट निकाली। सोफ़े पर अपने पाँव

टिकाये उसने एक कहानी पढ़ी, एक अच्छी अँगड़ाई ली, फिर लेटी और सपनों में खो गयी।

लेकिन अगला दिन गुज़रा, फिर दूसरा दिन गुज़रा और तीसरा दिन भी गुज़र गया, तो उसने महसूस किया कि उसने सपने अकेले एक वृत्त में घूमने लगे हैं और जीवन को उसके साथ बैठकर सपने देखने की कोई चाह नहीं हैं, वह गम्भीरता से अपनी सामान्य राह पर चलता चला जा रहा है। काम के समय वही फ़ार्म, प्रबन्धक के वही बुलावे और आगन्तुकों की वही क़तार, वही मामूली, रोज़मर्रा की ख़बरें। हमेशा की तरह, कामकाजी मामलों की तरंगें निकलती जातीं, लोग अपने-आप कामों में लगे रहते और चार बजे अपने क्लान्त चेहरे उठाते, डेस्कों की दराज़ों को फटाके से बन्द करते और सरासर घर को चल पड़ते। उनके घर कैसे हैं और वे कहाँ को भागे जा रहे हैं? मानो उनकी पत्नियाँ ऐसी ही आकर्षक हों! वे अपने भोजन के लिये भागे जा रहे होंगे, उन्हें महज़ भूख सता रही होगी। जो भी हो, येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना अकेली घर गयी-उसकी तरफ़ को कोई नहीं जा रहा था।

कार्यालय में उसके आस-पास काम करने वाले लगभग तीस पुरुष थे। वे किसी भी हालत में बुरे लोग नहीं थे और लगभग सभी किंचित मात्रा में अपने दफ़्तर के सचिव के साथ प्यार करते थे। लेकिन वे सब पारिवारिक लोग थे, उन्हें उनकी पत्नियों और बच्चों से छुड़ाना निहायत गन्दी हरकत होगी...

लेकिन घर में एक पुरुष का न होना अप्रियकर था, ख़ास तौर से इसलिये कि अब उसकी अनपेक्षित व असाधारण स्वाधीनता ने उसकी कल्पना को पंख लगा दिये थे। येव्गनिया अलेक्सेयेव्ना ख़ुद ही देख चुकी थी कि अपने दफ़्तर के किसी एक कर्मचारी से बातें करते समय वह कई बार साहसिक विनोदमय स्वर में बोलने लगती थीं। उसे स्वयं यह अप्रिय अहसास हुआ कि उसकी वह विनोदप्रियता कितनी व्यावहारिक है और कैसे सोचविचार कर अपनायी गयी है। उसके व्यवहार में आवश्यक स्वतंत्रता और सरलता नहीं थी। यह ऐसा ही था मानो वह किसी ऊबी हुई औरत को जंजीर में बाँधे लिये जा रही है और सोच रही है कि मैं इसे किसके गले बाँधूँ?

शाम को येव्गेनिया लेट जाती और सोचती : हे भगवान, मैं ऐसे नहीं रह सकती! यह हो क्या रहा है? मैं किसी से प्यार करूँ क्या? पर कैसे? अट्ठारह की वय में प्यार मुँह बाये खड़ा रहता है, अवश्यम्भावी होता है और पास ही कहीं होता है, उसे खोजना और संगठित नहीं करना पड़ता। सामने प्यार होता है, परिवार होता है, जीवन होता है। लेकिन अब तैंतीस वर्ष की आयु में प्यार बनाना पड़ता है, जल्दी करनी ज़रूरी होती है, देर तो होनी ही नहीं चाहिये। और आगे जीवन नहीं होता, बल्कि पुराने जीवन पर एक तरह के पैबन्द जैसे लगाने होते हैं : पुराने और नये के किस प्रकार का मिश्रण बनाया जा सकता है?

आहिस्ते-आहिस्ते, येव्गेनिया का आत्मविश्वास उसका साथ छोड़ने लगा। अभी बच्चों को गये दो सप्ताह से अधिक समय नहीं बीता था, फिर भी उलझन और

भविष्य की असुन्दरता ने क्षितिज के दृश्य को अवगुण्ठित कर दिया था और उसके पीछे, एक बार फिर, बुढ़ापे की कुरूप आकृति अपनी छाया डालने लगी थी। अब येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना दर्पण पर खड़ी होती, तो अपने लेस और रिबनों को देखकर प्रफुल्लित नहीं होती थी, बल्कि अपने चेहरे में नयी झुर्रियों को खोजती और पा भी जाती थी।

ठीक इसी मौक़े पर प्यार का फ़रिश्ता उड़ता आया और उसने येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना के ऊपर अपने पंखों की गुलाबी छाया डाल दी।

यह, जैसा कि हमेशा होता है, संयोगवश हुआ। सरातोव का उजले बालोंवाला वही अतिथि, जो जवाहरात पसन्द करता था,अपने धन्धे के सिलसिले में मास्को आया। वह वैसे ही प्रसन्न-वदन शोर मचाता आया, उसने दफ़्तरों के चक्कर लगाये, माँगें पेश कीं, लोगों से जवाब-तलब किया और धृष्टता से पेश आया। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को उसकी ख़ुश-मिज़ाज ऊर्जा को देखने में बड़ा आनन्द आया और उसने उसके हमलों को वैसी ही ऊर्जा से विफल करने का प्रयास किया। वह अपने चेहरे को दयनीय बनाता और आवाज़ को पतले ऊँचे स्वर में चढ़ाकर कहता : ''अरे, ओ सुन्दर देवी जी, आप भी नौकरशाह बन गयीं! भयानक! अब वह दिन दूर नहीं, जब यह एक भी व्यक्ति अछूता नहीं बचेगा!''

''लेकिन, द्मीत्री द्मीत्रियेविच, दूसरा कोई तरीक़ा नहीं, नियम तो नियम ही हैं। इससे आपका क्या तात्पर्य है कि आप इसे 'सीधे' लिख देंगे?''

''यही तो मैं करूँगा। लाइये, मुझे क़ागज़ दीजिये।''

जो भी पहला क़ागज़ उसके हाथ आया, उसने उसी को उठा लिया और अपनी कलम से घसीटा मारकर उसमें कुछ पंक्तियाँ लिख दीं। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने उन्हें पढ़ा, तो उसे सुखद संत्रास का अनुभव हुआ। क़ागज़ पर लिखा था : ''ट्रस्ट-प्रबन्धक की सेवा में, चार टन क़ागज़ दीजिये, वसील्येव।''

''ठीक नहीं है?'' द्मीत्री द्मीत्रियेविच ने अवज्ञापूर्वक कहा, ''बताइये, ठीक क्यों नहीं है, इसमें क्या ख़राबी है?''

''ऐसे भी कोई लिखता है। 'दीजिये!' आप क्या हैं, बच्चे हैं क्या?''

''अच्छी बात, तो कैसे? इसे कैसे लिखा जाना चाहिये? कैसे?'' द्मीत्री द्मीत्रियेविच सचमुच ही बच्चों जैसा हठ करता हुआ बोलता गया। ''मैं समझता हूँ कि आप चाहती हैं कि मैं लिखूँ : निम्नांकित सन्दर्भ सहित मैं आपसे अनुमति माँगता हूँ... के आधार पर... को देखते हुए... और इसी तरह इस बात को ध्यान में रखकर...। ऐसे हैं?''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना श्रेष्ठता की भावना से मुस्करायी और एक मिनट के लिये यह भी भूल गयी कि वह औरत है।

''देखिये, द्मीत्री द्मीत्रियेविच महज़ ''दीजिये'' यह केसे हो सकता है? आपको कारण भी तो बतलाने चाहिये, नहीं बतलाने चाहिये क्या? किसलिये, क्या आधार।''

‘‘राक्षस, जानवर, खून चूसनेवाले!’’ द्मीत्री द्मीत्रियेविच ने कमरे के बीच में खड़े होकर अपना घूँसा हिलाते हुए चीख-पुकार मचायी। ‘‘तीसरी बार मुझे इतने दूर की यात्रा करनी पड़ी है! हमने लिखने, अपना स्पष्टीकरण देने और कारण बतलाने में चार टन क़ागज़ ख़र्च कर दिया है! आप पहले से ही सब कुछ जानती हैं, सब कुछ, आपको सब कण्ठस्थ है! नहीं, मैं अब बर्दाश्त नहीं कर सकता!’’ उसने अपना वह संत्रासकारी क़ागज़ उठाया और धड़धड़ाते हुए प्रबन्धक के कार्यालय में घुस गया। पाँच मिनट बाद वह कमरे से बाहर निकला। उसके गुलगुले चेहरे में दुःख का बढ़ा-चढ़ाकर बनाया हुआ भाव अंकित था।

‘‘वह कुछ भी नहीं देता है, कहता है, हमारे पास ‘एक नियोजक को भेजिये, हम सब कुछ जाँचेंगे’। उपन्यासों में ऐसे लोगों को हत्यारा कहा जाता है।’’

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना हँस पड़ी वह एक कोने में बैठ गया और ऐसा बन गया जैसे घोर निराशा में डूब गया हो। फिर, चारों तरफ़ देखते हुए उसने अपनी कुहनियाँ फ़ाइलों के एक ढेर पर टिका दीं। और फुसाफुसा कर बोला : ‘‘आप जानती हैं कि क्या करना है? आइये इस नौकरशाही को धता बता दें...’’

‘‘और फिर?’’ उसने आशंका के गुप्त रोमांच का अनुभव करते हुए पूछा।

‘‘फिर जायें, पार्क में बैठ कर खाना खायें। वहाँ बड़ा ही सुहावना है : हरे पेड़, पचास वर्गमीटर का आकाश और इसके अलावा-आप जानती हैं, मैंने कल क्या देखा, आप समझ ही नहीं सकतीं-वहाँ एक गौरैया भी थी, एक असली फुर्तीली नन्हीं गौरेया, आप जानती हैं ना! हो सकता है, हमारी अपनी कोई हो-सरातोव से आयी हुई!’’

भोजन के समय वसील्येव लगातार हँसी-दिल्लगी करता रहा और तभी उसने एक प्रश्न पूछा : ‘‘सुन्दरी, क्या यह सच है कि तुम परित्यकता पत्नी हो?’’

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना शर्मा गयी, लेकिन उसने एक कुशल जादूगर कीतरह उसकी भावना को ठेस नहीं लगने दी। ‘‘अब देखो, बुरा न मानना, असल में मैं, ’’ उसने अपनी छाती पर उँगली ठकठकायी, ‘मैं एक परित्यक्त पति हूँ।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना बरबस मुस्करा पड़ी, उसने उसकी मुस्कान को भी सहारा दिया।

‘‘तुम और मैं संकट के समय के दोस्त हैं। और आख़िर, यह हमारा दोष तो नहीं था, था क्या? तुम सुन्दर हो, मैं सुदर्शन हूँ, वे लोग किसके पीछे पड़े हैं, मैं नहीं जानता। लोग भी क्या नकचढ़े होते हैं, यह किसी भी आदमी को आत्महत्या के लिये उकसाने को काफ़ी है!’’

बाद में वे पार्क में इधर-उधर घूमे, एक कैफ़े में आइसक्रीम खायी और शाम को एक फुटबॉल मैच में जा पहफ़ँचे। उन्होंने मैच देखा और खिलाड़ियों का उत्साह बढ़ाया। बीच-बीच में द्मीत्री द्मीत्रियेविच बड़बड़ाता रहा :

‘‘लाभदायक चीज़ है यह फुटबॉल, ख़ास तौर से मानसिक विकास के लिये! मालूम पड़ता है कि वे ज़िन्दगी भर उस गेंद का पीछा करते रहेंगे... क्यों, किसी और

रोमांचक मनोरंजन की खोज की जाये? सिनेमा कैसा रहेगा?''

और एक मिनट बाद उसने निर्णायक प्रस्ताव किया :

''नहीं, सिनेमा की बात छोड़ो, वहाँ बहुत गरम होता है, और इसी कारण मुझे चाय पीने की इच्छा होने लगी है। चलो, तुम्हारे घर चलें और चाय पियें।''

इस तरह उनका प्यार शुरू हुआ। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने प्यार का विरोध नहीं किया, क्योंकि प्यार अच्छी चीज़ है, और वसील्येव के साथ हर चीज़ इस तरह से सुखकर व सहज हो गयी थी, मानो और कुछ हो ही नहीं सकता था।

लेकिन तीन दिन बाद वसील्येव को जाना था। जब उन्होंने एक दूसरे से विदा ली, तो उसने उसके कन्धों पर हाथ रखे और कहा : ''येव्गनिया अलेक्सेयेव्ना, तुम प्रिय हो, तुम अद्भुत हो, लेकिन मैं तुमसे शादी नहीं करूँगा...'''

''ओह, नहीं..''

''मुझे शादी करने में डर लगता है। तुम्हारे दो बच्चे हैं, एक परिवार है, और शायद न होते तब भी मैं अच्छा पति नहीं बन सकूँगा। देखो ना, जब किसी की पत्नी उसे छोड़ जाती है तो यह बड़े दुःख की बात होती है। आश्चर्यजनक रूप से अप्रिय होती है! उफ़! और तभी से मैं डरने लगा हूँ, बेहद डर गया हूँ! मैं अकेले ही रहना चाहता हूँ, यह उसकी तुलना में आधे से भी कम ख़तरनाक है। लेकिन, यदि तुम्हें कभी किसी तरह की मदद की ज़रूरत पड़े, तो मैं हाज़िर हूँ।''

वह चला गया, और जब येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना प्यार के इस अनपेक्षित तूफ़ान से निकलकर अपनी पूर्वावस्था में आयी, तो उसे यह दुखद अनुभूति हुई कि उसका जीवन सचमुच ही एक अन्धी गली में जा फँसा है।

दिन बीतते गये। द्मीत्री द्मीत्रियेविच की छवि ने उसके दिल में एक स्थान बना लिया और वहीं बनी रही। नहीं, वह सहसा हो पड़नेवाली चंचलता नहीं थी, अतिचार नहीं था। द्मीत्री द्मीत्रियेविच एक प्रिय आकर्षक व्यक्ति था और यही वजह थी कि उसे इतना ज़्यादा दुख हो रहा था क्योंकि वह समझ गयी थी कि द्मीत्री द्मीत्रियेविच दो बच्चों और एक नये परिवार की पेचीदगियों से घबरा गया था। वह उसे स्नेहपूर्वक बताना चाहती थी : ''प्रिय, मेरे बच्चों से डरने की ज़रूरत नहीं है, वे बहुत अच्छे, नन्हें सहृदय प्राणी हैं-वे तुम्हारे पितृतुल्य प्यार के बदले तुम्हें भी उतना ही प्यार करेंगे।''

अब उसे इस सहृदयता की व्यग्रता में अपने बच्चों की याद आयी। भविष्य में, केवल वे ही उसके साथ होंगे और द्मीत्री द्मीत्रियेविच का चंचल आकर्षण शायद उसकी कल्पना की कोई एक वस्तु बन जायेगी। वह क्या था? एक आकस्मिक ललित कल्पना, शिशिर के सूरज की एक क्षणिक किरन? बच्चे... वे तो भविष्य हैं। केवल वे ही!

उसे ईगोर का लिखा एक पत्र मिला। स्कूली बच्चे की लिखावट में अंकित साफ़-सुथरी पंक्तियाँ चिन्ताजनक थीं। ईगोर ने लिखा :

''ममी, हम यहाँ दादा और दादी के साथ रह रहे हैं। हमें तुम्हारी बड़ी याद आती है। वहाँ घर में बेहतर था। दादाजी तो हमसे बोलते चले जाते हैं और दादीजी ज़्यादा नहीं बोलतीं। यहाँ नदियाँ नहीं हैं और स्टीमर नहीं हैं। सेब भी नहीं है, केवल चेरी के पेड़ हैं। हमें पेड़ों पर चढ़ने की इजाज़त नहीं है और दादीजी थोड़ी चेरी हमें देती हैं और बाक़ी बाजार में बेचती हैं। मैं भी बाज़ार गया, पर चेरी बेचने नहीं, लोगों को देखने के लिये कि वे कैसे हैं। कल डैडी आये और फिर चले गये। आपको बहुत-बहुत प्यार।

आपका प्यारा बेटा ईगोर जूकोव''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने इस पत्र पर विचार किया। केवल एक पंक्ति में दो-टूक बात कही गयी थी, ''घर में बेहतर था''। शायद दादी को बच्चों के प्रति बहुत स्नेह नहीं है। उसे उन्हें चेरी देने में भी अच्छा नहीं लगता। और उनके पिता वहाँ क्यों गये थे? उन्हें क्या चाहिये था?

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना की चिन्ता पूरे ज़ोर से प्रकट भी नहीं हुई थी कि दूसरा पत्र आ गया।

''प्यारी ममी। अब हम इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमें यहाँ से ले जाओ। सेब अभी भी नहीं हैं, और वे हमें बहुत कम चेरी देते हैं, वे बहुत लालची हैं, ममी तुम यहाँ आकर हमें ले जाओ, फ़ौरन आओ, अब हम ज़्यादा सहन नहीं कर सकते।

आपका प्यारा बेटा ईगोर जूकोव''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना पहले तो अपना आपा खो ही बैठी। वह क्या करे? जूकोव से कहे? ख़ुद जाये? किसी को भेजे? किसे भेजा जा सकता है? अहा, हाँ, उस मागर्दशक को।

वह दौड़कर टेलीफ़ोन के पास पहुँची। अपने समबन्ध-विच्छेद के बाद उसने पहली बार टेलीफ़ोन पर अपने पति की आवाज़ सुनी। आवाज़ सामान्य और सुपरिचित थी। लेकिन अब वह अतिशिष्ट और आत्मतुष्ट लग रही थी। उसका वार्तालाप इस प्रकार हुआ :

''अनर्गल बात! मैं एक काम से वहाँ गया था। सब कुछ बढ़िया है।''

''लेकिन बच्चों को वहाँ रहना पसन्द नहीं है!''

''इससे क्या? बच्चे कभी भी नहीं जान पाते कि उन्हें क्या चाहिये।''

''मैं बहस नहीं करना चाहती। क्या तुम उस नवयुवक को भेज सकते हो?''

''नहीं, मैं नहीं भेज सकता।''

''क्यों?''

''मैं किसी को नहीं भेज सकता। और मैं भेजना चाहता भी नहीं।''

''तुम नहीं चाहते?''

''नहीं, नहीं चाहता''

''अच्छी बात है, मैं ख़ुद जाऊँगी। लेकिन तुम्हें रुपये-पैसों की मदद करनी होगी।''

''नहीं। शुक्रिया। मैं तुम्हारे उपहासास्पद उन्माद में कोई हिस्सा नहीं बँटाना चाहता। और मैं तुम्हें आगाह करता हूँ कि मैं तुम्हें किसी भी हालत में सितम्बर से पहले पैसे नहीं भेजूँगा।''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना कुछ और कहने ही वाली थी कि जूकोव ने फ़ोन काट दिया।

उसके जीवन में इससे अधिक भयानक घृणा और किसी ने कभी नहीं भड़कायी। बच्चों को उमान भेजना जूकोव के लिये एक लाभदायी सौदे के सिवा और कुछ नहीं था। इस नीच आदमी ने उसे धोखा दिया कैसे? उसने उसके प्रस्ताव को स्वीकार करने की कमज़ोरी क्यों दिखलायी? उसने यह सब माना कैसे? लेकिन हाँ, बच्चों के कारण बाधित उसने ख़ुद एक लालची जानवर की जैसी हरकत की। द्मीत्री द्मीत्रियेविच? हूँ, उसका क्या? वह भी इन लाचार बच्चों से डरता है। वे सब की राह का रोड़ा हैं, हर कोई उनसे छुटकारा चाहता है, उन्हें कहीं छुपा देना चाहता है।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने क्रोध की पूरी भयंकरता में काम किया। उसने तीन दिन की छुट्टी हासिल कर ली। फिर उसने मखमल के पर्दों का एक जोड़ा और सोने की एक पुरानी घड़ी बेच डाली तथा ईगोर को टेलिग्राम भेजा। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण यह था कि मेज़ पर रखे टेलीफ़ोन की तरफ़ क्रोधित निगाहों से देखते हुए उसने अपने आपसे कहा :

''तो तुम पैसे नहीं दोगे? उसे हम देख लेंगे! ''

अगले दिन उसने अदालत में एक अर्जी पेश की। सरकारीशब्दों में एक शब्द का उच्चारण हुआ ''निवार्ह खर्च''।

उस शाम वह उमान को रवाना हो गयी, उसके हृदय में भावों का ज्वार उठ रहा था-बच्चों के लिये उदास-उदास उद्विग्न स्नेह, द्मीत्री द्मीत्रियेविच के प्रति आक्रोशपूर्ण कोमलता ओर जूकोव के प्रति अदम्य घृणा।

वृद्ध जूकोव दम्पत्ति के यहाँ उसने उतना ही समय बिताया, जितना अगली गाड़ी के लिये ज़रूरी था, क्योंकि वहाँ का वातावरण ऐसा शत्रुतापूर्ण तथा ऐसी खुली लड़ाई का था कि वहाँ घण्टे भर के लिये भी नहीं रह सकती थी, मुख्यतः इसलिये कि उसके आने से बच्चों का पक्ष बहुत सुदृढ़ हो गया था। अपने पहले-पहले प्रेमालिंगनों और आँसुओं के बाद बच्चे माँ से अलग हुए और दुश्मन की ओर उन्मुख हो गये। ओल्या के चेहरे पर क्रोध की ऐसी मुद्रा प्रकट हुई कि उससे सिर्फ़ एक बात अभिव्यक्त होती थी-कोई दयामया नहीं। वह एक बड़ी-सी छड़ी लेकर कमरे में आयी और हर वस्तु को तोड़ने का प्रयत्न करने लगी-मेज़ों, कुर्सियों, खिड़की की चौखट, केवल खिड़कियों के शीशे ही, किसी कारणवश, उसकी निगाहों से बच गये। उन वृद्ध-जनों न उसके हाथ से छड़ी लेने और उसे कहीं छिपाने की कोशिश की। अपना हथियार छिन जाने

पर ओल्या ने अपने दादा को अपना नन्हा घूँसा दिखलाया और होंठों को काटते हुए दूसरी छड़ी की खोज करने लगी, उसके चेहरे पर वही पहले वाला, निर्ममता का भाव था। दादाजी उसे एक टोह लगाने वाले स्काउट की तरह चिन्तित दृष्टि से देख रहे थे।

''महोदया, आपने बड़े अच्छे बच्चे पाले हैं!'' उसने कहा। आप इसे बच्चा कहती हैं! यह तो महामारी की हवा है! ईगोर ने अपने दादा की तरफ़ वास्तविक तिरस्कार की नज़रों से देखा :

''महामारी की हवा आप ख़ुद हैं। हमें पेटी से मारने का आपको क्या हक़ है?''

''तो पेड़ पर मत चढ़ा कर।''

''कंजूसो।'' ईगोर ने घृणा से कहा। ''पैसे को दाँत से पकड़ने-वालो! टुकड़खोरो! यह कश्चेई है और वह बाबा यगा है।''*

''ईगोर तुम क्या बातें कहते हो!'' उसकी माँ ने दख़ल देते हुए कहा।

''ओहो! उसने तो मुझसे इससे भी गन्दी बातें कही हैं। अपनी माँ को बताओ, तुमने क्या कहा था?''

''मैंने क्या कहा था? ज़रा सुनो तो, कैसी झूठी बातें उन्होंने पिताजी को बतायीं!'' ईगोर उनकी नकल उतारने लगा : '''यहाँ तुम्हारे प्यारे बच्चे ईसा की गोद में हैं। शाम के भोजन में दस-दस चेरियाँ खाते हैं!' और उसने तुम्हारे बारे में क्या कहा : 'तुम्हारी माँ, तुम्हारे पिता के लिये ख़ूब रोयी!' सुना तुमने 'रोयी'!''

तीसरे दर्जे के डिब्बे की भीड़-भाड़ में बच्चों और उनके सामान के लिये किसी तरह जगह बनाकर येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने हताश होकर पीछे को ऐसे नज़र डाली मानो वह एक जलते हुए मकान से अभी-अभी बचकर आयी हो। ओल्या के चेहरे पर अभी भी वही निर्मम भाव अंकित था। अब उसने गाड़ी की खिड़कियों या गायों में कोई दिलचस्पी नहीं ली। ईगोर उन विभिन्न बातों को सुनाये बग़ैर न रह सका जो उससे कही या की गयी थीं। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने बच्चों को देखा और उसे रोने की इच्छा होने लगी-न जाने प्रेमवश या दुख के कारण।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना का हृद अब फिर बच्चों की देखभाल और अकेलेपन के बोझ से बोझिल हो गया। अब जिस अकेलेपन की उसे अनुभूति होती वह एक नये प्रकार का था और लोगों तथा मामलों पर निर्भर नहीं था। यह अकेलापन उसके अन्तर की गहराइयों में, क्रोध और प्रेम से पोषित था। लेकिन क्रोध प्रेम के लिये बहुत कम जगह रहने देता था। उसने बिना कारण और बिना प्रमाण के ही अपने आपको यक़ीन दिला दिया कि जूकोव एक अपराधी है, लोगों और समाज के लिये ख़तरा है, सारे संसार में नीचतम प्राणी है। उसे परेशान करना, बेइज़्ज़त करना, मारना या संत्रस्त करना उसके जीवन का एक सपना बन सकता है।

अतः, जब अदालत के फैसले के बाद उसने टेलीफ़ोन पर जूकोव की आवाज़

---

* कश्चेई और बाबा यगा-रूसी लोक-कथाओं में बुराई के पारम्परिक प्रतीक-पात्र।-**सं.**

सुनी तो निष्ठुर आह्लाद का अनुभव करते हुए सुनी। अदालत ने उसे ढाई सौ रूबल प्रतिमाह निर्वाह-ख़र्च देने का हुक्म दिया था।

''मैं तुमसे किसी भी चीज़ की अपेक्षा कर सकता था, लेकिन मैंने ऐसी कमीनी चाल की उम्मीद कभी नहीं की थी...''

''ओ हो! ''

''क्या? तुम एक लोलुप औरत के सिवा और कुछ नहीं हो, तुममें श्रेष्ठ भावनाओं का लेशमात्र भी नहीं है''

''क्या कहा तुमने? श्रेष्ठ?''

''हाँ, श्रेष्ठ। मैं तुम्हारे लिये हर तरह की वस्तुओं, पुस्तकालय, तस्वीरों तथा फर्नीचर से भरा-पूरा एक पूरा फ़्लैट छोड़ कर गया था...''

''तुमने यह सब कायरता की वजह से किया, क्योंकि तुम सड़ियल हो, मोरी के कीड़े...''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना का धैर्य जवाब दे गया। उसने अपनी सारी ताकत से टेलीफ़ोन के चोंगे को ऐसे पकड़ लिया, मानो जूकोव की गर्दन हो। उसने उसे हिलाया और फटे गले से चिल्लाकर कहा :

''तुम जैसे आदमी का परिवार कैसे हो सकता है, कमीने, हैवान!''

जो अमंगल शब्द वह चिल्लाती, वे उसे सन्तुष्ट नहीं कर पाये, लेकिन वह कोई और उनसे ज़्यादा अपमानजनक बातें सोच नहीं पायी। यह अकेली घृणा स्वयं उसके लिये भी असह्य हो गयी। उसे इसके बारे में किसी से बातें करनी ही चाहिये, इसे बढ़ाना-चढ़ाना चाहिये, जूकोव को कीड़ा और बदमाश कहने के लिये अन्य लोगों में भी उसी घृणा को जगाना चाहिये। वह चाहती थी कि लोग जूकोव घृणा करें, अपनी घृणा को उसी की जैसी प्रबलता से अभिव्यक्त करें। लेकिन ऐसा कोई नहीं था जिसे वह अपने क्रोध का सहभागी बना सकती और वह आश्चर्य में पड़कर सोचती : लोग यह क्यों नहीं समझते कि जूकोव कैसा कमीना है, वे उसके साथ बातें, काम और मज़ाक क्यों करते हैं, उससे हाथ क्यों मिलाते हैं?

लेकिन लोग जूकोव के घृणित चरित्र को समझते नहीं थे और उसके साथ वैसा बरताव नहीं करते थे जैसा कि येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना चाहती थी। केवल बच्चे ही उसके दुःख-दर्द को पूरे परिमाण में महसूस करते थे, और उसने उनके साथ औपचारिकता से बात करना कब का छोड़ दिया था। वह बहुधा उनकी उपस्थिति में अपने पति का ज़िक्र करती, उसके प्रति अपने भावों को घृणा के साथ व्यक्त करती और अपमानजनक शब्दों का खुलकर प्रयोग करती। और उसने अदालत के फैसले के बारे में उन्हें विशिष्ट विजय-भावना के साथ बताया।

''तुम्हारे नाज़ुक मिज़ाज पिता का ख़्याल है कि मुझे उसकी ख़ैरात चाहिये-दो सौ रूबल! वह भूल गया कि वह सोवियत शासन में रह रहा है। उसे वह अदायगी करने दो, जो अदालत कहती है, और अगर वह अदा नहीं करता, तो जेल जा सकता है!''

बच्चे ऐसे वाग्वाणों को ख़ामोशी से सुनते। ओल्या की भृकुटि टेढ़ी हो जाती और वह क्रोधपूर्ण मुद्रा में विचारमग्न हो जाती। ईगोर के चेहरे में एक व्यंग्यात्मक अवज्ञा का भाव होता।

अपने दादा के घर से लौटने के बाद बच्चों का चरित्र बदल गया था। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने यह बात समझ ली थी, लेकिन इस पर विचार करने के लिये उसका दिमाग़ स्वतंत्र नहीं था। यदि उसने बच्चों के चरित्र के किसी एक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित कर दिया होता, तो उस पर तुरन्त नयी चिन्ताओं और क्रोधपूर्ण आवेशों का दौरा पड़ जाता था।

ईगोर के चेहरे का भाव तक बदल गया था। पहले वह शान्त, अपनी हिरन सरीखी आँखों की सुखकर सौम्यता से सुवर्द्धित स्पष्ट व सरल विश्वास की मूर्ति जैसा हुआ करता था। अब उसके चेहरे पर अधिकाधिक बार कुटिल अविश्वास तथा अवज्ञापूर्ण निन्दा का भाव हुआ करता था। उसने बग़ल को झाँकना और आँखों को सिकोड़ना सीख लिया था। अब उसके होंठ लगभग अगोचर रूप से टेढ़े हो जाते हैं और ऐसा लगता था कि हर समय तिरस्कार की भावना से भरे हुए हैं।

उनके पड़ोसियों के यहाँ एक पार्टी हुई-सामान्य क़िस्म का ऐसा पारिवारिक समारोह, जैसा किसी के भी यहाँ हो सकता था। उस शाम ग्रामोफ़ोन बजने और नाचते हुए क़दमों की आवाज़ उनके फ़्लैट से आ रही थी। ईगोर बिस्तर में लेट गया था। अपने चहेरे की सामान्य अवज्ञापूर्ण तथा जानकारों की मुद्रा मनाते हुए उसने कहा : ''उन्होंने सरकारी धन चुराया है, और नाच रहे हैं!''

उसकी माँ आश्चर्य में पड़ गयी।

''तुम्हें कैसे पता कि उन्होंने चुराया है?''

''सचमुच, उन्होंने चुराया है,'' ईगोर ने तिरस्कारपूर्ण निश्चितता से काह, ''उनके लिये यह काफ़ी आसान है, नहीं है क्या?

तुम जानती हो कि कोरोत्कोव कहाँ काम करता है? वह एक दुकान का मैनेजर है। बस तिजोरी में हाथ डाला, और पैसा ही पैसा।''

''तुम्हें शर्म आनी चाहिये ईगोर, इस तरह के झूठे क़िस्से गढ़ते हो, तुम्हें शर्म से पानी-पानी हो जाना चाहिये!''

''उन्हें चुराने की शर्म नहीं है, तो मैं क्यों शर्माऊँ?'' ईगोर ने अपनी माँ की तरफ़ देखते हुए ऐसे विश्वास से कहा मानो वह जानता हो कि उसकी माँ ने भी कुछ चुराया है और कि वह उसका ज़िक्र नहीं करना चाहता है।

शरद के अन्तिम दिनों येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना की बहन नदेज्दा अलेक्सेयेव्ना सोकोलोवा कुछ दिनों के लिये मास्को आयी और उनके घर रही। वह येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना से बहुत बड़ी थी और क़द-काठी में बहुत भारी थी। उसने उस सुखद आश्वस्तकारी शान्ति का वातावरण पैदा कर दिया, जो बड़े परिवारोंवाली सुखी माँओं की विशिष्टता होती है। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना उससे मिलकर प्रसन्न हुई और उसने

अपने सारे दुख-दर्द सुना डाले। वे अधिकांशतः शयनकक्ष में अकेले बातें करते, लेकिन कभी-कभी भोजन करते समय येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना अपने ऊपर क़ाबू नहीं रख पाती थी।

उसके रोने-धोने के जवाब में एक बार नदेज्दा ने कहा : ''शिकायत करना छोड़, समझी! तू किसलिये रोती है? फिर से शादी कर ले! तू उन्हें देख। ईगोर को देख। ईगोर को एक पुरुष की तुझसे भी ज़्यादा ज़रूरत है। औरतों के बीच घिरा वह किस क़िस्म का पुरुष बनेगा? ईगोर मुँह बनाना बन्द कर। देखा, तुम्हारा बेटा छोटा स्वेच्छा-चारी बन गया है! वह यह समझता है कि उसकी माँ के पास उसके पीछे-पीछे चलने के सिवा और कोई बेहतर काम ही नहीं है। शादी कर ले। पुरुष अजनबी बच्चों के साथ हमारे मुक़ाबले अच्छा बरताव करते हैं। वे अधिक विशाल-हृदय होते हैं...''

इस पर ईगोर ने कोई टिप्पणी नहीं की, वह अपलक अपनी मौसी को ताकता रहा। लेकिन जब नदेज्दा चली गयी, तो ईगोर ने अपनी मौसी को भी नहीं बख़्शा।

''जो चाहता है, यहाँ चला आता है... वह हमारे साथ पाँच दिन रही, बिल्कुल निःशुल्क-बेशक यह उसे बहुत ही माफ़िक आया। किसी और की क़ीमत पर... बुरी बात नहीं!''

''ईगोर, जिस तरह से तू बोलता है, उससे मुझे झुँझलाहट होने लगी है!''

''बेशक तुम्हें झुँझलाहट ही होगी! वह तुम्हें हर समय पुरुषों की बात बताती रही है : ''शादी कर ले, शादी कर ले! और तुम्हें तो यही चाहिये, चाहिये कि नहीं?''

''ईगोर, बन्द कर!''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने यह बात ज़ोर से चिल्लाकर और क्रोध से कही, लेकिन ईगोर के कान में जूँ भी नहीं रेंगी। उसके होंठों पर विद्रूप के भाव की वही हल्की-सी रेखा उभरी और उसकी आँखों में एक गूढ़ अदयता दिखायी पड़ी।

ईगोर के चरित्र के बारे में स्कूल से भी बुरी-बुरी अफ़वाहें आ रही थीं। स्कूल के हेडमास्टर ने येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को स्कूल में बुलवाया।

''यह बताइये कि आपका लड़का ऐसी मनोदशाओं में कैसे पहुँच जाता है? मैं पल भर के लिये भी कल्पना नहीं कर सकता कि यह आपका प्रभाव है।''

''गड़बड़ क्या है?''

''ख़ासी गड़बड़ है, वास्तव में बहुत ज़्यादा गड़बड़ है। वह अध्यापकों की निन्दा करने के सिवा और कुछ भी नहीं करता। उसने एक अध्यापिका के मुँह पर कह दिया : 'तुम ऐसी द्वेषपूर्ण इसलिये हो कि तुम्हें इसके लिये वेतन मिलता है!' और सामान्यतः दर्जे में वह एक केन्द्र है... प्रतिरोध का केन्द्र।''

हेडमास्टर ने येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना की उपस्थिति में ईगोर को बुलाया और उससे कहा : ''ईगोर, तुम्हारी माताजी आयी हैं। उनके सामने मुझे यह वचन दो कि तुम अपना चाल-चलन सुधारोगे।''

ईगोर ने ख़ामोशी से अपनी माँ की तरफ़ देखा और धृष्टता से होंठ सिकोड़ लिये।

एक पैर से दूसरे में वज़न डालते हुए उसने विरसता के साथ अपना मुँह फेर लिया।

''क्यों, तुम कुछ बोलते क्यों नहीं?''

ईगोर ने अपनी आँखें झुका लीं और फिर दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया।

''तुम कुछ बोलोगे नहीं?''

हँसी के मारे ईगोर का गला रुँध गया था-उसकी यह हँसी अचानक ही भड़क-सी उठी थी, लेकिन उसने अपनी हँसी को तुरन्त रोका और सूनी-सूनी निगाहों से देखते हुए कहा :

''मैं कुछ नहीं कहूँगा।''

हेडमास्टर ने एक-दो सेकेण्ड तक ईगोर की तरफ़ देखा, फिर उसे बर्ख़ास्त कर दिया।

''अच्छा, तुम जा सकते हो।''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना कातर होकर घर लौटी। उसे लगा कि वह लड़कपन की इस कटुता से पूर्णतः पराभूत हो गयी है। उसके अन्तर में हर चीज़ बहुत लम्बे समय से ठीक वैसे ही अव्यवस्थित थी जैसे कि एक अस्तव्यस्त शयन-कक्ष। लेकिन ईगोर का एक अपना ही चरित्र बनने लगा था और येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना उसकी प्रकृति को न तो समझ सकी न उसका अन्दाज़ा लगा सकी।

उसका जीवन कुढ़न पैदा करने वाली छोटी-छोटी बातों में अधिकाधिक उलझता चला जा रहा था। दफ़्तर में ऐसी कई घटनाएँ हुईं, जिनके लिये मुख्यतः उसकी मनोदशा का ही दोष था। जूकोव से मिलने वाला निर्वाह ख़र्च अनियमित ढंग से आ रहा था और उसे उसके ख़िलाफ़ शिकायत करनी पड़ी थी। अब जूकोव टेलीफ़ोन नहीं करता था, लेकिन उसके जीवन तथा उससे सम्बन्धित मामलों की अफ़वाहें उस तक पहुँचती थीं। उसकी नयी पत्नी का एक बच्चा पैदा हुआ था, और जूकोव निर्वाह खर्च में कमी के लिये एक अर्ज़ी दे रहा था।

वसन्त में वह सड़क पर ईगोर से मिला, उसे अपनी कार में बिठाया, लेनिनग्रादस्की राजमार्ग की सैर करायी तथा विदाई के समय उसे कई तरह के औज़ारों वाला एक छोटा चाकू भी दिया। ईगोर इस सैर के बाद प्रसन्न होकर वापस लौटा और अपने हाथों को लगातार हिलाता, उत्तेजित स्वर में उन जगहों की, पिता के सुनाये हुए चुटकुलों की तथा उनकी कार की बातें करता रहा। उसने उस चाकू को अपनी पतलून की जेब में एक धागे से अटका लिया, सारा दिन उसे खोलने-बन्द करने में बिताया और शाम को कहीं से एक लकड़ी ले आया और उसे तब तक छीलता रहा, जब तक कि सारा कमरा कूड़े से भर नहीं गया और अन्त में अपनी उँगली काट ली, लेकिन उसने यह बात किसी को नहीं बतायी और आधे घण्टे तक वाशबेसिन में हाथ धोता रहा। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने खून देखा और चिल्लाकर बोली : ''हे प्रभु, ईगोर, तुम क्या कर रहे हो? फेंको इस हैवानी चाकू को!''

ईगोर आगबबूला होकर पलटा :

‘‘तुम्हें इसे हैवानी चाकू कहने का क्या हक़ है? तुम्हारी मजाल क्या है! यह चाकू तुमने नहीं दिया! और यह ‘हैवानी चाकू’ है, क्योंकि डैडी ने इसे दिया है! इसीलिये तुम्हें पसन्द नहीं?’’

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना अकेली रोयी, क्योंकि घर में भी ऐसा कोई नहीं था जिससे वह सहानुभूति की आशा करती। ओल्या ने अपनी माँ से युद्ध का एलान नहीं किया था और उसके साथ धृष्टता भी नहीं करती थी। लेकिन उसने उसकी आज्ञा का पालन करना बन्द कर दिया था और वह यह काम भय और सतर्कता के बग़ैर ख़ूबसूरती से करती थी। वह कई दिनों तक अहाते में या पड़ोसियों के यहाँ चली जाती और मैली-कुचैली बनकर घर लौटती, किसी भी चीज़ के बारे में कभी कुछ न कहती और घरेलू मामलों में कोई दिलचस्पी न लेती। कभी-कभी वह अपनी माँ के सामने रुक जाती, अपना निचला होंठ काटती, उसकी तरफ़ अजीब निर्ममता से देखती और वैसे ही निरुद्देश्य घूमती चली जाती। वह अपनी माँ की डाँट-डपट को अन्त तक कभी नहीं सुनती थी-उस पर किसी का वश नहीं चलता था। यहाँ तक कि जब उसकी माँ उसके कपड़े बदलती, तब भी वह अपने ही ख़्यालों में खोयी दूसरी तरफ़ को देखती रहती थी।

उलझन और निराशा से भरे दिन दुखपूर्वक बीत रहे थे। जिस ख़ुशी की याद अभी कुछ ही समय पहले तक उसे थी, अब उसकी झलक भी कहीं नहीं थी, और उस याद का भी क्या लाभ जो जूकोव के बिना काम न कर सके?

वसन्तकाल में येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने मौत के बारे में सोचना शुरू कर दिया। उसे इस बात का स्पष्ट अन्दाज़ा नहीं था कि क्या हो सकता है, लेकिन अब मौत भयावह नज़र नहीं आती थी।

कभी-कभी द्मीत्री द्मीत्रियेविच के पत्र आते थे। वे कोमल भावनाओं से भरपूर तो होते, पर उनमें निश्चित बात कुछ नहीं होती थी। अप्रैल में वह अपने काम के सिलसिले में फिर मास्को आया। उसने येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना का हाथ पकड़ा और उसकी निगाहें या तो क्षमा-याचना प्रकट करती प्रतीत होतीं या प्रेम-निवेदन करतीं। वे दफ़्तर से साथ-साथ बाहर निकले। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने अपने क़दम जैसे इस उम्मीद से तेज़ कर लिये कि वह उसके साथ नहीं चल सकेगा। उसने उसकी कोहनी थाम ली और कठोर स्वर में कहा :

‘‘येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना, तुम्हें ऐसा नहीं होना चाहिये।’’

‘‘तो कैसा होना चाहिये?’’ उसने रुककर उसकी नीलारुण आँखों में झाँका। इसके प्रत्युत्तर में उसने गहरी नज़र से उसे देखा, लेकिन कहा कुछ नहीं। अपने टोप को उठाते हुए वह बग़ल की एक गली को मुड़ गया।

मई का वह महीना घटनापूर्ण था।

बग़ल के एक फ़्लैट में एक आदमी ने अपनी पत्नी को निर्ममता से पीटा... वह आदमी किंचित प्रतिष्ठित पत्रकार था और कुछ विशेषीकृत विषयों का मान्यताप्राप्त

जानकार माना जाता था। हर किसी का विश्वास था कि गोरोख़ोव एक अच्छा और प्रतिभावान आदमी है। उसकी सतायी हुई पत्नी ने एक रात कोरोत्कोव परिवार के साथ बितायी। कोरोत्कोव तथा जूकोव परिवार, दोनों ही, तथा अन्य लोग भी जानते थे कि गोरोख़ोव अपनी पत्नी से दुर्व्यवहार करता था और उसकी पत्नी कुछ करना तो दूर विरोध करने की बात सोचने में भी असमर्थ थी। हर कोई इस ख़्याल का आदी हो गया था कि यह गोरोख़ोव परिवार का अपना मामला है, उनके पारिवारिक जीवन की शैली है, सभी लोग उनके बारे में चुटकुले सुनाते और उन पर हँसा करते, लेकिन जब गोरोख़ोव से मिलते, तो इस बात पर कभी कोई सन्देह व्यक्त नहीं करते थे कि वह एक अच्छा और प्रतिभावान व्यक्ति है।

जब येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने इस नये लांछन की बात सुनी, तो वह बहुत देर तक अपने कमरे में मेज़पोश के नमूने को ख़ामोशी से ताकती हुई इधर-उधर घूमती रही, फिर उसे भोजन-कक्ष की मेज़ पर सिरके की एक भूली-बिसरी बोतल की याद आ गयी और वह उसके लेबल की गहरी नीली पृष्ठभूमि पर अंकित सफ़ेद सजावटी अक्षरों को देर तक जाँचती-परखती रही। लेबल के किनारे पीले थे और उन पर अनेक शब्द अंकित थे। उसकी निगाह उस बोतल के सामान्य लेबल पर अटक गयी और वह उसके सादे अलंकरणों पर आश्चर्य से विचार-सा करने लगी।

बोतल को सावधानी के साथ मेज़ पर रखने के बाद वह अपने फ़्लैट से बाहर निकली, सीढ़ियों से नीचे उतरी और कोरोत्कोव के दरवाज़े पर पहुँचकर घण्टी बजायी। वहाँ उसने गोरोख़ोव की सतायी हुई पत्नी का रोना-धोना सुना, खुश्क सूजी हुई आँखों से उसे निहारा और बाहर आ गयी, उसे न जीवित रहने का अहसास था न मौत का।

वह सीढ़ियों से ऊपर चढ़ी और अनजाने ही गोरोख़ोव के दरवाज़े को धकेला। उससे मिलने कोई नहीं आया। पहले कमरे में, नंगे गन्दे फर्श पर लगभग चार वर्ष की एक लड़की बैठी थी और तम्बाकू के कुछ डिब्बों से खेल रही थी। दूसरे कमरे में, लिखने की एक मेज़ पर उसे गोरोख़ोव बैठा नज़र आया। वह पतली नाकवाला छोटे कद का आदमी था। उसने येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को देखा, तो ताज्जुब में पड़ गया और आदतन स्वागत में मुस्कराया, पर तभी उसकी जलती हुई आँखों में कुछ विचित्रता को देखकर वह अपनी कुर्सी पर आधा उठ गया। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना कन्धा टेककर दरवाज़े के सहारे खड़ी हो गयी और चिल्लाकर बोली :

"सुन, बदमाश, मेरी बात सुन : मैं तेरे बारे में अख़बार में लिखने जा रही हूँ!"

क्रोधित और सम्भ्रमित गोरोख़ोव ने उसकी तरफ़ देखा, फिर अपनी क़लम मेज़ पर रखी और कुर्सी को पीछे धकेला।

वह उस पर झपट पड़ी।

"तू देखेगा, सुअर, मैं सब कुछ लिख दूँगी।" उसने चीखकर कहा।

उसे लगा कि वह उस पर चोट करने ही वाला है। वह सनसनाती हुई कमरे के

बाहर निकल गयी, लेकिन उसके मन में कोई भय नहीं था। वह क्रोध और प्रतिशोध की भावना से जल रही थी। अपने कमरे में पहुँचते ही, उसने फ़ौरन मेज़ का दराज़ खोला और कुछ क़ागज़ निकाल लिये। ईगोर कालीन पर बैठा कुछ छड़ियों की लम्बाई नापता हुआ उन्हें छाँटने में लगा था। अपनी माँ को देखते ही उसने यह काम छोड़ दिया और उसके पास चला आया।

"ममी, तुम्हें पैसे मिले?"

"कैसे पैसे?" उसने पूछा।

"पिताजी से। तुम्हारे पास पिताजी का पैसा है?"

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने हैरत से अपने लड़के की तरफ़ देखा। उसके होंठ काँप रहे थे। लेकिन येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना अभी भी गोरोख़ोव के बारे में सोच रही थी।

"मेरे पास हैं। तुम्हें क्या चाहिये?"

"मुझे एक 'निर्माण सेट' ख़रीदना है, यह एक खेल है, मुझे उसकी ज़रूरत है? उसकी क़ीमत तीस रूबल है।

"अच्छी बात है, लेकिन इसका पिता के पैसे से क्या वास्ता है?" धन तो सभी एक समान होता है।"

"नहीं, ऐसा नहीं होता, कुछ तुम्हारा धन है, कुछ मेरा!"

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने आश्चर्यचकित होकर अपने बेटे की तरफ़ देखा। वह कुछ बोल ही न सकी।

"तुम मुझे किसलिये घूर रही हो?" ईगोर की भृकुटि टेढ़ी हो गयी। "डैडी तुम्हें हमारे लिये धन देते हैं। यह हमारा है और मैं एक 'निर्माण सेट' ख़रीदना चाहता हूँ... लाओ, मेरे हवाले करो।"

ईगोर का चेहरा धृष्टता, मूर्खता और निर्लज्जता का निपट घिनौना मिश्रण बन गया था। येव्गेनिया का चेहरा फक पड़ गया और वह कुर्सी पर ढुलक गयी, लेकिन मेज़ पर क़ागज़ के पन्ने तैयार पड़े देखकर... वह सब कुछ समझ गयी। अपने अन्तर के गहरे तल में उसे सहसा शान्ति की अनुभूति हुई। उसका विवर्ण चेहरा भावविहीन था, उसने दराज़ से अनायास ही दस-दस रूबल के नोटों का पुलिन्दा निकाला और उसे मेज़ के ऊपर लगे शीशे पर रख दिया। इसके बाद उसने अपने हर शब्द में वही आग भर कर ईगोर से कहा, जो अभी-अभी उसकी अन्तरात्मा से होकर गुज़री थी : "यह रहा वह धन, देख रहे हो? बताओ देख रहे हो?

"देख रहा हूँ," ईगोर ने भयभीत होकर कहा, वह ऐसे स्थिर खड़ा था मानो उसके पैर वहीं फ़र्श पर जम गये हों।

"देखो!"

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने अपने सामने पड़े क़ागज़ पर कुछ पंक्तियाँ लिखीं।

"सुनो, मैंने क्या लिखा है :

''जूकोव महोदय के लिये,

मैं आपसे प्राप्त धन लौटा रही हूँ। अब और भेजने की तक़लीफ़ मत उठाइयेगा। आप जैसे लोगों से धन लेने के बजाय भूखों मरना बेहतर है।''

अपने लड़के की ओर से नज़रें हटाये बिना उसने उस धन तथा पत्र को लिफ़ाफ़े में बन्द कर दिया। ईगोर के चेहरे में अभी भी भय का वह भाव मौजूद था, लेकिन अब उसकी आँखों में सक्रिय दिलचस्पी की चिंगारियाँ निकलने लगी थीं।

तुम यह पैकेट उस आदमी के पास ले जाओगे, जिसने तुम्हें छोड़ दिया और अब एक पुराना चाकू रिश्वत में दिया है। इसे उसके पास, उसके दफ़्तर में ले जाओ। समझे?''

ईगोर ने हामी भरी।

''इसे ले जाओ और चपरासी को दे देना। पि... जूकोव से कोई बातचीत मत करना।''

ईगोर ने फिर हामी में सिर हिलाया। उसके गालों का रंग स्पष्टतः गुलाबी होने लगा था और वह अपनी माँ की तरफ़ ऐसे देख रहा था मानो कोई चमत्कार किया जा रहा हो।

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना को याद आया कि अभी कुछ और भी करना है...

''अरे हाँ! अख़बार का कार्यालय उसी की बग़ल में हैं... लेकिन, मैं उसे डाक से भेज दूँगी।''

''अख़बार क्यों? उसमें... उसके उसी जूक... के बारे में...''

''गोरोख़ोव के बारे में, मैं गोरोख़ोव के बारे में लिखने जा रही हूँ।''

''ओ ममी, उसने उसे लात मारी, एक डण्डे से मारा, क्या तुम यह सब लिखोगी?''

उसने ईगोर की तरफ़ अविश्वास से देखा। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना उसकी सहानुभूति पर यक़ीन करना नहीं चाहती थी। लेकिन ईगोर उसकी तरफ़ गम्भीरता से, उत्साह से, सीधी निगाहों से देख रहा था।

''अच्छी बात है, जाओ,'' उसने संयमपूर्वक कहा।

वह टोपी पहने बिना ही बाहर को भागा। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना खिड़की पर जाकर खड़ी हो गयी। उसने देखा कि वह कितनी तेज़ी से सड़क पार करता जा रहा है और उसके हाथ में वह लिफ़ाफ़ा कैसा दमक रहा है जिससे वह अपने जीवन के अपमान को हमेशा के लिये निकाल कर फेंक रही थी। उसने खिड़की खोली। आकाश जीवित था, गतिमान था : क्षितिज में तड़ित्मेघ घिर रहे थे। उनका मुख्य बल ख़तरनाक ढंग से एकत्र हो रहा था, लेकिन उसके आगे उजले-उजले सफ़ेद बादलों के टुकड़े तरंगायमान हो रहे थे। तड़ित्गर्जन हुआ, पर वह अभी भी कहीं दूर था, कमरा शीतलतर होने लगा। येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने गहरी साँस ली और अख़बार के लिये एक पत्र लिखने बैठ गयी। अब उसे क्रोध की अनुभूति नहीं हो रही थी और केवल एक

दृढ़ निश्चय का भाव बचा रह गया था।

आधे घण्टे में ईगोर लौट आया। वह चुस्त और प्रसन्नचित्त होकर लौटा था। द्वार पर खड़ा होकर वह बोला :

''ममी, मैंने सारे काम कर दिये!''

उसकी माँ ने एक नये अनभ्यस्त उल्लास के साथ उसे कन्धों से पकड़ लिया। वह अपनी आँखें नीची करने को था, लेकिन तभी उसने हल्की भूरी आँखों की सुस्पष्ट चमकीली निगाहें सीधे उसके चेहरे में गड़ा दी और कहा : ''तुम जानती हो? मैंने वह चाकू भी वापस कर दिया।''

अख़बार को प्रेषित येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना के पत्र की ज़ोरदार अनुक्रिया हुई और वह सहसा लोगों के ध्यान का केन्द्र बन गयी।

अब उसका टेलीफ़ोन दिन भर बजा करता। हुआ क्या, इस बात की उसे पूरी-पूरी जानकारी नहीं थी-उसने सिर्फ़ यह महसूस किया कि वह कुछ महत्वपूर्ण और निर्णायक था। जब उसने टेलीफ़ोन पर जूकोव से बात की, तो उसे इस बात का पक्का यकीन हो गया।

''यह बताओ कि मैं तुम्हारे पत्र से क्या समझूँ?''

येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना टेलीफ़ोन का चोंगा पकड़े मुस्कराई :

''यह समझो कि तुम्हारे मुँह पर तमाचा है।''

जूकोव ने टेलीफ़ोन पर बड़बड़ की, पर उसने चोंगा नीचे रख दिया।

वह लोगों के बीच रहना और आना-जाना चाहती थी। और अब लोग हर तरफ़ से उसे घेरे हुए थे। ईगोर एक परिचारक की तरह अपनी माँ के पीछे-पीछे चला करता और गर्व से सिर उठाये रहता। अपने पिता के बारे में कोई भी बात नहीं करता था। हर किसी को येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना में, गोरोख़ोव के बारे में पत्र लिखनेवाले लेखक में दिलचस्पी थी।

''वे गोरोख़ोव के बारे में बोलते जाते हैं,'' ईगोर ने उससे पूछा, ''लेकिन वे हमारे बारे में कुछ नहीं जानते, जानते हैं, क्या?''

''नहीं ईगोर, उसकी माँ ने उत्तर दिया। ''लेकिन मैं फिर तुम्हारी मदद चाहूँगी। कृपा करके ओल्या के बारे में कुछ करो-वह तो क़ाबू के बाहर हो गयी है।''

ईगोर ने कुछ करने में देर नहीं की। उसने खिड़की पर जाकर अहाते से ओल्या को बुलाया और उससे कहा : ''सुनो, कामरेड ओल्या! तुम काफ़ी अर्से से बेकार वक्त गँवा रही हो!''

ओल्या दरवाज़े की तरफ़ चल दी। ईगोर ने उसकी राह रोक दी। ओल्या ने उसकी तरफ़ देखा।

''क्या है?''

''तुम्हें माँ का कहना मानना ही पड़ेगा।''

"अगर मैं न चाहूँ तो?"

"समझ लो, अब से मैं तुम्हारा सरदार हूँ।"

ओल्या ने सिर हिलाया और पूछा :

"तुम मेरे सरदार हो?"

"आओ और माँ से मिलो..."

"और अगर मैं नहीं चाहती तो?"

"यह नहीं चलेगा," ईगोने मुस्कराकर कहा।

"नहीं चलेगा!" उसने कुटिल दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"नहीं।"

ओल्या जिस उपेक्षा-भाव से अपनी माँ के पास से चली जाया करती थी, अब उसी भाव से विपरीत दिशा को चली। ईगोर ने महसूस किया कि उस पर बहुत ध्यान दने की ज़रूरत है।

उसकी माँ की बातचीत उपदेशात्मक थी। ओल्या ने बेमन से सुना, लेकिन उसकी माँ की बग़ल में ईगोर खड़ा था, उसकी ख़ामोश आकृति गर्व के साथ क़ानून का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

ज़िन्दगी हर तरह से दिलचस्प हो गयी थी। एक शाम उनके फ़्लैट में नितान्त अनपेक्षित रूप से एक हृष्ट-पुष्ट उजले बालों वाला आदमी आ धमका।

"येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना, तुमने गोरोख़ोव को लेकर ऐसा उपद्रव खड़ा कर दिया. .. हर कोई तुम्हारे बारे में बातें कर रहा है। मैं अलग नहीं रह सका, मुझे आना ही पड़ा।"

"प्रिय द्मीत्री द्मीत्रियेविच, कितना अच्छा हुआ कि तुम आये," येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना की प्रसन्नता ने उसे और भी सुन्दर बना दिया। "आओ, मैं तुम्हें अपने बच्चों से मिलवाती हूँ।"

"अहा," द्मीत्री द्मीत्रियेविच ने गम्भीरता से मुस्कराते हुए कहा। "यह ईगोर है ना? सुन्दर चेहरा है। और यह ओल्या है। इसका चेहरा भी सुन्दर है। अब मुझे तुम लोगों से कुछ गम्भीर बातें करनी है : देखो ना, बात यह है कि... मैं तुम्हारी माँ से शादी करना चाहता हूँ।

वह उजले बालों वाला आदमी ख़ामोश हो गया, कमरे के बीचोबीच खड़ा होकर सवालिया नज़रों से बच्चों की तरफ़ देखने लगा।

"द्मीत्री द्मीत्रियेविच," येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने उलझन में पड़कर कहा, "तुम्हें यह बात पहले मुझसे कहनी चाहिये थी..."

"तुम और मैं तो हमेशा किसी न किसी समझौते पर पहुँच ही सकते हैं। लेकिन चिन्ता इन लोगों की है...," द्मीत्री द्मीत्रियेविच ने कहा।

"हे भगवान, क्या ढीठपना है!"

"क्या ढीठपना!" ओल्या धीरे से हँसी।

‘‘अच्छा, ईगोर तुम्हारा क्या ख़्याल है?’’

‘‘लेकिन तुम किस क़िस्म के आदमी हो?’’ ईगोर ने पूछा।

‘‘मैं? यह है सवाल! मैं वफ़ादार, ख़ुशमिज़ाज आदमी हूँ। मैं तुम्हारी माँ को बहुत प्यार करता हूँ। और मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ, लेकिन बच्चों के मामले में मैं बहुत क-ठ-ठो-र हूँ,’’ उसने अपनी आवाज़ भारी बनाते हुए गरजकर कहा।

‘‘अहा,’’ ओल्या ने ख़ुशी से किलकारी भरी।

‘‘देख लो, यह तो अभी से किलकने लगी और तुमने उँगली तक नहीं हिलायी। इसकी वजह यह है कि तुम मर्द हो। अच्छा ईगोर, बताओ तुम मुझे पसन्द करते हो?’’

ईगोर ने मुस्कराये बिना उत्तर दिया :

‘‘हाँ, मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ, लेकिन... लेकिन तुम हमें छोड़ोगे तो नहीं?’’

‘‘अरे मेरे प्यारो, ‘तुम’ मुझे मत छोड़ना!’’ द्मीत्री द्मीत्रियेविच ने अपनी छाती पर हाथ रखते हुए कहा। ‘‘मुझे निपट यतीम बनाकर मत छोड़ना!’’

ओल्या खिलखिलाकर हँस पड़ी।

‘‘यतीम?’’

‘‘साथियो! यह क्या हो रहा है। तुम्हारे लिये ज़रूरी है मुझसे पूछना,’’ येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना ने निवेदन किया। ‘‘मान लो, मैं नहीं चाहती, तो?’’

इससे ईगोर क्षुब्ध हो गया।

‘‘लेकिन ममी, तुम कैसी अजीब हो! उन्होंने तो हमें अपने बारे में सब कुछ बता दिया। तुम लोगों से ऐसा बर्ताव नहीं कर सकती।’’

‘‘यह ठीक है,’’ द्मीत्री द्मीत्रियेविच ने उसका समर्थन करते हुए कहा। ‘‘लोगों के साथ सहानुभूति के साथ बर्ताव किया जाना चाहिये।’’

‘‘देख लिया ना ममी? उनसे शादी कर लो, जो भी हो तुमने उनके साथ बहुत पहले ही इन्तज़ाम कर लिया था। मैं तुम्हारी आँखें देखकर बता सकता हूँ। ओहो, कैसी चालाकी है, तुम्हारी आँखों में।’’

द्मीत्री द्मीत्रियेविच ख़ुशी से पागल हो गया।

‘‘वाह, कितने अक्लमन्द बच्चे हैं! और मैं ऐसा मूर्ख कि भयभीत हो गया।’’

सच है कि येव्गेनिया अलेक्सेयेव्ना की कहानी अपने ढंग की सर्वाधिक दुखपूर्ण नहीं है। ऐसे पिता भी हैं, जो अपने बच्चों का परित्याग ही नहीं, बल्कि उन्हें लूटने से भी गुरेज़ नहीं करते। वे अपने नये नीड़ को सजाने के लिये पुराने का अधिकांश असबाब खसोट ले जाते हैं।

हमारे पिताओं की एक बहुत बड़ी संख्या अपनी पहली पारिवारिक ग़लतफ़हमी के प्रभावों में नहीं आती। वे नये प्यार के चुम्बकीय आकर्षण की अवज्ञा करने तथा पत्नी के साथ अपने अनुबन्ध को बेदाग़ बनाये रखने में समर्थ होते हैं। वे अपनी

पत्नी की उन व्यक्तिगत ख़ामियों पर आपत्ति नहीं करते जिनका पता उन्हें शादी के बाद ही लगता है। इस प्रकार के पिता बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का अच्छी तरह से पालन करते हैं और इस मामले में भी वे हमारी प्रशंसा के पात्र हैं।

लेकिन ऐसे ''कुलीन'' और अकुलीन बाँके-छैले अभी भी हैं, जो घृणास्पद कमज़ोरी के साथ अपनी प्रेम-लीलाओं को दूसरे लोगों के घर में पहुँचा देते हैं और अपने पीछे हर जगह यतीमों या आधे यतीमों के झुण्ड बिखराते चले जाते हैं। कभी-कभी ये लोग मुक्त प्यार के पक्षपोषक होने का ढोंग करते हैं, कभी वे अपने परित्यक्त बच्चों में दिलचस्पी दिखलाने की तत्परता दर्शाते हैं, लेकिन लोगों के रूप में वे हर समय बिल्कुल निकम्मे लोग होते हैं और इस लायक़ ही नहीं होते कि उन पर दया की जाये।

पीड़ित और अपमानित माताओं तथा बच्चों को चाहिये कि वे इस प्रकार का निर्वाह-ख़र्च देनेवाले ''रासायनिक'' व्यक्ति को हर मौके पर ''यांत्रिक'' और नगण्य बनायें। इन लोगों को उन बच्चों के साथ स्नेह करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये, जिनका उन्होंने परित्याग कर दिया है।

जो भी हो, निर्वाह-ख़र्च के प्रश्न पर विशेष सावधानी की सिफ़ारिश की जाती है, ताकि ऐसा धन कहीं परिवार को भ्रष्ट न बना दे।

पारिवारिक समूह की पूर्णता और एकता अच्छे लालन-पालन के लिये एक अनिवार्य शर्त है। इसका विनाश निर्वाह-ख़र्च अदा करने वाले बापों तथा इकलौते ''राजकुमारों'' द्वारा ही नहीं होता, बल्कि माता-पिता के झगड़ों, पिताओं की निरंकुश क्रूरता और माताओं के छिछोरेपन की कमज़ोरी से भी होता है।

जो अपने बच्चों का सचमुच ही अच्छी तरह से लालन-पालन करना चाहता है उसे इस एकता को बनाये रखना चाहिये। यह केवल बच्चों ही के लिये नहीं, वरन माता-पिता के लिए भी ज़रूरी है।

उस हालत में क्या किया जाये जब केवल एक ही बच्चा हो और किसी वजह से दूसरा हो न सकता हो?

सीधी-सी बात है, किसी अजनबी बच्चे को अपने परिवार में ले आइये-बालगृह के किसी बच्चे को या किसी ऐसे यतीम हो, जिसके माता-पिता चल बसे हों। उसे अपने ही बच्चे की तरह प्यार कीजिये, यह भूल जाइये कि उसे आपने जनम नहीं दिया और सबसे बड़ी बात, यह कल्पना मत कीजिये कि आपने उस पर कोई बड़ी मेहरबानी की है। यह वह है, जो आपके ''एकतरफ़ा'' परिवार के सहातार्थ आया है और जिसने उसे डूबने के ख़तरे से बचाया है। आपकी माली-हालत कितनी ही ख़राब क्यों न हो, इस काम को **निश्चय ही कीजिये**।

छठा अध्याय

हमारे सामने समस्याओं का एक सम्पूर्ण पुंज है-पारिवारिक समूह में प्राधिकार, अनुशासन और स्वाधीनता से सम्बन्धित समस्याएँ।

प्राधिकार क्या है? यह समस्या कई लोगों के सामने आती है और वे सामान्यतःयही सोचते हैं कि प्राधिकार प्रकृति का वरदान है। लेकिन, चूँकि परिवार में हर किसी को प्राधिकार की ज़रूरत होती है, इसलिये माता-पिता, एक ख़ासी बड़ी संख्या में असली ''प्राकृतिक'' प्राधिकार को छोड़कर अपने ही दिमाग़ से गढ़े हुए विकल्पों का प्रयोग करते हैं। ये विकल्प हमारे परिवारों में अक्सर देखे जा सकते हैं। उनका सर्वनिष्ठ लक्षण यह है कि उन्हें ख़ास तौर पर शैक्षिक उद्देश्यों से गढ़ा जाता है। यह माना जाता है कि बच्चों को उचित शिक्षा-दीक्षा देने के लिये प्राधिकार की ज़रूरत होती है और बच्चों के बारे में विभिन्न दृष्टिकोणों के अनुसार उनके विभिन्न विकल्प गढ़ लिये जाते हैं।

ऐसे माता-पिता का मुख्य दोष शैक्षिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में निहित है। बच्चों के लिये ख़ास तौर से बनाया हुआ प्राधिकार चल नहीं सकता है। ऐसा प्राधिकार हमेशा एक विकल्प रहेगा और हमेशा ही बेकार होगा।

अपने बच्चों के साथ किसी भी तरह के सम्बन्धों के बावजूद, प्राधिकार स्वयं माता-पिता में ही अन्तर्निहित होना चाहिये, लेकिन यह किसी भी हालत में कोई विशिष्ट प्रतिभा नहीं होता है। इसकी जड़ें हमेशा एक ही स्थान पर पायी जाती हैं : माता-पिता के व्यवहार में, और इसमें व्यवहार के सभी पक्ष शामिल हैं-दूसरे शब्दों में, माता तथा पिता दोनों का सम्पूर्ण जीवन, उनका काम, विचार, आदतें, भावनाएँ और प्रयत्न।

इस तरह के व्यवहार के नमूने को संक्षिप्त रूप में पेश नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसका तात्पर्य यह है कि माता-पिता स्वयं सोवियत भूमि के नागरिक का पूर्ण सचेत और नैतिक जीवन बितायें। और इसका अर्थ यह है कि बच्चों के सन्दर्भ में वे एक निश्चित धरातल पर, लेकिन एक स्वाभाविक, मानवीय धरातल पर हों, न कि किसी ऐसे मंच पर, जो बच्चों से निबटने के लिये ख़ास तौर से बनाया गया हो।

अतः पारिवारिक समूह में प्राधिकार, स्वाधीनता तथा अनुशासन की किसी भी समस्या को कृत्रिम रूप से बनायी गयी किसी भी पद्धति अथवा करामात से हल नहीं किया जा सकता है। लालन-पालन की प्रक्रिया एक अनवरत प्रक्रिया है और

इसके पृथक-पृथक पक्षों का समाधान परिवार के **सामान्य वातावरण** में पाया जाता है और सामान्य वातावरण का न तो आविष्कार हो सकता है और न उसे कृत्रिम रूप से बरक़रार रखा जा सकता है। प्रिय माता-पिताओ, सामान्य वातावरण आपकी अपनी जिन्दगियों से, आपके अपने व्यवहार से बनता है। यदि आपकी ज़िन्दगी का सामान्य वातावरण बुरा है, तो लालन-पालन की सर्वाधिक सही, विवेकपूर्ण तथा सुविचारित पद्धति भी कोई काम नहीं आयेगी। इसके विपरित, सही सामान्य वातावरण ही आपको बच्चे के प्रशिक्षण की सही पद्धति भी सुझायेगा और मुख्य रूप से अुनशासन, काम, स्वाधीनता व खेल तथा... प्राधिकार के सही रूप भी सुझायेगा।

पिता काम से लौटकर पाँच बजे घर आता है। वह एक कारखाने में बिजली का काम करता है। वह अपने भारी, ग्रीज लगे, धूलधूसरित बूटों को खोल भी नहीं पाता है कि चार वर्षीय वास्या अपने पिता की चारपाई के सामने, एक बूढ़े आदमी की तरह सूँ-सूँ करता बैठ जाता है और अपनी चिन्तित भूरी आँखों से उसके नीचे की अँधेरी जगह में झाँकता है। किसी कारणवश चारपाई के नीचे कुछ नहीं होता। वास्या चिन्तित होकर रसोईघर की तरफ़ भागता है, फिर तेजी से डग भरता हुआ भोजन-कक्ष में जाता है और बड़ी मेज़ का चक्कर लगाता है, तथा अपने पैरों को फ़र्श पर बिछी बिछावन में फँसा लेता है। आधे मिनट बाद वह स्थिर चाल से अपने पिता के पास लौटता है, उसके हाथ में स्लिपरों का एक जोड़ा है और वह अपने चमकीले गोलमटोल गालों को फुलाता आ रहा है। उसका पिता कहता है : ''धन्यवाद, बेटे, लेकिन फ़र्श की बिछावन को सीधा कर दो।''

उसी रफ़्तार से एक दौरा और होता है, कमरे में फिर से व्यवस्था स्थापित हो जाती है।

''ठीक है,'' पिता कहता है और हाथ-मुँह धोने के लिये रसोईघर की ओर चल पड़ता है।

उसका लड़का, उन भारी बूटों को मुश्किल से घसीट रहा है तथा आगे फ़र्श की बिछावन को सावधानी से देखता हुआ अपने पिता के पीछे-पीछे चल रहा है। बिछावन की बाधा सकुशल पार हो जाती है, वास्या अपनी रफ़्तार बढ़ा देता है और पिता के निकट पहुँचकर पूछता है : ''क्या आप चिमनी लाये? क्या आप स्टीम-इंजन के लिये चिमनी लाये?''

''हाँ, बेशक लाया हूँ!'' पिता उत्तर देता है। ''भोजन के बाद हम उस पर जुट जायेंगे।''

वास्या अपने जीवन में ख़ुशक़िस्मत था : वह क्रान्ति के बाद के वर्षों में जन्मा था; उसे जो पिता मिले वे सुन्दर थे-जो भी हो वास्या अपने पिता को बहुत चाहता है : उसकी आँखें वास्या जैसी ही हैं, भूरी, शान्त और उनमें परिहास की चमक है;

उसका मुँह गम्भीर और मूँछें अच्छी हैं और उस पर उँगलियाँ फिराना बहुत सुखद होता है और हर बार यह जानकर चकित होना पड़ता है कि वे कितनी मुलायम और कैसी रेशमी हैं, लेकिन उँगलियाँ ज़रा भी एक तरफ़ सरकीं, तो वे तार के स्प्रिंग की तरह उछलती हैं और फिर वैसी ही काँटेदार नज़र आने लगती हैं। वास्या की माँ भी सुन्दर है, अन्य माँओं से ज़्यादा सुन्दर। उसके गालों और होठों में बड़ी ही हार्दिकता और कोमलता है। कभी-कभी जब वह वास्या की तरफ़ देखती है, तो ऐसा लगता है कि वह कुछ कहने वाली है और उसके होंठों में थोड़ी सी गति होती है। आप यह जान ही नहीं पाते कि माँ मुस्करायी या नहीं। ऐसे मौकों पर वास्या को महसूस होता है कि जीवन निश्चय ही अद्भुत है।

नज़ारोव परिवार में नताशा भी है, लेकिन वह केवल पाँच माह की है।

सुबह जूते पहनना सबसे कठिन काम होता है। वास्या काफ़ी पहले ही जूते में फीते डालना सीख गया था, लेकिन जब फ़ीता सारे छेदों से गुज़र गया, तो उसने देखा कि कहीं कोई गड़बड़ है। वास्या उसे फिर से लगाता है, और लो, इस बार ठीक फ़ीता लग गया। तब वास्या अपने जूते की तरफ़ प्यार से देखता है और अपनी अम्मा से कहता है : ‘‘ले लो, बाँध दो!’’ यदि फ़ीते ठीक डले हों, तो अम्मा उसके फ़ीते बाँध देती है, लेकिन यदि न हों तो वह कहती है : ‘‘नहीं ऐसे नहीं, क्या तुम फ़ीता भी नहीं डाल सकते?’’

वास्या जूतों पर चकित दृष्टि डालता है और सहसा समझ जाता है कि उनमें कुछ गड़बड़ है। वह अपने होंठ दबाता है, क्रुद्ध दृष्टि से जूतों को देखता है और फिर से काम में जुट जाता है। वास्या को अपनी माँ से तर्क-वितर्क करने की नहीं सूझती-उसे मालूम ही नहीं कि ऐसा कैसे किया जाता है।

‘‘ठीक है? अब बाँध दो!’’

अम्मा फ़ीते बाँधती है तो वास्या चतुराई से दूसरे जूते की तरफ़ देखता है और उस पहले सूराख़ को खोज निकालता है, जहाँ से वह दूसरा फ़ीता डालेगा।

वास्या जानता है कि हाथ-मुँह कैसे धोये जाते हैं। वह अपने दाँतों को साफ़ करना भी जानता है, लेकिन इन कामों के लिये भी बहुत शक्ति तथा संकेन्द्रित ध्यान की ज़रूरत होती है। शुरू में वास्या साबुन व दन्त-मंजन को गर्दन तक फैला देता है, फिर वह अपने दोनों हाथों को जोड़कर एक नाव-सी बनाता है, और उसमें पानी भरता है, लेकिन जब वह इस पानी को चेहरे की तरफ़ ले जाता है, तो उसकी हथेलियाँ वक़्त से पहले सीधी हो जाती हैं और सारा पानी उसकी छाती और पेट के ऊपर छलक जाता है। वास्या साबुन और दन्त मंजन को धोता नहीं, बल्कि अपनी गीली हथेलियों से चुपड़ भर देता है। ऐसे हर प्रयत्न के बाद वह कुछ देर तक अपने हाथों की जाँच करता है। और फिर दूसरी नाव बनाना शुरू करता है तथा जिस हिस्से पर उसे गन्दा होने का सन्देह हो उस हर हिस्से को अपनी गीली हथेलियों से रगड़ता है।

तभी माँ आती है और बोलने में वक़्त बर्बाद किये बग़ैर वास्या के हाथ पकड़ती है, उसके सिर को कोमलता से, पर दृढ़ता से वाशबेसिन पर झुकाती है और वास्या के नन्हे चेहरे के हर हिस्से को रगड़-रगड़कर साफ़ कर देती है। माँ के हाथों में ऊष्मा है, मृदुता है और मधुर सुगन्ध है, यह सब वास्या को उल्लसित कर देते हैं लेकिन इसके बावजूद वह इस बात से चिन्तित रहता है कि उसने अभी मुँह धोने की कला अच्छी तरह से नहीं सीखी है। इस स्थिति से निकलने के कई मौलिक तरीक़े हैं : कोई शरारत कर सकता है और मर्दों की तरह आपत्ति उठा सकता है, ''मैं ख़ुद करूँगा!'' कोई घटना को ख़ामोशी से होने देता है, लेकिन सर्वोत्तम तरीक़ा है हँस पड़ना, माँ के हाथ की पकड़ से निकल आना और गीली आँखों से प्रसन्नतापूर्वक उसकी तरफ़ देखना। नज़ारोव परिवार में अन्तिम तरीक़ा ही सबसे ज़्यादा काम में लाया जाता है, क्योंकि वे प्रसन्नचित्त लोग हैं। आख़िर, शरारत भी तो ईश्वर प्रदत्त नहीं है, यह भी दैनिक अनुभव से सीखी जाती है।

ख़ूब हँस चुकने बाद वास्या दाँत साफ़ करने के ब्रुश को धोने लगता है। यह सबसे बढ़िया काम है : आप ब्रुश पर पानी डालते जाइये, उसके रोयों को ज़रा-सा मल दीजिये, बस, ब्रुश ख़ुद-ब-ख़ुद साफ़ हो जाता है।

भोजन कक्ष के कोने में एक स्लेटी कपड़े के ऊपर वास्या का खिलौना-संसार था। जिस समय वास्या अपने जूते पहनता है, हाथ-मुँह धोता है और नाश्ता तैयार करता है, उस समय उसका खिलौना-संसार शान्ति और व्यवस्था का नमूना होता है। रेलगाड़ियाँ, स्टीम-बोटें, मोटरकारें दीवार के साथ खड़ी हैं, सबका मुंह एक ही तरफ़ को हैं। जब वास्या उनके पास से गुज़रता है, तो वह अपने उस संसार के अनुशासन की जाँच के लिये क्षण भर रुकता है। रात को कुछ नहीं हुआ, कोई भागा नहीं और किसी ने अपने पड़ोसी को नाराज़ नहीं किया और न किसी ने कोई हंगामा ही किया। इसका कारण यह है कि रंगबिरंगी वांका-व्स्तांका रात भर खड़ा पहरा देता रहा। वांका-व्स्तांका के गाल चौड़े-चौड़े, आँखें बड़ी-बड़ी थीं और चेहरे पर स्थायी मुस्कान बनी रहती थी। खिलौना-संसार की पहरेदारी के लिये व्स्तांका* को बहुत पहले नियुक्त कर दिया गया था और वह अपने इस कर्तव्य को वफादारी से निभा रहा था। एक बार वास्या ने अपने पिता से पूछा : ''क्या यह कभी भी नहीं सो सकता?''

लेकिन उसके पिता ने उत्तर दिया : ''जब वह पहरेदारी का काम करता है, तो सो कैसे सकता है? अगर वह अच्छा पहरेदार है, तो उसे सोना नहीं, पहरा देना चाहिये। वरना कोई आयेगा और कोई एक मोटरकार लेकर चलता बनेगा।''

तब वास्या ने शंकित होकर मोटरकार को देखा और कृतज्ञ होकर पहरेदार की तरफ़। तब से वह जब भी सोने जाता है, तो व्स्तांका को उसकी चौकी पर खड़ा कर जाता है।

---

* **वांका-व्स्तांका**-एक ऐसा गुड्डा है, जिसके तल में इतना भार होता है कि वह गिरने पर भी हमेशा खड़ा हो जाता है।**-सं.**

लेकिन इस समय वास्या को कारों की उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी कि लकड़ी के एक बक्से में रखी वस्तुओं के संग्रह की। ये सब वस्तुएँ खिलौना-संसार के अन्दर मुख्य इमारत बनाने के लिये पहले से मुकर्रर है। उनमें लकड़ी की अनेकानेक ईंटें, बल्लियाँ, छत छवाने के लिये पन्नियाँ, खिड़कियों के लिये थोड़ा सेल्युलॉयड, और एक प्यारा-प्यार सा नट और बोल्ट, इसका क्या काम था यह अभी तय नहीं किया गया था। इसके अलावा, तारों के कई टुकड़े, वाशर, हुक, पाइप तथा अम्मा की मदद से दफ़्ती से काटे हुए खिड़कियों के चौखट भी थे।

आज वास्या की योजना थी कि निर्माण सामग्री को निर्माण स्थल पर पहुँचाया जाये-यानी कमरे के सामनेवाले कोने को। कल शाम को वह परिवहन के अभाव से चिन्तित था। क्या एक जहाज़ का इस्तेमाल नहीं हो सकता? लेकिन उसके पिता ने इस प्रश्न को ही ख़त्म कर दिया।

''जहाज़ के लिये नदी की ज़रूरत होती है। तुम्हें पिछली गर्मियों की याद नहीं?''

वास्या को इस तरह की कोई बात याद आ गयी, वास्तव में जहाज़ सामान्यतः नदियों में ही चलते हैं। वास्या के मन में कमरे के अन्दर एक नदी बनाने का विचार कौंधा, लेकिन उसने मात्र एक आह भरी-अम्मा किसी भी हालत में ऐसा होने नहीं देगी। अभी कुछ ही समय पहले उसने स्टीमर के वास्ते एक जहाज़ीघाट बनाने की योजना के प्रति बड़ा ही प्रतिकूल रुख अपनाया था। वास्या को टिन का डिब्बा माँ ने ही दिया था, लेकिन जब वास्या ने उसमें पानी भरा, तो माँ को पसन्द नहीं आया :

''तुम्हारा जहाज़ीघाट चू रहा है। देखो तो सही, तुमने कैसी गन्दगी फैला दी है!''

अब उस टिन में रेत भरा है और उससे एक पार्क बननेवाला है। पार्क में छोटे-छोटे पौधे लगाने के लिये उसके पिता चीड़ की एक पूरी शाखा ही ले आये हैं।

वास्या जल्दी-जल्दी नाश्ता करता है : उसे इतना काम करना है, इतनी ज़्यादा चिन्ताएँ हैं कि उसके पास एक कप काफ़ी पीने का समय नहीं है। उसकी आँखें रह-रहकर खिलौना-संसार की तरफ़ भटक जाती हैं।

''क्या तुम आज मकान बनानेवाले हो?'' उसकी माँ पूछती है।

''नहीं, मैं ढुलाई करूँगा! आज मैं सारा सामान वहाँ पहुँचाने वाला हूँ!''

वास्या निर्माण-स्थल की ओर इशारा करते हुए आगे कहता है : ''लेकिन, चिन्ता मत करो, मैं गन्दगी नहीं करूँगा!''

वास्तविकता यह है कि अम्मा को उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी ख़ुद वास्या को-निर्माण बड़ा गन्दा काम है।

वह कहती है, ''अगर तुम गन्दगी करोगे, तो साफ़ भी तुम्हीं करोगे।''

इस अनपेक्षित घटनाक्रम से वास्या को अधिक जोश आ जाता है। वह नाश्ते की बात भूलकर अपनी कुर्सी से खिसकने लगता है।

''वास्या, तुम्हें कहाँ भागना है? अपनी कॉफ़ी तो पी लो। तुम्हें अपना प्याला हरगिज़ आधा नहीं छोड़ना चाहिये।''

उसका कहना बिल्कुल सही है। वास्या जल्दी-जल्दी घूंट लेकर काफ़ी निगलता है। उसकी माँ उसे निहारती है और मुस्कराती है।

''तुम्हारे पास वक़्त की इतनी कमी है? ऐसी जल्दी में तुम कहाँ भागे जा रहे हो?''

मुझे जल्दी करनी ही चाहिये'', वास्या बड़बड़ाता है।

वह तुरन्त खिलौना संसार में पहुंचता है और सबसे पहले वांका-व्स्तांका को पहरेदारी के कर्तव्य-भार से मुक्त करता है।

''तुम्हारा पहरेदार रात-दिन खड़ा रहता है'', उसकी माँ ने एक बार उससे कहा था, ''इससे क़तई काम नहीं चलेगा। उसे भी आराम मिलना ही चाहिये। तुम तो ख़ुद रोज़ रात को सोते हो, ना?''

पक्की बात, वास्या श्रम सुरक्षा के बारे में कैसे भूल सकता था? लेकिन यह ग़लती बहुत पहले हुई थी। अब वास्या वांका-व्स्तांका को गत्ते के एक पुराने डिब्बे में डाल देता है और किसी निर्माण-सामग्री से उसके सिर को नीचे को धकेल देता है। व्स्तांका बावेला मचाता है और क़ाबू से बाहर हो जाता है। लेकिन इससे क्या, अनुशासन तो सबसे ऊपर है! और छुट्टी के दिन जब पिताजी घर पर होते हैं तो व्स्तांका को पूरे चौबीस घण्टे गत्ते के मकान में गुज़ारने पड़ते हैं और एवज़ी का काम गुलाबी टोपी पहने चीनी मिट्टी के एक नन्हें मियाँ को करना पड़ता है। यह अम्मा का दिया हुआ उपहार होते हुए भी अच्छा श्रमिक नहीं है-हर वक्त गिरता-पड़ता है। पिता ने उसे लफ़ंगा कहा, सो ठीक ही कहा :

''तुम देख सकते हो कि वह जो टोपी पहने हुए है, लफ़ंगा है।''

इसी वजह से वास्या उसे पसन्द नहीं करता और उसकी सेवाओं के बिना ही काम चलाने की कोशिश करता है।

वास्या ने समुदाय के लिये जो पहला काम किया वह पिता के बूट और स्लीपर लाने-ले जाने का काम था। वास्या के माता-पिता उसे अन्य काम भी देते हैं : दियासलाई लाना, कुर्सियों को ठीक से लगाना, मेज़पोश सीधा करना, क़ागज़ों को उठाना। लेकिन ये यदा-कदा किये जाने वाले काम थे, जबकि बूट और स्लीपर ले जाना स्थायी काम था-एक ऐसा कर्तव्य था, जिसका उल्लंघन नहीं होना चाहिये।

केवल एक बार, जब खिलौना-संसार में विपत्ति आ पड़ी थी और स्टीम-इंजन की चिमनी उखड़ गयी थी, तब वास्या टूटे इंजन को हाथ में लेकर अपने पिता से मिला था और इस क़दर परेशान था कि वह डैडी के स्लीपरों की बात बिल्कुल भूल गया। उसके पिता ने इंजन को जाँचा, जीभ से कुड़कुड़ाने की आवाज़ निकाली और वास्या के दुख की तह में पैठकर कहा :

''यह तो भारी मरम्मत का काम है।''

इन शब्दों से वास्या और भी निराश हो गया। वह शयन-कक्ष तक अपने पिता के

पीछे-पीछे गया और वहाँ चारपाई की एक बग़ल में पड़े इंजन को देखता रहा। लेकिन सहसा वह कमरे की असाधारण ख़ामोशी से चकित हो गया और उसी क्षण उसने अपने पिता की व्यंग्यपूर्ण आवाज़ सुनी :

''अच्छा, इंजन की चिमनी गयी, तो साथ में मेरे स्लीपर भी गये।''

वास्या ने डैडी के पैरों की तरफ़ देखा, शर्माया और उसी वक़्त इंजन के बारे में सब कुछ भूल गया। वह झपटकर रसोईघर में गया। स्थिति फिर से यथावत हो गयी। पिता ने किंचित असामान्य ढंग से मुस्कराते हुए वास्या को देखा। वास्या उतरे हुए बूटों को लेकर रसोईघर में गया और उसके मन में इंजन के बारे में तब तक कोई ख़्याल नहीं उपजा, जब तक कि उसके पिता ने नहीं कहा : ''मैं तुम्हारे इंजन के लिये एक और चिमनी लाऊँगा। इस बार की चिमनी मजबूत होगी।''

जब वास्या छह बरस का था, उसके पिता ने उसे एक बड़ा बक्सा दिया, जिसमें छोटी-छोटी ईंटें, बल्लियाँ, ब्लांक, गार्डर तथा अन्य निर्माण-सामग्री थी। यह सामग्री असली महल बनाने के लिये थी। बक्से में एक पुस्तक भी थी, जिसमें उन महलों के रेखा-चित्र थे, जिन्हें बनाया जाना था। अपने पिता के प्रति सम्मान तथा उनके द्वारा उठाये गये कष्ट को देखते हुए वास्या ने उस बक्से में बहुत दिलचस्पी दिखलायी। उसने प्रत्येक रेखा-चित्र का ध्यान से अध्ययन किया और धैर्य के साथ, होंठों को दबाकर नक्शे के मुताबिक सही टुकड़ों को उठाया। उसके पिता को कोई असाधारण बात दिखायी पड़ी, उन्होंने पूछा :

''क्या तुम्हें यह पसन्द नहीं?''

वास्या यह नहीं कहना चाहता था कि उसे काम पसन्द नहीं है, लेकिन वह कुछ और बात नहीं कह पाया। वह उस इमारत को भौं सिकोड़कर चुपचाप देखता रहा।

''भौं मत सिकोड़ो, मुझे बताओ कि यह तुम्हें पसन्द है या नहीं,'' उसके पिता ने कहा।

वास्या ने पिता की ओर देखा और एक बार फिर इमारत की तरफ़।

''इतने ढेर सारे मकान हैं,'' उसने उत्तर दिया। ''आप एक मकान बनाते हैं और उसे भी तोड़ देते हैं, फिर दूसरा बनाते हैं और उसे भी तोड़ देते हैं और बचता कुछ नहीं... और आप लगातार बनाते ही जाते हैं... तब तक बनाते हैं, जब तक सिरदर्द न होने लगे...''

उसके पिता खिलखिलाकर हँसे।

''हाँ, यह तुम ठीक कहते हो! आप तो बनाते ही बनाते जाते हैं और क्या बनाया यह दिखाने के लिये कुछ बचता ही नहीं। यह निर्माण नहीं है, यह विनाश है, अन्तर्ध्वंस है।''

वास्या ने निर्माण कार्य बन्द कर दिया और फ़ौरन दिलचस्पी से अपने पिता की ओर देखा।

अन्तर्ध्वंस? यह क्या है?''

"यह, यह तुम्हारी मुसीबत जैसा ही है-तुम्हारे काम का अन्तर्ध्वंस हो गया। और कुछ लोग हैं सुअर..."

"सुअर?" उसके पिता ने ज़ोर देकर कहा, "वे जानबूझकर ऐसा ही निर्माण करते हैं, और फिर जो इच्छा कर लीजिये, चाहे तो उसे आग लगा दीजिये, गिरा दीजिये-वह किसी काम का होता ही नहीं।"

वास्या रेखा-चित्रों की ओर मुड़ा।

"तुम एक और मकान बना सकते हो, एक इस जैसा, या एक उस जैसा..."

इमारत के नमूनों के टुकड़ों को लेकर वास्या ने एक नया, ज़्यादा कठिन मकान बनाने का फ़ैसला किया, ताकि उसके पिता को थोड़ी सी ख़ुशी तो हो।

उसके पिता ख़ामोशी के साथ उसे काम पूरा करते देखते रहे।

"तुमने बुरा काम नहीं किया है। लेकिन यह ऐसा ही है जैसे हवा में मकान बनाना, है ना? इसे ज़रा-सा धक्का दो, फ़ौरन ज़मीन्दोज़ हो जायेगा..."

वास्या ने हँसते हुए अपना हाथ उठाया और इमारत पर दे मारा। वह अनोखा महल ज़मीन्दोज़ हो गया और साफ़-सुथरे टुकड़ों का ढेर बन गया।

"क्यों? सीधे गिरा क्यों दिया?"

"इसे तो हर हालत में गिराना ही है, क्योंकि एक और मकान भी तो..."

"यही बात तो है, तुम्हारे पास अपने श्रम को दर्शाने के लिये कुछ भी नहीं है।"

"क़तई कुछ नहीं," वास्या ने अपने हाथ फैलाते हुए कहा।

"इससे तो काम नहीं चलेगा।"

"हाँ, नहीं चलेगा," वास्या ने बिखरे हुए टुकड़ों की तरफ़ निष्ठुर उदासीनता से देखते हुए कहा।

"पल भर रुको" उसके पिता मुस्कराये और अपने औज़ारों के बक्से के पास गये। वे अपने हाथ में असली ख़ज़ाना लकर लौटे। लकड़ी के उस बक्से में कीलें, बिरंजी, पेंच, बोल्ट, तार के टुकड़े, इस्पात व ताँबे की प्लेटें तथा ऐसी अन्य छोटी-बड़ी वस्तुएँ थीं, जो हर योग्य धातुकर्मी के जीवन का अंग होती हैं। पिता के हाथ में, अलग से, लोहे की छोटी-छोटी छड़ें भी थीं, जो छूने पर ऊपर-नीचे उछलती थीं।

"हम तुम्हारे मकानों को छोड़ देंगे," पिता ने कहा। "आओ, हम कोई मज़बूत चीज़ बनायें। लेकिन वह होगी क्या?"

"हम एक पुल बनायेंगे। लेकिन नदी तो है ही नहीं।"

"नदी नहीं है? तो हमें एक बनानी होगी।"

"क्या ऐसा किया जा सकता है?"

"पहले तो नहीं, पर अब किया जा सकता है। वोल्गा को सीधे मास्को तक ले आया गया।"*

"कौन वोल्गा?"

* इसका आशय मास्को-वोल्गा नहर से है, जो 1932-1937 में बनी।-**सं.**

‘‘वोल्गा नदी। वह पहले कहाँ बहा करती थी? बहुत दूर। लेकिन वे काम पर जुट गये और उसे खेतों से होकर बहने को मजबूर कर दिया।’’

‘‘फिर क्या हुआ?’’ वास्या ने अपने पिता को एकटक देखते हुए पूछा।

‘‘वह मेमने की तरह चली आयी,’’ उसके पिता ने अपने हाथ की विभिन्न वस्तुओं को फर्श पर फैलाते हुए कहा।

‘‘आइये, एक... वोल्गा हम ख़ुद बनायें।’’

‘‘यही तो मैं सोच रहा था।’’

‘‘उसके बाद हम एक पुल बनायेंगे।’’

तभी सहसा वास्या को याद आया कि पिछली दफ़ा, जब उसने नदी का सवाल उठाया था, तो क्या हुआ था। वास्या खिन्न हो गया। वह आपके पिता के बक्से के पास बैठे-बैठे यह महसूस करने लगा कि उसके पास इन सारी बाधाओं से जूझने के लिये काफ़ी बल नहीं है।

‘‘डैडी, हम एक नदी नहीं बना सकते। अम्मा हमें बनाने ही नहीं देंगी।’’

पिता ने ध्यान से सुनने को अपनी भौंहें टेढ़ी कीं और वह ख़ुद भी अपनी एड़ियों के बल फर्श पर बैठ गये :

‘‘हूँ, अम्मा? हाँ यह गम्भीर मामला है।’’

वास्या ने बड़ी उम्मीद से अपने पिता की ओर देखा, मान लो डैडी को अम्मा से निबटने का सहसा कोई साधन मिल जाये। लेकिन पिता ने उसकी निगाह का जवाब अनिश्चितता से दिया, वास्या ने स्थिति को स्पष्ट किया : ‘‘वे कहेंगी, ‘आप पानी छलका देंगे’।’’

‘‘हाँ, यही तो है, वे अवश्य ऐसा कहेंगी और हमारा पानी छलकाना सचमुच पक्की बात होगी!’’

वास्या अपने पिता की सरलता पर मुस्कराया : ‘‘तो आप क्या सोच रहे हैं कि नदी बने और आस-पास सब कुछ सूखा भी रहे?’’

‘‘देखो बेटा, मेरी बात सुनो। नदी कैसे बहती है? वह बहती है सिर्फ़ एक जगह से होकर और उसके इर्द-गिर्द सूखा होता है। उसके तट होने चाहिये। ज़रा सोचो, अगर तुम एक नदी को फ़र्श पर बहा दोगे, तो वह बहती-बहती नीचे की मंज़िल पर पहुँचेगी। और नीचे रहने वाले लोग जानना चाहेंगे कि ऊपर हो क्या रहा है। वे कहेंगे कि यह पानी कहाँ से आ रहा है?-और यह सारा काण्ड करनेवाली हमारी नदी होगी।’’।

‘‘क्या मास्को में पानी नहीं आया?’’

‘‘मास्को में क्यों आयेगा?’’

‘‘जब वे उसे लाये थे वोल्गा को?’’

‘‘नहीं बेटे, वहाँ उन्होंने सारा काम सलीक़े से किया। उन्होंने नदी के तट बनाये थे।’’

‘‘किस चीज़ से?’’

''उन्होंने तरीक़ा निकाला। पत्थर से बनाये। कंक्रीट से बनाये।''

''डैडी, सुनिये! हम भी यही करेंगे... हम तट बनायें!''

इस प्रकार वास्या नज़ारोव की महान निर्माण-परियोजना का जन्म हुआ। परियोजना जटिल सिद्ध हुई और उसके लिये बहुत ज़्यादा प्रारम्भिक काम की ज़रूरत आ पड़ी। इसका फ़ौरी नतीज़ा यह हुआ कि वास्या का सारा महल-निर्माण-कार्य पूरी तरह से ठप हो गया। पिता और वास्या ने आगे और कोई महल न बनाने का फ़ैसला कर लिया, क्योंकि उनका व्यावहारिक मूल्य कुछ नहीं था। इसके बजाय उन्होंने उस बक्से के सामान को पुल बनाने के वास्ते इस्तेमाल करने का निश्चय किया। लेकिन रेखा-चित्रों की पुस्तक का क्या किया जाये? वास्या को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी और डैडी भी उसकी अवज्ञा करते थे : ''यह किस काम की? पर इसे योंही फेंकना भी ठीक नहीं। इसे किसी एक लड़के को दे दो!''

''वह इसका क्या करेगा?''

''देखेगा...''

वास्या ने इस प्रस्ताव को ख़ास महत्वपूर्ण नहीं माना, लेकिन अगली सुबह जब वह अहाते में गया, तो पुस्तक को भी लेता गया।

वह अहाता शहर के अहाते की तरह ईंट की दीवारों से घिरा नहीं था। वह एक विशाल चौक था और उसके ऊपर खुला आकाश था। एक किनारे में एक लम्बी दोमंज़िला इमारत खड़ी थी और लकड़ी के लगभग आधे दर्जन छज्जे अहाते के अन्दर को निकले हुए थे। शेष सभी किनारों पर लकड़ी की नीची बाड़ लगी थी। उससे परे दूर क्षितिज तक एक ऊँचा-नीचा रेतीला क्षेत्र था, जिसे हमारे यहाँ ''कुचुगुरी'' कहते हैं-आज़ादी की और रहस्यों से भरी वह भूमि, जो लड़कों के लिये अतीव आकर्षक थी। इमारत के पीछे और नज़दीक के भारी फाटक से बाहर ही नगर की पहली सड़क शुरू होती थी।

यह इमारत गाड़ी निर्माण कारख़ाने के श्रमिकों व अन्य कर्मचारियों का-बड़े परिवारोंवाले प्रतिष्ठित लोगों का-घर थी। इसका अहाता हमेशा बच्चों से भरा रहता था। वास्या ने अहाते के इस समाज को अभी हाल ही जानना-पहचानना शुरू किया था। पिछली गर्मियों में उसने जो चन्द रिश्ते क़ायम किये थे, उनमें से उसे बहुत कम की याद थी, और उस साल जाड़ों में वह मुश्किल से ही एक दो या दो बार बाहर गया था, क्योंकि उसे ख़सरा हो गया था।

इस समय वास्या के परिचितों में ज़्यादातर लड़के थे। अहाते में कुछ लड़कियाँ भी आती थीं, परन्तु वास्या से पाँच या छह वर्ष बड़ी होने की वजह से वे उससे अलग ही रहती थीं। वह ऐसी उम्र थी, जब लड़कियों में साथ-साथ गाते हुए घूमने की गर्वीली आदत विकसित हो जाती है, जिससे वे अत्यन्त अलभ्य-सी बन जाती हैं। जहाँ तक दो या तीन बरस के बच्चों का प्रश्न है, स्पष्टतः वे वास्या के योग्य साथी नहीं थे।

रेखा-चित्रों की पुस्तक ने तुरन्त सबकी दिलचस्पी जगा दी। वास्या के हमउम्र मित्या कन्दीबिन ने पुस्तक देखी, तो चिल्लाया : ''यह मेरा है,'' वास्या ने उत्तर दिया।

''तुझे मिला कहाँ से?''

''कहीं से मिला नहीं, मेरे डैडी ने ख़रीदा है।''

''उन्होंने तेरे लिये ख़रीदा, सच?''

वास्या को मित्या पसन्द नहीं था, क्योंकि वह बहुत उपद्रवी और ढीठ था। उसकी छोटी-छोटी आँखें हर चीज़ और हर जगह झाँकने-ताकने से नहीं अघाती थीं। वास्या को इससे बड़ी उलझन होती थी।

''उन्होंने इसे तेरे लिये ख़रीदा, तेरे लिये?''

वास्या ने पुस्तक को अपनी पीठ के पीछे कर लिया।

''हाँ, उन्होंने मेरे लिये ख़रीदा।''

''अच्छा, हमें दिखाओ, दिखाओ!''

वास्या दिखाना-विखाना नहीं चाहता था। उसे पुस्तक की चिन्ता नहीं थी, लेकिन उसे मित्या की ज़बरदस्ती का विरोध करने की इच्छा महसूस हो रही थी। लेकिन मित्या के लिये निष्क्रिय रहना कठिन था, वह उसकी पीठ के पीछे से पुस्तक तक पहुँचने की कोशिश भी करने लगा था।

''तू बहुत कमीना है, दिखाना भी नहीं चाहता?''

यद्यपि मित्या वास्या से छोटा और कमज़ोर था, फिर भी वह पुस्तक हासिल करने के वास्ते उस पर हमला करने को तत्पर हो गया, पर तभी उसकी चिल्लाहट से ल्योविक का ध्यान आकृष्ट हो गया।

ल्योविक बड़े आयुवर्ग का था और 34 नम्बर स्कूल की पहली कक्षा में था। आक्रामक मित्या को प्रसन्नतापूर्वक देखते हुए वह दूर से चिल्लाया : ''ज़रूरत से ज़्यादा चीखता है, और लड़ाई का नाम नहीं! मार दो हाथ!''

''वह उसे छुपाये क्यों है! न ख़ुद खाये न औरों को खाने दे। वह किसी को दिखाता ही नहीं!''

मित्या ने महज़ गेलिस से ढंके अपने नंगे कन्धे उपेक्षापूर्वक वास्या की तरफ़ धकियाये।

''लाओ, देखें!'' ल्योविक ने उल्लासपूर्ण प्राधिकार से अपने हाथ बढ़ाते हुए कहा, और वास्या ने पुस्तक उसे दे दी।

''अरे!'' ल्योविक ख़ुश होकर चिल्लाया। ''जानते हो? मेरी ठीक ऐसी ही पुस्तक खो गयी है। मेरे पास बाक़ी सब कुछ है, पर एल्बम नहीं। क्या खोज है! आओ हम अदला-बदली कर लें!''

वास्या ने अपने जीवन में कभी किसी चीज़ की अदला-बदली नहीं की थी। लेकिन ज़ाहिर था कि यह एक दिलचस्प कारनामे की शुरुआत थी। वास्या ने ल्येविक के प्रसन्न मुख की तरफ़ व्यग्रता से नज़र डाली। ल्योविक जल्दी-जल्दी पुस्तक के पन्ने

पलट रहा था।

"बढ़िया! आओ, हमारे घर..."

"किसलिये?" वास्या ने पूछा।

"अबे, मूर्ख, तू जिसके बदले इसे देगा, उसे देखेगा नहीं?"

"मैं भी आऊँगा," मित्या ने अवसादपूर्ण आवाज़ में कहा। लगता था कि वह अभी भी झगड़ने को ही तत्पर है।

"तो आ जा... तू गवाह रहेगा, समझा? जब चीज़ों की अदला-बदली की जाती है, तो गवाह अवश्य होनी चाहिये..."

वे ल्योविक के छज्जे के पास पहुँचे। जब वे सीढ़ियों से ऊपर पहुँच गये, तो ल्योविक ने मुड़कर पीछे देखा।

"मेरी बहन लाल्या पर कोई ध्यान मत देना।"

उसने स्लेटी रंग के बड़े दरवाज़े को धकेला। अन्दर गलियार में नम सब्जियों और चुकन्दर के बोर्श्च की गन्ध आ रही थी। जब ल्योविक ने दरवाज़ा बन्द किया, तो वास्या बिल्कुल घबरा गया : उसे गन्ध के साथ अँधेरे का मिलाप अप्रिय था। तभी दूसरा दरवाज़ा खुला और रसोईघर नज़र आने लगा। लेकिन उधर कुछ दिखायी नहीं देता था, क्योंकि वहाँ भाप ही भाप भरी हुई थी, उनकी आँखों के सामने किसी प्रकार के सफ़ेद, गुलाबी और नीले वस्त्र टँगे थे-शायद चादरें और कम्बल हों। इन कपड़ों के बीच की जगह खुली थी और उसमें से ऊँची कपोलास्थियों व सुन्दर आँखोंवाले एक गुलाबी चेहरे ने झाँका।

"ल्योविक, तू फिर अपने दोस्तों को अन्दर ला रहा है? देख वार्का, तेरी जो मर्ज़ी कह, मैं इनका वही करूँगी, जिस लायक ये हैं।"

टँगे कपड़ों के पीछे से एक औरत की हल्की आवाज़ सुनायी पड़ी : "लाल्या तू गुस्सा क्यों होती है? वे तेरा क्या नुकसान कर देंगे?"

लाल्या ने क्रुद्ध दृष्टि से लड़कों की तरफ़ देखा और अपने चेहरे का भाव बदले बग़ैर बहुत जल्दी-जल्दी कहा : "वे क्या नुकसान करेंगे? वे हर चीज़ पैरों से रौंदते जाते हैं, उनके पैर गन्दे हैं, और उनके बदन से रेत गिरती है..."

उसने मित्या के झबरे सिर पर उँगली घुसेड़ी और फिर उसे अपनी आँखों के पास लायी : "ओहो! मेरे ख़्याल से यहाँ गौरैया का घोंसला था! और वह, वह कहाँ से आया है। ज़रा देखो, उसकी आँखें कैसी हैं!"

यद्यपि यह लड़की सिर्फ़ पन्द्रह साल के लगभग थी लेकिन उसने जो प्रभाव डाला, वह भयावह था। वास्या एक क़दम पीछे हट गया। लेकिन ल्योविक गलियारे का द्वार पहले ही बन्द कर चुका था और अपने साथियों से हिम्मत के साथ कह रहा था :

"कोई ध्यान मत दो। आते जाओ!"

लड़के उन धुले कपड़ों के नीचे से होकर निकले और एक कमरे में प्रविष्ट हुए। कमरा छोटा था और फ़र्नीचर, किताबों, पर्दों तथा फूलों से भरा पड़ा था। सिर्फ़ एक

छोटा-सा रास्ता खाली था। तीनों लड़के, एक दूसरे के पीछे खड़े, वहीं पर रुक गये। ल्योविक ने अपने दोनों मेहमानों को धक्का देते हुए कहा, ''तुम सोफ़े में बैठ जाओ, वरना चलने-फिरने को जगह नहीं रहेगी।''

वास्या और मित्या सोफ़े में लुढ़क गये। नज़ारोव परिवार के पास सोफ़े जैसी चीज़ नहीं थी, उस पर बैठना आनन्दप्रद था, परन्तु कमरे में जगह की तंगी से वास्या को घबराहट हो रही थी। यहाँ अजीब-अजीब क़िस्म की ढेरों चीज़ें थीं : पियानो, अण्डाकार चौखटों में लगे कई छविचित्रों, पीली मोमबत्तियों, पुस्तकों और संगीत स्वरलिपियों की वजह से कमरा बड़ा ही भरा-भरा और रहस्यमय लग रहा था। उनके सामने एक घूमनेवाले स्टूल पर ल्योविक बैठा था। वह अपने स्टूल को घुमाता हुआ कह रहा था : ''बदले में तू चाभी के चार रिंग ले सकता है, या इच्छा हो, तो एक अबाबील का घोंसला ले सकता है। फिर एक बटुवा भी है। यह देखा, कैसे काम का बटुवा है!''

वह घूमनेवाले स्टूल से उछला, एक छोटी-सी मेज़ की दराज़ खींचकर बाहर निकाली और उसे अपने घुटनों पर रख लिया। सबसे पहले स्प्रिंग बटन वाला एक छोटा-सा हरा बटुवा वास्या को पेश किया गया। वास्या की दिलचस्पी जगाने के लिये ल्योविक ने बटन को कई बार दबाया। लेकिन उस क्षण पर वास्या को बटुवे से ज़्यादा दिलचस्प चीज़ नज़र आ गयी। दराज़ की सारी लम्बाई में टिन का एक तंग डिब्बा रखा हुआ था, उसका रंग काला और उसकी चौड़ाई तीन उँगलियों के बराबर थी।

''ओह!'' वास्या टिन के डिब्बे की तरफ़ इशारा करके चिल्लाया।

''यह डिब्बा?'' ल्योविक ने पूछा और, बटुवे के बटन को दबाना बन्द कर दिया। ''लेकिन... अच्छा, यह तो बेहतर है।''

मित्या सोफ़े से उचका और दराज़ के ऊपर झुक गया।

वास्या ने डिब्बे के लिये हामी भरी : ''यही तो मुझे चाहिये।'' उसने अपनी बड़ी-बड़ी, ईमानदार, शान्त नीलारुण आँखों से ल्योविक की तरफ़ देखा। और ल्योविक ने अपनी अनुभवी, किंचित चालाक, भूरी आँखों से वास्या को देखा।

''तो तू डिब्बे के बदले एल्बम मुझे देगा, यही बात है ना? क्या तू गवाह के सामने इस बात से सहमत है?''

वास्या ने गम्भीरता से सिर हिलाया। ल्योविक ने दराज़ से डिब्बा निकाला और उसे सहलाया।

''डिब्बा तेरा है!''

अपनी ख़ुशक़िस्मती पर बेहद प्रसन्न वास्या ने डिब्बे को पकड़कर उसके अन्दर देखा। उसका तला मज़बूत था और कोई दरार-वरार नहीं थी-इसका मतलब है उसमें से पानी चूकर नीचे नहीं जायेगा। यह एक असली लम्बी नदी होगी। और वह रेत से नदी-तट बनायेगा। ऊँचे-ऊँचे! और तट पर जंगल लगायेगा। नदी जंगल से होकर बहेगी और उसके आर-पार एक पुल होगा।

''अबाबील का घोंसला देखना चाहता है? मेरे पास है,'' मेज़बान ने सुझाव दिया,

‘‘मैं दिखा सकता हूँ।’’

वह एक अन्य कमरे में गया। वास्या ने डिब्बे को सावधानी से सोफ़े पर रखा और दरवाज़े पर खड़ा हो गया। कमरे में कई चारपाइयाँ थीं, एक मछलीघर तथा लकड़ी के कुछ रैक थे, जिनमें बड़ी घिचपिच थी। ल्योविक ने अबाबील का घोंसला निकाला।

‘‘यह हमारे यहाँ की अबाबील का नहीं है, जापान की है। देख, यह कैसे बना है?’’

वास्या ने गहरे रंग के एक चिकने हल्के बाल को अपनी हथेलियों के बीच सावधानी से पकड़ा, उस बॉल में नली सरीख़ा एक छेद था।

‘‘डिब्बे के बदले अबाबील का घोंसला लेगा?’’

‘‘लेकिन यह किस काम का है?’’

‘‘ ‘किस काम का’ से क्या मतलब? अरे, यह संग्रह के लिये है!’’

‘‘ ‘संग्रह’ क्या होता है?’’

‘‘संग्रह। अरे, तू ऐसी ही या दूसरी क़िस्म की एक और कोई चीज़ ले ले, तब तेरे पास एक संग्रह हो जायेगा।’’

‘‘क्या तुम्हारे पास एक संग्रह है?’’

‘‘मेरे पास क्या है तुम्हें इससे क्या। तेरे पास एक संग्रह हो जायेगा। टिन का डिब्बा किस काम का!’’

लेकिन वास्या ने अपना सिर हिला दिया।

‘‘मुझे टिन का डिब्बा ही चाहिये, यह नहीं।’’

वास्या ने बड़े ही चाव से डिब्बे को याद किया और मुड़कर सोफ़े की तरफ़ देखा। लेकिन वहाँ डिब्बा नहीं था। उसने कमरे में चारों ओर नज़र डाली, पियानो के ढकने पर देखा, किताबों के ढेर में झाँका। पर डिब्बा कहीं न था।

‘‘वह कहाँ है?’’ उसने ल्योविक को पुकारा।

‘‘कौन? अबाबील?’’ ल्योविक ने दूसरे कमरे से पूछा।

‘‘नहीं, टिन का डिब्बा कहाँ है?’

‘‘लेकिन मैंने तो अभी तुझे दिया था। सीधे तेरे हाथ में रखा था!’’

वास्या ने हताश होकर सोफ़े की ओर देखा।

‘‘वह यहाँ पड़ा था।’’

ल्योविक ने भी सोफ़े पर देखा, कमरे में भी चारों ओर नज़र डाली, फिर दराज़ को बाहर खींचा।

‘‘रुको! मित्या कहाँ है? ज़रूर वही चुरा ले गया होगा!’’

‘‘कैसे?’’

‘‘कैसे? क्यों, मूसा और फ़रार।’’

‘‘यानी चला गया?’’

‘‘फ़रार हो गया! देखते नहीं? मित्या यहाँ नहीं है!’’

वास्या दुखी होकर सोफ़े पर बैठ गया, फिर उठकर खड़ा हो गया। उसे उस डिब्बे का बहुत अफसोस था।

''मूस लिया?'' उसने ल्योविक से यंत्रवत पूछा।

''हमारी अदल-बदल बराबर थी,'' ल्योविक ने मुँह बनाते हुए कहा। ''यह ईमानदारी से की गयी अदल-बदल थी। मैंने गवाह के सामने तुम्हारे हाथ में रख दिया था!''

''कौन गवाह?''

''मित्या के सामने! वह तुम्हारे लिये गवाह था! क्या मज़ाक है! कैसा बढ़िया गवाह है!''

ल्योविक की हँसी फूट निकली।

''वह एक गवाह था! लेकिन तुम्हारा क्या होगा? वह तो तुम्हें लूट ले गया। हमारी अदल-बदल बिल्कुल बराबरी की थी।''

द्वार पर लाल्या खड़ी थी और विनोद से अपनी काली, किंचित, तिरछी आँखों से शक की निगाह से अपने भाई को देख रही थी। सहसा वह भीतर आ धमकी। वास्या घबराकर सोफ़े से उठ गया।

''तूने मेरा बटुवा क्यों लिया?''

ल्योविक ने हँसना बन्द कर दिया और वास्या के पास से होता हुआ दरवाज़े की तरफ़ सरका।

''क्या मैंने लिया है?''

''तो यह मेज़ पर कैसे आ पड़ा?''

''पड़ा रहने दो, मेरा उससे क्या लेना-देना!''

लाल्या ने दराज़ को बाहर खींचा, पैनी नज़र से उसके अन्दर देखा और चिल्लाई : ''वापस ला, फ़ौरन वापस ला! सुअर!''

ल्योविक दरवाज़े पर पहुँच गया था और भाग निकलने के लिये तैयार था। लाल्या उसकी तरफ़ झपटी और वास्या से टकरा गयी। वास्या इस घटनाक्रम से प्रताड़ित घोर उलझन में फँसा खड़ा था। उसे सोफ़े पर चारों खाने चित करती हुई लाल्या पूरे वेग से दरवाज़े की तरफ़ दौड़ी, जिसे ल्योविक ने चुस्ती से बन्द कर दिया था। इसके बाद एक दूसरे दरवाज़े की और फिर तीसरे, बाहर जाने के, दरवाज़े के फटाक से खुलने और बन्द होने की आवाज़ सुनायी पड़ी। लाल्या भी अपने भाई का पीछा करते हुए इन सभी दरवाज़ों से होकर गुज़री और अन्त में उसी तरह भागती हुई वापस कमरे में आयी। उसने एक बार फिर दराज़ खोला, उसे टटोल-टटोलकर देखा ओर फिर मेज़ पर झुककर ज़ोर-ज़ोर से रोती हुई आँसू बहाने लगी। वास्या आश्चर्य और आशंका से उसे देखता रहा। उसकी समझ में यह बात आने लगी कि लाल्या की सुबकियों का टिन के उस डिब्बे से कोई सम्बन्ध है, जो अभी-अभी उसकी आँखों के सामने ग़ायब हुआ था। वह कुछ कहने ही वाला था कि लाल्या, जो अभी भी रो रही थी, एक क़दम पीछे हटी और उसका छरहरा बदन वास्या की बग़ल में सोफ़े पर जा

गिरा। वास्या का आश्चर्य और भी बढ़ गया, अपनी हथेलियों को सोफ़े में गड़ाकर वह उस सुबकती हुई लड़की की तरफ़ झुका।

''तुम क्यों रो रही हो,'' उसने साफ़ स्वर में पूछा, ''शायद उस टिन के डिब्बे के बारे में?''

लाल्या की सुबकी तुरन्त बन्द हो गयी, उसने अपना सिर ऊपर उठाया, क्रुद्ध दृष्टि से वास्या को देखा। वास्या ने भी उसे देखा और यह भी देखा कि उसकी पलकें आँसुओं से गीली थीं।

''क्या तुम उस डिब्बे के लिये रो रही हो?'' उसने फिर पूछा और मेज़ की ओर अटकल के अन्दाज़ में सिर हिलाया।

''डिब्बे के लिये? अहा!'' लाल्या चिल्लायी, ''बता कहाँ है वह!''

'' कौन? डिब्बा?'' वास्या लाल्या की आवाज़ में निहित घृणा से कुछ चौंक गया।

लाल्या ने उसके कन्धें में उँगली चुभायी तथा पहले से भी ज़्यादा तेजी से चीख़कर बोली : ''जवाब दे! कहाँ है वह! तू जवाब क्यों नहीं देता?! तूने उसका क्या किया? तूने मेरे पेन्सिलदान का क्या किया?''

''पेंसिलदान?''

वास्या ठीक-ठीक समझा नहीं। उसे लगा कि इसमें वह डिब्बा नहीं, कोई और बात भी हो सकती है। लेकिन उसके मन में इस सुन्दर तिरछी आँखोंवाली, दुखी लड़की को मदद देने की हार्दिक इच्छा थी।

''तुमने क्या कहा? पेंसिलदान?''

''अच्छी बात है, डिब्बा कह लो, टिन का डिब्बा! तुमने उसका क्या किया?''

वास्या ने उत्साह के साथ दराज़ की तरफ़ इशारा किया।

''वह, जो दराज़ में पड़ा था?''

''मुझे बेवकूफ़ बनाने की कोशिश मत कर! यह बता कि तुम लोगों ने उसका क्या किया?''

वास्या ने निःश्वास छोड़ा और अपनी कठिन कहानी शुरू की :

''ल्योविक ने कहा : मुझे अपनी किताब दे दे, मैं तुझे बटुवा दूँगा। फिर उसने कहा, चाभी का रिंग ले ले, फिर बोला, अबाबील का घोंसला ले ले, लेकिन यह उसने बाद में कहा, इससे पहले उसने मुझे टिन का डिब्बा दिया था। काले रंग का... मज़बूत तलेवाला। तब मैंने कहा : अच्छी बात है। और उसने कहा : गवाह के सामने और उसे मेरे हाथों में रख दिया। तब मैंने...''

''अच्छा, तो उसे लेनेवाला तू था, था ना?!''

वास्या को जवाब देने का वक़्त नहीं मिला। उसने, सहसा, लाल्या की गहरी भूरी आँखों को पल भर चौंकते देखा, और उसी क्षण उसका सिर सोफ़े के पीछे मुलायम भाग से टकराया और उसने अपने गाल में एक अजीब अप्रिय जलन-सी महसूस की। वास्या ने आहिस्ता-आहिस्ता समझा कि लाल्या ने उसे मारा है। वास्या को उसके

जीवन में किसी ने मारा नहीं था और वह नहीं जानता था कि यों पिटना अपमानजनक होता है। पर इसके बावजूद उसकी आँखों में आँसू भर आये। वह सोफ़े से कूदकर अलग हटा और उसने अपने गाल को हाथों से थाम लिया।

''उसे फ़ौरन मेरे हवाले कर!'' हमले के लिये तत्पर लाल्या चिल्लायी।

इस समय तक वास्या जान गया था कि वह उस पर फिर से चोट कर सकती है और वह नहीं चाहता था कि ऐसा हो। लेकिन उसके दिमाग़ में वस्तुतः कुछ और ही विचार था : वह यह क्यों नही समझती कि वह डिब्बा यहाँ नहीं है। वास्या ने स्थिति को स्पष्ट करने में देर नहीं करना चाही।

''बता, कहाँ है वह?''

''लेकिन वह यहाँ नहीं है, यहाँ पर नहीं है, समझी?''

"'यहाँ नहीं' से तेरा क्या मतलब है?''

''उसे मित्या ले गया।''

''मित्या?''

''हाँ वही! उसने... डिब्बे को मूस लिया।'' वास्या को प्रसन्नता थी कि उसे यह शब्द याद रहा-शायद इससे लाल्या अधिक जल्दी समझ जाये।

''वह सफ़ेद बालों वाला लड़का? तूने डिब्बा उसे दिया था? बता मुझे!''

लाल्या उसकी तरफ़ बढ़ी। वास्या ने अपने इधर-उधर देखा। उसके बचाव का एकमात्र रास्ता पियानो और मेज़ के बीच की तंग जगह से होकर जाता था, लेकिन उसे इस्तेमाल करने का वक़्त नहीं था। लाल्या ने उसे अशिष्टता से खिड़की की तरफ़ धकेला और सिर में कष्टकर चोट की और फिर दूसरी चोट करने के लिये हाथ उठाया, लेकिन उसके तथा वास्या दोनों के लिये अनपेक्षित रूप से वास्या का नन्हा घूँसा अर्धवृत्त में घूमा और लाल्या की गुलाबी ठोढ़ी से जा टकराया। इसके बाद दूसरा छोटा घूँसा आया और फिर पहलेवाला घूँसा वापस पलटा। भौं सिकोड़े और दाँत दिखाते हुए वास्या घूँसे चला रहा था और जहाँ वार कर सकता था, कर रहा था, पर उसके वार अधिकांशतः चूकते जा रहे थे। लाल्या थोड़ा पीछे हटी, घूँसों के प्रभाव से नहीं, आश्चर्य से, लेकिन उसका चेहरा और मुद्रा दोनों ही उसके प्रतिद्वन्द्वी के लिये शुभ नहीं थे। अगर उसी वक़्त चश्मा पहने पतले लम्बे चेहरे वाली एक औरत दरवाज़े में ना पहुँची होती, तो यह लड़ाई वास्या के लिये बहुत कठिन होती।

''लाल्या, यहाँ क्या हो रहा है? यह किसका लड़का है?''

''मुझे क्या पता किसका लड़का है'', लाल्या ने पीछे को नज़र डालते हुए कहा। ''उसे ल्योविक अन्दर लाया। उन्होंने मेरा पेंसिलदान चुरा लिया है। अब देखो कैसा है!''

लाल्या की भूरी आँखें क्षण भर के लिये सहसा मुस्काईं, लेकिन वास्या को बड़ी औरत के रुख़ में ज़्यादा दिलचस्पी थी। शायद यह लाल्या की माँ है-अब ये दोनों मुझे मारेंगी।

‘‘लाल्या! क्या तू यहाँ लड़ रही थी, सचमुच!’’

‘‘वह मुझे डिब्बा क्यों नहीं लौटाता! मैं अभी उसे दो-एक और लगाऊँगी! क्यों रे!?

लाल्या उसके निकटतर आयी। वास्या मेज़ के नज़दीक सरका। अब लाल्या की आँखें अपेक्षाकृत कम क्रोधित थीं और वह उस औरत की उपस्थिति में किंचित अधिक शान्ति का अनुभव कर रहा था, लकिन वह अपना अभी-अभी का तजुर्बा नहीं भूला था।

‘‘लाल्या उसे मत डरा! कितना अच्छा लड़का है!’’

‘‘वार्का, तुम दखल मत दो।’’ लाल्या चिल्लायी। ‘‘अच्छा लड़का! तुम्हारे लिये तो हर कोई अच्छा है। तुम बहुत नेक दिल जो हो! ए, तू! मेरा डिब्बा वापस ला!’’

लेकिन इसी क्षण कुमुक आ गयी। दरवाज़े में अपेक्षाकृत छोटे क़द के एक आदमी का आविर्भाव हुआ। वह अपनी पतली-सी काली दाढ़ी को खींचता जा रहा था।

‘‘ग्रीश्का!’’ लड़की ने फ़ौरन अधिक प्रसन्न हाते हुए कहा। ‘‘देखो, वह उसका बचाव कर रही है! यह लड़का घर में घुसा, इसने मेरे पेंसिलदान को कहीं रख दिया, और वार्का उसका बचाव करती है!’’

‘‘अरे, वार्का तो सदा सबका बचाव करती है,’’ उस आदमी ने मुस्कराते हुए कहा। ‘‘लेकिन यह किसका लड़का है?’’

‘‘तू कहाँ से आया? तेरा नाम क्या है?’’ लाल्या ने मुस्कराकर पूछा।

वास्या ने हर किसी को स्पष्ट नज़र से देखा, फिर गम्भीर नम्रता से बोला : ‘‘मेरा नाम वास्या नज़ारोव है।’’

‘‘आह, नज़ारोव!’’ लड़की ज़ोर से बोली, अब वह निश्चय ही स्नेहपूर्वक उसके पास आयी।

‘‘वास्या नज़ारोव? तो ठीक है। भलेमानुष बन जाओ और वायदा करो कि तुम मेरा डिब्बा खोज निकालोगे। समझे?’’ वास्या ठीक-ठीक समझा नहीं : ‘‘भलेमानुष बनो’’ का अर्थ स्पष्ट नहीं था और न यही स्पष्ट था कि ‘‘खोज’’ का क्या आशय है।

‘‘उसे मित्या ले गया’’, उसने विश्वास से कहा।

‘‘सचमुच, यह तो अति है,’’ वार्का नाम की औरत ने कहा। ‘‘लाल्या ने उसे पीटा।’’

‘‘लाल्या!’’ उस आदमी ने ताड़ना के स्वर में कहा।

‘‘ओ, ग्रीश्का! आवाज़ का यह स्वर मेरे सिर चढ़ जाता है! तुम भी वार्का जैसे ही मन के हो।’’

लड़की पीछे घूमी और वार्का की तरफ़ सिर झटकाकर कमरे से बाहर चली गयी। ‘‘जाओ, वास्या, और डिब्बे के बारे में कुछ मत सोचना,’’ वार्का ने का, ‘‘जाओ।’’

वास्या ने वार्का के चेहरे की तरफ़ देखा, वह उसे अच्छा लगा। खीसें निपोरते हुए ग्रीश्का को नज़रअन्दाज़ करके वह बाहर निकलकर सीढ़ियों पर पहुँच गया।

पास ही ल्योविक खड़ा था और वह हँस रहा था।

''अच्छा? तो तुम फँस गये?''

वास्या अटपटे ढंग से मुस्कराया। वह इस भयावह अनुभव के दुष्प्रभाव से निकलकर अभी भी सहज स्वाभाविक स्थिति में नहीं आ पाया था और उसे इस पर विचार करने का समय भी नहीं मिल पाया था। वास्तव में उसे अपने अनुभव के अलग-अलग पक्षों में दिलचस्पी थी। वह टिन के उस डिब्बे को अपने दिमाग़ से नहीं निकाल पाया था-उससे कितनी प्यारी नदी बन सकती थी! वह वहाँ से भी मित्या को खोजने के लिये अहाते में नज़र दौड़ाने लगा था। इसके अलावा उसे यह भी पता लगाना ही था कि ये वार्का और ग्रीश्का कौन थे। एक और प्रश्न भी था : ल्योविक के ममी और डैडी कहाँ थे?

वह सीढ़ियों से नीचे उतरा।

''ल्योविक, तेरे डैडी कहाँ हैं?''

''डैडी? तूने उन्हें नहीं देखा?''

''नहीं।''

''लेकिन वे तो अन्दर गये थे। उनकी दाढ़ी है...''

''दाढ़ी? लेकिन वह ग्रीश्का था।''

''अरे, ग्रीश्का या डैडी-सब एक ही बात है।''

''नहीं, डैडी के लिये... लोग कभी-कभी पिता कहते हैं। ग्रीश्का से काम नहीं चल सकता।'

''तो तू यह समझता है कि अगर वे पिता है, तो उनका कोई नाम ही नहीं? तेरे पिता का क्या नाम है?''

''मेरे? अहा, तुम्हारा मतलब यह है कि ममी उन्हें किस नाम से बुलाती हैं? ममी उनसे फ़ेद्या कहती हैं।''

''तो तेरे पिता का नाम फ़ेद्या है, और हमारे पिता का नाम ग्रीश्का।''

''ग्रीश्का? इस नाम से तेरी ममी उन्हें बुलाती हैं? है न यही बात?''

''ऊँहूँ, तू तो गधा है। ममी और बाक़ी सब, वह ग्रीश्का है और ममी वार्का।''

वास्या अभी भी पूरी बात नहीं समझा, लेकिन उसे कुछ और पूछने की इच्छा नहीं हुई। ल्योविक सबसे ऊपर की सीढ़ी पर पहुँच गया था और वास्या को भी याद आया कि उसे घर जाना है।

जब वह अपनी ड्योढ़ी में पहुँचा और उसने दरवाज़ा खोला, तो माँ से टकरा गया। उसने उसे ग़ौर से देखा और अपने पहले इरादे के अनुसार पानी लेने नहीं गयी, बल्कि फ़्लैट में वापस लौट आयी।

''अब मुझे बता कि आज तुझे हुआ क्या है?''

बग़ैर जल्दबाजी या उत्तेजना के वास्या ने अपनी आपबीती कह सुनायी। कुछ जगहों पर उसे शब्द नहीं सूझे, तो उसने हाव-भावों के अभिनय से काम चलाया।

''उसने कैसी नज़रों से मुझे देखा, कैसी नज़रों से!''

''फिर?''

''फिर वह एकबारगी मुझ पर टूट पड़ी और मुझे ज़ोर से मारा... सीधे यहाँ।''

''अच्छा, फिर क्या हुआ?''

''फिर यहाँ पर मारा! फिर मैं जाने को था। लेकिन उसने फिर मारपीट शुरू कर दी। और मैंने भी उसे मारा! तभी वार्का आयी।''

''यह वार्का कौन है?''

''मैं नहीं जानता! वह चश्मा लगाती है। फिर ग्रीश्का आया। जैसे आप डैडी से फ़ेद्या कहती हैं, वैसे ही वे एक-दूसरे से ग्रीश्का और वार्का कहते हैं। और वार्का ने कहा : 'अच्छा लड़का, जा, घर चला जा'।''

''वास्या, मेरे लाडले, यह तो गम्भीर मामला है।''

''हाँ, है,'' वास्या ने हामी भरी और मुस्काते हुए सिर हिलाया।

फिर पिता ने कहा : ''यह देख लो! वोल्गा का निर्माण करना कैसा कठिन काम है। अब तुम्हारा अगला क़दम क्या होगा?''

वास्या अपने खिलौनों के सामने अपनी छोटी-सी चटाई पर बैठकर सोचने लगा। वह समझ गया था कि उसके पिता चतुराई कर रहे हैं और इस कठिन जीवन में उसकी सहायता करना नहीं चाहते। लेकिन वास्या के लिये उसके पिता बुद्धिमत्ता और ज्ञान का आदर्श थे और वास्या उनकी राय जानना चाहता था।

''लेकिन आप मुझे बताते क्यों नहीं? मैं तो अभी छोटा हूँ!''

''तुम छोटे हो सकते हो, लेकिन जब तुम अदला-बदली के लिये गये थे, तो तुमने मुझसे नहीं पूछा। एक भी बात नहीं पूछी।''

''ल्योविक ने कहा : आओ अदला-बदली कर लें। सो मैं देखने गया और उस डिब्बे पर मेरी नज़र पड़ गयी।''

''अब ज़रा और आगे की बात समझो : तुमने अदला-बदली की, लेकिन तुम्हारा डिब्बा कहाँ है?''

वास्या अपने पर व्यंग्यपूर्वक हँसा और उसने हाथों से हताशा की मुद्रा दिखलायी।

''वह मेरे पास नहीं है। मित्या... उसे मूस ले गया।''

'''मूस ले गया' यह किस क़िस्म का शब्द है, हमारी भाषा में लोग कहते हैं 'चुरा ले गया'।''

''तब ल्योविक किस भाषा में बोलता है?''

''भगवान जाने यह कौन-सी भाषा है! इस तरह से चोर बोलते हैं।''

''पर ल्योविक तो ऐसे ही बोलता है।''

''तुम ल्योविक की नकल न करो। और उसकी बहन कला-विद्यालय में पढ़ रही है, इसलिये वह टिन का डिब्बा उसी का होगा, रंग के ब्रुशों के वास्ते। समझे बात को? उसकी बहन ने तुम्हारी पिटाई की, की ना? उसने बिल्कुल ठीक किया...''

''वह ल्योविक और मित्या का कुसूर था।''

''नहीं बेटे, जो लड़का कुसूरवार था, वह है वास्या नज़ारोव।''

''हा-हा,'' वास्या हँसा। ''लेकिन डैडी आप ग़लती पर हैं। मेरा कुसूर कतई नहीं हैं।''

वास्या ने ल्योविक पर यक़ीन किया, ऐसे व्यक्ति पर यकीन किया, जिसे वह नहीं जानता था, जो उसके लिये बिल्कुल अजनबी था। वास्या ने किसी बात पर कोई विचार नहीं किया, उसने अपने आपको ग़लती करते रंगे हाथों पकड़े जाने दिया, डिब्बे को लेना मंजूर कर लिया और एक बार फिर चूक करते और वह भी खुलेआम चूक करते पकड़े जाने दिया। फिर मित्या कन्दीबिन आ गया, डिब्बा ग़ायब हो गया और वास्या की पिटाई हुई। अब बताओ, किसका कसूर था?''

उसके पिता जितना अधिक बोले वास्या उतना ही अधिक झेंपा और उसने महसूस किया कि यह सचमुच उसी का कसूर था। उसे इसका विश्वास शब्दों से नहीं, बल्कि उस स्वरशैली से हुआ, जिसमें वे बोले गये थे। वास्या को यह अहसास हुआ कि उसके पिता उससे सचमुच नाख़ुश हैं और इसका अर्थ था कि कुसूर सचमुच वास्या ही का था। उसके अलावा शब्द भी महत्वपूर्ण थे। नज़ारोव परिवार में इस पद कि ''ग़लती करते रंगे हाथों पकड़े जाने'' का बहुधा उपयोग होता था। अभी कुछ दिन पहले उसके पिता ने बताया था कि टर्नरों की एक टोली के प्रशिक्षक मित्या कन्दीबिन के पिता किस तरह ग़लती करते रंगे हाथों पकड़े गये और इस प्रक्रिया में एक सौ तीस पुर्जों का किस प्रकार सफ़ाया हो गया। अब वास्या को अपने पिता का सुनाया हुआ वह क़िस्सा शब्दशः याद आ गया।

उसने पहले से भी ज़्यादा झेंपते हुए दूसरी तरफ़ को मुँह कर लिया, फिर सकुचाकर अपने पिता की तरफ़ देखा और उदास व भ्रमित सा होकर थोड़ा सा मुस्कराया। उसके पिता अपनी कुहनियाँ घुटनों पर टिकाये कुर्सी पर बैठे थे और अपने बेटे पर नज़र पड़ते ही हँसने लगे। अब वास्या को वे विशेष निकट और प्रिय प्रतीत हुए-उनकी मुलायम मूँछें मृदुता से हिल रही थीं और आँखों में वात्सल्य भरा था।

वास्या कुछ कह नहीं पाया। उसे सहसा याद आया कि उसके पिता ने पुल बनाने के लिये उसे जो छोटी-छोटी बिरंजियाँ दी हैं उन्हें रखने की कोई जगह नहीं है। वे एक कपड़े में यों ही पड़ी थीं। अपनी कुहनी के बल झुकते हुए वास्या ने बिखरी हुई बिरंजियों को अच्छी तरह से जाँचा और कहा :

''इन बिरंजियों को रखने की कोई जगह ही नहीं है... ममी ने एक डिब्बा देने का वायदा किया था, पर वे भूल गयीं...''

''आओ मैं तुम्हें डिब्बा देती हूँ,'' उसकी माँ ने कहा।

वास्या अपनी माँ के पीछे-पीछे दौड़ा, और जब तक वह लौटकर आया, तब तक उसके पिता शयनकक्ष में जा पहुँचे थे और अख़बार पढ़ने लगे थे।

नाश्ता करने के बाद वास्या को अहाते में पहुँचने की जल्दी थी। वह छुट्टी का दिन था। डैडी और ममी शहर में सौदा ख़रीदने के लिये जाने को तैयार थे। वास्या

को उनके साथ जाना अच्छा लगता था, लेकिन आज वह नहीं जा रहा था। वे अपने साथ नताशा को ले जा रहे थे। पिता ने वास्या से कहा : ''तुम आज व्यस्त हो ना?''

वास्या ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपने पिता के शब्दों में छुपे इशारे को समझ लिया-तो डैडी को सब कुछ मालूम था। वास्या बेचैन था, क्योंकि क्या करना चाहिये इस बारे में उसके पास कोई निश्चित योजना नहीं थी।

वे सब एक साथ बाहर निकले। फाटक पर उसके पिता ने वास्या को फ़्लैट के दरवाज़े की चाभी दी।

''तुम घूमने चले जाओ। चाभी खोना मत और इसकी किसी के साथ अदला-बदली भी मत करना।''

वास्या ने इस आदेश को गम्भीरता से सुना और वह झेंपा भी नहीं, क्योंकि वह जानता था कि चाभी सचमुच ही ऐसी महत्वपूर्ण वस्तु है कि उसकी अदला-बदली निश्चय ही नहीं होनी चाहिये।

जब वास्या अहाते में वापस आया, तो उसने लड़कों की एक भीड़ खड़ी देखी। एक गम्भीर युद्ध चल रहा था। इसके बारे में बहुत समय से बात हो रही थी और एक विस्फोट जैसा होने ही वाला था। आज ऐसा लग रहा था कि वज्र टूटने ही वाला है।

वास्या अपने पिता के साथ कई बार ''कुचुगुरी'' में घूमा था, लेकिन उसे इस अनोखे प्रदेश के सारे रहस्य अभी भी ज्ञात न थे।

''कुचुगुरी'' नगर के अन्तिम मकान से लगभग तीन किलोमीटर तक फैला एक लम्बा-चौड़ा इलाक़ा था और अगल-बग़ल में और भी ज़्यादा दूर तक विस्तृत था। वह मनुष्य से अछूता था। इस सारे इलाके में अनेक रेतीले टीले थे, उनमें से कुछ ख़ासे ऊँचे थे और कई तो असली पर्वतमाला जैसे दिखायी पड़ते थे। उनमें अनेक स्थानों पर झाड़ियाँ उगी हुई थीं और बाक़ी जगहों पर छोटी-छोटी बेलें उगी हुई थीं। ''कुचुगुरी'' के मध्य में एक असली पहाड़ था, जिसे लड़के माखी पर्वत कहते थे, क्योंकि उसकी चोटी पर खड़े लोग मक्खियों जितने छोटे दिखायी पड़ते थे। माखी पर्वत दूर से ही शानदार और ठोस नज़र आता था। वास्तव में वह ऐसी चोटियों और खड़ी ढलानों का गड्डमड्ड ढेर था, जो लहराती-सी रेत से ढँके थे। उनके बीच में चट्टानों और तंग घाटियों की ऐसी कगारें थीं, जो झाड़-झंखाड़ों से भरी थीं। माखी-पर्वत के चारों तरफ़, जहाँ तक निगाह जा सकती थी, छोटी दरारों और छोटी-छोटी घाटियोंवाले छोटे पर्वत, लगभग कोर्चागी गाँव तक फैले थे और वह गाँव दूर से अपनी घनी हरियाली में लगभग छिप सा गया था।

वास्या ने देखा कि कुछ लड़के ढलानों पर चोटी से लेकर नीचे तक बेधड़क फिसला करते थे। वे लुढ़कते-पुढ़कते, धूल के बादल उड़ाते और सीधी सतह पर स्पष्ट निशान बनाते हुए जाते थे। वह सोचता कि ऐसी ढलान पर फिसलने और फिर घाटी के तल पर पहुँचकर चोटी की तरफ़ देखते हुए अपने कपड़ों, नाक और कानों में भरी रेत को झाड़ते हुए शान से खड़े होने में बड़ा ही आनन्द आता होगा। वास्या को

अपने पिता की उपस्थिति में ऐसा करने में हिचकिचाहट होती थी, लेकिन वह मन ही मन ऐसा करने की कल्पना किया करता था।

लेकिन अभी फिलहाल ''कुचुगुरी'' ऐसे शान्तिपूर्ण आमोद-प्रमोद के लिये उपलब्ध नहीं था। अब वह इलाक़ा युद्ध की आशंकाओं से ग्रस्त था। वास्या ने अपने क्षेत्र की युवा सेना की सामूहिक कार्यवाहियों में अभी तक भाग नहीं लिया था, लेकिन वह ''भर्ती की अवस्था'' में लगभग पहुँच चुका था और उसे सैनिक मामलों में दिलचस्पी हो गयी थी। पिछले कई दिनों से लड़कों के बीच तनावपूर्ण स्थिति के बारे में गरमा-गरम बहस चल रही थी। अगर आज नहीं, तो कल लड़ाई होने ही वाली थी। अहाते का सर्वमान्य कमाण्डर-इन-चीफ सेर्योजा स्काल्कोव्स्की था। वह पाँचवे दर्जे में पढ़ता था और कारख़ाने के कार्य-निरीक्षक का लड़का था। उसके पिता स्काल्कोव्स्की अपने बड़े परिवार को पूरे नियंत्रण में रखते थे, लेकिन वे ख़ुशमिज़ाज, बातूनी और मुक्त-परिहास प्रिय व्यक्ति थे। उन्हें लाल झण्डा पदक मिल चुका था और उन्हें छापामार लड़ाई की बहुत बातें याद थीं, लेकिन वे उस समय की अपनी सफलताओं की डींग कभी भी नहीं हाँकते थे। उसके विपरीत वे सैनिक तकनीक तथा संगठन के बारे में बहस करना पसन्द करते थे। इसी कारण से सेर्योजा स्काल्कोव्स्की वहाँ होनेवाले बेतरतीब झगड़ों का विरोधी भी था, वह व्यवस्था की माँग करता था।

शत्रु विचाराधीन क्षेत्र की एक बड़ी तीनमंज़िला इमारत में डेरा डाले हुए था। वह इमारत वास्या के अहाते से आधे किलोमीटर दूर थी। उस इमारत के लड़कों ने उस स्थान के अपने पक्ष पर बहुत पहले ही नियंत्रण कायम कर लिया था और अब वे माखी-पर्वत की दिशा में अपनी नज़र लगा रहे थे। पहली झड़पें इसी पर्वत की घाटियों में हुई। शुरू-शुरू में वे व्यक्तिगत टकराव थे, पर बाद में टालियाँ भी उलझ गयीं। हाल ही एक झड़प में शत्रुओं द्वारा खुद सेर्योजा स्काल्कोव्स्की के एक पूरे दस्ते को ही ढलान के नीचे घाटी में धकेल दिया गया और विजेता विजयोल्लास से गाते चोटियों पर चलते हुए घर को चले गये थे। लेकिन कल शाम सेर्योजा ने इस अपमान का भरपूर बदला ले लिया था : वह सूर्यास्त से कुछ पहले ''पूर्वी क्षेत्र'' में शत्रु के एक दस्ते पर टूट पड़ा। लड़ाई हुई और शत्रु पीछे हट गया। लेकिन इस जीत का असली महत्व इस तथ्य में निहित था कि एक युद्धबन्दी के पास से सारे इलाक़े का एक अधूरा नक़्शा बरामद किया गया। यह शत्रु के आक्रामक इरादों का पक्का प्रमाण था। वास्या ठीक उस समय अहाते में पहुँचा, जब सेर्योजा कह रहा था : ''तुम समझे, वे पहले से ही नक़्शे तैयार कर रहे हैं। और यहाँ हमारे पास कोई योजना ही नहीं है। और देखो उन्होंने हमारे घर का ख़ाका बनाया है और उसके ऊपर लिखा है : 'नीलों का मुख़्यालय'।''

''ओहो,'' कोई बोला, ''उनके अनुसार हम 'नीले' हैं, क्या ऐसा है?''

''हाँ नीले!''

''और वे लाल हैं?''

"इसका तो यही अर्थ बनता है।"

"और उन्होंने अपने नक़्शे में इसी तरह से लिखा है," एक और आवाज़ आयी।

"उनको ऐसा करने का हक़ किसने दिया?"

"हा-हा, लाल! यह मुझे पसन्द है!"

"अब नक़्शा हमारे पास है, हम इस बदल सकते हैं।"

एकत्रित लोगों ने नक़्शे की जाँच की, तो उनका पारा चढ़ने लगा। वास्या भी उस अपमानजनक वस्तु पर नज़र डालने के लिये भीड़ में घुसा। यद्यपि वह अभी पढ़ नहीं सकता था, फिर भी वह समझ गया कि उसके अहाते का अपमान हुआ है, और जहाँ तक 'लाल' कहलाने का सम्बन्ध था, उसे इस बात पर रंच मात्र भी शक नहीं था कि केवल सेर्योजा के योद्धा ही इस सम्मान के क़ाबिल थे।

वास्या ने गम्भीरता से बातें सुनी। वह कभी इस चेहरे को देखता कभी उस को, तभीअचानक भीड़ की दूसरी तरफ़ मित्या कन्दीबिन की छोटी पैनी आँखों पर उसकी नज़र पड़ी। वास्या के अन्दर युद्ध की आग अचानक बुझ गयी और उसके स्थान पर टिन के डिब्बे की समस्या उठ खड़ी हुई। वह भीड़ का चक्कर लगाकर गया और उसने मित्या को कोहनी से पकड़ लिया। मित्या ने मुड़कर देखा और तेजी से एक तरफ़ को हटा।

"मित्या, कल वह टिन का डब्बा तू ले गया?"

"हाँ, ले गया तो क्या? तू इस बारे में क्या करने वाला है?"

यद्यपि मित्या साहस दिखला रहा था, फिर भी वह पीछे को हट गया और, स्पष्टतः भागने को तत्पर हो गया था। वास्या के लिये उसका यह व्यवहार घोर आश्चर्य की बात थी। उसने एक क़दम बढ़ाया और दृढ़ शब्दों में कहा : "अच्छी बात है, उसे वापस कर दे!"

"ओहो, तू बड़ा साहसी है," मित्या ने अवज्ञापूर्ण चेहरा बना लिया। "वापस कर दे! बड़ा साहसी है तू, वाह क्या बात है!"

"तो तू वापस नहीं करेगा? तूने उसे चुराया और अब तू उसे वापस नहीं देगा? यही बात है न?"

वास्या ने यह बात ज़ोर से, आवेशपूर्ण ढंग और किंचित क्रोध से कही।

इसके उत्तर में मित्या ने बड़ा गन्दा चेहरा बनाया। इसके बाद क्या हुआ कोई नहीं बता सकता, स्वयं वास्या भी नहीं। जो भी हो, युद्ध परिषद सामरिक प्रश्नों पर अपनी बहस को मुल्तवी करने पर विवश हो गयी, उसके सदस्यों का ध्यान एक विचित्र दृश्य की तरफ़ खिंच गया। मित्या पेट के बल जमीन पर पड़ा था, उसके पीठ पर वास्या सवार था, और वह उससे पूछ रहा था : "तू उसे वापस लौटायेगा कि नहीं? बोल, लौटायेगा कि नहीं?"

मित्या इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे रहा था और आज़ाद होने के लिये प्रयत्न करता जा रहा था। उसका चेहरा धूल से सन गया था और तेज़ी के साथ अगल-बग़ल

को ऐंठ रहा था। वास्या जिधर को उसका मुँह होता उधर ही उसे देखने की कोशिश करता हुआ पूछ रहा था : ''बोल, वापस करेगा कि नहीं?''

युद्ध-परिषद खिलखिलाकर हँस पड़ी। सबसे मज़े की बात यह थी कि वास्या के चेहरे पर क्रोध अथवा शुत्रुता का लेशमात्र भी नहीं था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें सिर्फ़ इस बात में दिलचस्पी दिखला रही थीं कि मित्या टिन का डिब्बा वापस करेगा या नहीं। वह किसी भी तरह की धमकी दिये बिना, सामान्य व्यावहारिक प्रश्न की तरह सवाल कर रहा था। इसके साथ ही वास्या कभी-कभी अपने विपक्षी को ज़मीन पर दबा-पिचका देता था और उसके सिर को थोड़ा नीचे को धकेल देता था।

अन्त में सब लोगों के ध्यान तथा हँसी के कारण वास्या ने ऊपर को निगाह डाली। सेर्योजा स्काल्कोव्स्की ने उसे कन्धों से पकड़ा और धीरे से उठाकर खड़ा कर दिया। वास्या मुस्कराया और सेर्योजा से बोला : ''मैंने उसको बार-बार ज़मीन में दबाया-पिचकाया, पर वह कुछ बोलता ही नहीं।''

''तू उसे इस तरह से दबाने-पिचकाने में क्यों लगा था?''

''उसने मेरा डिब्बा ले लिया।''

''कैसा डिब्बा?''

''ऐसा बड़ा... टिन का डिब्बा।''

मित्या उठकर खड़ा हो गया। उसने अपने हाथों से चेहरे को पोंछा, पर इससे वह ज़रा भी साफ़ नहीं हुआ।

''तू उसका डिब्बा वापस क्यों नहीं देता?'' सेर्योजा ने पूछा।

मित्या ने अपनी नाक कुरेदी, दूसरी तरफ़ को नज़र फिराई और निस्तेज-सी भारी आवाज़ में उत्तर दिया : ''मैं वापस कर देता, पर उसे मेरे पिता ने लिया है।''

''लेकिन डिब्बा इसी का है?''

मित्या ने वैसी ही उदासीनता से सिर हिलाया। सेर्योजा एक हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, साफ़-सुथरे व सँवरे बालोंवाला लड़का था। उसने क्षण भर सोचा।

''अच्छी बात है। तुम्हारे पिता को उसे वापस करना होगा, आख़िर वह उनका डिब्बा थोड़े ही है।'' सेर्योजो वास्या की तरफ़ मुड़ा। ''तो मित्या ने उसे तुमसे लिय, लिया ना?''

''नहीं, उसने लिया नहीं... यह कल की बात है... उसने... इसे चुरा लिया।''

लड़के हँसे और ल्योविक भी हँसा। ल्योविक को देखकर वास्या ने चिल्लाकर कहा : ''यह रहा ल्योविक, उसे सब कुछ मालूम है।''

ल्योविक की हँसी ग़ायब हो गयी। वह दूसरी तरफ़ को घूम गया।

''मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानता। यह जानना मेरा काम नहीं है कि उसने तुमसे क्या चुराया!''

तब सेर्योजा ने असली कमाण्डर-इन-चीफ़ की तरह कार्रवाई की और मित्या को सख़्ती से डाँटते हुए कहा, ''तूने उसे चुराया? बोल!''

‘‘मैंने उसे ले लिया था। चुराने से इसका क्या मतलब?’’

‘‘बहुत अच्छा,’’ सेर्योजा ने कहा। ‘‘हम सम्मेलन को समाप्त करते हैं और तुम दोनों यहीं पर रुको। तेरा नाम क्या है?’’

‘‘वास्या।’’

‘‘अच्छा, वास्या, तू उसपर निगरानी रखना। वह गिरफ़्तार है!’’

वास्या ने मित्या की ओर तिरछी नज़र डाली और मुस्कराया। वह सेर्योजा के आदेश देने के ढंग से बहुत प्रसन्न था। यद्यपि वह यह नहीं समझ पाया कि वह चीज़ सचमुच क्या थी, जिससे वह ख़ुश हो गया था। वह सेर्योजा की विश्वासपूर्ण शक्ति और उसका समर्थन करनेवाले लड़कों के संगठन की शक्ति थी, जिसने वास्या को प्रभावित किया था।

वास्या मित्या पर नज़र रखे हुए था, लेकिन मित्या ने भागने का विचार भी नहीं किया-शायद इसलिये कि वह अपने पहरेदार की पकड़ का अनुभव कर चुका था, और शायद वह भी प्रसन्न था कि उसे स्वयं कमाण्डर-इन-चीफ़ ने गिरफ़्तार किया। दोनों प्रतियोगी बीच-बीच में एक-दूसरे की तरफ़ देख रहे थे और इस काम में इतने डूब गये थे कि उन्होंने युद्ध परिषद की बहसें भी नहीं सुनीं।

बैठक में लगभग दस लड़के भाग ले रहे थे और उनमें वास्या तथा मित्या जैसे कम उम्र के सहभागी भी शामिल थे। वे ज़िम्मेदार काम पाने की उम्मीद नहीं कर सकते थे, लेकिन अपनी सहजबुद्धि से समझ रहे थे कि आगामी लड़ाइयों में उन्हें अपनी क्षमता दिखलाने से कोई नहीं रोकेगा। इसलिये उन्हें युद्ध की शर्तों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन उनकी अपेक्षा के विपरीत क़िस्मत उन पर मेहरबान थी। सहसा, बैठक के बीच से सेर्योजा स्काल्कोव्स्की की आवाज़ गूँजी :

‘‘नहीं, हम अपनी मुख्य शक्तियों को हाथ नहीं लगायेंगे। तुम जानते हो, हमारे पास कुछ बढ़िया स्काउट हैं। उधर वह लड़का है, जा आज लड़ाई जीता, वास्या, यही था ना? वह एक योद्धा है। वह टोह-दल का मुखिया होगा।’’

‘‘नहीं, मुखिया बड़ा लड़का होना चाहिये,’’ एक आवाज़ ने आपत्ति उठाई।

‘‘अच्छी बात है, तो वह सहायक मुखिया होगा। जो भी हो, उसमें ख़राबी क्या है?’’

सबने वास्या की तरफ़ देखा और हर कोई मुस्कराया। वास्या फ़ौरन समझ गया कि उसके लिये कैसे काम का रास्ता खुल रहा है, क्योंकि उसके पिता ने टोह लगाने के काम के बारे में उसे कई बार बताया था। वह आन्तरिक गर्व से शर्मा गया, लेकिन उसने अपनी उत्तेजना को दर्शाने का कोई प्रयास नहीं किया और वह मित्या की तरफ़ और भी अधिक पैनी नज़र से देखने लगा। मित्या ने अवज्ञा से मुँह बनाया और बुड़बुड़ाया : ‘‘क्या स्काउट है!’’

यह बात ईर्ष्यावश कही गयी थी, पर उसी क्षण सेर्योजा घेरे से बाहर निकला और अपने आस-पास देखते हुए स्काउटों को उनकी आस्तीनों और कुहनियों से पकड़कर उन्हें वास्या के गिर्द एक टोली में जमा करने लगा। वे कुल आठ थे और टोली में

प्रविष्ट होनेवाला पहला लड़का, बेशक, मित्या था। वे सब ख़ुश थे, लेकिन उनके रंग-ढंग से जाहिर था कि उनमें असली स्काउटों का आत्मविश्वास नहीं था।

सेर्योजा ने एक भाषण दिया :

''अब तुम स्काउट हो, समझे? लेकिन तुम्हें ध्यान रखना होगा कि अनुशासन रहे न कि मन-मर्ज़ी का हुड़दंग। तुम्हारा मुखिया कोस्त्या वारेनिक है और यह वास्या सहायक मुखिया है। समझे?''

सब स्काउटों ने अपना सिर हिलाया और कोस्त्या की तरफ़ देखा। वह लगभग तेरह वर्ष का एक दुबला-पतला लड़का था। उसका चेहरा बड़ा और हँसमुख तथा आँखों में मज़ाकियापन था। अपने हाथों को जेब में ठूँसते हुए उसने स्काउटों की टोली का निरीक्षण किया और फिर अपना घूँसा ऊपर उठाया।

''स्काउटों को लड़ाका होना चाहिये, समझे! जो कोई ग़द्दारी करेगा या कायरता दिखलायेगा, उसे गोली मार दी जायेगी।''

प्रसन्नता की गुरगुराहट के साथ स्काउटों की आँखें विस्फारित हो गयीं।

उनके मुखिया ने आदेश दिया : ''आओ, चलें और संगठित हो जायें।''

''जो गिरफ़्तार है, उसका क्या होगा?'' वास्या ने पूछा।

''अरे हाँ, रुको! कामरेड कमाण्डर-इन चीफ़, क्या मैं गिरफ़्तार व्यक्ति को रिहा कर दूँ?''

''किसी भी हालत में नहीं,'' सेर्योजा ने क्षुब्ध होकर कहा। ''हम अभी मामले की छानबीन करने जा रहे हैं।''

सेर्योजा निकलकर सामने आया और अपनी अगुआई में उन्हें कहीं ले जाने ही वाला था कि उसी क्षण वह भारी फाटक खुला और ग्यारह से तेरह वर्ष तक के तीन लड़के अन्दर आये। उनमें से एक के हाथ में एक छड़ी थी, जिसमें एक सफ़ेद चीथड़ा लगा हुआ था।

''अहा, दूत आये हैं!'' सेर्योजा ने अत्यन्त उत्तेजित होकर कहा।

''वे आत्मसमर्पण कर रहे हैं,'' किसी ने पीछे से आवाज़ लगायी।

''सावधान, ख़ामोश!'' कमाण्डर-इन-चीफ़ ने ज़ोर से चीख़कर आदेश दिया।

भीड़ पर शंकित निस्तब्धता छा गयी, आगे क्या होगा, यह देखने के सब दम साधे खड़े रहे। शत्रु को इतना सुसंगठित देखकर कमाण्डर-इन-चीफ़ ही नहीं, अन्य के भी पसीने छूट गये : एक के पास सफ़ेद झण्डा था, दूसरे के पास किशोर पायनियरों का बिगुल और तीसरे के पास एक सुनहरा पंख था, जिसे उसने एक पुरानी टोपी में खोंस रखा था-वह उनके सरदारों में से एक था। लड़के इस पहले आघात से सँभल भी न पाये थे कि शत्रु ने संगठन का एक और शानदार प्रदर्शन किया। तीनों दूत एक पंक्ति में खड़े हो गये, वादक ने अपना बिगुल उठाया और कुछ बजाया। सेर्योजा भी ईर्ष्या से हतप्रभ हो गया, लेकिन अन्य की तुलना में अधिक शीघ्रता से सँभलता हुआ वह क़दम बढ़ाकर सामने आया, सैल्यूट किया और बोला :

"मैं कमाण्डर-इन-चीफ़ सेर्गेई स्काल्कोव्स्की हूँ। हमें मालूम नहीं था कि तुम आओगे, इसलिये हमने गार्ड-आफ-आनर की तैयारी नहीं की। हम क्षमा चाहते हैं।"

इससे लड़कों को बड़ी राहत मिली, वे फ़ौरन समझ गये कि उनका कमाण्डर-इन-चीफ़ जानता है कि क्या कहना चाहिये।

मुख्य दूत भी आगे आया और उसने एक भाषण दिया :

"हम तुमको बता नहीं सके, क्योंकि उसके लिये समय नहीं था। लाल कमाण्ड नीले कमाण्ड के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा करता है, लेकिन हमें नियमों पर राज़ी होना चाहिये और तुम्हारे लिये ज़रूरी है कि तुम नक़्शे को वापस लौटा दो, क्योंकि तुमने उसे नियमों के ख़िलाफ़, लड़ाई शुरू होने से पहले ले लिया था। हमें इस बारे में नियम बना लेने चाहिये कि कब लड़ाई हो और लाल तथा नीले* दलों के झण्डे क्या हों।"

"हम नीले नहीं हैं!" भीड़ से किसी ने चिल्लाकर कहा। "हमें नीला-नीला क्यों कहा जा रहा है!"

"च-च-च!" कमाण्डर-इन-चीफ़ ने चुप रहने का आदेश दिया और ख़ुद आगे कहा : "हमें कुछ नियम बनाने में कोई एतराज नहीं है, लेकिन तुम्हें अपने को लाल दल नहीं कहना चाहिये। यह ठीक नहीं है : तुम जो चाहो, ठीक वही नहीं बन सकते..."

"यह बात पहले हमने सोची थी," दूत ने कहा।

"नहीं, हम पहले थे," सैनिक-पंक्तियों से कुछ और आवाज़ें आयीं।

यह समझकर कि लड़ाई नियम बनाने से पहले हो सकती है, सेर्योजा ने अपने सैनिकों को शीघ्रता से चुप कराया।

"ठहरो! तुम चिल्ला क्यों रहे हो? आओ हम बैठें और सब बातों पर विचार कर लें।"

दूतों ने सहमति प्रकट की, सभी लोग बाड़ के निकट रखे लकड़ी के कुन्दों पर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।

वास्या क़ैदी की तरफ़ मुड़ा।

"आओ हम उधर चले जाएँ।"

क़ैदी राज़ी हो गया और दौड़ता बाड़ के पास पहुँच गया। वास्या मुश्किल से ही उसके साथ चल पाया। अन्य स्काउटों के साथ वे रेत पर अपने स्थान पर बैठ गये।

आधे घण्टे की बहस के बाद दोनों पक्षों में पूरी-पूरी सहमति हो गयी। यह तय किया गया कि लड़ाई सुबह दस बजे से लेकर शाम को चार बजे, फ़ैक्टरी का भोंपू

---

* **नीले-लाल**-महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति (1917) की विजय के बाद रूस में विदेशी सैनिक हस्तक्षेप (1918-20) के दौरान समाजवादी क्रान्ति के रक्षकों की सेना लाल सेना और जारशाही के समर्थकों की सेना श्वेत सेना कहलाती थी। यह तथ्य बच्चों के खेलों में प्रतिबिम्बित होता था, लेकिन घृणित नाम "श्वेत" के बजाय अन्य रंगों-नीले, हरे आदि का उपयोग करते थे।**-सं.**

बजने तक जारी रहेगी। शेष सारे समय ''कुचुगुरी'' क्षेत्र तटस्थ माना जायेगा और वहाँ कोई भी व्यक्ति जो चाहे सो कर सकता है तथा किसी को बन्दी नहीं बनाया जा सकेगा। वह पक्ष विजयी माना जायेगा, जिसका झण्डा माखी-पर्वत पर लगातार तीन दिन फहराता रहेगा। दोनों पक्षों के झण्डे लाल होंगे, लेकिन सेर्योजा की सेना के झण्डे का रंग शत्रु के मुक़ाबले हल्का लाल होगा। दोनों सेना-दल लाल कहे जायेंगे, लेकिन एक को उत्तरी सेना कहा जायेगा और दूसरी को दक्षिणी। बन्दियों को केवल तभी बन्दी बनाये रखा जायेगा और दूसरी को दक्षिणी जबकि उन्हें खिलाया जाये, यदि खिलाया नहीं जायेगा, तो उन्हें चार बजे के बाद, जहाँ वे चाहें, वहाँ जाने के लिये रिहा करना होगा, क्योंकि फौजियों की संख्या पर्याप्त नहीं है, अतः यदि बन्दियों को पकड़कर रख लिया जायेगा, तो लड़ने के लिये कोई भी बाक़ी नहीं बचेगा। उत्तरी दल द्वारा हस्तगत नक़्शा दक्षिणी दल को वापस मिल जाना चाहिये।

दूतगण वैसे ही समारोह के साथ लौटे जैसे कि वे आये थे। अपने सफ़ेद झण्डे को फहराते तथा बिगुल बजाते वे मार्च करते हुए सड़क पर चल पड़े। तभी उत्तरी दल को यह अहसास हुआ कि युद्ध चालू हो गया है और शत्रु अत्यन्त संगठित और शक्तिशाली है। तुरन्त कुछ न कुछ किया ही जाना चाहिये। सेर्योजा ने कई लड़कों को फ़्लैटों में भेजा, ताकि लामबन्दी की जा सके, यानी घरों में ही रहनेवाले, लड़कियों जैसे दब्बू लड़कों को समझाकर उत्तरी फ़ौज में भर्ती करने के लिये राजी किया जा सके।

''हमारे पास अपने इलाक़े में तैंतीस अच्छे लड़के और दर्जनों स्काउट हैं, और वे सारे के सारे अपनी-अपनी माँओं के घाघरों से चिपके हुए हैं!''

इन शब्दों को सुनकर वास्या ने उदास होकर जीवन के असमाधेय अन्तर्विरोधों की बात सोची। आख़िर उनकी माँ संसार में सर्वोत्तम है, लेकिन सेर्योजा कहता है.. बेशक सभी माँओं के घाघरे भी एक से नहीं होते...

पाँच मिनट बाद एक माँ लड़कों के पास आयी और सेर्योजा ने उसके घाघरे को गौर से देखा। नहीं, वह बुरा नहीं था, हल्का औ चमकदार और इस माँ से इत्र की सुगन्ध आती है तथा दयालु जान पड़ती है। उसके साथ उसका लड़का, सातवर्षीय ओलेग कुरिलोव्स्की था। कुरिलोव्स्की परिवार के बारे में वास्या ने भी कुछ किस्से सुन रखे थे।

सेम्योन पाव्लोविच कुरिलोव्स्की फ़ैक्टरी के नियोजन विभाग का प्रधान था। उत्तरी फ़ौज के सारे इलाक़े में अन्य कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसका, महत्व की दृष्टि से, सेम्योन पाव्लोविच कुरिलोव्स्की से मुक़ाबला किया जा सके-प्रसंगतः, यह एक ऐसा तथ्य था, जो स्वयं कुरिलोव्स्की के लिये भी विशेष चिन्ता का मामला था। लेकिन वास्या के पिता ने उसके बारे में इस तरह की बात कही थी : ''नियोजन विभाग का प्रधान! बेशक वह बड़ा आदमी है, लेकिन दुनिया में उससे भी बड़े मौजूद हैं!''

लगता था कि कुरिलोव्स्की को इसमें सन्देह था। अन्य लोगों को दृष्टतः यह

समझने में कठिनाई होती थी कि वह सचमुच कितना महत्वपूर्ण है। लेकिन ऐसा फ़ैक्टरी में था। कुरिलोव्स्की परिवार में तो हर कोई समझता था और कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि सेम्योन पाव्लोविच की महानता से अछूती ज़िन्दगी भी हो सकती है। यह कहना कठिन है कि इस महानता का स्रोत सेम्योन पाव्लोविच के नियोजन कार्य में था या बच्चों के लालन-पालन से सम्बन्धित उसकी धारणाओं में। लेकिन कुछ कामरेडों ने, जिन्हें सेम्योन पाव्लोविच से वार्तालाप करने का सम्मान मिला था, उसे इस प्रकार की राय ज़ाहिर करते सुना था : ''पिता के पास प्राधिकार होना चाहिये। पिता को सबसे ऊपर होना चाहिये! पिता ही सब कुछ है! प्राधिकार के बिना क्या लालन-पालन हो सकता है?''

सेम्योन पाव्लोविच सचमुच ही ''सबसे ऊपर'' था। घर में उसका अपना ही अलग अध्ययन कक्ष था, जिसमें उसकी पत्नी के सिवा और किसी को आने की अनुमति नहीं थी। सेम्योन पाव्लोविच का सारा फ़ालतू समय अध्ययन-कक्ष में बीतता था। उसके परिवार में कोई भी नहीं जानता था कि वह वहाँ क्या करता है, वे जान भी नहीं सकते थे, उन्हें तो अपने अज्ञान का अहसास तक नहीं था, क्योंकि वहाँ अध्ययन-कक्ष से कहीं अधिक सामान्य अन्य वस्तुएँ भी थीं, जिनके बारे में भी आदरयुक्त भय से बातें की जाती थीं : डैडी की खाट, डैडी के कपड़ों की आलमारी, डैडी की पतलून।

काम से लौटने के बाद डैडी कमरों से होकर महज़ चलते नहीं थे। वे सीधे शान से क़दम रखते हुए, अपने बड़े-से भूरे ब्रीफकेस को उसके पवित्र-स्थल में रखने के लिये सीधे अध्ययन-कक्ष में चले जाते थे। डैडी अख़बार पढ़ने में मग्न, गम्भीरता के साथ बैठे अकेले भोजन करते थे और इस बीच बच्चों को फ़्लैट के किसी दूरस्थ कोने में भगा दिया जाता था, जहाँ वे अपना वक़्त गुजारते थे।

सेम्योन पाव्लोविच अनुशासन के कामों को अंजाम देने के लिये अपने उच्च स्थान से कभी-कभार ही उतरते थे, लेकिन परिवार में जो कुछ भी किया जाता था, उसके नाम पर या उसकी भावी नाख़ुशी के नाम पर किया जाता था। ध्यान दीजियेगा नाराज़गी नहीं, नाख़ुशी, क्योंकि डैडी की नाख़ुशी भी एक भयानक वस्तु थी और डैडी की नाराज़गी कल्पना की सीमाओं से ख़ासी दूर तक पहुँचती थी। ममी अक्सर कहती :

''डैडी नाख़ुश हो जायेंगे।''

''डैडी को मालूम हो जायेगा।''

''मुझे डैडी से कहना पड़ेगा।''

डैडी अपने अधीनस्थों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में मुश्किल से ही कभी आत थे। वे कभी एक मेज़ पर बैठकर खाना खा लेते, कभी-कभी वे एक-आध ऐसा शानदार मज़ाक करते कि उस पर ख़ुश होकर मुस्कराना सबका दायित्व होता था। कभी-कभी वे अपनी बिटिया की ठोड़ी पर चुटकी काटते और कहते : ''क्या हाल है?!

लेकिन अधिकांशतः डैडी अपने सारे अनुभव तथा आदेश ममी की रिपोर्ट सुनने

के बाद उसी के ज़रिए प्रेषित करते थे। ममी समाचार प्रेषित करते हुए कहतीः

''डैडी राज़ी हैं।''

''डैडी राज़ी नहीं हैं।''

''डैडी को पता लग गया है और वे बहुत नाराज़ हैं।''

अब सेम्योन पाव्लोविच की पत्नी ओलेग के साथ यह पता लगाने आयी थी कि यह उत्तरी दलवाले कौन हैं और कि ओलेग उनके कामों में भाग ले सकता है या नहीं और साथ ही वह उत्तरी दल की विचारधारा तथा व्यवहार के बारे में एक सामान्य धारणा बनाने के लिये भी आयी थी ताकि डैडी को रिपोर्ट पेश की जा सके।

ओलेग कुरिलोव्स्की दोहरी ठोड़ीवाला मोटा लड़का था। वह अपनी माँ के बग़ल में खड़ा था और सेर्योजा के स्पष्टीकरण को उत्सुकता से सुन रहा था।

''दक्षिणवालों के साथ हमारा युद्ध चल रहा है, वे उस घर में रहते हैं... माखी-पर्वत पर अपना झण्डा फहराना है।''

सेर्योजा ने माखी-पर्वत की तरफ़ सिर हिलाया, उसका हल्का पीला शिखर दूर से चमकता नज़र आता था।

''युद्ध चल रहा है' से तुम्हारा क्या मतलब है?'' कुरिलोव्स्काया ने उसको घेरे हुए लड़कों की भीड़ पर नज़र डालते हुए पूछा। ''क्या तुम्हारे माता-पिता इसके बारे में जानते हैं।''

सेर्योजा मुस्कराया।

''क्यों, इसमें जानने को क्या है? हमें इसे गोपनीय नहीं रखते। यह तो महज़ एक खेल है! ऐसे खेलों की कोई कमी नहीं, क्या आप हर खेल के बारे में पूछते-फिरते हैं?''

''यह हर खेल नहीं है! महज़ खेल नहीं, यह तो युद्ध है!''

''हाँ, यह युद्ध है। लेकिन किसी भी अन्य की तरह एक खेल है!''

''और अगर तुम किसी को घायल कर दो तो?''

''हम किसी को कैसे घायल करेंगे? आप क्या यह समझती हैं कि हम छुरों और पिस्तौलों से लैस हैं?''

''उधर वे जो तलवारे रखी हैं!''

''वे तो केवल लकड़ी की तलवारे हैं?''

''जो भी हो मान लो तुम किसी को चोट पहुँचा दो तो?''

सेर्योजा ने जवाब देना बन्द कर दिया। उसे यह बातचीत नापसन्द थी, जिससे उत्तर और दक्षिण के बीच लड़ाई की भयंकरता के ख़त्म होने का खतरा पैदा हो गया था। वह ओलेग कुरिलोव्स्की को क्रोध से देखने भी लगा था और उसे उस पर सचमुच की मुसीबत ढाने में कोई बुरा न लगता। लेकिन कुरिलोव्स्काया मामले की जड़ तक पहुँचने के लिये कृत-संकल्प थी।

''ख़ैर जो भी हो, तुम लड़ोगे कैसे?''

सेर्योजा क्रोधित हो गया। वह युद्ध के उद्देश्य को संकट में डालने की और

अधिक चेष्टा बर्दाश्त नहीं कर सका।

''अगर आपको ओलेग की फ़िक्र है, तो उसे इसमें पड़ने की कोई ज़रूरत नहीं। क्योंकि हम उसके लिये जवाबदेह नहीं होंगे : हो सकता है कि लड़ाई में कोई उसे झंझोड़ ही डाले। वह भागा-भागा शिकायत करने आपके पास आयेगा! आख़िर युद्ध तो युद्ध ही है। इन नन्हे बच्चों को देखिये, जो हमारे साथ हैं, उन्हें कोई डर नहीं। तुम तो नहीं डरते, क्यों डरते हो ?'' उसने वास्या के कन्धे पर हाथ रखते हुए उससे पूछा।

''कोई डर नहीं, '' वास्या ने प्रसन्नतापूर्वक कहा।

''यह लो, देख लो! कुरिलोव्स्काया ने घबराकर कहा और एक बार फिर लड़कों पर दृष्टिपात किया, मानो उसे यह पता लगाने की उम्मीद हो कि ओलेग कुरिलोव्स्की को झंझोड़ने का दोषी कौन हो सकता है और यह बात कितनी ख़तरनाक होगी।

''डर मत ओलेग!'' पीछे से एक सौहार्दपूर्ण आवाज़ आयी। ''हमारे पास एक रेड-क्रास है। अगर किसी बम से तुम्हारा हाथ या सिर उड़ जायेगा, तो हम उसी जगह पर तुम्हारी मरहम-पट्टी कर देंगे। इसके लिये लड़कियाँ हैं।''

सारे लड़के ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। ओलेग भी सजग हो गया और हिम्मत करके मुस्कराया। उखड़े हुए हाथ या गर्दन की जगह लगी पट्टी भी आकर्षक-सी लगने लगी थी।

''हे भगवान!'' उसकी अम्मा फुसाफसाकर बोली और घर की तरफ़ को भाग निकली। ओलेग भी उसी के पीछे-पीछे गया। लड़कों ने एक दूसरे की तरफ़ आँख मारते और मुस्कराते हुए उन्हें जाते हुए देखा।

''अहा!'' सेर्योजा ने याद करते हुए कहा। ''तुम्हारा क़ैदी कहाँ है?

'मैं यहाँ हूँ।''

''चलो आओ!''

मित्या ने अपना सिर झुका लिया।

''लेकिन वे उसे किसी भी हालत में वापस नहीं देंगे।''

''हम देखेंगे!''

''हुँह! तुम मेरे पिता को नहीं जानते!''

''कौन जाने क्या हो!'' सेर्योजा ने अपने सुन्दर हलके रंग के बालोंवाले सिर को झटक कर कहा।

कन्दीबिन परिवार पहली मंजिल में रहता था। उनके फ़्लैट की स्थिति नज़ारोव परिवार के फ़्लैट जैसी ही थी। लेकिन वास्या को उनके और अपने घर के बीच कोई भी समानता नहीं मिली। ज़ाहिर था कि फ़र्श कई दिन से झाड़ा नहीं गया था। दीवारों पर धब्बे पड़े थे। यह बताना कठिन था कि निरावरण मेज़ पर किस चीज़ की अधिकता थी-जूठन की या मक्खियों की। मेज़ और कुर्सियाँ जहाँ-तहाँ, बेतरतीब पड़ी थीं। अगले कमरे में बिस्तर अस्त-व्यस्त थे और तकिये चिकनाई से भरे पीले रंग के थे। दीवार के साथ कीमेज़ गन्दी तश्तरियों और गिलासों से भरी थी। यहाँ तक कि दराज़ोंवाली

आलमारी से दराज़ों को बाहर खींचकर अकारण खुला छोड़ दिया गया था। सेर्योजा, जो सबसे पहले अन्दर घुसा, का पैर फ़र्श पर गिरे पानी में पड़ गया और वह फिसलते-फिसलते बचा।

मित्या के पिता मेज़ के पास बैठे थे और एक बूट को उल्टा करके घुटनों पर रखे हुए थे। उसके पास ही, मेज़ के कोने पर काले टिन का डिब्बा रखा था। लेकिन अब उसे कई ख़ानों में बाँट दिया गया था और उन ख़ानों में मोची के काम की कीलें भरी थी।

''मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'' कन्दीबिन ने अपनी नाक से बोलते हुए कहा और अपने मुँह से एक नयी कील निकालकर उसे बूट के तले में बनाये गये एक छेद में डाला। वास्या ने कन्दीबिन के होंठों के बीच ऐसी और भी कई कीलें देखीं। इससे वह समझ गया कि वह ऐसे अजीब ढंग से क्यों बोल रहा है। सेर्योजा ने वास्या को कुहनी से हल्के-से धकियाकर इशारा किया और फुसाफसाकर पूछा, ''वही है क्या?''

वास्या ने नज़र उठाकर देखा और उसी षड्यंत्रकारी ढंग से सिर हिलाकर हामी भरी। ''किसी दूसरे के घर में घुसने और फुसफसाने से तुम्हारा क्या मतलब है?'' कन्दीबिन मुँह में ठुँसी कीलों की वजह से कठिनाई के साथ बुड़बुड़ाया।

''वे लोग टिन के डिब्बे के लिये आये हैं,'' मित्या ने अपने साथियों की आड़ लेते हुए कहा।

कन्दीबिन ने हथौड़े से बूट पर चोट की, अपने मुँह से अन्तिम कील निकाली और तब अपनी सामान्य आवाज़ में बोल सका।

''ओहो, डिब्बे के लिये, उसके लिये मेरे पास आने की कोई ज़रूरत नहीं है, उसके लिये उन्हें तू अपने पास आने दे।''

अपनी कुर्सी पर सीधे होकर कन्दीबिन ने क्रुद्ध-दृष्टि से लड़कों की तरफ़ देखा और हथौड़े को इस तरह से थाम लिया मानो चोट करने के लिये तैयार हो। कन्दीबिन के चेहरे से अभी भी जवानी झलकती थी, लेकिन उसकी भौंहें एक बूढ़े आदमी की तरह बिल्कुल सफ़ेद थीं।

''मित्या ने स्वीकार किया है कि उसने टिन का डिब्बा ले लिया था... यानी कि चुरा लिया था, कन्दीबिन ने अपने बेटे की तरफ़ निगाह घुमायी।

''अच्छा! चुराया था?''

सेर्योजा के पीछे से निकलकर मित्या ने तेज आक्रामक आवाज़ में किंचित रिरियाते हुए बोलना शुरू किया।

''मैंने उसे नहीं चुराया। 'चुराया', 'चुराया'! यह तो वहाँ सबके सामने पड़ा था! मैंने उठा भर लिया। वे लोग झूठ बोल रहे हैं, झूठ बोल रहे हैं, बस!''

वास्या ने हैरानी से उसे देखा। उसने अपने सम्पूर्ण जीवन में ऐसी निष्कपट-सी, अपमानित आवाज़ में ऐसा सफ़ेद झूठ कभी नहीं सुना था।

कन्दीबिन ने अपनी निगाह सेर्योजा की तरफ़ उठायी।

''साथियो, यह ठीक नहीं है। तुम चिल्लाते हुए अन्दर घुस आते हो कि 'उसने चुरा लिया', 'उसने चुरा लिया'। तुम जानते हो, किसी दिन तुम्हें ऐसे शब्दों के लिये जवाबदेही करनी पड़ सकती है!''

कन्दीबिन ने उत्तेजनावश डिब्बे के ख़ानों को टटोलना शुरू कर दिया, पहले एक ख़ाने को फिर दूसरे को। मगर सेर्योजा ने हिम्मत नहीं हारी।

''तो ठीक है, मान लिया कि उसने नहीं चुराया। लेकिन यह डिब्बा वास्या का है... आपका नहीं है। इसलिये आप इसे वापस देंगे?''

''किसे, उसे? नहीं, मैं नहीं दूँगा। अगर तुम शरीफ़ों की तरह आते, तो मैं दे सकता था। लेकिन अब नहीं दूँगा। 'चुरा लिया, चुरा लिया!' तुम इसको चोर बनाना चाहते थे! अब यहाँ से निकलो!''

सेर्योजा ने एक चाल और चली।

''ठीक है, मैंने यह बात कही। लेकिन वास्या ने कुछ नहीं कहा। इसलिये, आपको चाहिये कि डिब्बे को उसे वापस कर दें...''

कन्दीबिन ने बूट हाथ में थामे अपने बदन को और भी अधिक सीधा कर लिया।

''अब सुनो! तुम मुझे सिखाने-पढ़ाने के लिये अभी ज़रा छोटे हो! तुम्हें यहाँ आने का क्या हक़ है? मेरे घर में धड़ल्ले से घुस आये और ज़ोर-जबर्दस्ती करने लगे, क्यों? क्या हुआ, अगर तुम्हारे पिता छापामार थे तो! यह तो अभी पता लगाना है। जहाँ तक तुम लोगों का सम्बन्ध है तुम सब समान हो। एक ही गिरोह! निकलो, दूर हटो!''

लड़के दरवाज़े की तरफ़ सरके।

''मित्या, तू कहाँ जा रहा है?'' उसके पिता ने चिल्लाकर कहा। ''नहीं, तू यहीं रह।''

सेर्योजा एक बार फिर दरवाज़े के पास लगभग फिसल ही पड़ा था। रसोईघर से एक दुबली-पतली बुढ़िया औरत ने उदासीनता से उनकी तरफ़ देखा। वे अहाते में जा पहुँचे।

''गन्दा कुत्ता है वह,'' सेर्योजा ने कुढ़कर कहा। लेकिन वह इससे बच नहीं सकता। हम वह डिब्बा बरामद करके रहेंगे।''

वास्या को उत्तर देने का समय नहीं मिला, क्योंकि उसी समय इतिहास का चक्र विकट वेग से घूमने लगा। कई लड़के दौड़ते हुए सेर्योजा के पास आये, वे सब हाथ हिलाते एक साथ चिल्ला रहे थे। अन्त में एक अपने अन्य साथियों से अधिक ज़ोर से चिल्लाने में कामयाब हो गया।

''सेर्योजा! देख! उनका अपना झण्डा...''

सेर्योजा ने देखा, तो उसका चेहरा फक पड़ गया। माखी-पर्वत की चोटी पर गहरे लाल रंग का झण्डा फहरा रहा था, जो इस दूरी से काला-सा नज़र आता था। सेर्योजा

की बोलती बन्द हो गयी, वह वहीं, पोर्च की सीढ़ियों पर बैठ गया। वास्या के मन में भी कोई चीज़ कुलबुलायी-दुश्मन से लड़ने की युगों पुरानी बालकोचित इच्छा।

कमाण्डर-इन-चीफ़ के मुख़्यालय की ओर लड़कों का भाग-भागकर आना जारी था। वे सब वही एक खबरला रहे थे और हर कोई यह माँग कर रहा था कि धृष्ट शत्रु के ख़िलाफ़ तुरन्त प्रबल आक्रमण शुरू किया जाये। तार-सप्तक में बोली जाने वाली तीव्र और क्रुद्ध आवाज़ों, गन्दे हाथों और चंचल निगाहों से वे अपने नेता को माखी-पर्वत के उस शर्मनाक नज़ारे को दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे।

‘‘हम यहाँ बैठे क्यों हैं? उन्हें अपनी ठसक दिखने का मौका देकर हम यहाँ चुप क्यों बैठे हैं? आओ, चलो!’’

‘‘धावा, धावा बोलो!’’

तलवारे और छुरियाँ हवा को काटने लगी। लेकिन उत्तर की शानदार फ़ौज के कमाण्डर-इन-चीफ़ कोपता था कि क्या करना है। वह सीढ़ियों पर चढ़ा और अपने हाथ उठाकर यह जतलाने लगा कि वह बोलना चाहता है। भीड़ ख़ामोश हो गयी। ‘तुम किस बात पर चिल्ला रहे हो? हर कोई गला फाड़ चिल्ला रहा है, और अनुशासन नदारद! हम हमला कैसे कर सकते हैं, जबकि हमारे पस एक झण्डा तक नहीं! क्या हम खाली जायें, यही तुम चाहते हो? और कहीं कोई टोह नहीं लगायी गयी! इसी के लिये तुम चिल्ला रहे हो! जहाँ तक झण्डे का सवाल है, उसे मैं ख़ुद लाऊँगा। अम्मा ने मुझे झण्डा देने का वादा किया है। मैं माखी-पर्वत पर धावे का समय निश्चित करता हूँ-कल बारह बजे। लेकिन इसे गोपनीय रखना। टोह दल का मुखिया कहाँ है?

उत्तरी दल के सारे लोग मुखिये की खोज में दौड़े।

‘‘कोस्या!’’

‘‘कोस्या-आ-अ!’’

‘‘वारेनिक!’’

कुछ ने उसके फ़्लैट तक दौड़ने की सोची।

‘‘उसकी माँ कहती है, हम अन्दर नहीं जा सकते,’’ उन्होंने वापस लौटने पर रिपोर्ट पेश की, ‘‘वह खाना खा रहा है।’’

‘‘लेकिन सहायक मुखिया तो मौजूद है।’’

‘‘अरे हाँ,’’ सेर्योजा को याद आया, ‘‘नज़ारोव!’’

वास्या नज़ारोव अपना कर्तव्य पूरा करने को तत्पर अपने कमाण्डर-इन-चीफ के सामने खड़ा हो गया। पर उसके दिमाग़ में एक हल्का-सा सन्देह खटक रहा था कि स्काउट के रूप में उसकी हरकतों के बारे में उसके माँ-बाप क्या सोचेंगे।

‘‘स्काउटों को कल ग्यारह बजे कार्यवाही शुरू कर देनी पड़ेगी। यह पता लगाना होगा कि शत्रु कहाँ है और इसकी रिपोर्ट पेश करेंगे।’’

वास्या ने सिर हिलाया और अपने सैनिकों का सर्वेक्षण किया। वे सब उपस्थित

थे, केवल मित्या कन्दीबिन घरेलू कारणों से घर में ही रह गया था।

परन्तु उसी समय मित्या की आवाज़ भी सुनायी पड़ी। असाधारण शक्ति और अभिव्यंजना से परिपूरित वह आवाज़ कन्दीबिन के फ़्लैट से आ रही थी।

''डैडी, ओह डैडी, हाय! हाय, मैं अब ऐसा नहीं करूँगा! हाय, डैडी, यह आख़िरी बार है, अब ऐसा नहीं करूँगा!''

एक अन्य आवाज़ इससे अधिक निर्बन्ध स्वर में गरजी :

''चोरी करता है! तुझे एक टिन का डिब्बा चाहिये, चाहिये ना? शर्म की बात है... मरे तू, छुटका कमीना!''

उत्तरी दल में निस्तब्धता छा गयी, उनमें से कई का, जिनमें वास्या भी शामिल था, चेहरा विवर्ण हो गया। दस क़दम की दूरी पर उत्तरी फ़ौज के एक योद्धा को यंत्रणा दी जा रही है और वे ख़ामोशी से सुनने के लिये विवश हैं।

मित्या ने एक और हताश हूँक लगायी, फिर अचानक दरवाज़ा खुला और वह अपने पिता के गुस्से से चालित तोप के गोले की तरह दनदनाता हुआ उत्तरी सेना के बीच आ गिरा। उसने अपने कम्पित हाथों से शरीर के उन अंगों को दबा रखा था जहाँ से काल-प्रतिष्ठित परम्परानुसार एक लड़के में सारी अच्छाई का प्रवेश होता है। अपने को अपने ही जैसों के बीच पाकर मित्या ने यंत्रणा-स्थल की ओर एक दृष्टिपात किया। उसके पिता ने दरवाज़े से सिर निकाला, अपनी पेटी को हथियार की तरह हिलाया और घोषणा की : ''तुझे याद रहेगा, तुझे, कुत्ते की औलाद!

मित्या ने इस भविष्यवाणी को ख़ामोशी से सुना और जब उसके पिता अन्दर चले गये, तो बुरी से रोता हुआ सीढ़ियों पर, कमाण्डर-इन-चीफ़ के पैरों के पास ही बैठ गया। उत्तरी फ़ौज ने उसकी पीड़ा को निश्शब्द होकर सुना। जब मित्या का रोना बन्द हो गया, तो सेर्योजा ने कहा: 'इस बात को मन में न रखना। यह केवल व्यक्तिगत संकट है। ज़रा देखो, माखी-पर्वत पर क्या हो रहा है!''

मित्या उचककर खड़ा हो गया और सक्रिय, पर फ़िलहाल आँसुओं से भीगी आँखों से माखी-पर्वत की तरफ़ घूरने लगा।

''एक झण्डा? उनका है क्या?''

''और किसका! जब तुम्हारी पिटाई हो रही थी, तो उन्होंने माखी-पर्वत पर क़ब्जा कर लिया। लेकिन तुम्हारी पिटाई हुई क्यों?

''टिन के डिब्बे की वजह से।''

''क्या तुमने जुर्म क़ुबूल कर लिया था?''

''नहीं, लेकिन उन्होंने कहा, यह अपमान है।''

वास्या ने मित्या की पतलून छूकर कहा :

''मित्या, कल, ग्यारह बजे टोह पर जाना है, आ रहे हो?''

मित्या ने तत्परता से हामी भरी।

''ठीक है,'' उसने कहा। आवाज़ में अभी भी पीड़ा के चिह्न थे।

पिता ने वास्या से कहा : ''यह अच्छी बात है कि तुम टोह दल के मुखिया हो। लेकिन मित्या को पीटना बुरी बात थी। उधर उसके पिता ने भी उसको पीटा। बेचारा! ''

''डैडी, मैंने उसे पीटा नहीं। महज़ उसे नीचे गिराया और दबा दिया। मैंने उसे डिब्बा वापस देने को कहा, लेकिन वह कुछ बोलता ही नहीं था।''

''ख़ैर,हो सकता है ऐसा ही हुआ हो, लेकिन महज़ एक टिन के डिब्बे के खातिर यह ठीक नहीं था। तुम मित्या को यहाँ लाओ और उससे दोस्ती कर लो।''

''कैसे?'' वास्या ने अपने सामान्य ढंग से कहा।

''उससे बस यह कहना : 'मित्या आओ, हमारे यहाँ चलो।' आख़िर वह भी एक स्काउट है, है कि नहीं?''

''हाँ, है... लेकिन डिब्बे का क्या होगा?''

''कन्दीबिन उसे वापस नहीं देता? अपने बेटे की पिटाई करता है और डिब्बे को अपने लिये रख लेता है, है न? अजीब आदमी है! अच्छा टर्नर है, मोची है और एक प्रशिक्षक बन चुका है, अच्छा पैसा कमाता है, लेकिन उसे कोई समझ नहीं। क्या उसका घर गन्दा है?''

वास्या ने मुँह बनाया :

''इतना गन्दा, जितनी कि ख़ुद गन्दगी। फ़र्श पर और सभी जगहों पर। लेकिन उस डिब्बे का क्या होगा?''

''हम कोई और तरकीब सोच निकालेंगे।

''माँ उनकी बातें सुन रही थी, उसने कहा, ''अरे, ओ रे स्काउट, देखना कहीं अपनी आँखें न फुड़वा लाना।''

पिताजी ने अपनी बात जोड़ दी : ''बेहतर यह कहो कि कहीं उनका क़ैदी न बन जाना, इसका ध्यान रखना।''

अगले दिन वास्या जल्दी उठ गया और अपने पिता के काम पर जाने से पहले उठ गया। उसने पिता से पूछा, ''क्या बजा है?''

''अरे, जब माखी-पर्वत पर दूसरे का झण्डा लहरा रहा हो, तुम्हें बजने से क्या लेना,'' पिता ने उत्तर दिया। ''एक अच्छा स्काउट कब का पर्वत पर पहुँच गया होता। और तुम अभी भी बिस्तर पर पड़े हो।''

इतना कहकर उसके पिता काम पर चले गये, इसका मतलब है सात ज़रूर बज गये होंगे। उसके शब्दों से वास्या के दिमाग़ में एक नयी समस्या उठ खड़ी हुई। वास्तव में, वे अभी टोह लगाने क्यों न निकल पड़ें? वास्या ने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने-जूते अभी पहनने की कोई ज़रूरत नहीं और जाँघिया पहनना पल भर का काम है। इसके बाद वह झपाटे के साथ मुँह धोने दौड़ा। वास्या ने ऐसी बवण्डर की-सी रफ़्तार से काम किया कि उसकी माँ का ध्यान आकर्षित हो गया।

'अरे, ओ, युद्ध हो या न तो, तुम अपने हाथ-मुँह ठीक ढंग से धोओ। तुम्हारा ब्रुश खुश्क क्यों हैं? तुम किस सोच में हो?''

“ममी, यह काम मैं बाद में करूँगा।”

“यह क्या है? इस तरह की बात मुझसे फिर कभी न करना! तुम्हें ऐसी जल्दी कहाँ जाने की है? नाश्ता अभी तैयार नहीं है।”

“ममी, मैं सिर्फ़ एक नज़र देखूँगा।”

“वहाँ देखने को है क्या? खिड़की से बाहर देख लो।”

और जो कुछ भी देखने की ज़रूरत थी, वह सब खिड़की से सचमुच नज़र आता था। काला-सा नज़र आनेवाला झण्डा अभी भी माखी-पर्वत पर फहरा रहा था और अहाते में उत्तरी फ़ौज का एक भी सिपाही नहीं था।

वास्या समझ गया कि एक स्काउट की ज़िन्दगी भी प्रकृति के नियमों के अधीन है। वह आज्ञाकारी बालक की भाँति नाश्ता करने लगा। अभी तक उसने उन सब बातों पर विचार नहीं किया था, जो टोह लगाने के काम में होती हैं। वह केवल यह जानता था कि काम ख़तरनाक है और ज़िम्मेदारी का हे। उसकी कल्पना में कुछ सम्भव पेचीदगियों की एक धुँधली तस्वीर बनी। वास्या को गिरफ़्तार कर लिया गया है। शत्रु वास्या से उत्तरी फ़ौज की स्थिति के बारे में पूछ-ताछ करता है। लेकिन वास्या ख़ामोश हे या उत्तर देता है : “तुम बुरे से बुरा जो कर सकते हो, करो, मैं कुछ नहीं कहूँगा!” उसके पिता ने उसे कहानियाँ पढ़कर सुनायी थीं औरे सेर्योजा स्काल्कोव्स्की ने उन छापामारों के ऐसे ही वीरतापूर्ण किस्से सुनाये थे, जिन्हें बन्दी बना लिया गया था। लेकिन वास्या केवल स्वप्नदृष्टा नहीं था वह यथार्थवादी भी था। इसलिये नाश्ता करते-करते उसके विचारों में व्यंग्य का पुट आ गया और उसने अपनी माँ से पूछा :

“लेकिन मान लो, अगर वे यह पूछ ही लें कि हमारी फ़ौज कहाँ है, तो इससे क्या फर्क पड़ेगा? वे तो पहले से ही जानते हैं। क्योंकि कल शाम वे एक बिगुल, एक झण्डा और सभी कुछ साथ लिये, ख़ुद ही, हमारे अहाते में आये थे।”

“अगर उन्हें यह पहले से ही मालूम है, तोवे नहीं पूछेंगे, वे किसी और चीज़ के बारे में पूछेंगे।” उसकी माँ ने उत्तर दिया।

“वे क्या पूछेंगे?”

“वे पूछेंगे कि तुम्हारे पास कितने सैनिक हैं, कितने स्काउट हैं, कितनी बन्दूकें हैं।”

“वाह! हमारे पास तो एक भी बन्दूक नहीं है। सिर्फ़ कुछ तलवारें हैं। ममी, क्या वे तलवारों के बारे में भी पूछेंगे?

“मैं यही उम्मीद करती हूँ। लेकिन मैंने सोचा था कि तुम अपने को बन्दी नहीं बनने दोगे?’

“तब मुझे भागना पड़ेगा! वरना अगर पकड़े गये, तो वे सवाल पूछने लगेंगे। वे किस तरह यंत्रणायें देंगे?

“यह तो शत्रु पर निर्भर हैं! ये दक्षिणी दलवाले फासिस्ट तो नहीं हैं?

“ना, नहीं हैं। वे कल यहाँ आये थे, हम ही जैसे हैं, सब कुछ एक समान। उनका झण्डा हमारा ही जैसा लाल है, और उन्हें ‘लाल’ कहा जाता है, लेकिन वे

दक्षिणी लाल दल हैं।''

''अच्छा यदि वे फ़ासिस्ट नहीं हैं, तो उन्हें किसी भी हालत में तुम्हें कोई यंत्रणा नहीं देनी चाहिए।''

तो वास्या ने टोह लगाने का पहला काम घर ही में कर लिया।

जब वास्या अहाते में पहुँचा, तो फ़ौजी लोग पहले से ही सक्रिय थे। सेर्योजा स्काल्कोव्स्की के पोर्च में एक उजला-लाल झण्डा खड़ा था, उसका उत्साहपूर्ण गाम्भीर्य उसके गिर्द खड़े किशोर योद्धाओं और स्काउटों को अभिभूत कर रहा था। ल्योविक, कोस्तत्या, कछ अन्य ज्येष्ठ लड़के और स्वयं सेर्योजा आक्रमण की योजना पर विचार कर रहे थे। ओलेग कुरिलोव्स्की भी अहाते में आस-पास भटक रहा था और इस बातचीत को ईर्ष्या के साथ सुन रहा था।

''क्यों, क्या वे तुझे आने देंगे?'' सेर्योजा ने उससे पूछा।

ओलेग ने अपनी आँखें झुका लीं।

'नहीं, वे नहीं आने देंगे। पिताजी ने कहा है कि देख तो सकता हूँ, पर लड़ाई हरगिज़ नहीं कर सकता।''

''तो आओ, एक स्काउट बन जाओ।''

ओलेग ने अपने फ़्लैट की खिड़की की तरफ़ देखा और अपना सिर हिलाया। कोस्त्यावारेनिक अपने स्काउटों को जमा करने लगा। मित्या कन्दीबिन वास्या की बग़ल में लकड़ी के कुन्दों पर बैठा था और किंचित संजीदा दिखायी देता था। झगड़ा खत्म करने के बारे में अपने पिता की सलाह याद करते हुए वास्या ने मित्या के चेहरे को ध्यान से देखा। मित्या की चमकीली आँखों की इधर-उधर घूमते रहने की आदत खत्म नहीं हुई थी, लेकिन उसका चेहरा विवर्ण और गन्दा था, उसके अस्त-व्यस्त बाल किसी खेत में उगे खर-पतवारों की तरह छोटे-छोटे गुच्छों में चिपके हुए थे।

''मित्या,'' वास्या ने कहा, ''आओ हम यह झगड़ा खत्म करके दोस्ती कर लें।''

''हाँ, आओ कर लें, मित्या ने अपने चेहरे के भाव बदले बिना कहा।

''फिर हम साथ-साथ रहेंगे।''

''साथ-साथ?''

''हम साथ-साथ खेलेंगे और तुम मेरे साथ आओगे।''

''कहाँ को?''

''मेरे घर।''

मित्या ने मलिन भाव से दूर कहीं देखा और पहले जैसे ही भावशून्य स्वर में कहा :

''अच्छी बात है।''

''क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हें बहुत मारा? कल?''

''नहीं'', मित्या ने अपने चेहरे को सामान्य अवज्ञापूर्ण बनाते हुए कहा। ''वह अपनी पेटी को यों ही घुमाते रहते हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि उससे कैसे बचना

चाहिये, उनका वार हर बार चूक जाता है।''

मित्या किंचित प्रसन्न हो गया और अपने साथी की तरफ़ देखने भी लगा।

''तुम्हारी ममी भी तुम्हें मारती हैं?''

''वे क्यों मारेंगी? उनका इससे क्या वास्ता?''

कोस्त्या दौड़ता हुआ आया, स्काउटों को गिना, उनके बीच बैठ गया और फुसाफुसाकर बोलाः 'सुनो दोस्तो, माखी-पर्वत को देखते हो? सम्भवतः वे सब वहीं हैं, वे दक्षिण दलवाले। सेर्योजा हमारे दल को घुमाकर, सीधे उनके पीछे ले जायेगा और तंग घाटी से होकर जायेगा, ताकि वे उन्हें न देख सकें। तब वह उन पर पीछे से हमला करेगा। समझे?

स्काउटों ने इशारा किया कि वे इस रणनीति को समझ गये हैं।

''और हम उन पर सामने से हमला करने जा रहे हैं।''

''लेकिन वे हमें देख लेंगे,'' किसी ने एतराज़ किया।

''देखने दो, वे समझेंगे कि सारी फ़ौज हम ही हैं और वे पीछे को देखेंगे ही नहीं।''

मित्या को ऐसी उम्मीदों पर शंका थी।

''तुम सोचते हो कि वे इतने ही भावुक हैं? वे फ़ौरन भाँप जायेंगे।

''लेकिन दौड़ते हुए खुले में मत निकलना, हर समय झाड़ियों की आड़ में रहना। तब वे समझेंगे कि यही बड़े लड़कों की फ़ौज है। समझ गये?''

कोस्त्या ने अपने आदमियों को दो हिस्सों में बाँटा। बायें पार्श्व में पहले भाग की अगुवाई वह ख़ुद करने वाला था और वास्या को आदेश दिया गया था कि वह दाहिनी तरफ़ से आये। आदेश था कि यदि दक्षिण दल ने हमला किया, तो उनसे उलझने के बजाय छिप जाया जाये।

वास्या के कालम में वास्या सहित पाँच लड़के : मित्या कन्दीबिन, अन्द्र्यूशा गोरेलोव, पेत्या व्लासेंकों और वोलोद्या पेत्र्सोव्स्की। ये सब अपनी रायों के मामले में उल्लेखनीय रूपसे स्वतंत्र थे और अपने पक्ष के समर्थनार्थ तीक्ष्ण आवाजों का उपयोग करते थे। पंक्तिबद्ध होने के लिये दिये गये वास्या के पहले आदेश पर उन्होंने तुरन्त बग़ावत कर दी। ''इसकी कोई ज़रूरत नहीं है, हम स्काउट है। हमें झुक के जाना होगा। अपने पेट के बल चलना होगा, जानते हो! उसे कुछ पता नहीं कि वह कह क्या रहा है!''

लेकिन वास्या अटल था।

''रेंग कर जाने की कोई ज़रूरत नहीं। यह तब होता है, जब तुम टोह पर जाते हो। हम हमला करने जा रहे हैं।''

वास्या को सैन्य सम्बन्धी मामलों के अपने अल्प-ज्ञान का धुँधला सा अहसास था, लेकिन स्काउटों की तीक्ष्ण आवाज़ों से उसमें प्रतिरोध की भावना पैदा हो गयी। वह विद्रोहियों को अस्तीनों से पकड़कर युद्ध के लिये तत्पर पंक्ति में बलपूर्वक धकेलने लगा था। किसी ने चिल्लाना शुरू कर दिया : ''उसे हमें इधर-उधर धकेलने का कोई हक़ नहीं है!''

सहायता आयी तो एक अनपेक्षित जगह से। मित्या कन्दीबिन सबसे पहले पंक्ति में खड़ा हो गया।

''बहुत चिल्ला लिये,'' उसने डाँट कर कहा, ''वास्या हमारा मुखिया है, वह जो कहता है, वही होगा।''

जब सब पंक्तिबद्ध हो गये, तो वास्या अपने कालम को युद्ध स्थल की तरफ़ ले चला। अपने आदमियों के आगे-आगे गर्व से चलते हुए वह झण्डे के गिर्द एकत्र मुख्य फ़ौज के पास से होता हुआ गुज़रा। सेर्योजा स्काल्कोव्स्की ने प्रयाण करते हुए इस कालम को सराहना के साथ देखा।

''यह है तरीक़ा! शाबाश वास्या! हौसला ऐसे ही बुलन्द रखना!''

वास्या अपने कालम की तरफ़ मुड़ा और अपने को अभी से पूर्णाधिकारी कमाण्डर महसूस करते हुए बोला : 'देखा, मैंने क्या कहा था?''

लेकिन स्काउट अपने कमाण्डर-इन-चीफ़ की प्रशंसा पाकर ख़ुद भी प्रसन्न थे।

वास्या के कालम ने माखी-पर्वत के काफ़ी निकट कुछ झाड़ियों के पीछे अपना मोर्चा लगाया। वास्या के बायीं तरफ़, पड़ोसी की एक चोटी पर कोस्त्या वारेनिक और उसके स्काउट रेत में डटे थे और नीचे दाहिनी तरफ़ उजले-लाल झण्डे की झलक देखी जा सकती थी। जो पार्श्व की तरफ़ से मुड़कर शत्रु पर पीछे से हमला करने वाली थी।

माखी-पर्वत साफ़ नज़र आ रहा था, लेकिन उसकी मुख्य चोटी एक रेतीले टीले के पीछे अंशतः छुपी हुई थी। टीले पर एक अकेली काली आकृति खड़ी थी।

''वह उनका सन्तरी है,'' वोलोद्या पेर्त्सोव्स्की ने कहा।

''काश! हमारे पास दूरबीन होती,'' अंद्र्यूशा ने लालसा ज़ाहिर करते हुए कहा।

वास्या को अफ़सोस की एक टीस का अनुभव हुआ। उसने डैडी से दूरबीन माँगने की क्यों नहीं सोची। अपना प्राधिकार और सैनिक कुशलता दिखाने के ऐसे शानदार मौके को गँवाना कितने दुख की बात है! लेकिन चोटी के पीछे दक्षिणवालों की एक बड़ी सेना को आगे बढ़ते हुए देखने के लिये दूरबीन की कोई ज़रूरत नहीं थी। वास्या के अन्दर का गैर-फ़ौजी शत्रु के फ़ौजियों के ऐसे बड़े दल को देखकर बेचैनी से कुलबुलाया। कोस्त्या का कालम अपनी झाड़ियों के पीछे से उठा और उसने चिल्लाना तथा ज़ोर-ज़ोर से हाथ हिलाना शुरू कर दिया। इस पर वास्या ने भी अपने हाथों को हिलाया और उसके मुँह से युद्ध की चीत्कार जैसी कोई आवाज़ निकली। दक्षिणी सेना ने ख़ामोशी से उन्हें देखा। स्काउटों ने भी शोर मचाना बन्द कर दिया। यह ख़ामोशी कई मिनटों तक बरकरार रही। लेकिन सहसा शत्रु दल के तीन व्यक्ति अपनी मुख्य सेना को छोड़कर तेजी के साथ उस टीले की चोटी की ओर लपके। ''हुर्रा'' की आवाज़ लगाते हुए ये तीनों उस टीले पर खड़ी अकेली आकृति पर टूट पड़े, उसे पकड़ा और घसीटते हुए वापस अपनी मुख्य सेना के पास ले आये। उस आकृति ने दर्दनाक स्वर में चिल्लाना और रोना शुरू कर दिया। वास्या और उसके

स्काउटों ने भय से विस्फारित अपनी आँखों से शत्रु-शिविर में होने वाले इस विचित्र नाटक को देखा-कोई भी नहीं समझ पाया कि हो क्या रहा है। अंद्र्यूशा ने डरते-डरते एक अनुमान लगाया : ''उन्होंने अपने एक ग़द्दार को पकड़ा है। लेकिन मित्या कन्दीबिन, जिसकी आँखें अन्य से अधिक तेज़ थीं, प्रसन्नतापूर्वक कहा : ''हो-हो-हो, उन्होंने ओलेग को धर पकड़ा है और उसे घसीटकर ले गये, ओलेग कुरिलोव्स्की को!!!''

''क्या वह हमारा आदमी है, क्या वह हमारा आदमी है?'' कई आवाज़ों ने एक साथ पूछा।

''नहीं वह हमारा आदमी क़तई नहीं है। वह किसी का नहीं है। उसके पिता ने उसे इजाज़त ही नहीं दी। ''

''तो उन्होंने उसे क्यों पकड़ा है?

''उन्हें कैसे पता कि वह कौन है?''

ओलेग को घसीटकर दक्षिणी फ़ौज के पास लाया गया। वह ऐसी जद्दोजहद कर रहा था और ऐसे ज़ोर से चीख़ रहा था कि उसे सुनकर मुर्दे भी उठ खड़े होते। लेकिन स्काउटगण हँसी की आवाजें भी सुन सकते थे, स्पष्टतः वे दक्षिणवालों की हँसी थी, ओलेग चारों तरफ़ से घिरा था।

''हा-हा!'' मित्या ने कहा, ''वह तमाशा देखने आया और कैदी बना लिया गया।''

इस समय तक कोस्त्या का कालम झाड़ियों की आड़ से बाहर आ गया था और माखी-पर्वत की दिशा में ढलान से नीचे उतर रहा था। वास्या व्यग्र हो गया।

''आओ, चले आओ!''

वास्या के आदमी भी अपनी अनुकूल स्थिति से निकलकर नीचे उतरने लगे और दाहिनी ओर कुछ झाड़ियों की तरफ़ बढ़ने लगे। माखी-पर्वत तक की सारी ढलवाँ चढ़ाई नज़रों के सामने आ गयी, उनके ऊपर शत्रु का झण्डा अपनी पूरी शान से खड़ा था। किसी अजीब कारण से शत्रु स्काउटों का सामना करने के लिये आगे नहीं बढ़ा। यही नहीं, वे अपने दल-ब-दल सहित पीछे, अपने झण्डे की तरफ़ को हटने लगे। माखी-पर्वत की तलहटी आ गयी थी, अब उसके लम्बे ढलवें ढलान पर चढ़ना और शत्रु को लड़ाई में उलझाना भर रह गया था। लेकिन दक्षिणी सेना ने ''हुर्रा'' का नारा लगाया और दौड़ती हुई दूसरी दिशा को चल पड़ी। फिर वह बिल्कुल ही ग़ायब हो गयी। अब वह न तो दिखायी देती थी न उसकी आवाज़ सुनायी देती थी। झण्डे के पास सिर्फ़ एक व्यक्ति बचा रह गया था-शायद एक सन्तरी था, नीचे रेत में, स्काउटों के अधिक निकट ओलेग बैठा था और शायद मारे डर के रो रहा था।

कोस्त्या का एक स्काउट दौड़ता हुआ आया।

''मैं सन्देशवाहक हूँ, मैं सन्देशवाहक हूँ!'' वह चिल्लाया। ''कोस्त्या कहता है कि हम बढ़ें और उनके झण्डे पर क़ब्ज़ा कर लें।''

''वाह, वाह क्या बात है!'' मित्या ने चिल्लाकर कहा, और सबसे पहले माखी-पर्वत की तरफ़ बढ़ चला।

वास्या ने गहरी साँस ली और उस ढलवाँ चढ़ाई पर चढ़ना शुरू कर दिया।

ढलान बहुत दुर्गम था, दक्षिणवालों के क़दमों से ऐसा दबा-कुचला था कि उस पर चलना बहुत कठिन हो रहा था। वास्या की नंगी टाँगें रेत में घुटनों तक धँस गयीं, और जब वह मित्या के पीछे-पीछे चला, तो हवा रेत के पीड़ाप्रद नुकीले कणों को उड़ाकर उनकी आँखों में पहुँचाने लगी। कुल मिलाकर वह एक बड़ा ही कष्टसाध्य धावा था। वास्या पसीने-पसीने हो गया, लेकिन जब उसने आँख उठायी और आगे देखा, तो शत्रु का झण्डा अभी भी लगभग उतना ही दूर था। वास्या ने देखा कि झण्डे की निगरानी को तैनात सन्तरी उत्तेजित हो रहा है, अजीब ढंग से ऊपर-नीचे उछल रहा है और पीछे की ओर घबराहट भरी चीख़ें मार रहा है।

''तेज़, और तेज़!'' कोस्त्या वारेनिक ने बग़ल से झपटकर कहा।

वास्या ने और भी अधिक शक्ति से अपने पैरों को आगे बढ़ाया, एक-दो मरतबा फिसला, पर फिर भी मित्या के पास पहुँचने में कामयाब हो गया। मित्या, जो वास्या से कमज़ोर था, हर क़दम पर गिर जाता था और ऐसा लगता था कि दौड़ने की बजाय रेंगकर चल रहा है। अन्य स्काउट हाँफते हुए पीछे-पीछे आ रहे थे और किसी एक के क़दम रह-रहकर वास्या की एड़ियों से टकराते जा रहे थे।

अपनी आँखों को एक बार और ऊपर उठाने पर वास्या ने देखा कि उसका लक्ष्य बिल्कुल पास आ गया है और वह अन्य सबसे आगे है। सन्तरी, जिसका चेहरा अजीब अपरिचित और स्पष्टतः शत्रुतापूर्ण था, अब कुछ ही दूर रह गया था। वह लगभग वास्या की ही उम्र का एक छोटा लड़का था, लेकिन उतना ह्यष्ट-पुष्ट नहीं था। निकट आते हुए शत्रु को भयपूर्वक घूरते हुए उसने छोटे-छोटे हाथों से सहसा झण्डे के डण्डे को पकड़ लिया और उसे जमीन से उखाड़ने की कोशिश करने लगा। लेकिन दक्षिणवालों का झण्डा बड़ा था। उसकी गहरी लाल सलवटें वास्या के सिर के ऊपर फड़फड़ा रही थीं। वास्या ने ढलवीं चढ़ाई के बाद चोटी के अपेक्षाकृत सपाट उतार से होकर दौड़ने में आसानी देखी, तो उसने अपनी रफ़्तार बढ़ा दी। दक्षिण के उस सन्तरी ने अन्ततः झण्डे को ज़मीन से उखाड़ लिया और दूसरी तरफ़, उस पार के उतार से बच निकलने के लिये दौड़ लगा दी। वास्याने चिल्लाकर कुछ कहा और उसका पीछा शुरू कर दिया, उसने उस दर्द को भी शायद ही महसूस किया, जो उस झण्डे के उसके सिर से टकराने के कारण हुआ। दक्षिण के उस सिपाही में झण्डे को सीधा उठाने की शक्ति नहीं थीं। उसने यह भी नहीं देखा कि ओलेग कुरिलोव्स्की उसके क़रीब से होकर भाग निकला है। वास्या चोटी को झपाटे से पार कर गया। उसका अपना ही वेग उसे चोटी के दूसरे तरफ़ से ढलान में नीचे की ओर ढकेलता ले गया। लेकिन उसने होश नहीं गँवाया, और उसे इस बात का स्पष्ट भान था कि दक्षिणी सिपाही उसी की बग़ल में नीचे को फिसलता जा रहा है। एक सेकेण्ड बाद उसने देखा कि वह अपने शत्रु को पीछे छोड़ता जा रहा है। वास्या ने अपनी एड़ी रेत

में धँसा दी, अपने को सुस्थिर किया और जैसे ही ऊपर नज़र फेरी, तो वह दक्षिणी सिपाही उसके सिर पर आ गिरा। वास्या ने एक कलाबाजी खायी, जल्दी से एक बग़ल को सरक गया। शत्रु झण्डे को घसीटता हुआ सरसराता निकल गया। वास्या मुँह नीचा करके डण्डे पर जा कूदा, उसके निरावरण पेट के तले वह थोड़ा-सा सरका, उसका बायाँ हाथ झण्डे के कपड़े में धँस गया। विजय की ख़ुशी महसूस करते हुए उसने ऊपर की ओर देखा। सिर्फ़ मित्या उसके निकट था और नीचे की तरफ़ अपने उतार के वेग को रोकने की चेष्टा कर रहा था। कोस्त्या तथा अन्य स्काउट शिखर पर खड़े थे और चिल्लाकर कुछ कहते हुए नीचे की ओर इशारा कर रहे थे। वास्या ने नीचे को देखा, तो उसके महीन कटे बाल खौफ़ से सीधे खड़े हो गये। अजनबी लड़के ऊपर को चढ़ते हुए उसी की तरफ़ को आ रहे थे। उनके आगे तेजी से क़दम रखता हुआ वही मुखिया दौड़ रहा था, जिसकी टोपी में मुर्गे का पंख लगा था और जो दूत के रूप में कल उनके यहाँ आया था। उसके पीछे-पीछे अन्य लोग लड़खड़ाते हुए चढ़ते आ रहे थे, उनमें से एक उत्तरी सेना के उजले-लाल रंग के झण्डे को दबाये हुए था।

वास्या कुछ नहीं समझा, पर उसे विपत्ति के आने का अहसास हो गया। भय से भौंचक उसकी आँखों ने देखा कि मित्या फिसलता हुआ सीधे शत्रु की बाहों में जा गिरा। वास्या ने ढलान में ऊपर की ओर भागने की कोशिश की, पर एक बलिष्ठ हाथ ने उसकी टाँग पकड़ ली और विजयोल्लास से गूँजती हुई आवाज़ में चिल्लाया : ‘‘नहीं, तू भाग नहीं सकता, छुटके चूहे! मैंने तुझे पकड़ लिया है!’’

उत्तरी सेना का पक्की तौर से सफ़ाया हो गया। माखी-पर्वत पर शत्रुओं से घिरे वास्या ने दक्षिणवालों की विजय-गर्व से भरी आवाज़ें सुनीं और वह सब कुछ समझ गया। उसकी बग़ल में भरे-गालों वाला गुलाबी लड़का, जिसका चेहरा, शत्रु होते हुए भी, बहुत मनोरम था, सबसे ज़्यादा बोल रहा था :

‘‘क्या जीत रही! कैसे लुढ़के वे सब। और वह, वह उनका कमाण्डर-इन-चीफ़!’’

‘‘क़िस्मत की बात है, हमें यह छोकरा मिल गया, वरना वे हमें जाल में फँसा देते,’’ पंखालंकृत मुखिया ओलेग कुरिलोव्स्की की ओर इशारा करता हुआ बोला।

‘‘उसने उन्हें सब कुछ बता दिया,’’ मित्या कन्दीबिन ने फुसाफुसाकर वास्या से कहा।

शत्रु अपनी जीत के रहस्य को खोलने में एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करने लगा। वास्या समझ गया कि उन्होंने ओलेग से सेर्योजा की योजना के बारे में जानकारी हासिल कर ली थी, यही कारण था कि वे अपने झण्डे को अरक्षित छोड़कर उत्तरवालों की मुख्य फ़ौज को ख़ुद खदेड़ने के लिये गये। खड़ी ढलान के किनारे पर सेर्योजा से सामना होने पर उन्होंने हमलावरों के सिर पर रेत की ढेरियाँ फेंकी और उन्हें घाटी के तल की ओर लुढ़का दिया तथा उत्तरी झण्डे सहित ल्योविक गोलोविन को पकड़ लिया।

ल्योविक कुछ ही दूर झाड़ी के नीचे बैठा अपनी उँगली में घुसी एक फाँस निकाल रहा था।

''ए क़ैदियों!'' पंखवाला मुखिया चिल्लाया। '''तुम्हें वहाँ बैठना है।''

उसने उस स्थान की तरफ़ इशारा किया, जहाँ ल्योविक बैठा था। उसकी बग़ल में अपमानित उत्तरी झण्डा पड़ा था। ल्योविक के अलावा तीन और क़ैदी थे : वास्या, मित्या और ओलेग कुरिलोव्स्की। वे रेत में चुपचाप बैठे थे। ल्योविक ने फाँस निकाली, एक-दो बार क़ैदियों के सामने ऊपर-नीचे टहला और फिर पास की एक कगार से नीचे की ओर झपटा और उस खड़े ढाल पर भयावह रफ़्तार से धड़ाधड़ाता हुआ फिसलता गया। नीचे तल पर पहुँचने के बाद उसने अपनी छोटी-सी पीली टोपी उतारी और उसे हार्दिकता से हवा में हिलाते हुए कहा : ''अच्छा, नमस्ते! मैं चला भोजन करने।''

किसी ने भी उसका पीछा नहीं किया। यद्यपि यह सब वास्या की आँखों के सामने हुआ, फिर भी यह एक स्वप्न जैसा था। वास्या पराजय की कडुवाहट को नहीं भूल सका था, और अब उसे क्रूर शत्रु के हाथों बदले की अनकही कार्रवाइयों का सामना करना था। ल्योविक के भाग निकलने के बाद एक दक्षिणवाले ने सुझाव दिया :

''इन्हें बाँध दिया जाना चाहिये, अन्यथा वे सब भाग जायेंगे।''

''ठीक है, '' दूसरे ने उत्तर दिया, ''आओ, इनकी टाँगें बाँध दें।''

''और हाथ भी।''

''लेकिन यदि उनके हाथ खुले रहें, तो वे अपने बन्धन खोल लेंगे। ठीक इस क्षण पर ओलेग कुरिलोव्स्की, जो मित्या की बग़ल में बैठा था, चीख़ता हुआ हवा में उछला, ''अरे, मर गया, रे, मर गया! तूने मुझे चिकोटी क्यों काटी?''

दक्षिणवाले खिलखिलाकर हँसे, लेकिन उनके मुखिया ने मित्या को डाँटा।

''तुम्हें चिकोटी काटने का कोई हक़ नहीं। तुम ख़ुद एक क़ैदी हो।''

मित्या ने उसकी तरफ़ देखा तक नहीं। इस पर मुखिया नाराज़ हो गया।

''इनके हाथ और पैर बाँध दो!''

''इसके भी?'' उन्होंने ओलेग की तरफ़ इशारा किया।

''नहीं, इसका कोई महत्व नहीं।''

दक्षिणवाले अपने क़ैदियों पर झपटे, परन्तु पता लगा कि उनके पास बाँधने के लिये कुछ था ही नहीं। केवल एक के पास एक पेटी थी, लेकिन उसने एक पेटी को सामान्य उपयोग के वास्ते देने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि ''माँ मुसीबत खड़ी कर देगी।''

वास्या ने दुश्मन के भयावने परकीय चेहरों को देखा और अन्दर ही अन्दर ओलेग के प्रति घृणा से उबलने लगा, क्योंकि उत्तरवालों की पराजय और वास्या के कष्टों का असली कारण वही था। एक दक्षिणवाला कहीं से गन्दे चिथड़े की एक पट्टी ले आया और वास्या पर चिल्लाया : ''अपने पैर इधर ला!''

लेकिन पर्वत की चोटी से एक पुकार आयी : ''ऊपर यहाँ, ऊपर यहाँ! वे आ रहे

हैं! अपनी रक्षा करो।''

दक्षिणवाले उत्तरवालों के धावे का मुक़ाबला करने के लिये हवा की तरह भागे। पर्वत-शिखर पर सिर्फ़ क़ैदी बचे रह गये। लड़ाई पार के एक ढलान पर चल रही थी, वहाँ से जयघोष, आदेश के स्वर और हँसने की आवाज़ें आ रही थीं। मित्या रेंगता हुआ चोटी की तरफ़ बढ़ा, लड़ाई की स्थिति को देखने के लिये नहीं। ओलेग के पास पहुँचकर उसने उसकी टाँग पकड़ ली और ओलेग हताश चीख़ के साथ मित्या की बग़ल में झाड़ियों की तरफ़ नीचे को फिसला। प्रसन्नता से हँसते हुए वास्या ने ओलेग की कमीज़ का सिरा पकड़ लिया और फ़ौरन उस पर सवार हो गया।

''आओ, इसकी पिटाई करें,'' मित्या ने सुझाव दिया।

वास्या को जवाब देने का वक़्त नहीं मिला। ओलेग, जो वास्या से अधिक उम्र का और मोटा था, उसकी पकड़ से ऐंठता-रेंगता हुआ निकला और भाग खड़ा हुआ। झाड़ियों के पास उसे फिर गिरा दिया गया। इस बार मित्या ने उसको एक और चिकोटी काट दी। इस पर ओलेग फिर चीख़ा और इतना चीख़ा कि उसके होंठ फैलकर कानों तक पहुँच गये।

''आओ इसे वहाँ घसीटें,'' वास्या ने हँसते हुए कहा।

''आ! तू चुपचाप चलेगा कि नहीं?'' उसने ओलेग से पूछा।

''मैं कहीं नहीं जाऊँगा। मैंने क्या किया है?''

''चले आ!''

उन दोनों ने मिलकर ओलेग को उसी ढलान की तरफ़ धकेला, जहाँ से ल्योविक भागा था। चीख़ता-चिल्लाता ओलेग रेत में लुढ़कता हुआ नीचे चला। उसके उत्पीड़क भी अपनी एड़ियों को रेत में धँसाते हुए उसकी बग़ल से नीचे उतरते गये। वे लोग तल पर पहुँचने ही वाले थे कि दक्षिणवालों की तरफ़ से विजय ध्वनियाँ आती सुनायी पड़ीं। ओलेग इतने ज़ोर से हूँक लगा रहा था कि भागनेवालों के लिये भागना-छिपना असम्भव था। उन्हें फिर आसानी से पकड़ लिया गया।

उन दो निर्भीक स्काउटों को एकबार फिर उस कच्ची रेत में लड़खड़ाते हुए शिखर की ओर चलना पड़ा। ओलेग चारों हाथ-पैरों से चल रहा था और चलता-चलता रोते जाता था। रास्ते में मित्या उसे एक आख़िरी चिकोटी काटने में कामयाब हो गया।

''ये लड़के तो आफ़त हैं! '' पंखवाले मुखिया ने कहा। ''ये उस रोने छोकरे को दिन भर परेशान करते रहेंगे।''

''बेशक ऐसा ही करेंगे, ''किसी अन्य ने सहमति प्रकट करते हुए कहा। ''हमारे पास इनके लिये समय कहाँ है? जैसे ही उत्तरवाले हमला करेंगे वे फिर से उपद्रव करने लगेंगे।''

''बिल्कुल ठीक,'' मुखिया ने कहा, ''हम तुम्हें जाने देंगे, लेकिन तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा के नाम पर वचन देना होगा कि घर जाओगे और अपनी सेना में वापस नहीं जाओगे।''

''और कल का क्या होगा?'' वास्या ने पूछा।
''कल तुम्हारी जो इच्छा हो, कर सकते हो।''
वास्या ने मित्या की तरफ़ देखा :
''तुम्हारी क्या राय है?''
मित्या ने बिना बोले ओलेग की तरफ़ देखकर सिर हिलाया। ओलेग ने इन्कार कर दिया :
''मैं उनके साथ नहीं जा रहा हूँ। वे मुझे चिकोटी काट देंगे। मैं कहीं नहीं जा रहा हूँ।''
ह्यष्ट-पुष्ट, सुन्दर और प्रसन्नचित्त वास्या ओलेग की तरफ़ मुँह करके खड़ा था। उसकी बड़ी-बड़ी स्वच्छ आँखों के भावों से हर किसी के लिये साफ़ ज़ाहिर था कि ओलेग घर जाते समय किसी तरह की दया की उम्मीद नहीं कर सकता है।
मुखिया क्रोधित हो गया।
'' तो हम तुम्हारा करें क्या? तुम ऐसे भारी-भरकम हो और तुम्हारा यह हाल!''
''मैं तुम्हारी तरफ़ हो जाऊँगा, '' उसने रोते हुए कहा और स्काउटों की तरफ़ आशंकित निगाह डाली।
''हमें क्या, यही रह ले, वह ख़तरनाक नहीं है! और तुम चले जाओ,'' मुखिया बोला।
स्काउट मुस्कराये और घर को चल पड़े। पर, इससे पहले कि वे माखी-पर्वत से नीचे उतरते, दक्षिणी शिविर में फिर खलबली मच गयी। वे रुके और मुड़कर देखने लगे। हाँ, दक्षिणवाले हमलावरों का सामना करने के लिये दौड़ चले थे।
''आओ, हम झाड़ियों के पीछे से रेंगकर चलें,'' वास्या ने फुसाफुसाकर कहा।
वे हाँफते-काँपते तेज़ी से वापस लौटे। अन्तिम झाड़ी के पीछे उत्तरवालों का उजला-लाल झण्डा पड़ा धूप में चमक रहा था। मित्या ने डण्डा पकड़कर खींचा और झण्डा फिसलता हुआ उसके पास सरकता हुआ आता गया।
''अब भागो,'' उसने फुसाफुसाकर कहा।
''लेकिन मैं उनका!''...
''उनका क्या?''
''उनका झण्डा!''
''धत्त तेरे की! लेकिन वह कौन वहाँ पर खड़ा है?''
''वह ओलेग है।''
मित्या प्रसन्न हो गया और एक सहज मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गयी, जिससे वह सुन्दर दिखायी देने लगा। उसने वास्या का कन्धा पकड़ा और स्नेह से फुसाफुसाकर कहा, ''तुम इसे ले लो और ओलेग को मुझ पर छोड़ दो। ठीक है?''
वास्या ने ख़ामोशी से हामी भरते सिर हिलाया और वे हमला करने के लिये शीघ्रता से आगे बढ़े। ढलान पर विकट रफ़्तार से नीचे को फिसलते हुए ओलेग ने कर्णभेदी

चीत्कार किया। वास्या ने रेत से झण्डा खींचते समय नीचे की तरफ़ देखा : वहाँ न तो उसकी अपनी और न शत्रु की ही फ़ौज का कोई चिह्न था, रणक्षेत्र कहीं दूर सरक गया था।

स्काउटों ने पीछे हटना शुरू किया। वे ढलान से नीचे को उतरे, लेकिन इसक बाद आगे बढ़ना कठिन से कठिनतर होता गया। झण्डे बहुत भारी थे। तभी उन्हें सूझा कि झण्डों को डण्डों के गिर्द लपेट लिया जाये, ताकि उन्हें झाड़ियों के बीच से घसीटना आसान हो जाये। कुछ समय तक वे बिना पीछे देखे चलते रहे, लेकिन जब उन्होंने ऐसा किया, तो देखा कि माखी-पर्वत के शिखर पर भयानक खलबली मची थी। दक्षिणवाले ढलानों में यहाँ-वहाँ हर तरफ़ भाग रहे थे और हर खाई-खन्दक में झाँक रहे थे।

"भागो, भागो," मित्या ने फुसफुसाकर कहा।

वे अधिक तेज़ी से दौड़ने लगे। जब उन्होंने मुड़कर देखा, तो पर्वत पर कोई नहीं था। मित्या चिन्तित नज़र आ रहा था।

"वे सबके सब हमारा पीछा कर रहे होंगे। सारे के सारे। अगर वे इस वक़्त हमें पकड़ लें, तो हम बच नहीं सकते।"

"तो हम क्या करें?"

"क्या करें? आओ हम यहाँ मुड़ जायें। झाड़ियाँ बहुत घनी हैं! हम लेट जायेंगे और रुके रहेंगे। ठीक है?"

वे बायीं तरफ़ को मुड़ गये। और जल्दी ही ऐसी घनी झाडियों के अन्दर जा पहुँचे कि उनके बीच से रास्ता निकालना कठिन हो गया था। वे एक छोटी-सी खुली जगह पर रुक गये, झण्डों के डण्डों को झाड़ियों में खोंस दिया तथा ख़ुद रेत में धँस गये और चुपचाप लेटे रहे। अब वे सिर्फ़ सुन सकते थे पर देख नहीं सकते थे। फ़ैक्टरी में विजयध्वनि की तरह भोंपू बजने लगा-चार बज गये। कुछ समय बाद उनका पीछा करनेवालों की आवाज़ें सुनायी पड़ीं-शुरू में हल्की-हल्की, फिर ज़ोर-ज़ोर की और कुछ ही देर बाद शब्द भी साफ़ सुनायी पड़ने लगे।

"यहाँ! वे यहाँ हैं!" एक चिड़चिड़ी आवाज़ ने ज़ोर देते हुए कहा।

"शायद अब तक वे घर पहुँच गये होंगे," एक अन्य धीर आवाज़ का उत्तर था।

"नही, अगर वे घर चले गये होते, तो हमने उन्हें देख लिया होता। यहाँ से तुम सब कुछ देख सकते हो!"

"अच्छा तब आओ, उन्हें खोजें।"

"वे यहाँ से गये हैं! देखो, उनके पैरों के निशान!"

"हाँ, ठीक कहते हो।"

"देखो, उन्होंने झण्डे को इसी स्थल से होकर घसीटा है!"

चार नंगे पैर उनके दृष्टि क्षेत्र में आये। स्काउटों ने दम साध लिया। वे पैर हर चप्पा ज़मीन को देखते हुए झाड़ियों में इधर-उधर चल रहे थे।

मित्या ने वास्या के कान में फुसफुसाकर कहा : "हमारे आदमी आ रहे हैं।"

"कहाँ?"

"सच वे आ रहे हैं।"

वास्या ने सुना। पक्की बात थी, वे दर्जन भर आवाज़ें पास ही से आ रही थीं और इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वे उनके आदमी थे। मित्या उछलकर खड़ा हो गया और कानफोड़ आवाज़ में चिल्लाया : "सेर्योजा-आ-आ-आ!"

दोनों दक्षिणवाले जहाँ के तहाँ खड़े रह गये, फिर वे प्रसन्न होकर मित्या पर झपटे। लेकिन मित्या को अब कोई डर नहीं था, उसने घूँसों से प्रत्याक्रमण किया, उसकी आँखें आक्रमणात्मक ढंग से चमक रही थीं।

"पीछे हटो, पीछे हटो! सेर्योजा-आ-आ!!!"

वास्या कूदकर खुले में आ गया और शान्ति से शत्रु की तरफ़ देखने लगा। उनमें एक, गहरे लाल होंठोंवाला, धूप से झुलसे बदन का लड़का उसे देखकर मुस्कराया।

"तुम किसलिये चिल्ला रहे हो? तुम तो पहले से ही पकड़े हुए क़ैदी हो। झण्डे कहाँ हैं? बताओ कहाँ हैं?'' उसने वास्या की तरफ़ घूमते हुए कहा। वास्या ने कन्धे उचका दिये।

''यहाँ कुछ भी नहीं है। देख लो, कुछ भी नहीं!'' तभी पास ही से तिनकों और टहनियों के टूटने-कड़कने की आवाज़ आयी, शत्रु दूसरी तरफ़ को भाग गया।

मित्या फिर चिल्लाया : सेर्योजा-आ-आ!''

''यहाँ क्या हो रहा है?'' उस खुली जगह में प्रवेश करते हुए सेर्योजा ने पूछा, उसके पीछे से सारी उत्तरी फ़ौज उसी तरफ़ को देख रही थी।

''देखो!'' वास्या ने शत्रु के झण्डे को खोलते हुए कहा।

''और हमारा भी! हमारा भी!''

''क्या चमत्कार है!'' सेर्योजा ने उल्लसित होकर कहा। ''कैसा वीरतापूर्ण कारनामा है! हुर्रा!'' हर कोई ''हुर्रा-हुर्रा'' चिल्लाया। हर किसी ने उन वीरों से प्रश्न पूछे। सेर्योजा ने वास्या को हाथों में उठा लिया, उसे गुदगुदाया और पूछा :

''हम तुम्हें कैसे धन्यवाद दें? तुम्हें किस तरह पुरस्कृत करें?''

''मित्या को भी, मित्या को भी,'' वास्या ने हँसते हुए और हवा में अपने पैरों को उछालते हुए कहा।

कैसा अद्भुत वीरतापूर्ण विजय-दिवस था वह! माखी-पर्वत पर कैसा सुन्दर लग रहा था, जहाँ अब उत्तरी सेना मुक्त भाव से घूम रही थी और सेर्योजा ने कहा : ''साथियो, आज विजय हमारी रही! हमने तीन बार हमले किये, लेकिन शत्रु ने, सिर से पैर तक हथियारबन्द शत्रु ने हर हमले को विफल कर दिया। हमारा नुकसान भयानक था। हमने सोचा कि हम बुरी तरह से पराजित हो गये। हम भारी दिल से लौटने लगे थे, तभी हमें पता लगा कि हमारे वीर स्काउट वास्या नज़ारोव और मित्या कन्दीबिन ने पश्चिमी मोर्चे पर ज़बरदस्त जीत हासिल की है!...''

सेर्योजा ने अन्त में कहा :

''हमारे ये वीर अब अपने हाथों से माखी-पर्वत पर झण्डा फहरायेंगे! आइये इसे पकड़िये!''

वास्या और मित्या ने उजले-लाल झण्डे को पकड़ा और उसके डण्डे को मृदु रेत में मज़बूती से गाड़ दिया। उत्तरवालों ने अपने विजयघोष से हवा को कम्पायमान कर दिया। कुछ ही दूरी पर चन्द असन्तुष्ट दक्षिणवाले मुँह फुलाये बैठे थे। उनमें से कुछ नजदीक आ गये और बोले : ''यह अन्याय है, हमें इस झण्डे को उतारने का हक़ है!''

''माफ़ कीजियेगा,'' सेर्योजा ने उत्तर दिया। ''क्या आपका झण्डा चार बजे से पहले पकड़ा गया?''

''मान लो अगर ऐसा ही हुआ था, तो...''

''तो अब क्या समय है!? इसलिये आप ख़ामोश हो जाइये...''

कैसा अनोखा दिन था यह, यश और वीरत्व से इतना भरापूरा।

''आओ, मेरे घर चलें,'' वास्या ने निर्णायक स्वर में कहा।

मित्या संकुचित हो गया। उसकी उस शाश्वत आक्रामकता को क्या हो गया!

''मैं नहीं आना चाहता,'' वह फुसफुसाया।

''आओ भी। वहीं भोजन करना। और अपनी ममी को बता दो कि तुम मेरे यहाँ आ रहे हो।''

''इसमें बताने को क्या है?..''

''महज़ इतना बता दो कि तुम हमारे यहाँ आ रहे हो!''

''तुम समझते हो कि मुझे ममी से डर लगता है? ममी कुछ नहीं कहेंगी। लेकिन...''

''तो आज सुबह तुम क्या कह रहे थे?''

अन्त में मित्या राजी हो गया। लेकिन जब वे पोर्च में पहुँचे, तो वह रुक गया।

''जानते हो, तुम यहाँ रुको, मैं एक सेकेण्ड में आता हूँ।''

उत्तर का इन्तज़ार किये बिना वह अपने फ़्लैट की तरफ़ दौड़ा। दो मिनट बाद वह उस सुप्रसिद्ध टिन के डिब्बे को लेकर वापस लौटा। अब उस डिब्बे में कीलें या खाने नहीं थे।

''यह रहा तुम्हारा डिब्बा!''

उसका चेहरा ख़ुशी से दमक रहा था, लेकिन उसकी आँखें थिर नहीं थीं

वास्या भौचक रह गया।

''मित्या, तुम्हारे पिता तुम्हें पीटेंगे!'

''हुँह, पीटने दो, क्या तुम समझते हो कि वे मुझे इतनी आसानी से पकड़ लेंगे?''

वास्या सीढ़ियों पर चढ़ा। उसने फ़ैसला किया कि दुनिया में सिर्फ़ एक ही व्यक्ति डिब्बे की इस अभिशप्त समस्या को सुलझा सकता है-उसके पिता फ़्योदोर नज़ारोव,

समस्त दयालुता और बुद्धिमत्ता के स्रोत।

वास्या की माँ लड़कों को देखकर आश्चर्य में पड़ गयी।

''अहा, तुम एक अतिथि को लेकर आये हो! क्या यह मित्या है? यह अच्छी बात है! लेकिन दैया रे, ज़रा अपने पर एक नज़र तो डालो! तुम क्या करते रहे? चिमनियाँ साफ़ कर रहे थे क्या?''

''हम लड़ाई लड़ रहे थे,'' वास्या ने कहा।

''हाय रे! जो भी कर रहे थे, हो तुम देखने लायक! फ़ेद्या, ज़रा आकर इन्हें देखो तो!''

पिता आये और खिलखिलाकर हँसने लगे।

''वास्या, फ़ौरन नहा डालो।''

''डैडी, आपको पता है, वहाँ एक युद्ध चल रहा है! हमने उनके झण्डे पर क़ब्ज़ा कर लिया, मैंने और मित्या ने!''

''मैं उसके बारे में सुनना भी नहीं चाहता! सिपाहियों को चाहिये कि पहले नहायें, फिर बात करें।''

और उसने भोजन कक्ष के द्वार को आधा बन्द कर दिया, अपना सिर बाहर निकाला और बनावटी सख़्ती से कहा : ''और मैं तुम्हें भोजन कक्ष में आने नहीं दूँगा। मरूस्या, उन्हें सीधे पानी में फेंक दो! और इसे भी अच्छी तरह से धो देना, उफ, कैसा कालिया बना है! और यह क्या वही डिब्बा है? अहा... मैं समझा! लेकिन नहीं, मैं तुम जैसे फ़टीचरों से बात नहीं कर सकता!''

मित्या फ़र्श पर जहाँ का तहाँ खड़ा था, वह सर्वाधिक हताशापूर्ण लड़ाई से भी अधिक भयाक्रान्त था। घबरायी हुई भौंचक आँखों से वह दरवाज़े की तरफ़ पीछे को हटने लगा, पर वास्या की माँ ने अपना बाजू उसके कन्धों के गिर्द रख दिया।

''घबराओ मत, मित्या, हम एक मामूली-सा स्नान करेंगे!''

थोड़ी ही देर में माँ रसोई से बाहर आयी और अपने पति से बोली : ''शायद तुम मित्या के बाल काटना ठीक समझो? उसके सिर को धोना असम्भव है।''

''उसके माता-पिता इस हस्तक्षेप पर एतराज़ तो नहीं करेंगे?''

''अरे, करने दो, वे अपने लड़के को पीटना तो बुरा नहीं समझते, उसके सारे बदन में नील पड़े हैं।''

''अच्छी बात है, तो हम हस्तक्षेप कर ही दें,'' नज़रोव ने आलमारी से बाल काटने की यांत्रिक कैंची निकालते हुए खुशी-खुशी कहा।

अगले चौथाई घण्टे के अन्दर दोनों स्काउट साफ़-सुथरे, सुन्दर और गुलाबी बनकर मेज़ पर बैठ गये थे... अपने साहसिक कारनामों से उनका मन इस तरह भरा था कि उन्हें खाने की सुध ही नहीं थी।

लड़कों की कहानियों को कभी विस्मय से, कभी हैरानी से, कभी सहानुभूति से, कभी दम लेकर और कभी हँसते हुए सुनकर नज़ारोव ने एक सैनिक के जीवन के

सारे उतार-चढ़ावों का आनन्द उठाया।

उन्होंने भोजन कर ही लिया था कि सेर्योजा दौड़ता हुआ आया।

''हमारे शूरवीर कहाँ हैं? फ़ौरन बाहर निकलो, दक्षिणी सेना के दूत किसी भी क्षण यहाँ पहुँचने वाले हैं...''

''दूत?'' नज़ारोव ने अपनी पेटी के नीचे अपने कमीज़ को सीधा करते हुए गम्भीरता से पूछा। ''क्या मैं वहाँ आकर देख सकता हूँ?''

उत्तरी सेना अपनी पूरी संख्या में दूतों से मिलने के लिये इकट्ठा हुई। यह सच है कि उनके पास बिगुल नहीं था, लेकिन उत्तरी झण्डा माखी-पर्वत पर फहरा रहा था!

लेकिन दूतों के आने से पहले, ओलेग की माँ उस स्थल पर आ पहुँची।

''ओलेग कहाँ है? क्या वह तुम्हारे साथ था?'' उसने उत्तरवालों से पूछा।

सेर्योजा ने इस प्रश्न को टालने का प्रयत्न किया :

''आप उसे खेलने ही नहीं देतीं।''

''लेकिन उसके पिता ने कहा था कि वह देख सकता है...''

''वह हमारे साथ नहीं था...''

''लड़को, क्या तुमने ओलेग को देखा?''

''वह वहाँ घूम रहा था,'' ल्योविक ने कहा, ''उन्होंने उसे क़ैदी बना लिया।''

''किसने क़ैदी बना लिया?''

''क्यों, दक्षिण वालों ने...''

''वह कहाँ है? ओलेग अब कहाँ है?''

''वह एक ग़द्दार है,'' मित्या ने कहा, ''उसने उन्हें सब कुछ बतला दिया और अब उसे वापस आने में डर लग रहा है। और बेहतर है कि वह न आये!''

कुरिलोव्स्काया ने मित्या को संत्रस्त होकर देखा।

इस समय मित्या का सिर स्वच्छ सुनहरे सेब जैसा दमक रहा था, और उसकी तीक्ष्ण, दृढ़ आँखें धृष्ट नहीं, बल्कि जीवित और पैनी नज़र आ रही थीं। नज़ारोव ने आगे की घटनाओं का दिलचस्पी से इन्तज़ार किया, उसे महसूस हो रहा था कि घटनाक्रम द्रुत वेग से आगे बढ़ेगा। सुहानी शाम से आकर्षित कन्दीबिन भी अपने फ़्लैट से बाहर निकल आया। उसने नये, चुस्त मित्या को नापसन्दगी के साथ देखा, लेकिन ऐसा प्रतीत होता था कि किसी कारणवश उसे पिता के अपने अधिकार का दावा जतलाने की जल्दी नहीं थी।

ओलेग की नियति के प्रति अपने आसपास के लोगों की उपेक्षा से अभिभूत कुरिलोव्स्काया ने चिन्तित होकर इधर-उधर देखा। नज़ारोव की कौतूहलपूर्ण नज़र का सामना होनेपर वह जल्दी-जल्दी उसके क़रीब आयी।

''कामरेड नज़ारोव, बताइये, मैं क्या करूँ? मेरा ओलेग ग़ायब हो गया है। मैं सचमुच ही चिन्ता से मरी जा रही हूँ। सेम्योन पाव्लोविच को इसके बारे में अभी

कुछ भी पता नहीं है।''

''उन्होंने उसे क़ैदी बना लिया,'' नज़ारोव ने मुस्कराकर कहा।

''कैसी भयानक बात है! क़ैदी बना लिया! कैसी अजीब बात है, लड़के को इस तरह से घसीटना, जबकि वह खेल में शामिल भी नहीं था!''

''यही तो बात है, उसे खेल में शामिल होना चाहिये था, तुमने उसे अनुमति न देकर ग़लती की।''

''सेम्योन पाव्लोविच इसके ख़िलाफ़ हैं, उनका कहना है कि यह ऐसा भयावना खेल है!''

''खेल में कुछ भी भयावना नहीं, भयावना तो तुम्हारा रवैया होता है। लड़के को ऐसी स्थिति में डालना निश्चय ही अच्छी बात नहीं है।''

''कामरेड नज़ारोव, लड़के तरह-तरह के संकटों में जा पड़ते हैं। आप आँख बन्द करके उनके पीछे-पीछे नहीं जा सकते।''

''आँख बन्द करके क्यों? आँख बन्द करने की कोई ज़रूरत नहीं, लेकिन बच्चों को उनका अपना जीवन जीने देना चाहिये...''

इसी बीच अहाते का छोटा फाटक खुला और तीन दूतों की गम्भीर त्रिमूर्ति अन्दर आयी और उनके पीछे-पीछे मिट्टी से सनी, आँसुओं से भीगी ओलेग की आकृति थी, लगता था कि उसे अपने ऊपर बहुत दुख है। एक घबराहट भरी साँस लेकर उसकी माँ दौड़ती हुई उसके पास गयी। वह रोते-बड़बड़ाते तथा लड़कों की तरफ़ उँगली उठाते ओलेग को हाथ पकड़कर घर की ओर ले चली।

लेकिन लड़कों के पास ओलेग के लिये समय नहीं था। दक्षिणी सेना ऐसी माँगें रख रही थी, जो कभी सुनी नहीं गयी थी : झण्डा वापस लौटाया जाये और उत्तरवाले यह स्वीकार करें कि वे पराजित हो गये हैं। दूतों के अनुसार, वास्या और मित्या को रिहा कर दिया गया, क्योंकि उन्होंने प्रतिष्ठा का वचन दिया था कि वे उस दिन लड़ाई में आगे भाग नहीं लेंगे : उन पर विश्वास किया गया था, लेकिन उन्होंने अपना वचन पूरा नहीं किया।

"'प्रतिष्ठा के वचन' से तुम्हारा क्या मतलब है?'' सेर्योजा ने क्रोधित होकर कहा, ''युद्ध तो युद्ध है!''

''क्या? तुम प्रतिष्ठा के आधार पर दिये गये वचन के ख़िलाफ़ हो?'' पंखवाले लड़के ने हार्दिक क्षोभ से चिल्लाकर कहा।

''उन्होंने ऐसा शायद जानबूझकर दिया हो? शायद उन्होंने प्रतिष्ठा का वचन तुमको चकमे में डालने के लिये जानबूझकर दिया हो?''

''प्रतिष्ठा का वचन?! ओहो, तो आप इस क़िस्म के हैं! अरे नहीं, अगर आपने एक बार वचन दे दिया, तो आपको उसका पालन करना ही होता है...''

''मसलन, मान लो, तुम्हें फ़ासिस्टों ने पकड़ लिया? वे कहेंगे : हमें प्रतिष्ठा का वचन दो! तो? तब तुम प्रतिष्ठा के अपने वचन का क्या करोगे?''

“अच्छा, तो आप ऐसी बातें करते हैं!” मुखिया ने अपने हाथ को आकाश की तरफ़ घुमाते हुए कहा। “फासिस्टों ने! और हम कौन हैं, हमने क्या सन्धि की थी? हमारी सन्धि में कहा गया है कि हम लाल हैं और तुम भी लाल हो, और फ़ासिस्ट कोई नहीं है। फ़ासिस्ट! क्या बात कही है!”

इस अन्तिम तर्क से किंचित घबराकर, सेर्योजा ने वास्या और मित्या को सम्बोधित किया :

“क्या तुमने प्रतिष्ठा का वचन दिया था?”

मित्या ने शत्रु-दल के मुखिया की तरफ़ तिरस्कार से अपनी आँखें सिकोड़ीं।

“हमने? वचन दिया?”

“तो नहीं दिया क्या?”

“नहीं, हमने क़तई नहीं दिया!”

“तुमने दिया!”

“नहीं, हमने नहीं दिया!”

“तो क्या मैंने तुमसे नहीं कहा : “हमें अपनी प्रतिष्ठा का वचन दो!”

“पर तुमने क्या कहा?”

“मैंने क्या कहा?”

“तुम्हें याद है कि तुमने क्या कहा?”

“याद है।”

“नहीं, नहीं है।”

“क्या? मुझे याद नहीं?”

“अच्छी बात है, हमें बताओ!”

“मैं तुम्हें बताऊँगा। लेकिन तुम क्या सोचते हो कि मैंने क्या कहा?”

“नहीं, तुम बताओ, अगर तुम्हें याद हो तो...”

“चिन्ता न करो, मुझे याद है, लेकिन तुम क्या सोचते हो?”

“अहा, मैं क्या सोचता हूँ? तुमने कहा : मुझे अपनी प्रतिष्ठा का वचन दो कि तुम वापस अपनी सेना में नहीं जाओगे। वास्या क्या उसने यही नहीं कहा?”

“फ़र्क क्या है?”

लेकिन दुश्मन का दाँव बेकार हो चुका था। उत्तरवाले हँसने और चिल्लाने लगे।

“और वे घर चले आये! प्रतिष्ठा का वचन! यह तो अच्छी ख़ासी चालाकी है!”

यहाँ तक कि कन्दीबिन, जो सामान्यतः बहुत गम्भीर रहता था, खिलखिलाकर हँसने लगा।

“शैतान बच्चे! उन्हें ठिकाने लगा दिया! लेकिन मेरे लड़के की ऐसी हज़ामत किसने बनायी?”

नज़ारोव ने कुछ नहीं कहा। कन्दीबिन लड़कों के नज़दीक चला आया। इस खेल में उसे आनन्द आने लगा था। जब उसने उत्तरवालों का प्रति-प्रस्ताव सुना तो वह

बहुत हँसा। उसकी हँसी सीधी और बच्चों जैसी प्रबल थी, कई बार तो वह हँसते-हँसते दोहरा हो गया।

उत्तरवालों ने प्रस्ताव किया कि उनका झण्डा माखी-पर्वत पर तीन दिन तक फहराता रहे और तब वे शत्रु का झण्डा वापस कर देंगे और फिर एक नया युद्ध शुरू करेंगें। और अगर शत्रु को यह पसन्द नहीं तो ''माखी-पर्वत हमारा है।''

दूतों ने यह प्रस्ताव सुनकर उसकी खिल्ली उड़ायी।

''वाह! तुम समझते हो कि हम अपने लिये नया झण्डा नहीं बना सकते? तुम कहो तो हम दर्जनों बना सकते हैं! तुम देखोगे कल, माखी-पर्वत पर किसका झण्डा लहराता है!''

''हम देख लेंगे!''

''हम भी देख लेंगे!''

विदाई समारोह किंचित जल्दबाजी में हुआ, दूतगण क्रोधित होकर विदा हुए और उत्तरवालों ने सैनिक-शिष्टाचार को ताक पर रखकर उनके पीछे आवाजें कसीं : ''चाहो तो दस बना लेना, वे सब हमारे होंगे!''

''अच्छा,'' सेर्योजा ने अपने आदमियों से कहा, ''हिम्मत न हारना, कल वक़्त कठिन होगा!''

लेकिन उन्हें इस वक़्त का कल तक इन्तज़ार नहीं करना पड़ा।

अपने फ़्लैट से नीचे को आनेवाली लम्बी सीढ़ियों से योजना विभाग का प्रधान, सेम्योन पाव्लोविच कुरिलोव्स्की स्वयं प्रकट हुआ, उसकी भारी-भरकम काया क्रोध से कम्पित हो रही थी। उसके पीछे ओलेग कुरिलोव्स्की की दबी-कुचली आकृति लड़खड़ाती हुई आ रही थी।

सेम्योन पाव्लोविच ने अपना हाथ उठाया और ऐसी पतली-तीखी हुक्मराना आवाज़ में बोला, जो प्रसंगतः उसकी विशाल काया से मेल नहीं खाती थी :

''ए लड़को! सुनो, एक मिनट रुको, रुको एक मिनट, मैं कहता हूँ!''

''क्या मामला है? यह क्यों चिल्ला रहा है? कौन है यह?''

''देखो, कैसा जंगली है वह! वह ओलेग का...''

अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचने से पहले सेम्योन पाव्लोविच चीखने लगा था : ''गुंडई, यंत्रणा, हाथापाई, हैं! मैं दिखाऊँगा तुम्हें हाथापाई करना क्या होता है!''

वह दौड़ता हुआ लड़कों के पास पहुँचा।

''तुममें से नज़ारोव कौन है? नज़ारोव कहाँ है?''

कोई नहीं बोला।

''मैं कहता हूँ नज़ारोव, कौन है?''

वास्या ने घबराकर अपने पिता की ओर देखा, लेकिन पिता ऐसे बन गये जैसे उन्हें इस कार्यवाही में कोई दिलचस्पी न हो। वास्या झेंपा, उसने अपने विस्मित चेहरे को ऊपर उठाया और ज़ोर की लयबद्ध आवाज़ में कहा :

“नज़ारोव? मैं ही नज़ारोव हूँ!”

“अहा, तो तुम हो!” कुरिलोव्स्की गुर्राया। “तो तुम थे मेरे बेटे के साथ गुण्डई करनेवाले? और दूसरा? कन्दीबिन? कहाँ है कन्दीबिन?”

मित्या ने अपने कन्धे को घुमाकर क्रोधित कुरिलोव्स्की को घूरकर देखा।

“चिल्ला क्यों रहे हो? मैं कन्दीबिन हूँ, क्या हुआ?”

कुरिलोव्स्की ने मित्या की तरफ़ छलाँग लगायी और उसके कन्धे को ऐसी उग्रता से पकड़ा कि मित्या उसके गिर्द पूरा चक्कर खाकर सीधे सेर्योजा के हाथों में जा गिरा। सेर्योजा ने मित्या को फ़ौरन अपनी पीठ के पीछे कर लिया और ख़ुद अपने मुस्कराते, बुद्धिमत्तापूर्ण चेहरे को कुरिलोव्स्की के सामने पेश कर दिया।

“कहाँ है वह? तुम उसे क्यों छिपा रहे हो? क्या तुम मिलकर उस पर धौंस जमा रहे थे।”

कुरिलोव्स्की ने सेर्योजा के पीछे ऐसे उपहासास्पद ढंग से झाँका और मित्या ऐसी चतुराई से छिपा रहा कि लड़के ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। कुरिलोव्स्की का चेहरा लाल हो गया, उसने इधर-उधर देखा और समझ गया कि अपनी खिल्ली उड़वाने से बचने के लिये फ़ौरन खिसक जाना चाहिये। एक क्षण और मिलता, तो वह अपने क्रोध को पूरी तरह से निकालने के लिये अपने अध्ययन कक्ष को भाग निकलता, लेकिन तभी मित्या के पिता उसके सामने आ गये।

“हाँ तो आप मेरे बेटे से क्या चाहते हैं?” उसने अपने हाथों को पीठ की तरफ़ करते तथा सिर को पीछे की ओर इस तरह झुकाते हुए पूछा कि उसका टेंटुआ नज़र आने लगा था।

“क्या? तुम क्या चाहते हो?”

“मैं कुछ नहीं चाहता, मैं पूछता हूँ तुमको मेरा बेटा क्यों चाहिये? शायद तुम उसकी पिटाई करना चाहते हो? मैं हूँ, मेरा नाम कन्दीबिन है!”

“अच्छा, तो वह तुम्हारा बेटा है?”

“ओहो रे, वह एक मिनट में उसपर वार करेगा!” मित्या ने ज़ोर से कहा।

हँसी का एक और फव्वारा छूटा।

नज़ारोव शीघ्रता से उन दो पिताओं के पास पहुँचा, जो दो लड़ाकू मुर्ग़ों की तरह एक-दूसरे को घूरने लगे थे। वास्या अपन पिता को कठिनाई से पहचान पाया। उसने अपने पिता को ज़ोर से तो नहीं, मगर ऐसी क्रोधित आवाज़ का उपयोग करते हुए पहले कभी नहीं देखा था। नज़ारोव ने कहा : “यह क्या हो रहा है? इसे फ़ौरन बन्द कीजिये! दूसरी जगह चलिये और हम इस मामले पर बातचीत कर लेंगे!”

कन्दीबिन ने अपनी मुद्रा नहीं बदली, लेकिन कुरिलोव्स्की तुरन्त समझ गया कि इस स्थिति से बचने का सबसे बढ़िया तरीक़ा यही है।

“बहुत अच्छा,” उसने बनावटी चुस्ती से कहा। “आइये, मेरे अध्ययन-कक्ष में आइये।”

वह अपने पोर्च के दरवाज़े की तरफ़ चल पड़ा।

''जा, जहन्नु...''

''आ जाओ, आ जाओ,'' नज़ारोव ने कहा, ''अगर आओगे, तो बेहतर होगा।''

''खाक होगा!'' कन्दीबिन कुरिलोव्स्की के पीछे चल पड़ा।

सीढ़ियाँ चढ़नेवाला अन्तिम व्यक्ति नज़ारोव था। चढ़ते समय उसने लड़कों की अपेक्षाकृत शान्त भीड़ से एक आवाज़ सुनी : ''बहुत बढ़िया! वास्या, क्या वे तुम्हारे पिता हैं? यही तो मुझे पसन्द हैं!''

अपने अध्ययन कक्ष में सेम्योन पाव्लोविच, निश्चय ही न कोई चीख़-पुकार मचा सकता था न झगड़ा-टण्टा खड़ा कर सकता था-आख़िर एक मामूली लड़के की खातिर प्रतिष्ठा के इस सँजोये हुए वातावरण को नष्ट करना उचित नहीं था। उसने नम्रता से कुर्सियों की तरफ़ इशारा किया, वह ख़ुद अपने लिखने की मेज़ के पीछे कुसी पर बैठा और मुस्कुराया :

''ये लड़के किसी को भी विक्षुब्ध करने को काफ़ी हैं।''

लेकिन मेज़बान की मुस्कराहट से अतिथियों में कोई अनुक्रिया नहीं हुई। नज़ारोव ने भौंहों को नीचे करके उसकी तरफ़ नज़र उठायी।

''आपको विक्षुब्ध कर दिया था? आपको कुछ अक्ल भी है?''

''आपका क्या मतलब है?''

''आप लड़कों के बीच जाकर चिल्लाये, उन्हें पकड़ा, झकझोरा। आपका इससे क्या मतलब है? आप अपने को समझते क्या हैं?''

''मैं समझता हूँ कि मुझे अपने बेटे को बचाने का हक़ है!''

नज़ारोव खड़ा हो गया और उसने तिरस्कार के साथ हाथ से हिलाया।

''किससे बचाने का? आप उसे कब तक उँगली पकड़ के ले जायेंगे? ज़िन्दगी भर?''

''और आप क्या सोचते हैं?''

''आपने उसे खेलने क्यों नहीं दिया?''

इस पर कुरिलोव्स्की भी उठ खड़ा हुआ।

''कामरेड नज़ारोव, मेरा लड़का मेरा अपना मामला है। मैंने उसे नहीं जाने दिया, बस। मैं समझता हूँ कि मेरा प्राधिकार अभी भी चलता है।''

नज़ारोव दरवाज़े की तरफ़ को बढ़ा। बाहर जाते समय वह पीछे मुड़ा।

''सिर्फ़ यह ध्यान रखना कि आपका लड़का एक कायर और ग़द्दार बन जायेगा।''

''यह कहकर आप किंचित ज़्यादती नहीं कर रहे हैं?''

''यह मेरे बोलने का तरीक़ा है।''

इस वार्तालाप, जो बहुत संयमित नहीं था, के दौरान कन्दीबिन अपनी कुर्सी में ख़ामोश बैठा रहा। उसे शैक्षिक-सिद्धान्त की सूक्ष्म बातों को जानने की कोई इच्छा नहीं थी, लेकिन वह कुरिलोव्स्की को अपने बेटे के साथ दुर्व्यवहार भी नहीं करने दे

सकता था। पर साथ ही प्राधिकार के बारे में कुरिलोव्स्की के शब्दों से वह बहुत ख़ुश हुआ। उसने यह कहने का समय निकाल ही लिया :

"यह सही बात है... प्राधिकार!"

लेकिन वह नज़ारोव के जाने के बाद सिद्धान्ततः वहाँ बैठा नहीं रह सकता था। जब वह सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था, तो नज़ारोव ने उससे कहा : "स्तेपान पेत्रोविच सुनो, तुम एक अच्छे आदमी और अच्छे श्रमिक हो, और मैं तुम्हारा बहुत सम्मान करता हूँ, लेकिन अगर तुम अपने लड़के को अब एक बार भी पीटोगे, तो बेहतर यही है कि तुम शहर छोड़कर चले जाओ, क्योंकि मैं तुम्हें जेल भिजवा दूँगा। समझ लो।"

"जाओ, जाओ, तुम किसे डराने की कोशिश कर रहे हो?"

"मैं ऐसा ही करूँगा, स्तेपान पेत्रोविच!"

"क्या माज़रा है! तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो? मैं उसे पीटता हूँ, यह क्या वास्तव में पीटने की बात है?"

"आज उसने हमारे यहाँ स्नान किया। उसके सारे बदन में नील पड़े थे।"

"क्या कह रहे हो?"

"और वह एक अच्छा लड़का है। अगर तुम ऐसा ही करते रहोगे, तो तुम उसे बर्बाद कर दोगे।"

"लेकिन, कभी-कभी अपना प्राधिकार जताना ही पड़ता है।"

"प्राधिकार, प्राधिकार, यह मूर्खों का सिद्धान्त है और तुम इसे दोहरा रहे हो!"

"तुम बड़े हुज्जती हो, फ़्योदोर इवानोविच! मेरे ख़िलाफ़ तुम्हारी क्या शिकायत है? ईश्वर जानता है कि उनके साथ कैसा बर्ताव होना चाहिये!"

"चलो आओ, मेरे घर चलो, वहाँ बातचीत करेंगे। वहाँ कुछ पीना है और आज मेरी पत्नी जैम के पकौड़े पका रही है।"

"यह इसके लिये शायद ही सही मौका है।"

"यही चलेगा।"

गोलीवीन परिवार में प्राधिकार की समस्या को ऐसे मनोरंजन से प्रतिस्थापित कर दिया गया था, जिसका आधार यह विचार है कि **माता-पिता और बच्चों को दोस्त होना चाहिये।**

यदि यह गम्भीर हो, तो कोई बुरा नहीं है। पिता और पुत्र दोस्त हो सकते हैं और उन्हें होना भी चाहिये। लेकिन पिता फिर भी पिता रहता है, और पुत्र फिर भी पुत्र रहता है, यानी ऐसा लड़का, जिसे लालन-पालन की ज़रूरत होती है और उसका लालन-पालन पिता ही करता है। इस तरह वह अपनी मित्र स्थिति के अलावा कुछ अन्य निश्चित गुण भी ग्रहण कर लेता है। लेकिन अगर माँ और बेटी महज़ मित्र नहीं, खेल की सहेलियाँ हों, और अगर पिता व पुत्र महज़ मित्र नहीं, लँगोटिये यार

हों, लगभग आमोदप्रिय संगी हों तो अतिरिक्त गुण, लालन-पालन के लिये ज़रूरी गुण, अनजाने ही लुप्त होने की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। और गोलोवीन परिवार में वे लुप्त हो गये हैं। इस परिवार में यह पता लगाना कठिन है कि कौन किसका लालन-पालन कर रहा है। जो भी हो, शैक्षिक प्रकृति की भावनाएँ बच्चों द्वारा अधिक व्यक्त की जाती हैं, क्योंकि माता-पिता खेल के नियमों का सही ढंग से पालन करते हैं और इस नियम का सम्मान करते हैं कि जैसा तुम दूसरों से चाहते हो वैसा ही बर्ताव उनके साथ भी करो : खेल तो खेल ही है!

लेकिन यह खेल अपने पुरातन आकर्षण को कब का गँवा चुका है। पहले यह इतना बढ़िया, इतना आनन्ददायी होता था : ''गन्दे पापा, गन्दी मामा!''

जब लालल्या ने पहले-पहल अपने पिता को ग्रीश्का कहकर पुकारा, तो यह परिवार के लिये कैसी ख़ुशी और कैसी हँसी का मौक़ा था। ग्रीश्का! यह उस अद्‌भुत विचार का चरम बिन्दु था, शिक्षण वैज्ञानिक प्रतिभा की पराकाष्ठा था : माता-पिता और बच्चे दोस्त होते हैं! गोलीवीन ख़ुद एक शिक्षक है। इसलिये इस दोस्ती को समझने में उससे बेहतर कौन हो सकता है भला! और उसने इसे समझ लिया है। वह कहा करता था : ''दुनिया के लिये हर नयी चीज़ न्यूटन के सेब की तरह हमेशा सरल होती है! माता-पिता और बच्चों के बीच सम्बन्ध को दोस्ती के आधार पर लाओ-कितना सरल है, कितना सुन्दर है यह!''

वह ख़ुशी अब, दुर्भाग्यवश, अतीत की चीज़ हो गयी है। अब दोस्ती से गोलीवीन परिवार का दम घुट रहा है, वह उनका दम घोटे जा रही है और उससे बाहर निकलने की कोई सूरत नज़र नहीं आती : ज़रा दोस्त को आज्ञाकारी बनाने की कोशिश तो कीजिये!

पन्द्रहवर्षीय लाल्या अपने पिता से कहती है : ''ग्रीश्का, निकोलायेव परिवार में रात के भोजन के समय तुम फिर वही ढेर सारी सड़ियल बातें कर रहे थे!''

''कैसी सड़ियल बातें?''

''कैसी? अरे वही अपने दर्शन को घसीटे जाना : 'येसेनिन ह्रास का सौन्दर्य है!' मुझे तो सुनकर शर्म आती थी। यह इतनी पुरानी चीज़ है, यह तो बच्चों के लिये है। तुम येसेनिन के बारे में क्या जानते हो? तुम शिक्षक अपने स्कूल के नेक्रासोवों और गोगोलों से सन्तुष्ट नहीं रह सकते, अब तुम येसेनिन पर हाथ आजमा रहे हो...''*

गोलोवीन नहीं जानता कि अपने सम्बन्धों की अपरोक्षता और सरलता पर प्रसन्न हो या उनके स्पष्ट गँवारूपन पर अपना सिर पीटे? कुल मिलाकर प्रसन्न होना अधिक शान्तिपूर्ण है। कभी-कभी वह इस समस्या पर विचार भी करता है, लेकिन उसने एक अन्य समस्या पर विचार करना बन्द कर दिया है : वह किस प्रकार के व्यक्ति को पाल-पोस कर बड़ा कर रहा है? दोस्त बनने का खेल अपने ही बूते पर चल रहा

* **नेक्रासेव, नि. अ.** (1821-1878)-रूसी कवि **गोगोल, नि. व.** (1809-1852) रूसी लेखक। **येसेनिन, से. अ.** (1890-1925) रूसी, सोवियत कवि।**-सं.**

है, क्योंकि वह इस सिलसिले में कुछ नहीं कर सकता है।

पिछले साल लाल्या ने सामान्य स्कूल छोड़ दिया और कला-स्कूल में भर्ती हो गयी। उसमें कला की योग्यता नहीं है, वह महज़ ''कलाकार'' शब्द के शानदार अर्थ से आकर्षित है। ग्रीश्का और वार्का दोनों ही इस बात को जानते हैं। उन्होंने इसक बारे में लाल्या से बातें करने की कोशिश भी की, लेकिन लाल्या ने उनकी दस्तन्दाजी को ठुकरा दिया।

''ग्रीश्का, मैं तुम्हारे मामलों में कोई दस्तन्दाजी नहीं करती, इसलिये तुम मेरे मामलों में दस्तन्दाजी मत करो। वैसे भी कला के बारे में तुम क्या जानते हो?''

और ल्योविक कैसा बन रहा है? कौन जाने! जो भी हो, उसमें दोस्त जैसा कुछ है नहीं।

ग्रीश्का और वार्का का जीवन असहाय और दुखद हो गया है। ग्रीश्का उसे हँसी-ख़ुशी की बातों से सँवारने की कोशिश करता है, लेकिन वार्का यह भी नहीं कर सकती। आजकल वे शिक्षा की महान दोस्ती के बारे में कभी बातें नहीं करते और उन अन्य बच्चों पर छुपी हुई ईर्ष्या से देखते हैं, जिन्होंने अपने माता-पिता के साथ दोस्ती की इतनी बड़ी खुराक नहीं पी है।

वास्या नज़ारोव से मिलने पर उन्हें ऐसी ही ईर्ष्या का अनुभव होता है।

वह अभी-अभी बग़ल में टिन का डिब्बा दबाये कमरे में प्रविष्ट हुआ है। गोलोवीन अपनी कापियाँ छोड़ देता है और वास्या की तरफ़ देखता है। शान्त मिलनसार निगाहांउ वाले इस हृष्ट-पुष्ट लड़के को देखकर प्रसन्नता होती है।

''बेटे तुम्हें क्या चाहिये?''

''मैं डिब्बा लाया हूँ। यह लाल्या का है। लाल्या कहाँ है?''

अरे हाँ, हाँ, मुझे याद आया, तुम वास्या नज़ारोव हो?''

''अहा, और आप वह... आपका क्या नाम है?''

''मेरा... मेरा नाम ग्रिगोरी कोंस्तान्तीनोविच है।''

''ग्रिगोरी कोंस्तान्तीनोविच? लेकिन वे आपको कुछ और कहते हैं... ग्री-श्का? यह ठीक है ना?''

''हूँ... ठीक है। अच्छा, बैठ जाओ। हमें बताओ कि तुम्हारे क्या हाल हैं?''

''इस समय हम युद्ध पर हैं। उधर... माखी-पव्रत पर।''

''युद्ध? और क्या पर्वत है यह?''

''देखिये, आप खिड़की से सब कुछ देख सकते हैं! देखिये, वहाँ झण्डा, वह हमारा झण्डा है!''

गोलीवीन ने खिड़की से झाँका और झण्डे सहित पर्वत को देखा।

''क्या यह युद्ध बहुत लम्बे समय से चल रहा है?''

''दो दिन हो चुके हैं!''

''वहाँ कौन लड़ रहा है?''

‘‘सारे लड़के। आपका ल्योविच भी। कल वह युद्धबन्दी बना लिया गया था।’’

‘‘ऐसी बात है? बन्दी भी बना लिया गया? ल्योविक!’’ अगले कमरे से लाल्या प्रकट हुई।

‘‘सुबह से अब तक ल्योविक का कोई चिह्न नहीं, वह तो खाना खाने भी नहीं आया।’’

‘‘वह युद्ध में बहुत व्यस्त होगा? ख़ैर, वास्या तुम्हारा डिब्बा लाया है।’’

‘‘आह, वास्या, तो तुम डिब्बा ले आये! तुम भलेमानुष हो!’’

लाल्या ने अपना बाजू वास्या के गिर्द रखा और उसे बग़ल में बैठा लिया।

‘‘मुझे इस डिब्बे की सख़्त ज़रूरत है! तुम कितने प्यारे हो! तुम इतने प्यारे क्यों हो? याद है, मैंने तुम्हें कैसे मारा था? याद है?’’

‘‘वह कोई ख़ास नहीं था। उससे कोई चोट भी नहीं लगी। क्या तुम सबको पीटती हो? ल्योविक को भी?’’

‘‘देखो, ग्रीश्का, कैसा प्यारा लड़का है, ज़रा देखो!’’

‘‘हाँ-हाँ, देख रहा हूँ।’’

‘‘काश तुम्हारा और वार्का का भी ऐसा ही बेटा होता!’’

‘‘लाल्या!’’

‘‘बस! यही तो तुम कह सकते हो ‘लाल्या’! अगर एक आवारा छोकरे के बजाय मेरा ऐसा ही एक भाई होता। वह तो असली आवारा हे। आज सुबह वह मेरा हरा बटुवा बेच आया।’’

‘‘क्या कह रही हो, लाल्या, सचमुच?’’

‘‘हाँ, किसी लड़के को, पचास कोपेक में। और उस पैसे से अपने लिये कौव्वे का एक बच्चा ख़रीद लाया। अब वह उसे पोर्च के नीचे रखे हुए है और उसे सताने में लगा हैं यह है तुम्हारा लालन-पालन।’’

‘‘लाल्या!’’

‘‘ज़रा उसे देखो, वास्या! वह और कुछ नहीं कह सकता। सिर्फ़ तोते की जैसी रट लगा सकता है!’’

‘‘लाल्या!’’

वास्या ज़ोर से हँसा और ग्रीश्का को ऐसे घूरने लगा मानो वह कोई विचित्र विदेशी परिन्दा हो।

लेकिन गोलोवीन ने बुरा नहीं माना, न ही वह दरवाज़े को ज़ोर बन्द करता हुआ कमरे के बाहर हो गया। और तो और, वह संकोच से थोड़ा-सा मुस्कराया भी।

‘‘मैं ल्योविक और तुम दोनों के बदले वास्या को लेने के लिये तैयार हूँ!’’

‘‘ग्रीश्का, तुम ल्योविक के बारे में, जितना मर्जी, बोल सकते हो, लेकिन मेरे बारे में अब फिर कभी मत बोलना।’’

ग्रीश्का ने अपने कन्धे उचका दिये। वह और कर भी क्या सकता था?

वास्या के अहाते और ''कुचुगुरी'' दोनों जगहों पर जीवन चलता रहा। उत्तर और दक्षिण वालों के युद्ध में दोनों पक्षों के भाग्य में उलटफेर होते रहे। अनेक विजयें, पराजयें हुईं और वीरतापूर्ण कारनामे किये गये। विश्वासघात की घटनाएँ भी हुईं। ल्योविक ने उत्तरवालों से विश्वासघात किया। उसने शत्रु पक्ष में नयी दोस्ती बना ली या शायद वह भी दोस्ती नहीं कुछ और ही थी। जब तीन दिन बाद उसने उत्तरी सेना में फिर भर्ती होना चाहा, तो सेर्योजा स्काल्कोव्स्की ने आदेश दिया कि वह सैनिक अदालत के सामने खड़ा हो। ल्योविक ने आदेश का पालन किया, लेकिन उसका कुछ परिणाम नहीं निकला : ऐसी ग द्दारी को माफ़ करने के लिये अनिच्छुक अदालत ने उसकी प्रतिष्ठा को पुनः बहाल करने से इंकार कर दिया। ल्योविक ने इसका बुरा नहीं माना और न क्रोधित ही हुआ। उसने एक नया मनोरंजन खोज निकाला। ''कुचुगुरी'' के किनारे पर कहीं, उसने अपने लिये एक गुफ़ा खोदनी शु कर दी और उसके बारे में कई क़िस्से सुनाये और यह बताया कि वहाँ कितने टेबल और कितने ख़ाने हैं, बाद में उस गुफ़ा की बात सभी भूल गये और ख़ुद ल्योविक को भी उसकी याद नहीं रही।

युद्ध इतने लम्बे समय तक नहीं चल सका कि किसी एक पक्ष की पूर्ण पराजय हो जाती। जब सैनिक कार्रवाइयाँ दूर दक्षिण की तरफ़ की जा रही थीं, तब विरोधी फ़ौजें घास के तटों वाली एक सुन्दर झील के पास आ पड़ीं और झील से परे चेरी के बाग़, सूखी घास के ढेर, सारस की शक्ल के कुएँ और कुटियाएँ उनकी नज़र में आयीं। यह कोर्चागी गाँव था।

दक्षिणवालों की पहल पर, युद्ध को तुरन्त बन्द करने और नये इलाके के अन्वेषणार्थ एक अभियान-दल संगठित करने का फ़ैसला लिया गया। जब वास्या के पिता ने इसमें भाग लेने का फ़ैसला किया, तो यह अभियान शानदार पैमाने पर विकसित हुआ। वास्या तो मारे ख़ुशी के कई दिनों तक हँसता-मुस्कराता अहाते में इधर-उधर घूमता रहा।

अभियान सुबह चार बजे से लेकर देर शाम तक चला। इसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि कोर्चागी में एक अत्यन्त शक्तिशाली संगठन की खोज थी। उसे देखकर सेर्योजा स्काल्कोव्स्की ने उद्‌गार प्रकट किये :

''यह है कोई, जिससे लड़ा जा सकता है! यही तो मैं देखना पसन्द करता हूँ!''

कोर्चागियों का अपना ही फुटबाल-मैदान था और उसमें असली गोल-पोस्ट लगे थे। अभियान दल ऐसी उच्च कोटि की सभ्यता को देखकर, शब्दशः स्तम्भित रह गया। कोर्चागी के कुछ लड़कों ने एक दोस्ताना मैच खेलने का सुझाव दिया, लेकिन इस हार्दिकतापूर्ण निमंत्रण के जवाब में अभियान-दल झेंपने के सिवा और कुछ नहीं कह पाया।

वास्या को अपने साथ लेकर जीवन चलता रहा। उसके खिलौना-संसार में मोटरकारें

और रेलें अभी भी खड़ी थीं, एक बूढ़ा और टूटा-फूटा वांका-व्स्तांका अभी भी उनकी निगरानी करता रहता था, पुल निर्माण सामग्री तथा सुन्दर डिब्बे में रखी कीलें सभी ठीक-ठाक थीं-लेकिन वे अतीत की वस्तुएँ बन चुकी थीं

कभी-कभी वास्या अपने खिलौना-संसार के सामने खड़ा हो जाता और उसकी नियति पर विचार करता, लेकिन अब वह सोत्साह-सपने नहीं जगाता था। वास्या को लड़कों के साथ अहाते में जाने की अन्तःप्रेरणा का अनुभव होता-जहाँ युद्ध लड़े जाते थे, जहाँ झूले डालते थे, जहाँ नये शब्द सुनने को मिलते थे : ''इनसाइड-लेफ़्ट'' और ''हाफ़्-बैक'' और जहाँ वे जाड़ों के दिनों में पहाड़ी की ढलान पर स्लेजगाड़ी से फिसलने के सपने अभी से देखने लगे थे।

एक दिन बाप-बेटे दोनों एक-सा खिलौना-संसार के सामने खड़े थे और पिता ने कहा : ''वास्या, ऐसा लगता है कि तुम उस पुल को बड़ा होने पर बनाओगे-तब असली पुल होगा और असली नदी के ऊपर होगा।''

वास्या ने क्षण भर विचार किया और फिर उत्तर दिया, ''लेकिन उसे बनाने में समर्थ होने के लिये... पहले मुझे ढेर सारा पढ़ना पड़ेगा। लेकिन इस समय क्या होगा?''

''इस समय हम एक स्लेजगाड़ी बनाने जा रहे हैं। अब बर्फ़ गिरने में कुछ ही देर है।''

''एक मेरे लिये और एक मित्या के लिये भी।''

''अवश्य। अच्छा, यह बात तो हो गयी। लेकिन कुछ और बात भी है : इन गर्मियों में तुम किंचित सुस्त रहे हो।''

''कैसे?''

''तुम आलमारी के ख़ानों को शायद ही साफ़ करते हो। अख़बार तह किये हुए नहीं हैं, फूलों में पानी नहीं डाला गया है। और अब तुम बड़े लड़के हो गये हो, हमें तुम्हारे कामकाज बढ़ाने होंगे। तुम्हें सुबह कमरों को झाड़ना होगा।''

''पर आप एक अच्छी-सी बेहारी ख़रीद दीजिये-वैसी ही जैसी कि कन्दीबिन के घर में है।''

''अरे, वह बेहारी नहीं बुहारी है'', उसके पिता ने ग़लती सुधारते हुए कहा।

इन दिनों कन्दीबिन परिवार में एक असली पुनर्जागरण काल चल रहा था। इस युग का प्रतीक वह बुहारी थी, जिसे कन्दीबिन ने नज़ारोव के घर में पकौड़े खाने और वोद्का के जाम पीने के दूसरे दिन ख़रीदा था। वह वास्या के पिता के साथ अपनी बातचीत में अधिक अड़ियलपन दिखला सकता था, लेकिन जब पास में एक डिकैन्टर रखा हो, मेज़ पर खट्टी मलाई का बड़ा-सा कटोरा भरा पड़ा हो, और जब आपकी मेज़बान आपकी तश्तरी में दर्जनों पकौड़े रखते हुए कहती हो : ''तुम्हारा मित्या कितना अच्छा लड़का है! हमें ख़ुशी है कि वास्या और वह दोस्त हो गये हैं'', तो आप ऐसा कैसे कर सकते हैं!

इसलिये कन्दीबिन ने ईमानदारी से एक आज्ञाकारी अतिथि बनने का प्रयत्न किया, और नज़ारोव ने जो कहा, वह उसे अच्छा लगा। नज़ारोव ने बग़ैर लाग-लपेट के साफ़ बात कही।

''मुझे रोकना मत! मैंने तुमसे अधिक सीखा और पढ़ा है, अधिक देखा है। तुम अगर मुझसे नहीं, तो किससे सलाह लोगे? तुम्हें चाहिये कि तुम अपने बेटे से और अपनी गृहस्थी में भी भिन्न व्यवहार करो। तुम एक समझदार आदमी हो। ऐसे अच्छे लड़के को पीटने में क्या तुक है? यह तो शालीन बात नही है, समझे? यह तो पतलून पहने बिना ही सड़क में चलने जैसी हरकत है। तुम यह पकौड़े खाओ, बहुत बढ़िया है! अफ़सोस, तुम्हारी पत्नी यहाँ नहीं है... ख़ैर फिर कभी और वक़्त इकट्ठे होंगे।''

कन्दीबिन ने पकौड़े खाये, झेंपा और हर बात से सहमत हो गया। जब जाने का समया आया, तो उसने नज़ारोव से कहा : ''फ़्योदोर इवानोविच, इस बातचीत का शुक्रिया। जब तुम्हें फुर्सत हो, तो आकर देखना कि हम कैसे रहते हैं। मेरी पत्नी पोल्या भी अच्छे पकौड़े बनाती है।''

वास्या की कहानी समाप्त हो गयी। इसका मक़सद उपदेश देना नहीं है। मैं बारीकियों के बग़ैर जीवन के एक छोटे-से अंश को, उन अशों में से एक अंश को दर्शाना चाहता था, जो रोज़ हमारी निगाहों के सामने सैकड़ों की संख्या में गुज़रते हैं और जो हममें से कुछ ही को ध्यान देने लायक़ जान पड़ते हैं। यह हमारा बड़ा सौभाग्य था कि हम वास्या के जीवन के सर्वाधिक दायित्वपूर्ण और निर्णायक क्षण पर, उस क्षण पर उसके साथ रहे, जब एक लड़का पारिवारिक नीड़ की सुखद ऊष्मा को छोड़कर जीवन की खुली चौड़ी सड़क पर आता है, जब वह पहली बार समूह का सदस्य बनता है, अतः पहली बार एक नागरिक बनता है।

इस संक्रमण को टाला नहीं जा सकता है। यह उतना ही स्वाभाविक और महत्वपूर्ण है, जितना स्कूल की पढ़ाई समाप्त करना, पहले दिन काम पर जाना या विवाह करना। सभी माता-पिता इस बात को जानते हैं, लेकिन उनमें से अनेक इस निर्णायक मौक़े पर अपने बच्चे को असहाय छोड़ देते हैं, और जो ऐसा करते हैं वे वही लोग होते हैं, जो या तो पैतृक शक्ति के कारण सबसे ज़्यादा अन्धे होते हैं या माता-पिता हाने का अभिनय करने के कारण।

बच्चा एक जीवित व्यक्ति होता है। वह किसी भी दशा में हमारे जीवन का एक आभूषण मात्र नहीं होता, वह स्वयं अपने में एक पृथक जीवन होता है। एक बच्चे की भावना-शक्ति, गहन संवेदनशीलता, संकल्प की शुद्धता व सौन्दर्य के अनुसार जाँचने पर उसका जीवन वयस्कों की तुलना में अतुलनीय रूप से अधिक समृद्ध होता है। इसलिये उसकी विविधताएँ शानदार ही नहीं ख़तरनाक भी होती हैं। इस जीवन के सुख और दुख अधिक गहनता से उसके मन को मथ देते हैं और समूह के सदस्यों के बीच, शीघ्र ही, उसके भले चरित्रों को और दुराचारी, अविश्वासी तथा एकाकी

चरित्रों को भी जन्म देने में सक्षम हो जाते हैं।

जब आप इस पूर्ण, विशद और कमनीय जीवन को सदा देखें और जानें, इस पर चिन्तन-मनन करें तथा इसमें भाग लें तभी आपका मातृ-पैतृक प्राधिकार कारगर व उपयोगी होगा, क्योंकि यह वह शक्ति है, जिसे आपने स्वयं अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में पहले से ही संचित कर के रखा है।

लेकिन अगर आपका प्राधिकार, एक जीवनहीन रंजित गुड़िया की भाँति, बच्चे के जीवन के बाह्य-प्रान्तर में ही खड़ा रहता है, यदि बच्चे का चेहरा, उसके हाव-भाव, मुस्कानें, चिन्तनशीलता और आँसू आपके द्वारा अनदेखे ही रह जाते हैं, यदि आपके पिता-रूप से नागरिक रूप मेल नहीं खाता है, तो आपका प्राधिकार चाहे वह किसी भी प्रकार के क्रोध या पेटी-सेटी से लैस क्यों न हो, शून्य से भी गया-गुज़रा है।

यदि आप अपने बच्चे को पीटते हैं, तो वह बच्चे के लिये हर हालत में एक त्रासदी है, या तो दर्द और चोट की त्रासदी या आदतन उपेक्षा तथा हठपूर्ण बचकानी सहिष्णुता की त्रासदी।

लेकिन वह त्रासदी बच्चे की है। आप स्वयं एक सुदृढ़ वयस्क आदमी, एक व्यक्ति व नागरिक, दिमाग़ और पेशियोंवाले एक प्राणी आप, जो वर्द्धमान बच्चे के दुर्बल, मृदु शरीर पर घूँसे चलाते हैं-आप क्या है? सबसे पहले आप असहनीय रूप से उपहासास्पद हैं, यदि आपके बच्चे के लिये दुख न होता, तो आपकी शैक्षिक बर्बरता को देखकर इतनी हँसी आ सकती है कि हँसते-हँसते आँसू आ जायें। आपके बारे में सर्वोत्तम बात, जी हाँ, 'सर्वोत्तम' बात यह कही जा सकती है, कि आप अपने बच्चे के पालन-पोषण में जुटे एक बनमानुष से मिलते-जुलते हैं।

आप समझते हैं कि यह अनुशासन के लिये ज़रूरी है?

इस तरह के माता-पिता का अनुशासन कभी नहीं चलता। उनके बच्चे उनसे महज़ घबराते हैं और उनके प्राधिकार तथा सत्ता के दायरे के बाहर रहने का प्रयत्न करते हैं

और बहुधा उतनी ही जंगली और उतनी ही विनाशक एक बचकानी निरंकुशता भी मातृ-पैतृक निरंकुशता के साथ रहना तथा परिवार में लिप्त होने का जुगाड़ कर लेती है। यह बचकानी दुराग्रहिता का, पारिवारिक समूह के वास्तविक अनिष्ट का प्रारम्भ है।

अधिकांश दुराग्रहिता मातृ-पैतृक निरंकुशता के ख़िलाफ़ स्वाभाविक प्रतिरोध क रूप में प्रकट होती है। माता-पिता की यह निरंकुशता शक्ति के दुरुपयोग में, किसी भी तरह के आधिक्य में व्यक्त होती है : प्रेम के आधिक्य में, कठोरता, कोमलता, पोषण, चिड़चिड़ाहट अन्धता और बुद्धिमत्ता के आधिक्य में। लेकिन बाद में दुराग्रहिता एक प्रतिरोध नहीं रह जाती, बल्कि माता-पिता और बच्चों के बीच अन्तर्क्रिया की एक स्थायी आदत का रूप ग्रहण कर लेती है।

पारस्परिक निरंकुशता की दशाओं में अनुशासन और स्वस्थ लालन-पालन के अन्तिम अवशेष भी मिट जाते हैं। बच्चे के व्यक्तित्व में वृद्धि के दिलचस्प और महत्वपूर्ण परिवर्तन दुराग्रहपूर्ण व नासमझ बतंगड़ में, मिथ्याभिमानियों और अहंकारियों को सेने-पोसने की विवेकशून्य प्रक्रिया में इस तरह लुप्त हो जाते हैं मानो कोई दलदल उन्हें लील गया हो।

सही ढंग से संगठित पारिवारिक समूह में, जहाँ मातृ-पैतृक प्राधिकार किसी विकल्प से प्रतिस्थापित नहीं होता, भद्दी, अनैतिक, अनुशासनात्मक करामातों की ज़रूरत नहीं होती। ऐसे परिवार में हमेशा पूर्ण व्यवस्था होती है और आवश्यक सम्मान और आज्ञाकारिता विद्यमान होती है।

क्षुद्र निरंकुशता, क्रोध, चीख़-चिल्लाहट, प्रार्थना, समझाना-मनाना नहीं, बल्कि शान्त, व्यावहारिक हिदायतें पारिवारिक लालन-पालन की तकनीक की बाह्य अभिव्यक्ति होनी चाहिये। इस बात पर न तो आपको और न आपके बच्चों को कोई सन्देह होना चाहिये कि समूह के एक ज्येष्ठ, प्राधिकारप्राप्त सदस्य की हैसियत से आपको ऐसी हिदायतें देने का अधिकार है या नहीं। प्रत्येक माता व पिता को हिदायतें देना सीखना चाहिये और मातृ-पैतृक आलस्य या घरेलू शान्ति की आड़ लेने के बजाय उन हिदायतों का अनुपालन करवाने में सक्षम होना चाहिये। तब वे हिदायतें सामान्य, स्वीकृत, पारम्परिक रूप ग्रहण कर लेंगी और तब आप उनमें निर्देश के स्वर से लेकर सलाह, मार्गदर्शन, व्यंग्य, कटूक्ति, निवेदन और संकेत के स्वरों तक, विविध स्वरों का आभास देना सीख जायेंगे। और आगे, अगर आप अपने बच्चों की असली और काल्पनिक ज़रूरतों के बीच अन्तर करना सीख लेंगे तो आप स्वयं भी यह नहीं देख पायेंगे कि आपकी मातृ-पैतृक हिदायतें आपके तथा आपके बच्चों के बीच मैत्री के सर्वाधिक प्रिय तथा सुखद रूप धारण करती जा रही हैं।

सातवाँ अध्याय

कर्तव्य पूरे करता नहीं वह,
और रुग्ण प्रतिष्ठा उसकी सारी मर जाती है।
पर उधर, दयिता से उसकी, सुखद-सुहाने अनुलेपन मुस्काते हैं,
पैरों से उसके हँसते हैं सिकियोनी जूते अद्‌भुत;
ऊपर उसके, बड़ी-बड़ी और अनगिन, हरित किरण बिखराती
मरकत-मणि, जड़ी स्वर्ण में झिलमिल करती;
और सागर सम नीला रेशम
आवेष्टित करता है उसको, आर्द्रता से, मन्दोन्मत्त निषिद्ध प्रेम की।
उसके पुरखों द्वारा संचित था जो, अब कभी
प्रदर्शित होता है अलंकृत रिबनों में,
सिर पर उसके, रत्नजटित मुकुटों की ज्वाला में और कभी
अलीदोनियाई साँचे के, किंवा कियन के ढीले वस्त्रों में;
...इसीलिये, कविवाणी से पूर्व-प्रबोधित तू, चौकसी से सुविचारित,
बच, ताक लगाये उन जालों से; क्योंकि
एक बार भी फिसला पैर अगर तेरा?,
तो उलझानेवाले उन फन्दों को तोड़ मुक्त होने से
बहुत सरल है उन जालों से बच के रहना।

लुक्रेशियस, 'दे रेरम नातुरा'
(ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी)

ल्यूबा गोरेलोवा से मेरी मुलाकात संयोगवश तब हुई, जब वह एक छोटे-से मामले पर मुझसे मिलने आयी। जिस समय मैं आवश्यक पुर्ज़े पर लिख रहा था, उस समय वह चुपचाप अपनी कुर्सी पर बैठी थी। उसके हाथ उसकी गोद में एक-दूसरे के आर-पार रखे हुए थे और वह बीच-बीच में ठण्डी साँसे लेती दूर कहीं ताक रही थी। वह लगभग उन्नीस वर्ष की थी और उन साफ़-सुथरी लड़कियों में से थी, जो अपने सर्वाधिक दुखी क्षणों में भी अपने वस्त्रों को सुव्यवस्थित रखना कभी नहीं भूलती।

''तुम ऐसी दुखभरी साँसें क्यों ले रही हो?'' मैंने पूछा। ''क्या तुम संकट में हो?''

ल्यूबा ने अपने सजे-सँवरे छोटे सिर को झटके से उठाया, धीमे से निश्वास छोड़ा और दयनीय ढंग से मुस्करायी।

''नहीं... यह कोई बड़ी बात नहीं है। मैं संकट में थी, लेकिन अब वह दूर हो

गया है।''

मुझे अपने जीवन में लड़कियों के संकटों के बारे में काफ़ी कुछ बातों से वास्ता रहा है और मुझे उन पर विचार-विमर्श करने का अभ्यास है।

''दूर हो गया, और तुम अभी भी उसके बारे में आहें भर रही हो?'' मैंने आगे सवाल किया।

ल्यूबा एक बार काँपी और उसने मेरी तरफ़ देखा, उसकी उत्सुक भूरी आँखों में दिलचस्पी की ज्योति झलकी।

''क्या आप पसन्द करेंगे कि मैं अपने बारे में सब कुछ बताऊँ?''

''हाँ करूँगा।''

''यह एक लम्बी कहानी है!''

''कोई बात नहीं...''

''मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया है...''

मैंने आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखा : लगता था कि उसकी लम्बी कहानी खत्म हो गयी। और जहाँ तक विवरणों का प्रश्न था, आप उन्हें उसके चेहरे में देख सकते थे : छोटा-सा गुलाबी मुँह मुस्काता काँप रहा था और आँखों में आँसू झलक रहे थे।

''तुम्हें छोड़ दिया!?''

''हाँ,'' उसने फुसफुसाकर कहा और बच्चों की तरह सिर हिलाया।

''क्या वह अच्छा आदमी था... तुम्हारा वह पति?''

''हाँ... बहुत अच्छा! बहुत, बहुत अच्छा!''

''तुम उसे प्यार करती थीं?''

''क्यों नहीं? अवश्य करती थी, मैं उसे अब भी प्यार करती हूँ।''

''क्या तुम्हें इसका दुख है?''

''हाँ, बहुत ही ज़्यादा।''

''तो तुम्हारे संकट अभी पूरी तरह दूर नहीं हुए हैं?''

ल्यूबा ने चुनौती भरे सन्देह की नज़र से मुझे देखा, लेकिन मेरे ईमानदार ढंग से वह फिर आश्वस्त हो गयी।

''नहीं, हो चुके हैं... सारा मामला खत्म हो गया है। मैं इसमें क्या कर सकती हूँ?''

उसकी मुस्कान ऐसी भोली-भाली और असहाय थी कि मैं भी यही सोचने लगा कि वह सचमुच क्या कर सकती है।

''हाँ, तुम क्या कर सकती हो? तुम्हें अपने पति को भूलना होगा और फिर सब कुछ नये सिरे से शुरू करना होगा। तुम फिर शादी कर लोगी...''

ल्यूबा ने अवज्ञा से मुँह बनाया।

''किससे? वे सब ऐसे ही...''

''तो तुम्हारा पति भी अनोखा नहीं था। वह तुम्हें छोड़ गया, है कि नहीं? वास्तव में वह प्यार करने लायक़ ही नहीं है!''

''क्या कह रहे हैं, 'प्यार करने लायक नहीं?' आप उसे जानते तक नहीं!''

''उसने तुम्हें क्यों छोड़ा?''

''उसे किसी और से प्यार हो गया!''

ल्यूबा ने यह बात शान्ति से, लगभग सन्तोष के साथ कही।

''ल्यूबा, क्या तुम्हारे माता-पिता जीवित हैं?''

''हाँ, हैं। डैडी और ममी! वे शादी करने की वजह से मुझसे भला-बुरा कहते रहते हैं।''

''यह ठीक भी है, बिल्कुल ठीक।''

''नहीं, नहीं है। इसमें ठीक क्या है?''

''सच, वे ठीक कहते हैं, तुम अभी बच्ची हो, तिस पर तुम्हारी शादी भी हो गयी है और तलाक भी।''

''तो... तो क्या हुआ! इससे उनका क्या वास्ता?''

''क्या तुम उनके साथ नहीं रह रही हो?''

''मेरा अपना ही अलग कमरा है। मेरा पति मुझे छोड़ गया और अपनी... के साथ रहने चला गया। वह कमरा अब मेरा है। मैं दो सौ रूबल कमाती हूँ। और मैं बच्ची नहीं हूँ! आप मुझसे बच्ची कैसे कहते हैं?''

ल्यूबा ने क्रुद्ध आश्चर्य से मेरी तरफ़ देखा और मैं समझ गया कि जीवन में खेले जानेवाले इस खेल में वह नितान्त गम्भीर है।

हमारी अगली भेंट ऐसी ही परिस्थितियों में हुई। ल्यूबा उसी आराम-कुर्सी में बैठी थी। अब वह बीस वर्ष की हो गयी थी।

हाँ, तो तुम्हारे पारिवारिक मामले कैसे चल रहे हैं?''

''इतने अच्छे कि शब्दों में बताया नहीं जा सकता।''

''अहा, तो तुम्हें तुम्हारे... उस... से कोई बेहतर आदमी मिल गया।''

''नहीं, ऐसा कुछ नहीं हुआ। मैंने उसी व्यक्ति से शादी कर ली है... दूसरी बार!''

''ऐसा कैसे हुआ?''

''बस हो गया। वह मेरे पास आकर रोया। उसने कहा कि मैं किसी भी और लड़की से बेहतर हूँ। लेकिन यह सच नहीं है, न? मैं किसी भी अन्य से बेहतर नहीं हूँ, हूँ क्या?''

''हूँ... रुचियाँ भिन्न होती हैं, तुम जानती हो... जो भी हो तुम्हारे बारे में बुरा क्या है?''

''यह कहा आपने! इसका मतलब है वह मुझसे प्यार करता है। और ममी-डैडी ने कहा कि मैं बेवकूफ़ी कर रही हूँ। लेकिन उसने कहा : 'आओ, सब कुछ भुला दें।''

''और क्या तुम सब कुछ भूल गयीं?''

''हाँ,'' ल्यूबा ने वैसे ही शान्त भाव से फुसफुसाते हुए कहा, और बच्चों की तरह

सिर हिलाया। फिर उसने मेरी तरफ़ गम्भीर कौतूहल से देखा, गोया वह यह परखना चाहती हो कि जीवन में जो खेल वह खेल रही है, उसे मैं समझा या नहीं।

ल्यूबा गोरेलोवा से मेरी तीसरी मुलाक़ात सड़क पर हुई। वह अपने हाथ में कुछ बड़ी-सी पुस्तकें लिये बग़ल के एक मोड़ से सहसा प्रकट हुई और ट्राम पकड़ने के लिये दौड़ी, पर मुझे देखकर चिल्लायी :

"हलो! क्या ही अच्छा हुआ कि आपसे भेंट हो गयी!"

वह ठीक वैसी ही युवती थी, वैसी ही सजी-सँवरी और उसका ब्लाउज़ उतना ही साफ़-सुथरा और इस्तरी किया हुआ था। लेकिन उसकी भूरी आँखों में सुस्ती का, एक प्रकार की आन्तरिक थकान का चिह्न था और उसके चेहर का रंग पहले से अधिक हल्का पड़ गया था। वह इक्कीस वर्ष की हो गयी थी।

वह मेरी बग़ल में चलती और मृदु स्वर से दोहराती गयी :

"क्या ही अच्छा हुआ कि आपसे भेंट हो गयी।"

"तुम्हें इतनी प्रसन्नता क्यों है? क्या तुम्हें किसी चीज़ के लिये मेरी ज़रूरत है?"

"हाँ, ऐसा कोई नहीं है, जिसे मैं अपने मन की बातें बता सकूँ।"

और उसने एक गहरी साँस ली।

"क्या तुम फिर संकट में पड़ गयी हो?"

उसने सड़क पर निगाह टिकाये शान्त स्वर में कहा :

"मैं संकट में थी, भारी संकट में! मुझे रोना तक आ गया। आप जानते हैं, उसने अदालत में अर्ज़ी दी। और अदालत ने फ़ैसला सुना दिया, और अब हमें 150 रूबल प्रतिमास देने पड़ते हैं। निर्वाह-ख़र्च। यह कोई ज़्यादा तो नहीं है, मेरे पति को 500 रूबल मिलते हैं और मुझे ढाई सौ। लेकिन यह अफ़सोस की बात है, और जानते हैं, एक तरह से शर्म आने लगती है। आप जानिये, ईमानदारी से कहती हूँ! लेकिन वे ग़लती पर थे। वह मेरे पति का बच्चा कतई नहीं था, लेकिन वह गवाह ले आयी..."

"सुनो ल्यूबा, तुम उसे निकाल बाहर करो!"

"किसे?"

"अपने इसे... पति को।"

"आप ऐसी बात कैसे कह रहे हैं! अब वह ऐसी कठिन स्थिति में है। उसके पास एक फ़्लैट भी नहीं है। धन का भुगतान करना है, और भी बहुत-सी बातें हैं..."

"लेकिन तुम उसे प्यार तो नहीं करती।"

"नहीं करती? क्या कह रहे हैं? मैं उसे बहुत प्यार करती हूँ! आप नहीं जानते, वह कितना अच्छा है! और पिताजी कहते हैं वह निकम्मा निखट्टू है! माताजी कहती हैं : 'तुम पंजीकृत नहीं, इसलिये उसे छोड़ो!'"*

* इसका मतलब यह है कि उन्होंने विवाह पंजीकरण-कार्यालय में अपने विवाह को क़ानूनन पंजीकृत नहीं कराया था।-सं.

''लेकिन, क्या तुम लोग पंजीकृत नहीं हो?''

''ना, नहीं हैं। हम पहले पंजीकृत नहीं हुए और अब इसके लिये बहुत देर हो चुकी है।''

''बहुत देर कैसे? तुम हमेशा पंजीकृत हो सकते हो।''

''मैं जानती हूँ। लेकिन इसका मतलब है-तलाक़ लेना वग़ैरह-वग़ैरह...''

''तुम्हारा मतलब है कि तुम्हारे पति को लेना है? उसी से, जिसके बच्चे को वह निर्वाह-ख़र्च देता है, उसी से?''

''नहीं, उसके साथ वह कभी भी पंजीकृत नहीं हुआ। किसी और से लेना है।''

''किसी और से? तो वह कौन है... उसकी पुरानी पत्नी?''

''पुरानी क्यों? उसके साथ वह अभी हाल ही में पंजीकृत हुआ था।''

मैं हक्का-बक्का रह गया।

''लेकिन मैं कुछ भी नहीं समझा। फिर यह उसकी तीसरी पत्नी होगी?''

ल्यूबा ने मुझे समझाने की बहुत कोशिश की।

''हाँ, अगर आप मुझे भी गिनें, तो वह तीसरी है।''

''लेकिन उसे वक़्त कब मिला? कैसे वह यह कर सका?''

''वह उसके साथ, जो निर्वाह-ख़र्च पाती है, बहुत समय नहीं रहा... ज़्यादा नहीं रहा। फिर जब तक यह तीसरी नहीं मिली, योंही भटकता रहा। उसके पास एक कमरा था, इसलिये उन्होंने साथ-साथ रहना शुरू कर दिया। लेकिन उसने कहा कि उसे ऐसे रहना पसन्द नहीं है, उन्हें विवाह-पंजीकरण कराना ही चाहिये। उसने सोचा कि ऐसा करना बेहतर होगा, इसलिये उसने पंजीकरण करा लिया। लेकिन पंजीकरण के बाद वे सिर्फ़ 10 दिन तक साथ रहे...''

''फिर क्या हुआ?''

''फिर जैसे ही उसने मुझे मैट्रो में देखा...एक साथी के साथ... उसे सहसा बहुत दुख हुआ और वह मेरे पास आया और बेइन्तहाँ रोया।''

''शायद वह हर बार झूठ बोल रहा था और किसी के भी साथ पंजीकृत नहीं रहा...''

''नहीं, उसने इसके बारे में कुछ नहीं कहा। यह बात उसने बतायी, जिसके साथ वह पंजीकृत था, वह मेरे पास आयी और सब कुछ बता गयी...''

''क्या वह भी रोयी?''

''हाँ,'' ल्यूबा ने शान्ति से कहा और बचकाने अन्दाज़ में सिर हिलाया। उसने मुझे ध्यान से देखा। मैं क्रोधित हो गया और इतने ज़ोर से चिल्लाया कि सारे राह चलते लोगों ने सुना :

''उसे गर्दन पकड़कर निकाल बाहर करो, फ़ौरन! तुम्हें अपने आप पर शर्म आनी चाहिये!''

ल्यूबा ने अपनी बड़ी-बड़ी पुस्तकों को कसकर पकड़ लिया और दूसरी तरफ़ को

सिर घुमा लिया, शायद उसकी आँखों में आँसू हों। फिर वह मुझे नहीं, सड़क के दूसरे हिस्से को सम्बोधित करके बोली :

"मैं उसे कैसे निकाल सकती हूँ? मैं उसे प्यार करती हूँ।"

ल्यूबा गोरेलोवा से मेरी चौथी मुलाक़ात एक सिनेमाघर में हुई। वह विश्राम-कक्ष में, कोने के बड़े सोफ़े पर एक युवक के साथ सटकर बैठी थी। वह घुँघराले बालोंवाला एक सुन्दर युवक था और उसके कान में कुछ फुसफुसा रहा था और हँस रहा था। वह अपनी सुखी भूरी आँखों से दूर कहीं निहारती हुई ध्यान से उसकी बातें सुन रही थी। वह हमेशा की तरह स्वच्छ-सुघड़ थी और मैंने उसकी निगाहों में कोई रंज भी नहीं देखा। अब वह बाईस वर्ष की हो गयी थी।

मुझे देखकर वह प्रसन्न हो गयी और सोफ़े से उछलकर दौड़ती हुई आयी और मेरी आस्तीन पकड़ ली।

"आइये, मेरे पति से मिलिये!"

युवक मुस्कराया और उसने मुझसे हाथ मिलाया। उसका चेहरा सचमुच ही मनोहारी था। उन्होंने मुझे अपने बीच में बिठा लिया। ल्यूबा मुझसे मिलकर सचमुच प्रसन्न थी, वह मेरी आस्तीन को बार-बार खींचती थी और बच्चों की तरह हँस रही थी।

"मैंने आपके बारे में बहुत सुना है। ल्यूबा ने मुझे बताया है कि आप उसकी नियति हैं। जैसे ही उसने आपको देखा वैसे ही बोली, 'यह रही मेरी नियति'।" उसके पति ने पुरुषोचित संयम से कहा।

"क्या यह सच नहीं है, नहीं है क्या? ल्यूबा हर किसी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती हुई बोली। वह मेरे कन्धों की ओट हो गयी और बनावटी कठोरता से अपने पति से बोली :

"जाओ। एक गिलास लेमोनेड पी आओ! अरे, तुम इस तरह क्यों देखते हो? मैं इन्हें बताना चाहती हूँ कि तुम कितने अच्छे हो। जाओ ना!"

मेरी पीठ की तरफ़ से उस तक पहुँचकर उसने अपने हाथ से उसे धकेला। उसने अपने कन्धे उचकाये, मेरी ओर खिसियाता-सा देखता हुआ मुस्कराया और कैण्टीन की तरफ़ चल दिया। ल्यूबा ने मेरी दोनों आस्तीनें थाम लीं।

"बताइये, वह अच्छा है?"

"ल्यूबा, मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह अच्छा है या नहीं?"

"लेकिन आपने उसे देखा है। क्या आप बता नहीं सकते?"

"दिखता तो ठीक ही है, लेकिन...यदि तुम उसके सारे कारनामे याद करो तो... देखो, तुम ख़ुद समझ सकती हो..."

लयूबा की आँखें फैलकर कई गुना बड़ी हो गयी।

"कैसी नासमझी है! आप समझ रहे हैं कि यह वह है? ऐसा कुछ नहीं है! यह बिल्कुल दूसरा आदमी है! यही असली है, आप समझे... असली!"

मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़ा रह गया।

''क्या मतलब है तुम्हारा 'असली'? और दूसरे का क्या हुआ, तुम्हारे 'सच्चे प्यार' का?''

''वह सच्चा प्यार नहीं था! वह निपट निकम्मा था! मैं इतनी ख़ुश हूँ। काश! आप जानते कि मैं कितनी ख़ुश हूँ।''

''लेकिन क्या तुम इससे प्यार करती हो? या तुम... फिर ग़लती कर रही हो?''

वह ख़ामोश हो गयी, उसकी सारी जीवन्तता सहसा समाप्त हो गयी।

''तुम उसे प्यार करती हो?''

मैं उम्मीद कर रहा था कि वह अपने बचकाने अन्दाज़ में सिर हिलाकर बुदबुदायेगी, ''अहा।'' लेकिन वह मेरी बग़ल में बैठी रही, दबी-दबी सी कोमल-कमनीय, मेरी आस्तीन को सहलाती हुई और उसकी भूरी आँखें उसके अपने ही अन्तर में कहीं गहराई पर केन्द्रित जान पड़ती थीं। आख़िर, वाह शान्ति से बोली :

''में नहीं जानती कि कैसे कहूँ : प्यार करती हूँ। मैं यह नहीं कह सकती... यह इतना प्रबल है!''

उसने मेरी तरफ़ देखा और उसकी नज़र एक ऐसी औरत की नज़र थी, जो प्यार में सचमुच गिरफ़्तार हो।

युवजन को प्यार करना सिखलाने, उन्हें प्यार को जानना सिखलाने, उन्हें सुखी रहना सिखलाने का मतलब है उन्हें आत्म-सम्मान और मानवीय प्रतिष्ठा की शिक्षा देना। कामदेव के स्वायत्त गणतंत्र की कोई शैक्षिक यात्रा इस मामले में आपकी सहायता नहीं कर सकती। मानवीय समाज में, ख़ासतौर से समाजवादी समाज में, सेक्स की शिक्षा शरीर-क्रिया वैज्ञानिक शिक्षा नहीं हो सकती है। काम क्रिया को मानव संस्कृति की समस्त उपलब्धियों से, समाज में मानव-जीवन की दशाओं से, इतिहास के मानवीय क्रम से, सौन्दर्यबोध से अलग नहीं किया जा सकता है। यदि कोई पुरुष या स्त्री अपने आपको मानव समाज का सदस्य महसूस नहीं करती, यदि उनमें उसके जीवन के लिये, उसके सौन्दर्य और विवेक के लिये दायित्व की भावना नहीं है, तो वे प्यार कैसे कर सकते हैं? वे आत्मसम्मान तथा अपने ऐसे किसी और मूल्य में विश्वास कहाँ से पायेंगे, जो महज़ नर या मादा होने के अलावा कहीं अधिक है।

सेक्स की शिक्षा सबसे पहले और सर्वोपरि रूप से सामाजिक व्यक्तित्व की सांस्कृतिक शिक्षा होती है।

कुछ समय पहले ऐसे कई लोग थे, जिनके लिये सेक्स-शिक्षा की समस्या निम्नांकित रूप में दरपेश थी : बच्चों को शिशु-जन्म का रहस्य कैसे बतलाया जाये? यह समस्या उदारवादी चोला पहनकर आयी थी, क्योंकि इस बात पर सन्देह न करना उदारता समझी जाती थी कि शिशु-जन्म का रहस्य बच्चों को निस्सन्देह और अवश्य ही बतलाया जाना चाहिये।

सर्वाधिक साहसी और उदार लोग ''पर्दे'' के पूर्ण उन्मूलन और बच्चों के साथ सेक्स के बारे में उन्मुक्त विचार-विमर्श की माँग करते थे। विभिन्न तरीक़ों से तथा हर प्रकार की आवाज़ों में इस आशय की कहानियाँ सुनायी जाती थीं कि आधुनिक बच्चों को शिशु जन्म का रहस्य जानने के लिये कैसी भयावह और टेढ़ी-मेढ़ी राहों से गुज़रना पड़ता है। हो सकता है कि संवेदनशील लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ हो कि शिशु-जन्म के रहस्य के सामने बच्चा घोर संकट की स्थिति में पड़ जाता है। आश्चर्य सिर्फ़ यही था कि इन अभागे बच्चों ने सामूहिक आत्महत्या क्यों नहीं की।

हमारे ज़माने में बच्चों को शिशु-जन्म का रहस्य समझाने की ऐसी कोई इच्छा नहीं है, लेकिन कुछ परिवारों में अन्तर्भावनाशील माता-पिता इस प्रश्न से अभी भी पीड़ित रहते हैं कि इस प्रश्न का क्या करें और जब बच्चे इसके बारे में पूछते हैं, तो उनको कैसे उत्तर दें।

लेकिन इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि इस फ़ौरी प्रश्न पर, इसके महत्व के बावजूद, व्यावहारिक कार्य के बजाय लफ़्फ़ाजी ही अधिक की गयी है। मैं सिर्फ़ एक ऐसे मामले को जानता हूँ, जब एक पिता ने अपने पाँचवर्षीय पुत्र को अपनी माँ को बच्चा जनते दिखलाया था। घोर मूर्खता के अन्य सभी मामलों की तरह यह घटना भी सिर्फ़ मनोचिकित्सकों के ही मतलब की है। इससे कहीं अधिक मरतबा यह हुआ कि ईमानदार माता-पिता ने इस रहस्य को समझाने के लिये वस्तुतः विविध प्रकार के ''सच्चे'' प्रयत्न किये। लेकिन शुरू करते ही उन्होंने देखा कि वे कुछ भी कर सकने की स्थिति में नहीं हैं

पहली बात तो यह है कि माता-पिता के उदारवाद तथा मातृ-पैतृक आदर्शवाद के बीच एक प्रचण्ड अन्तर्विरोध पैदा हो गया। यह बात सहसा स्पष्ट हो गयी-कोई नहीं जानता कि क्यों-कि सेक्स की समस्या, उनके समस्त स्पष्टीकरणों के बावजूद, उनकी वीरतापूर्ण सचाई के बावजूद, अचार-मुरब्बे की समस्या नहीं, सेक्स की ही समस्या बनी रही। इस कारण से इसे ऐसे विवरणों की चर्चा किये बग़ैर हल नहीं किया जा सकता जो सबसे ज़्यादा उदार मानकों के अनुसर भी नितान्त असहनीय थे और जिन्हें छिपाने की ज़रूरत थी। प्रकाश में आने की अपनी इच्छा से सत्य एक ऐसे रूप में प्रकट हुआ कि सर्वाधिक साहसी माता-पिता को भी बेहोशी जैसी आने लगी थी। और यह हाल अधिकांशतः उन माता-पिताओं का हुआ, जो सामान्य स्तर से ऊपर थे, जो ''आदर्शों'' के निकटतर सम्पर्क में थे और बेहतर तथा पूर्णता के लिये प्रयत्नशील थे। वास्तव में वे सेक्स की समस्या को इस तरीक़े से ''समझाना'' चाहते थे कि वह किसी प्रकार से सेक्सी न रहे और कोई अन्य वस्तु, अधिक शुद्ध और श्रेष्ठ वस्तु, बन जाये।

दूसरी बात, दुनिया में सर्वोत्तम संकल्प के सर्वाधिक वैज्ञानिक रवैये के बावजूद माता-पिता ने बच्चों को सिर्फ़ वही बातें बतायीं जो उन्होंने उन ''भयानक लड़के और लड़कियों'' से सुन ली होतीं, जिनसे अपने बच्चों को बचाने के लिये मातृ-पैतृक

स्पष्टीकरणों की व्यवस्था की गयी थी। यह साफ़ ज़ाहिर हो गया कि शिशु-जन्म के रहस्य के दो क़िस्म के विवरण नहीं हो सकते।

आगे चलकर लोगों को याद आया कि संसार के प्रारम्भ से अब तक एक भी ऐसा मामला नहीं देखा गया, जब युवजनों ने शिशु-जन्म के बारे में पर्याप्त जानकारी के बग़ैर शादी की हो, और, जैसा कि हर कोई जानता है, उसका हमेशा... एक ही क़िस्म का विवरण होता है और उसमें कभी कोई उल्लेखनीय बदलाव नहीं होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शिशु जन्म का रहस्य ज्ञान का एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहाँ न तो कोई विवाद है, न कोई मत-विरोध और न ही कोई सन्देहास्पद मुद्दे।

अलेक्सान्द्र वोल्गिन एक नये मकान की पाँचवी मंजिल पर रहता है। उसके पिता तिमोफ़ेई पेत्रोविच वोल्गिन गृह-मंत्रालय में काम करते हैं। वे अपनी कंचुक की आस्तीन में दो रजत सितारे पहनते हैं तथा उनके कालर के लाल फ़ीतों में भी दो छोटे सितारे लगे हैं। अलेक्सान्द्र के लिये इन सितारों का बहुत महत्व है। पर इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण रिवाल्वर है। उसके पिता के रिवाल्वर के खोल में जो पिस्तौल लगी रहती है वह ब्राउनिंग नम्बर-2 है। अलेक्सान्द्र अच्छी तरह से जानता है कि ब्राउनिंग नागण्ट रिवाल्वर से बेहतर अस्त्र है, लेकिन वह यह भी जानता है कि उसके पिता, जिस रिवाल्वर को सबसे ज़्यादा चाहते हैं, उसे वे अपनी मेज़ की दराज़ में रखते हैं और यह ''पुराना प्रिय'' अस्त्र वही नागंट है-लड़ाई का साथी-जिसके बारे में उसके पिता ऐसी कई रोमांचक कथाएँ सुना सकते हैं, जो उन दिनों हुई थीं, जब उनके पास नये मकान का ऐसा साफ़ व आरामदेह फ़्लैट नहीं था, जब ख़ुद अलेक्सान्द्र नहीं था, जब वोलोद्या उवारोव भी नहीं था और कोस्त्या नेचिपोरेंको भी। स्कूल में उन दिनों की जो कहानियाँ सुनने को मिलती हैं, वे बहुत संक्षिप्त होती हैं और वे सब की सब किताबों से आती हैं तथा उन अध्यापकों द्वारा सुनाई जाती हैं, जिन्होंने वास्तविक चीज़ कभी नहीं देखी और जो उसके बारे में सचमुच कुछ नहीं जानते। अगर उन्होंने यह कहानी सुनी होती कि चेका* के बीस आदमी, जाड़ों की दबी-पिटी तुषार-मण्डित सड़क पर घोड़ों पर सवार हो किस प्रकार गये और किस तरह डाकुओं के एक गिरोह से टकरा गये, चेका के आदमियों ने नगर की अन्तिम बाड़ में किस प्रकार शरण ली, चार घण्टे तक डाकुओं से किस प्रकार लड़ाई लड़ी, पहले रायफ़लों से और फिर नागण्टों से तथा हर आदमी ने किस तरह एक-एक कारतूस ख़ुद अपने लिये रख छोड़ा था-तभी वे उस नागण्ट के महत्व को समझ सकते, जो पिता के टेबुल की दराज़ में शान्ति से पड़ी है। लेकिन अध्यापिका स्कूली पुस्तकों की कहानियों को महज़ सुनाये जाती है और अगर आप उसे एक असली नागण्ट दिखलायें तो बहुत मुमकिन है कि वह चीख़ मारकर कक्ष से भाग खड़ी होगी।

---

* **चेका**-क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों में प्रतिक्रान्ति, अन्तर्ध्वंस, व मुनाफ़ाख़ोरी के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिये निर्मित असाधारण आयोग का संक्षिप्त नाम।**-सं.**

अलेक्सान्द्र वोल्गिन को अपने पिता, उनकी रिवाल्वर और पिस्तौल, उनके सितारों पर गर्व है। अलेक्सान्द्र जानता है कि उसके पिता के लड़ाकू जीवन में कुछ विशेष अधिकार और नियम हैं, जिनका उसे, अलेक्सान्द्र वोल्गिन को, निश्चय ही अनुपालन करना चाहिये। लेकिन जहाँ तक अन्य बातों-पिता की शान्त पैनी दृष्टि, उनकी ख़ामोश चतुर आँखें तथा उनकी सन्तुलित पौरुषेय शक्ति-का सम्बन्ध है, उनका अलेक्सान्द्र को उतना ही कम अहसास है, जितना कि स्वस्थ लोगों को अपने स्वस्थ होने का। उसने इन सब बातों को, किसी तरह, अपने अनुमान से बिल्कुल बाहर कर दिया था। अलेक्सान्द्र का विश्वास था कि अपने पिता को लड़ाई के उनके क्रियाकलापों के कारण प्यार करता है।

और ममी-नागण्ट दिखलाने पर ममी न तो चीख़ेगी न भागेगी। जब वह ओव्रुच में रहती थी, जब पिता पार्टी की बैठक में गये हुए थे, तब उसने ख़ुद डाकुओं से लड़ाई लड़ी थी, वहाँ नाद्या भी थी, लेकिन तब वह सिर्फ़ एक साल की थी, और उस कहानी में उसकी कोई भूमिका नहीं। अब नाद्या सत्रह वर्ष की है। अलेक्सान्द्र उससे स्नेह रखता है, लेकिन मुद्दा यह नहीं है। और माँ, बेशक, एक योद्धा नहीं है, चाहे ओव्रुच में उसे बन्दूक का इस्तेमाल क्यों नकरना पड़ा हो। उसके पास रिवाल्वर नहीं है, सितारे हैं और न राजकीय सुरक्षा के सीनियर लेफ्टिनेण्ट का ख़िताब है। पर वह सुन्दर है, दयालु और सहृदय है, और अगर उसके पास रिवॉल्वर तथा दुनिया के सारे पद होते भी, तो अलेक्सान्द्र नहीं जानता कि उसकी कल्पना में उनका स्थान क्या होता। अलेक्सान्द्र वोल्गिन अपनी माँ को प्यार करता है उसके द्वारा की गयी किसी विशिष्ट सेवा के कारण नहीं। वह महज़ प्यार करता है और बस, यह यही बात है, बस!

अलेक्सान्द्र वोल्गिन प्यार के बारे में इन निष्कर्षों पर साल से पहले साल पहुँचा था, यानी उस समय, जब उसे जीवन में असली दोस्त मिले थे-वे ममी के दुलारे नहीं जो दर्ज़ी की दुकान के पुतले की तरह कपड़े पहनने और जेबें भरने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते, बल्कि जो जीवन के अनुभव और अपने ही विचार रखने वाले असली साथी थे। शायद वे भी अपने माता-पिता से प्यार करते थे, लेकिन वे उसे ज़ाहिर नहीं करते, जो भी हो, उन्हें माता-पिता को लेकर परेशान होने का समय नहीं मिलता। जीवन रोज़ इतनी समस्याएँ लाकर खड़ी कर देता है कि माता-पिता की कौन कहे, आप अपना खाना-पीना तक भूल जाते हैं, और इन समस्याओं को हल करने में बहुत शक्ति और ज्ञान खप जाता है : मसलन, एक फुटबॉल मैच ले लो या हवाई जहाजों के मामले, या अगली सड़क पर मकानों को गिराने की बात, या पास की बड़ी सड़क पर तारकोल बिछाने का तरीक़ा अथवा रेडियो। और स्कूल में भी इतना कुछ करना है, इतनी समस्याएँ हैं, सम्बन्धों का ऐसा उलझा हुआ जाल है, इतने अधिक षड्यंत्र है कि कभी-कभी वोलोद्या उवोरोव का सिर भी चकरा जाता है और वह कहता है :

''यह मेरे लिये बहुत ज़्यादा है, सच कहता हूँ। ये सब जायें जहन्नुम में, इसके लिये मुझे परेशान नहीं किया जा सकता है!''

और वोलोद्या उवारोव कभी नहीं हँसता। हर कोई जानता है कि वह सचमुच एक अंग्रेज सरीख़ा है। वह कभी भी नहीं हँसता। अन्य लड़कों ने भी ऐसे गम्भीर मुँह बनाये रखने की कोशिश की, लेकिन कोई भी एक दिन से ज़्यादा ऐसा नहीं कर पाया : अगले दिन वे हमेशा अपने दाँत दिखा देते हैं और बन्दरों की तरह हँसने लगते हैं। लेकिन वोलोद्या उवारोव कभी-कभी अपने होंठों को टेढ़ा भर कर देता है-इसे तो हँसी नहीं कहा जा सकता है। यह अवज्ञा प्रकट करने का उसका तरीक़ा है। अलेक्सान्द्र वोलोद्या उवारोव के सख़्त तौर-तरीक़ों का सम्मान करता है, लेकिन उसकी नक़ल करने का कोई इरादा नहीं रखता। उसकी अपनी प्रसिद्धि उसके वाक्-चातुर्य, संक्रामक हँसी, और परिहासपूर्ण टिप्पणियाँ करने की सफल प्रतिभा पर आधारित है। सब लड़के जानते हैं कि अलेक्सान्द्र की ज़बान से बचकर रहना ही बेहतर है। सारे का सारा पाँचवाँ दर्जा इस बात को जानता है। और अध्यापक भी इस बात को जानते हैं। हाँ... अध्यापक भी।

जब अध्यापकों का मामला आता है, तो निश्चय ही किंचित अधिक बेढब बात हो जाती है। कुछ अध्यापकों की वजह से संकट पैदा हुए होते हैं।

कुछ दिन पहले रूसी भाषा के अध्यापक इवान किरीलोविच ने एलान किया कि वे पुश्किन की कविताएँ पढ़ाने की शुरुआत करेंगे। इससे पहले, वोलोद्या उवारोव 'येव्गेनी ओनेगिन'* दर्जे में लाया था और उसने उसकी चन्द पंक्तियों का पाठ किया था। और अब इवान किरीलोविच ने कहा कि वे पुश्किन की समुचित शुरुआत करेंगे। उन्होंने उसे 'समुचित' कहा था, लेकिन वास्तव में उन्होंने सबसे ज़्यादा दिलचस्प हिस्से छोड़ दिये थे। अलेक्सान्द्र वोल्गिन ने ज़ोर से, पर नम्रता से पूछा, ''इसका क्या अर्थ है, 'वह जो सक्षम है सर्वदा, देने में दृष्टि को, ऐसा अमूल्य उपहार...'"

अलेक्सान्द्र वोल्गिन के तीखे नाक-नक़्श थे और मुँह अभिव्यक्तिपूर्ण था। वह इवान किरीलोविच की तरफ़ देखता, बेशर्मी से मुस्कराता और उत्तर का इन्तज़ार करता रहा। लड़के की आँखें चमक रही थीं, क्योंकि प्रश्न सचमुच दिलचस्प था। हर कोई जानता था कि उस ''वह'' का क्या मतलब था-एक पैर, एक औरत का पैर; पुश्किन ने उसके बारे में विस्तार से लिखा था और लड़कों को वह पसन्द था। उन्होंने यह पंक्तियाँ लड़कियों को दिखलायीं और विशेष रुचि के साथ ग़ौर किया कि उन पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है। लेकिन लड़कियों पर उन पंक्तियों का कोई ख़ास असर नहीं पड़ा। वाल्या स्त्रोगोवा ने उनपर एक नज़र डाली, उसका बाल तक नहीं हिला, बल्कि वह हँस दी। और जो उसने कहा उसकी महज़ याद भी आपको शर्मिंदा कर देती थी।

---

* येव्गेनी ओनेगिन-महान रूसी कवि अ. से. पुश्किन (1799-1837) का गीतात्मक उपन्यास।-सं.

‘‘हुँह, दुधमुहो! इन्हें पहले कभी नहीं देखा!’’

अन्य लड़कियाँ भी हँसी। अलेक्सान्द्र संकुचित हो गया और उसने वोलोद्या की तरफ़ देखा। वोलोद्या के थुलेथुले चेहरे की एक भी पेशी में हरकत नहीं हुई।

‘‘कोई बात नहीं कि हमने इन्हें कब देखा, तुम सिर्फ़ यह समझा दो कि इनका अर्थ क्या है,’’ उसने अपने दाँत पीसें।

वोलोद्या ने यह बात बड़ी ख़ूबसूरती से की और यह आशा की जा सकती थी कि इस टकराव में वह विजयी होकर निकलेगा। लेकिन अन्तिम परिणाम इससे कहीं ज़्यादा दुखद हुआ।

वाल्या स्त्रोगोवा ने वोलोद्या की तरफ़ पैनी नज़र से देखा। उसकी उस नज़र में कैसी श्रेष्ठता और कैसी उपेक्षा की झलक थी। फिर उसने कहा :

‘‘इनपंक्तियों को समझना ज़रा भी मुश्किल नहीं है, वोलोद्या। लेकिन तुम अभी बच्चे हो। जब तुम बड़े हो जाओगे, तो समझ जाओगे।’’

ऐसे संकटों को सभी शान्ति से बर्दाश्त नहीं कर सकते। इस तरह की कसौटी में पड़ने पर प्रसिद्धि नष्ट हो जाती है, प्रतिष्ठा मटियामेट हो जाती है, बरसों में बने हुए सम्पर्क क्षण भर में टूट जाते हैं। इसलिये हर कोई दम साधे वोलोद्या के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन वोलोद्या को उत्तर देने का समय ही नहीं मिला, वाल्या स्त्रोगोवा अपने घूँघरदार बालों को एक झटका देकर गर्व से दरवाज़े की तरफ़ चली गयी। नीना और वेरा ने उसकी दोनों कुहनियों में अपने-अपने बाजू फँसा लिये और वे तीनों अधिक अलभ्य नज़र आती, अपने कन्धों से ऊपर को लापरवाही से देखती और हाथ में अपने बालों को उनके स्थान पर जमाती हुई चलती बनीं। वोलोद्या उवारोव ख़ामोशी से उन्हें जाते देखता रहा, उसने अपने भरे-भरे होंठों को तिरस्कारपूर्वक सिकोड़ लिया। कोस्त्या नेचिपोरेंको के सिवा और कोई नहीं बोला। उसने कहा :

‘‘क्या तुम उनसे आगे भी उलझते रहना चाहते हो?’’

कोस्त्या नेचिपोरेंको क्लास में सबसे आगे था और इस उपलब्धि से बहुत सन्तुष्ट था। वह व्यक्तिगत राय रखने की ऐयाशी से नहीं चूकता था। अन्य सभी सहमत थे कि वोलोद्या की पराजय हुई है और उसके लिये ज़रूरी है कि वह फ़ौरन निर्णायक कार्रवाई करे। देर असम्भव थी। वोलोद्या अपनी डेस्क पर बैठा रहा और अंग्रेज़ियाना ख़ामोशी ओढ़े रहा। अलेक्सान्द्र वोल्गिन पढ़ाई के बीच का सारा फ़ालतू समय मामूली से मामूली बहाने पर भी हँसी-ठट्टे की बातों में बिता दिया करता था। उसने कमज़ोर निगाहोंवाले मीशा ग्वोजदेव के पीछे पड़ते हुए पूछा :

‘‘बताओ, पुरुष पतलूनें और औरतें घाघरे क्यों पहनती हैं?’’

मीशा समझ गया कि यह निर्दोष-सा वाक्य किसी पीड़ादायी मज़ाक का समारम्भ है। उसने इसका उत्तर दिये बिना खिसक जाना चाहा। उसके चलने-फिरने का तरीक़ा कायरों जैसा सतर्कतापूर्ण था और उसके चेहरे पर भय का भाव था। लेकिन अलेक्सान्द्र ने उसकी कोहनियाँ पकड़ लीं और सारी कक्षा को सुनाते हुए अपना प्रश्न दोहराया :

‘‘बताओ, पुरुष पतलूनें और औरतें घाघरे क्यों पहनती हैं?’’

मीशा ने फ़र्श की तरफ़ मुँह फुलाकर ताकते हुए दुर्बल-सा प्रतिरोध किया।

‘‘उसे छोड़ दो, वह किसी भी पल रोना शुरू कर देगा।’’ वोलोद्या अपना मुँह खोले बिना दाँतों के बीच से बोला।

‘‘नहीं, उसे जवाब देने दो!’’ अलेक्सान्द्र वोल्गिन ने हँसते हुए कहा।

मीशा निस्तेज-सा डेस्क के सहारे टिक गया। वह सचमुच ही रुआँसा हो गया था। जब अलेक्सान्द्र ने उसके हाथ छोड़े, तो वह दूर के कोने में चला गया और वहाँ चुपचाप बैठ गया, उसका चेहरा दीवार की तरफ़ था।

‘‘अजीब आदमी है!’’ अलेक्सान्द्र हँसा। ‘‘वह तो ऐसे ही सोच में पड़ा है, निर्लज्ज कहीं का! और जवाब सरल है :

ताकि चूक न जाये मीशा कहीं
कर न बैठे शादी मर्द से ही।’’

तभी मीशा फूटकर रोने लगा और अपनी कोहनी को चिड़चिड़ाहट से झटकने लगा। परन्तु उसकी कोहनी से किसी को कोई परवाह नहीं थी। लेकिन वोलोद्या उवारोव ने विक्षुब्ध होकर भौं सिकोड़ीं, और वह सही था : कितना ही हँसी-ठट्टा क्यों न हो, लड़कियों के साथ उस वार्तालाप का अप्रिय स्वाद मिट नहीं सकता था। दर्जे में ऐसे कई लोग थे, जो इससे पहले भी वोलोद्या और उसके दोस्त अलेक्सान्द्र वोल्गिन के साथ खामोश नापसन्दगी का व्यवहार कर चुके थे, पर लड़कियों को स्वाधीनता की रूखी तिरस्कारपूर्ण मुद्रा में दर्ज़े के अन्दर आते और सीटों पर बैठते हुए देखना तो विशेष अवसादकारी बात थी। वे ऐसी बन रही थीं मानो पीछे की बेंच का कोई अस्तित्व ही नहीं था, और अगर था, तो उसमें उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे ऐसा दिखलाने का प्रयत्न कर रही थीं कि उन्हें सब कुछ मालूम है और कि उनके ज्ञान ने उन्हें इन वोल्गिनों और उवारोवों में से किन्हीं से भी अधिक ऊँचा बना दिया है। लड़कियाँ सिर मिलाये फुसफुसाते हुए बातें करती हँस रही थीं। इस बात को कोई कैसे भाँप सकता है कि वे किस पर हँस रही थीं ओर वे अपने को इतना बड़ा क्यों सोचती थीं।

यथाशीघ्र कुछ करना ही था। अध्यापक से पूछे गये प्रश्न का मक़सद अपनी प्रतिष्ठा वापस लौटाना था और अलेक्सान्द्र वोल्गिन इवान किरीलोविच के उत्तर की गम्भीर मुस्कान के साथ प्रतीक्षा कर रहा था। दर्जे के निपट कमज़ोर लड़के भी और मेहनत से पढ़ने वाले लड़के भी इस दिलचस्प द्वन्द्व पर समुचित ध्यान दे रहे थे। अध्यापक अभी भी जवान था और ऐसा लगता था कि वह अपनी बेढँगी स्थिति से उबर नहीं पायेगा।

और इवान किरीलोविच सचमुच हकबका गया था, वह झेंपता हुआ बुदबुदाया :

‘‘बात यह है... कि, अं-अं... यह एक दूसरा प्रश्न है, आप जानते हैं... अं-अं..

यह कुछ दूसरे सम्बन्धों का... प्रश्न है। मैं समझा नहीं कि तुम क्या पूछ रहे हो?

अलेक्सान्द्र वोल्गिन ने समुचित अध्येता की-सी मुखाकृति बनाने का ज़ोरदार प्रयत्न किया और इसका नतीजा, ऐसा जान पड़ता था, बुरा नहीं था।

''देखिये ना, जब हम 'अमूल्य उपहार' पढ़ते हैं, तो यह समझ नहीं पाते कि उसका किन उपहारों से तात्पर्य है।''

लेकिन वह अध्यापक, अचानक इस उलझन से बाहर निकल आया और निश्चय ही बहुत अच्छी तरह से निकल आया।

''हम कुछ और बात पर विचार कर रहे थे। विषय-परिवर्तन की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं एक-दो दिन के अन्दर तुम्हारे घर आऊँगा और सारी बात तुम्हें स्पष्ट समझा दूँगा। तुम्हारे माता-पिता भी सुनेंगे।

अलेक्सान्द्र का चेहरा फक पड़ गया और वह एक विनम्र और घोर असहाय स्थिति में पड़ गया। ''कृपया आइये,'' वह बुदबुदाया।

वोलोद्या ने खूनी निगाह से अलेक्सान्द्र की ओर देखा और अपनी सीट से उठे बिना बोलाः

''यदि प्रश्न दर्जे में पूछा गया है, तो उसका उत्तर घर में क्यों दिया जाना चाहिये?''

लेकिन अध्यापक ने उसकी सुनी-अनसुनी कर दी। अलेक्सान्द्र कुछ और कहने वाला था कि कोस्त्या नेचिपोरेंको ने उसकी कमीज़ खींची और उसे जबरन उसकी सीट पर बैठा दिया।

''गुण्डई न कर, वरना तू फँस जायेगा,'' उसने सद्भावना से सलाह दी।

पिछली डेस्क की प्रतीक्षा बच गयी, पर किस मूल्य पर!

अलेक्सान्द्र वोल्गिन तीन दिन बाद भी इस घटना को चिन्ता के साथ याद कर रहा था। घर पर जब भी दरवाज़े की घण्टी बजती, वह घबरा जाता था, लेकिन अध्यापक अभी भी नहीं आया। अलेक्सान्द्र अपना स्कूल का काम ख़ास तौर से अच्छा कर रहा था और क्लास में वह चुप रहता तथा वोलोद्या की ओर न देखने की कोशिश करता। अगर यह इवान किरीलोविच सचमुच घर आ जाये और पिता को किस्से सुना जये, तो कौन जाने अन्त क्या होगा। अभी तक स्कूली मामलों में अलेक्सान्द्र का अपने पिता से कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ था। उसे अच्छे अंक मिलते थे और कोई झगड़े-टण्टे नहीं होते थे। घर पर वह स्कूल के बारे में यह सोच कर कम से कम बातचीत करने की कोशिश करता था कि कुल मिलाकर यही सुविधाजनक होगा और अब यह किस्सा!

रात को बिस्तर पर लेटने के बाद अलेक्सान्द्र, जो कुछ हुआ, उसपर विचार करता। सब कुछ बिल्कुल स्पष्ट था। क्लास में फालतू प्रश्न पूछने के बारे में पिता कुछ नहीं कहेंगे, लेकिन जब उन ''अमूल्य उपहारों'' का सवाल अयेगा, तो बस, वह झगड़े में पड़ जायेगा। इस क्षण पर अलेक्सान्द्र ज़ोर से साँस लेता करवटें बदलता, वह ऐसा इसलिये नहीं करता था कि वह झगड़े में पड़ जयेगा, बल्कि इसलिये करता था कि कुछ इससे भी अधिक भयावह बात होने जा रही थी। झगड़ा तो आप जितना चाहें

उतना बड़ा हो सकता है, पर यह मुद्दा नहीं है। यह झगड़ा होगा किस तरह का? क्या पिता उसकी पिटाई करेंगे? नहीं, वे ऐसा नहीं करेंगे। लेकिन अपने पिता से ऐसी चीज़ों के बारे में कोई कैसे बातें कर सकता है : उपहार, पैर, बाप रे, कैसा भयानक, शर्मनाक, असम्भव विषय है!

वोलोद्या उवारोव ने पूछा :

''क्या वह आया?''

''नहीं।''

''अगर वह आयेगा, तो तुम क्या करोगे?''

''कुछ पता नहीं?''

''तुम उससे कह देना कि तुम सचमुच कुछ नहीं समझे।''

''किससे कह दूँगा?''

''अपने पिता से, और किससे। बस कह देना कि तुम कुछ नहीं समझे। वैसे भी, इन वाहियात चीज़ों को कौन समझ सकता है!''

''हूँ, तुम समझते हो कि मेरे पिता को बेवकूफ़ बनाना आसान है? तुम्हें पता भी है, उन्होंने तुम्हारे और मेरे जैसे सैकड़ों देखे हैं।''

''मैं समझता हूँ कि... यह कहना बुरा नहीं है... चल सकता है... मैं तो अपने पिता से यही कहता।''

''और वे इसपर यक़ीन कर लेते?''

''उनके यक़ीन करने न करने की फ़िक्र किसे है! हम कितने बरस के हैं? तेरह। अरे, हमारे बारे में तो यह समझा जाता है कि हम इस तरह की कोई बात नहीं समझते। सो नहीं समझते-और बस!''

''हम नहीं समझते! लेकिन हमने ठीक वहीं पंक्तियाँ क्यों चुनीं?

''बस, योंही सामने आ गयीं, पुश्किन पढ़ रहे थे... और यह निकल आयीं...''

वोलोद्या ईमानदारी से अपने दोस्त की सहायता करना चाहता था। लेकिन किसी कारणवश अलेक्सान्द्र वोलोद्या को सच बात बताने से हिचकिचा गया। सच यह था कि अलेक्सान्द्र अपने पिता को धोखा नहीं दे सकता था। किसी वजह से वह ऐसा उसी तरह से नहीं कर सकता था, जिस तरह कि वह ''ऐसे प्रश्नों के बारे में'' उनसे बातचीत नहीं कर सकता था।

आँधी आयी तो अनपेक्षित कोने से : नाद्या! ''नाद्या ने मुझे बताया...'' उसके पिता ने इस प्रकार बात शुरू की।

इसने उसे ऐसा अभिभूत कर दिया कि स्वयं विषय की अपनी तीक्ष्णता भी कुछ कम हो गयी। जब पिता ने बातें कीं, अलेक्सान्द्र एक विचित्र स्थिति में था, उसके शरीर का रुचिर यहाँ-वहाँ और ऊपर-नीचे, जहाँ चाहता था, प्रवाहित हो रहा था, उसकी आँखें विवेकशून्य उलझन में मिचमिचा रही थीं, और उसका सिर इस अनपेक्षित व

अक्षम्य सत्य से धप-धप कर रहा था कि रहस्योद्घाटन नाद्या ने किया! अलेक्सान्द्र इस ख़बर से इस क़दर अवसादग्रस्त हो गया कि उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि उसकी ज़बान अपनी पेशक़दमी पर बड़बड़ा उठी थी :

''लेकिन वह कुछ नहीं जानती...''

उसने अपने को काबू में किया, ज़बान को लगाम लगायी। उसके पिता ने उसे गम्भीरता से और शान्ति से देखा, लेकिन अलेक्सान्द्र वस्तुतः ऐसी सही अवस्था में नहीं था कि यह देख सकता कि उसके पिता उसे कैसे देख रहे थे। वह अपने सामने अपने पिता की आस्तीन और उस पर लगे दो रजत सितारों के सिवा और कुछ नहीं देख सका। उसकी दृष्टि उन सितारों की क़सीदाकारी पर निरुद्देश्य मँडरा रही थी। उसके पिता के शब्द उसके कानों में प्रविष्ट हुए और उन्होंने उसके दिमाग़ के अन्दर कुछ कर दिया; वहाँ किसी प्रकार की, किसी क़िस्म की व्यवस्था प्रकट होने लगी। स्पष्ट, बोधगम्य और कुछ-कुछ स्वीकार्य विचार वेग से घूमते हुए उसकी ओर आने लगे; उसके पिता की आस्तीन की तरह उनसे भी एक तरह की ऊष्मा निःसृत हो रही थी। अलेक्सान्द्र समझ गया कि वे उसके पिता के विचार हैं और उनमें मुक्ति निहित है। सहसा उसकी चेतना से नाद्या लुप्त हो गयी। उसका गला रुँधने लगा, शर्म की तरंगों ने उसके रुधिर-परिसंचरण की दुर्दशा करना बन्द कर दिया, एक हार्दिकतापूर्ण मैत्री की दमक से उसके गाल प्रदीप्त हो गये, उसकी आत्मा प्रदीप्त हो गयी। अलेक्सान्द्र ने अपनी आँखें उठायीं और अपने पिता को देखा। पिता का मुँह सुदृढ़ व मांसल था ; वह अपने बेटे को समझदारी की सुस्थिर निगाहों से देख रहे थे।

अलेक्सान्द्र अपनी कुर्सी से उठा और फिर बैठ गया। लेकिन वह अपनी निगाहों को पिता के चेहरे से नहीं हटा पाया और अपने आँसू नहीं रोक पाया- नाश हो इन आँसुओं का।

''डैडी, अब मैं समझ गया हूँ, मैं वहीं करूँगा जो आप कहते है। मैं जीवन भर ऐसा ही करूँगा, आप देखियेगा!'' उसने वेदना-मिश्रित आवाज़ में कहा।

''अपने को शान्त करो,'' उसके पिता ने धीमे से कहा। ''याद रखो कि तुमने क्या कहा : जीवन भर। यह बात समझ लो, मैं तुम पर विश्वास करता हूँ और मैं तुम्हारी जाँच नहीं करूँगा। और मेरा विश्वास है कि तुम एक पुरुष हो, महज़ निठल्ले व्यक्ति नहीं हो।''

पिता तेज़ी से उठे और अलेक्सान्द्र ने उनकी चमकीली पेटी और पिस्तौल के खोल की झलक देखी। पिता बाहर चले गये। अलेक्सान्द्र ने अपने हाथों पर सिर टिका लिया और विश्राम की सुखद स्तब्धकारी अवस्था में डूब गया।

''हाँ, तो?''

''तो उन्होंने कह दिया।''

''और तुम्हारा क्या हुआ?''

‘‘मेरा? कुछ नहीं...’’

‘‘और तुम शायद यह कहते रोने लगे होगे : ‘डैडी, ओ डैडी!’ ’’

‘‘रोने का इससे क्या वास्ता?’’

‘‘अच्छा, तुम नहीं रोये क्या?’’

‘‘नहीं।’’

वोलोद्या ने अलेक्सान्द्र को अलस, व दृढ़ उलाहने के साथ देखा।

‘‘तुम सोचते हो कि वे पिता हैं, इसलिये वे सदा सही बात ही कहते? उनके अनुसार, दोष हमेशा हमारा ही होता है। लेकिन वे ख़ुद अपने बारे में कुछ नहीं कहते, जो कहते, हमेशा हमारे बारे में। मेरे पिता भी, जब चालू हो जाते हैं, तो ऐसा ही कहते हैं : तुम्हें यह जानना ही चाहिये, तुम्हें यह समझना ही चाहिये...’’

अलेक्सान्द्र ने निरुत्साहित हृदय से वोलोद्या की बात सुनी। वह अपने पिता से विश्वासघात नहीं कर सकता, पर फिर भी वोलोद्या विश्वासघात की माँग कर रहा था। इसमें सन्देह नहीं कि वोलोद्या के पक्ष में एक प्रकार की प्रतिष्ठा भी थी और उससे भी विश्वासघात नहीं किया जा सकता था। एक बीच के रास्ते की ज़रूरत थी और अलेक्सान्द्र उसके लिये कोई सम्मानप्रद रूप नहीं पा सका। वोलोद्या को नीचे उतरना होगा, और वह नीचे क्यों न उतरे? जो भी हो, वे दोनों बहुत आगे बढ़ गये हैं।

‘‘तो तुम्हारा ख़्याल है कि मेरे पिता बिल्कुल ग़लत थे?’’

‘‘हाँ, यही ख़्याल है।’’

‘‘लेकिन, सम्भवतः वे सही थे?’’

‘‘इसमें सही क्या है?’’

‘‘कोई और होता, तो वह दूसरे तरीके से काम करता। वह कहता : तुम्हारा यह साहस! तुम्हें शर्म आनी चाहिये! तथा ऐसी ही और बातें।’’

‘‘तो?’’

‘‘उन्होंने यह नहीं कहा, क्यों?’’

‘‘तो?’’

‘‘तुम्हारे लिये ‘तो-तो’ कहना बहुत आसान है, लकिन अगर तुमने उनकी बात सुनी होती...’’

‘‘मान लो मैंने सुनी... तो क्या? तुम यह न सोचना कि वे हमेशा ऐसे ही कहते हैं : ‘तुम्हें शर्म आनी चाहिये,’ ‘तुम्हें शर्म आनी चाहिये?’ फ़िक्र न करो, वे य भी जानते हैं कि बात कैसे बनायी जाती है।’’

‘‘वे बनायेंगे क्यों, क्या वे बात बना रहे थे?’’

‘‘बिल्कुल, यही कर रहे थे, और तुमने सोचा यह बड़ी शानदार चीज़ है : गोपनीय, गोपनीय, हर किसी के गोपनीय रहस्य हैं!’’

‘‘उन्होंने इस तरह से क़तई कोई बात नहीं कही।’’

‘‘तो कैसे कही?’’

“बिल्कुल फ़र्क तरीके से।”

“अच्छा, कैसे?”

“देखो न, उन्होंने कहा : जीवन में कुछ रहस्यमय और गोपनीय होता ही है। उन्होंने कहा, उसके बारे में पुरुष और औरतें, सब जानते हैं और इसमें गन्दा कुछ नहीं है, यह महज़ गोपनीय है। लोग जानते हैं। लेकिन उससे क्या, वे अवाम के सामने उसकी छीछालेदर नहीं करते। यह संस्कृति है, उन्होंने कहा। और कहा, तुम अभी अधकचरे लड़के हो, तुम्हें अभी-अभी पता लगा, और तुम्हारी ज़बान पशुओं की दुम की तरह हिलने लगी। फिर उन्होंने कहा...”

“क्या?”

“फिर उन्होंने कहाः एक आदमी को अपनी ज़बान महत्वपूर्ण चीज़ों के लिये चाहिये, लेकिन तुम उसे मात्र मक्खियाँ भगाने के काम में ला रहे हो।”

“यही है, जो उन्होंने कहा?।

“हाँ, यही था।”

“यह उन्होंने चतुराई की बात कही।”

“लेकिन वास्तव में ये कोरे शब्द हैं। अगर ऐसा ही था, तो पुश्किन ने वह सब लिखा क्यों?”

“अरे हाँ, उन्होंने पुश्किन के बारे में भी कुछ कहा। पर मैं भूल गया कि उन्होंने इसे कैसे पेश किया।”

“बिल्कुल भूल गये?”

“नहीं, बिल्कुल तो नहीं... पर उस समय मैं समझ गया था, लेकिन उन्होंने जो शब्द इस्तेमाल किये... तुम समझ गये न...”

“क्या भला?”

“उन्होंने कहा : पुश्किन एक महान कवि थे।”

“वाह, यह कोई नयी बात है, क्या कहने!”

“नहीं...रुको, मुद्दा यह नहीं है कि वह महान था, बल्कि यह कि तुम्हें यह समझना है कि...”

“उन पंक्तियों को समझना ज़रा भी कठिन नहीं है!”

“हाँ, सचमुच नहीं है, लेकिन यह मुद्दा नहीं है। जो उन्होंने कहा, वह था... आहा, याद आ गया : यह बिल्कुल सच है, बिल्कुल सच, यही था, जो उन्होंने कहा : बिल्कुल सच है!”

“बन्द करो : ‘बिल्कुल सच!’ ”

लेकिन यही तो उन्होंने कहाः यह बिल्कुल सच है, यह कविता उसी की बात करती है,... उसी की... तुम समझते हो...”

“ठीक है, मैं समझता हूँ। फिर...?

“फिर उन्होंने कहा : पुश्किन ने यह बात कविता में कही... ऐसी अद्‌भुत कविता

में, और तब... और हाँ एक और शब्द था, अहा- कोमल-कान्त कविता! फिर उन्होंने कहा : यही सौन्दर्य है!''

''सौन्दर्य?! ''

''हाँ, और तुम, उन्होंने कहा, सौन्दर्य के बारे में कुछ नहीं जानते। तुम इसे कुछ और ही बनाने पर तुले रहते हो।''

''ऐसा कुछ नहीं है! इसे कुछ और कौन बनाना चाहता है?''

''भई, यह वह है, जो उन्होंने कहा : तुम इसे एक ऐसी बात में... नहीं, असभ्य पियक्कड़ की भाषा में बदल देना चाहते हो। तुम्हें जो चाहिये वह पुश्किन नहीं, बल्कि दीवारों पर लिखी गन्दी इबारत है...''

वोलोद्या सीधा खड़ा ध्यान से सुनता रहा, फिर उसके होंठ सिकुड़ने लगे। लेकिन उसकी निगाह नीची हीरही, मानो कुछ सोच रहा हो।

''सारी बात यही थी?''

''हाँ, सारी यही थी। और उन्होंने तुम्हारे बारे में भी कुछ कहा।''

''मेरे बारे में?''

''मेरे बारे में?''

''हाँ।''

''यह दिलचस्प है।''

''हाँ।''

''सुनाऊँ तुम्हें?''

''तुम सोचते हो कि जो उन्होंने कहा, उसका मेरे लिये महत्व है?''

''तुम्हारे लिये तो निश्चय ही नहीं है।''

''तुमने तो उन्हें अपनी आँखों में धूल झोंकने दी।''

''नहीं, मैंने ऐसा नहीं किया।''

''यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने तुम्हें अच्छी पट्टी पढ़ा दी। लेकिन उन्होंने मेरे बारे में क्या कहा?''

''उन्होंने कहा : तुम्हारा वोलोद्का 'अंग्रेज' बनने की कोशिश करता है, लेकिन असल में वह महज़ एक जंगली छोकरा है।''

''मैं?''

''हाँ।''

''और यह कहा कि 'बनने की कोशिश' करता है?''

''हाँ?''

''और जंगली?''

''हाँ, यही उन्होंने कहा : 'जंगली'।''

''बहुत बढ़िया! और तुमने क्या कहा?''

''मैंने?''

‘‘तुम ज़रूर ख़ुश हुए होंगे?’’

‘‘मैं ख़ुश नहीं हुआ।’’

‘‘तो मैं जंगली हूँ, और तुम, ज़रा सोचो, सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति हो!’’

‘‘और उन्होंने एक बात और कही : अपने वोलोद्का को बताना कि समाजवादी राज्य में उस जैसे जंगलियों और असभ्यों के लिये कोई जगह नहीं होगी।’’

वोलोद्या इस सारी बातचीत में पहली बार तिरस्कारपूर्वक मुस्कराया। ‘‘मानना पड़ेगा कि उन्होंने तुम्हें ख़ूब अच्छी पट्टी पढ़ायी! और यह सारा तुम्हारे गले से उतर गया। अब तुम्हारे साथ दोस्ती रखना ख़तरनाक होगा। अब तुम ‘सुसंस्कृत व्यक्ति’ हो। और तुम्हारी बहन सारी बात पहुँचा देगी। लड़कियाँ उसे ज़रूर ही बता देंगी। दर्जे में कुछ कहना नामुमकिन हो जायेगा! और तुम क्या समझते हो, वह कैसी है? क्या तुम जानते हो कि वह खुद कैसे है?’’

‘‘वह कैसे है? तुम्हारा क्या मतलब है?’’

अलेक्सान्द्र सचमुच नहीं समझ पाया कि वोलोद्या का क्या मतलब था, वह ख़ुद कैसी है? नाद्या सन्देह से परे थी। सच, अलेक्सान्द्र उस पहले प्रबल आघात को अभी तक नहीं भूला था, जो उसे उस वक़्त लगा था, जब यह पता लगा कि नाद्या ने उसकी पोल खोल दी है, लेकिन किसी कारणवश वह अपनी बहन से नाराज नहीं हो सका, उसे सिर्फ़ अपने ऊपर क्रोध आया था कि वह यह क्यों भूल गया कि उसे इसके बारे में सब कुछ मालूम हो जायेगा। अब उसने वोलोद्या की तरफ़ देखा। स्पष्ट था कि वोलोद्या कुछ जानता था।

‘‘तो बताओ, कैसी है वह?’’

‘‘ओहो, तुम कुछ नहीं जानते? उसने तुम्हारे बारे में बहुत कुछ कहा, लेकिन वह ख़ुद कैसी है?’’

‘‘बताओ।’’

‘‘तुम्हें नहीं बता सकता हूँ... तुम ऐसे सुसंस्कृत आदमी जो हो!’’

‘‘अरे बताओ भी।’’

वोलोद्या अनम्य हठधर्मिता का रवैया बना कर खड़ा हो गया, लेकिन उसके थुलथुले चेहरे पर अस्पष्ट चिन्तन की छाया अभी भी मौजूद थी। और उसकी आँखों में जो प्रचुर निठल्लापन दिखायी देता था अब उसके स्थान पर अनेक छोटी-छोटी सुइयाँ-सी चमक रही थीं। इस प्रकार की सुइयाँ हमेशा तब चमकती हैं, जब एक लड़के की शाश्वत श्रेष्ठता और सत्य-निष्ठा उसके आहत अभिमान से टकराती है।

और इस टकराव में अभिमान की विजय हो गयी। वोलोद्या ने कहा :

‘‘मैं तुम्हें सब बता दूँगा, लेकिन... एक चीज़ और है, जो मुझे पता लगानी होगी।’’

इस तरह एक समझौता हो गया। नाद्या दसवें दर्जे में थी और उसके हस्तक्षेप में दोस्तों को दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन बहन का छल-कपट बर्दाश्त नहीं किया जा सकता था।

नाद्या वोल्गिना उस स्कूल की दसवीं कक्षा में पढ़ती थी, जिसमें हमारे ये दो दोस्त पढ़ते थे। यह बात साफ़ ज़ाहिर थी कि पुश्किन का मामला किस रास्ते से प्रकाश में आया। अपनी निगाहों को अभिमानपूर्ण बनाते और अभिमानपूर्वक सिर झटकाते ये लड़कियाँ भी अच्छी तरह फुसाफसाकर गप्पें लगाती रहती थीं। और अब ज्ञात हो गया था कि वे फुसाफुसाकर किस बारे में बातें कर रही थीं। उन्होंने इस मौक़े का तुरन्त लाभ उठाया था। यदि यह याद किया जाये कि पुश्किन की पंक्तियों के बारे में पूछा गया प्रश्न बहुत ही सभ्य तरीके से पेश किया गया था और कि वास्तव में उसकी कविता को असभ्यों की भाषा में रखने की किसी ने भी नहीं सोची थी और कि केवल लड़कियों ने ही नहीं, हर किसी ने यह महसूस किया कि वे पंक्तियाँ सुन्दर थीं और कि अध्यापक को चाहिये था कि वह पहले सब कुछ उन्हें समुचित ढंग से समझाता-यदि ये सब बातें याद की जायें, तो लड़कियों की निम्नकोटि की चालाकी फ़ौरन प्रकट हो जाती। उन्होंने पुश्किन के बारे में विचार-विमर्श का ढोंग भर किया था और अध्यापक बहकावे में आ गया। लेकिन इन्होंने नाद्या को पुश्किन की लाइनों के बारे में बता दिया था। और यही वह बात थी, जिसके बारे में वे पाठ के समय बातें कर रही थीं।

और वाल्या स्त्रोगोवा सिर्फ़ पाँचवीं कक्षा में ही ऐसी अभिमानिनी बनी रहती है। लेकिन वह आठवें दर्जे के लड़के गोंचारेंकों के साथ इस बहाने से घर जाती थी कि वे दोनों एक ही इमारत में रहते हैं। और वे आइस-रिंक में एकसाथ गये व एकसाथ लौटे। वोलोद्या उवारोव ने काफ़ी पहले, शरद में उसे एक पत्र लिख भेजा था :

''वाल्या स्त्रोगोवा को।

''यह मत सोचना कि हम कुछ नहीं समझते। हम सब कुछ समझते हैं। कोल्या गोंचारेंकों, अहा, कितना सुन्दर और चतुर लड़का है! लेकिन शान दिखाने के लिये कुछ है नहीं।''

उन्होंने व्याकरण-पाठ के समय वाल्या स्त्रोगोवा को यह पत्र पाते तथा डेस्क के नीचे उसे पढ़ते देखा, और उन्होंने देखा कि वह सारे पाठों और बीच के अन्तरालों के दौरान क्रोधित बैठी रही। और अन्तिम पाठ के समय वोलोद्या को उत्तर मिला।

''वोलोद्या उवारोव को।

''नासमूझ मूर्ख। जब तुझे कुछ अक्ल आ जाये, तो हमें बताना।''

इस अपमान की तिलमिलाहट तीन दिन तक बनी रही। उसने एक और नोट भेजा, लेकिन वह शर्मनाक हालत में उस पर लिखी इस इबारत के साथ लौट आया :

''यह उवारोव लिखित है, अतः असे पढ़ने की ज़रूरत नहीं।''

और इसके बाद भी वह गोंचारेंकों के साथ जाती रही। अध्यापक सोचते कि वह लड़की है, इसलिये सन्देह से परे है। और वाल्या ही नहीं। उसकी जैसी ढेरों हैं। उन

सबकी अपनी गोपनीय बातें हैं, उन सबके अपने ही किसी तरह के रहस्यमय षड्यंत्र है, और पाँचवें दर्जे को उनके नाज़-नखरे उठाने पड़ते हैं। और इन रहस्यों के सारे सूत्र ऊपरी अंचलों को जाते हैं, आठवें, नवें और दसवें दर्जों की दूरस्थ ऊँचाइयों को। अपने सुदर्शन चेहरों और भीगती मसोंवाले बड़े लड़के सब जगह पहुँच जाते हैं। यह कल्पना करना असम्भव है कि इन ऊपरी अंचलों में लड़कियाँ क्या करती हैं।

इस विषय पर वोलोद्या उवारोव के विचार बहुत शंकापूर्ण थे। वह बड़ी लड़कियों के बारे में एक़दम असम्भाव्य किस्से सुनाता और इस बात की कोई ख़ास चिन्ता नहीं करता था कि उस पर यक़ीन किया जा रहा है या नहीं। क़िस्सों की सचाई में उसे दिलचस्पी नहीं थी। वह विषय-वस्तुओं, सम्भावनाओं, और विवरणों में दिलचस्पी रखता था। दूसरे उसमें कुछ नहीं जोड़ते थे, वोलोद्या पर यक़ीन नहीं किया जाता था, लेकिन उसके क़िस्से दिलचस्पी से सुने जाते थे।

नवें और दसवें दर्जों की लड़कियाँ! ज़रा उनके बारे में सोचिये! यहाँ तक कि वोलोद्या भी उनसे घबराता था। क्या उसके दिमाग़ में उन्हें एक नोट लिख भेजने की बात भी कभी आ सकती थी? वह कैसे लिखता? किसके बारे में लिखता? बड़े दर्जों की लड़कियाँ अबोधगम्य प्राणी थीं। उनकी तरफ़ देखना भी भयोत्पादक था। मान लो, उसके ध्यान में आ जाये और वह तुम्हारी तरफ़ देखने लगे-ऐसे में कोई लड़का कह क्या सकता है? सबसे ज़्यादा साहसी ही कभी-कभी गलियारे में धड़धड़ाते हुए जाते समय किसी एक बड़ी लड़की की जाँघ या छाती का स्पर्श करते हुए निकल सकते थे। लेकिन वह मनोरंजन का निकृष्ट तरीक़ा था। इस तरह की हरकतें भय और त्रस्त दशा में की जाती थीं; ख़तरा बहुत बड़ा होता था। अगर तुम पकड़े गये, अगर उसने तुम्हें देख लिया, अगर उसने तुमसे कुछ कह दिया, तो उस कठोर कड़े फ़र्श पर तुम्हारे बचाव का क्या रास्ता रह जायेगा, जो तुम्हें इच्छानुसार फटकर अपने अन्दर छुपने की जगह नहीं देगा। पिछले साल उनके दर्जे में ऐसा एक दुस्साहसी लड़का सचमुच था, इल्या कोमारोव्स्की-बाद में उसे स्कूल से निकाल दिया गया था। तो उसके क्या हाल थे? लड़कों के बीच वह ऐसी बातें करता था कि मेज़-कुर्सियाँ तक झेंप जातीं और उसके श्रोता सुनने के बजाय भय से दूसरी तरफ़ को देखने लगते। पर अपनी ऐसी बातों के बावजूद यदि वह कोई अशिष्ट हरकत करता और लड़की की निगाहें उस पर पड़तीं, तो वह पानी-पानी हो जाता। उसकी बोलती बन्द हो जाती और वह मुस्कराने की चेष्टा करता। और लड़की ने उससे सिर्फ़ इतना ही कहा था : "अपनी नाक पोंछ, तेरे पास एक रूमाल होगा, है कि नहीं?"

और स्कूल अधिकारियों ने कोमारोव्स्की को इन सब बातों की वजह से नहीं, बल्कि क्लास से भागने तथा पढ़ाई न करने के कारण निकाला था। और जब वह गया, तो किसी को दुःख नहीं हुआ, बल्कि राहत ही जो मिली।

अलेक्सान्द्र वोल्गिन के मन में ज्येष्ठ लड़कियों के ख़िलाफ़ कुछ नहीं था; लेकिन वह एक भयानक राज़ था, यह एक ऐसा राज़ था, जिसका वास्तविक अर्थ उस स्वप्न

में भी नहीं सूझता था, और अगर सूझा भी, तो भी उसको उद्घाटित नहीं किया जा सकता था। लकिन वह अन्य से बेहतर स्थिति था, क्योंकि नाद्या स्वयं उसके फ़्लैट में उसके और उसके माता-पिता के साथ रहती थी-वह एक ऐसी प्राणी थी, जिसे वह समझ नहीं सकता था, लेकिन जिसे वह बहुत पसन्द करता था और उसके साथ लगाव का अनुभव करता था। नाद्या की दसवें दर्जे की सहेलियाँ फ़्लैट में आती थीं। नाद्या की तरह वे भी प्रबल प्रभावशाली आँखों, मृदु चिबुक, अतिस्वच्छ कुन्तल केशोंवाली कमनीय लड़कियाँ थीं और उनकी आकृतियों में कुछ ऐसी बातें थीं, जिन पर स्वप्न में या यथार्थ में भी न सोचना बेहतर था। कभी-कभी अलेक्सान्द्र को उनकी संगत में शामिल कर लिया जाता था, लेकिन उससे बिल्कुल निस्वार्थ कारणों से शामिल नहीं किया जाता था। उनके साथ वह सहज व्यवहार करता, ज़ोर से बोलता, हँसी-ठट्टा करता और आइसक्रीम तथा सिनेमा के टिकटों के लिये तड़ित्वेग से दौड़ा जाता था। लेकिन यह सब बाहर से तो बिल्कुल ठीक था। पर अन्दर से उसका हृदय धक-धक करता और उसकी आत्मा बेचैनी से आन्दोलित हो उठती थी। लड़कियों का आत्मविश्वास उसे उलझन में डाल देता था, उनमें एक प्रकार की विवेकपूर्ण शक्ति थी, जो चित्ताकर्षक ढंग से उनकी बनावटी कमज़ोरी और पुरुषोचित कुशलता के अभाव के विपरीत थी। वे ठीक से पत्थर फेंकना भी नहीं जानती थीं। लेकिन जब एक बार क्लावा बरीसोवा ने अलेक्सान्द्र के गालों को अपने मृदु गर्म हाथों में भर कर कहा : ''यह लड़का शीघ्र ही सुदर्शन पुरुष बन जायेगा,'' तो अलेक्सान्द्र के सारे बदन में भावावेश की एक अजीब सनसनाती लहर दौड़ी जो उसकी साँस को रोक डंक-सा मारती निकल गयी। और जब उसने अपने आपको उस लहर के प्रभाव से जैसे-तैसे मुक्त करके अपनी आँखें खोलीं, तो उसने देखा कि लड़कियाँ उसकी बात कब की भूल चुकी हैं और अपने मध्य किसी चीज़ पर शान्ति से विचार कर रही है। तब उसे एक धुँधली-सी अनुभूति हुई कि मानवीय सौख्य की सीमा-रेखा कहीं क़रीब ही है; उस रात बिस्तर पर पड़े-पड़े उसने इस घटना को शान्ति से याद किया, और जब उसने आँखें बन्द कीं, तो वे लड़कियाँ उसकी कल्पना में ऊँचे-ऊँचे धवल मेघ सदृश उड़ती उतराती रहीं।

वह नहीं जानता था कि उनके बारे में कैसे सोचे, लेकिन उसके अपने दिमाग़ में वे हमेशा आनन्द के साथ जुड़ी होतीं। और इसे न तो वोलोद्या की कटूक्तियाँ रोक सकती थीं न इल्या कोमारोव्स्की का भौण्डापन।

इसलिये वह उन विभिन्न कहानियों पर यक़ीन करना नहीं चाहता था, जो लड़के सुनाते थे और कहा जाता था कि लड़कियों ने भी उनमें भाग लिया। और जब वोलोद्या नाद्या के बारे में संकेत कर रहा था, तब भी यही बात थी। वोलोद्या का प्रमाण कहाँ है?

''तो तुम क्या चाहते हो कि वे सब कुछ तुम्हारी नाक के सामने करें?''

''नहीं, लेकिन तुम्हारे पास क्या प्रमाण है?''

'तुमने कभी ध्यान दिया है कि तुम्हारी नाद्या किस तरह घर जाती है?''

‘‘किस तरह जाती है?’’

‘‘और उसके पीछे कितने छैले लगे हुए हैं?’’

‘‘कितने’ से तुम्हारा क्या मतलब है?’’

‘‘क्या तुमने उन्हें कभी गिना हे? उनमें वास्या सेम्योनोव हे, पेत्या वेर्बीत्स्की है, ओलेग ओसोकिन है और तरानोव है, किसेल तथा फ़िलिमोनोव है। क्या तुमने उन्हें नहीं देखा?’’

‘‘अच्छा, तो क्या हुआ?’’

‘‘तुम समझते हो कि वे खांमख़ां उसके पीछे जाते हैं? तुम समझते हो कि वे ऐसे ही बेवकूफ़ हैं? तुम अपनी आँखें खुली रखो।’’

अलेक्सान्द्र ने अपनी आँखें खुली रखीं और देखा कि वे सचमुच साथ-साथ गये, कि वे ख़ुश थे और हँस रहे थे और कि नाद्या आँखें झुकाये उनके बीच में चल रही थीं। उसने क्लावा बोरीसोवा को भी ऐसे ही चौंधियानेवाले माहौल में देखा, लेकिन किंचित उदास ईर्ष्या के सिवा उसके मन में इसके बावजूद कोई सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ, हालाँकि वे ‘‘छैला लोग’’ उसे अरुचिकर लग रहे थे।

वसन्त आया; आकाश में सूर्य का कार्यकाल बढ़ गया, सड़कों पर चेस्टनट खिल गये। अलेक्सान्द्र को पहले से अधिक काम थे- मैचें, नौका-चालन, तैराकी और इम्तिहान। नद्या अपने इम्तिहानों के लिये सामान्य से भी अधिक मेहनत कर रही थी। उसके कमरे में हर दिन लड़कियाँ जमा होतीं, शाम को वे विवर्ण ओर गम्भीर होकर निकलतीं और अलेक्सान्द्र के हँसी-ठट्ठे का उन पर कोई असर नहीं पड़ता था। कभी-कभी युवक भी अध्ययन के लिये आते थे, लेकिन इन सब बातों में दसवें दर्जे की ऐसी गहरी छाप होती थी कि वोलोद्या को भी उनके बारे में कोई घृणित बात कहने का साहस न होता।

और ठीक तभी, ठीक इम्तिहानों की गहमागहमी के बीच कुछ हो गया। देर शाम को, रात के भोजन के बाद पिता ने कहा, ‘‘नाद्या कहाँ है?’’

माँ ने दीवार की घड़ी की तरफ़ निगाह डाली।

‘‘मैं ख़ुद यही सोच रही थी, वह चारबजे अपनी एक सहेली के यहाँ पढ़ने के लिये गयी थी।’’

‘‘लेकिन अब तो एक बच चुका है।’’

‘‘मैं बड़ी देर से चिन्तित हूँ, ’’ माँ ने कहा।

पिता ने अख़बार उठा लिया, लेकिन कोई भी समझ सकता था कि उनमें पढ़ने का कोई उत्साह नहीं था। उन्होंने अपने बेटे को देखा

‘‘अलेक्सान्द्र! तुम सोये क्यों नहीं?’’

‘‘कल छुट्टी है।’’

‘‘जाओ, बिस्तर मे जाओ।’’

अलेक्सान्द्र भोजन-कक्ष में ही सोफ़े पर सोता था, उसने जल्दी-जल्दी कपड़े उतारे

और बिस्तर में घुस गया। लेकिन वह सो न सका और चुपचाप लेटा इन्तज़ार करता रहा।

नाद्या दो बजे के क़रीब घर आयी। अलेक्सान्द्र ने संकोच से बजायी हुई घण्टी की और ख़ामोशी से दरवाज़ा खोलकर उसके भीतर आने की आवाज़ सुनी। वह समझ गया कि उसने कोई ग़लती की है। हाल में हल्की आवाज़ों में वार्तालाप हुआ। उसने माँ को कहते सुना :

''तुम यह सोचती हो कि यह सिर्फ़ स्पष्टीकरण का मामला है?''

इसके बाद शयन-कक्ष में कुछ बातचीत हुई। पिता भी वहीं थे ; वे क्या बातें कर रहे थे, यह रहस्य ही बना रह गया। अलेक्सान्द्र देर तक सो न सका-वह कौतूहल, घबराहट और भ्रमों के टूटने की निराशा के विचित्र मिश्रण से अभिभूत हो गया था। नींद आने से पहले उसने अन्तिम बार नाद्या और क्लावा के चेहरों तथा उनके गिर्द कुछ अप्रिय, असहनीय और साथ ही कौतूहलपूर्ण विचारों को तेज़ी से घूमते देखा, तब नींद उसे अभिभूत कर चुकी थी।

अगले दिन अलेक्सान्द्र ने नाद्या के चेहरे को ग़ौर से देखा और कुछ बातें उसकी नज़र में आ गयीं। उसकी आँखों तले नीली छायाएँ थीं, उसका चेहरा अधिक विवर्ण, उदास और विचारमग्न था। अलेक्सान्द्र ने उसे सहानुभूति से देखा, लेकिन जिस बात की उसे सबसे ज़्यादा चिन्ता थी वह यह पता लगाना था कि कल रात क्या हुआ।

उसने वोलोद्या को कछ नहीं बताया। वह अभी भी उसका दोस्त था ; वे दोनों स्कूली मामलों पर साथ-साथ बातें करते, छोटी-मोटी शरारतें करते, मछली पकड़ने जाते और लड़कियों की आलोचना करते। पर इसके बावजूद वह नाद्या के बारे में बातें करना अभी भी नहीं चाहता था।

घर पर वह पारिवारिक मामलो में जो भी दरार पा जाता उसमें पूरे अध्यवसाय के साथ अपनी नाक घुसाता। वह नींद का बहाना किये लेटा रहता, अध्ययन-कक्ष में घण्टों तक छुपा बैठा रहता, अपने माता-पिता की बातचीत सुनता, नाद्या पर, उसकी मनोदशाओं पर, उसके बोलने के तरीक़े पर नज़र रखता।

छुट्टी के दिन उसकी क़िस्मत जाग पड़ी। उसके पिता तड़के सवेरे शिकार पर चले गये और जाने की तैयारी में सारे परिवार को जगा गये। अलेक्सान्द्र भी जाग गया, लेकिन आँखें बन्द किये इन्तज़ार करता रहा। उसने अपनी आँख के कोने से देखा कि नाद्या आधे कपड़े पहने एक ''और घण्टे'' के लिये अपनी माँ के शयन-कक्ष में चली गयी। उसके पिता जब भी जल्द चले जाते या रात को काम पर होते, तो वह हमेशा ऐसा ही करती थी।

ज़रा ही देर बाद शयन-कक्ष में एक वार्तालाप होने लगा। इसका ख़ासा बड़ा हिस्सा अलेक्सान्द्र तक नहीं पहुँच पाया। कुछ उसने सुना नहीं और कुछ वह समझा नहीं।

उसकी माँ ने कहा : ''प्यार की परीक्षा होनी चाहिये। एक व्यक्ति यह सोच सकता है कि वह प्यार करने लगा है जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता। लोग बग़ैर

परखे मक्खन नहीं ख़रीदते, लेकिन हम अपनी भावनाओं को अंजलि भरके उठाते हैं और उन्हे लेकर अन्धों की तरह दौड़ पड़ते हैं। यह सचमुच बहुत मूर्खतापूर्ण है।''

''उसकी परीक्षा करना बहुत कठिन है,'' नाद्या ने फुसाफुसाकर लगभग अस्पष्ट स्वर में कहा।

फिर निश्शब्दता। शायद वे इतनी हल्की आवाज़ में फुसुसाकर बातें कररहे थे, और शायद माँ नाद्या के उलझे बालों को स्नेह से सहला रही थी। और तब माँ ने कहा :

''नादान, उसकी परीक्षा करना तो आसान है। तुम एक अच्छी, असली भावनाको हमेशा जान सकती हो।''

''अच्छे मक्खन की तरह?''

माँ की आवाज़ में एक मुस्कान के होने का आभास मिला।

''उससे भी ज़्यादा आसान।''

बहुत सम्भव है कि नाद्या ने अपना चेहरा तकिये में या माँ की गोद में छुपा लिया होगा, क्योंकि उसकी आवाज़ बहुत धीमी सुनायी दे रही थी।

''ओ, ममी, यह कितना कठिन है!''

अपनी खीझ में अलेक्सान्द्र करवट लेने ही वाला था, पर उसे याद आ गया कि वह तो गहरी नींद में होने का बहाना बनाये लेटा है, अतः उसने असन्तोष से मुँह ही फुला लिया। महज़ ढेर सारा रोना-धोना! और फिर इसका मक्खन से क्या लेना-देना है! अजीब हैं ये औरतें, मतलब की बातें क्यों नहीं करतीं!?

''हाँ यह ठीक है, थोड़ा अनुभव होना ही चाहिये...''

और उसकी माँ ने आगे जो कहा, उसे वह सुन नहीं पाया। फुसफुसाकर बात करने में इनका जवाब नहीं!

नाद्या जल्दी-जल्दी, उत्तेजित फुसफुसाहट के साथ बोलने लगी :

''ममी, तुम्हारे लिये यह कहना बहुत अच्छा है : थोड़ा अनुभव! मान लो मुझे बिल्कुल अनुभव नहीं है, ज़रा भी नहीं है तो? बताओ, यह कैसे होता है : प्यार का अनुभव? इसी की ज़रूरत होती है क्या? प्यार के अनुभव की? ओह, मैं कुछ भी नहीं समझती।''

अलेक्सान्द्र ने सोचा, ''अब वह रोना शुरू कर देगी,'' उसने एक हल्की आह जैसी साँस निकल जाने दी।

''नहीं, दैया रे, पर का अनुभव नहीं! प्यार का अनुभव-यह तो बहुत कुछ अप्रिय सुनीयी पड़ता है। जीवन का अनुभव।''

''मुझे जीवन का क्या अनुभव है?''

''तुम्हें सत्रह वर्ष का अनुभव है। यह खासा बड़ा अनुभव है।''

''ममी, मुझे कुछ बताओ, मुझे बता दो, ममी।'' लगता था कि माँ अपने विचारों का संकेन्द्रित कर रही थी।

''क्या तुम मुझे नहीं बताओगी?''

"बहाना न बनाओ, तुम खुद जानती हो।"

"मैं, बहाना बना रही हूँ?"

"तुम जानती हो कि स्त्रियोचित आत्मसममान ओर गर्व क्या होते हैं। जिस औरत में यह गर्व नहीं होता, उसकी कोई भी मर्द कुछ इ़ज़्ज़त नहीं करता। तुम जानती हो कि अपने पर क़ाबू रखना और पहले ही आवेग पर समर्पण न करना कितना आसान होता है।"

"लेकिन मान लो कोई समर्पण करना चाहे तो?"

अलेक्सान्द्र अब निराश होने लगा था : वे उस शाम के बारे में कब बातें करेंगे? और हो क्या गया था? सारी किताबी बातें : समर्पण करना, आवेग!

माँ ने कठोरता से और पहले से काफ़ी ज़्यादा ज़ोर से कहा :

"अगर तुम ऐसी ही कमज़ोर हो, शायद समर्पण कर दो। एक कमज़ोर व्यक्ति हमेशा नुकसान में रहता है और हर जगह संकट में जा फँसता है। यह कमज़ोरी ही है, जो लोगों को अपनी सारी ख़ुशी पी-पीकर नष्ट करने के लिये प्रेरित करती है। एक सच्चा व्यक्ति जानता है कि उसे कैसा व्यवहार करना चाहिये। लेकिन पंकिल वस्तुओं को सही ढंग से बाँध-बूँधकर रखना होता है, ताकि वे हर जगह रिसती टपकती न रहें।"

"क्या तुम समझती हो कि मैं पंकिल वस्तु हूँ।"

"क्यों।"

"तुम जानती हो कि बात क्या है : मैं प्रेमासक्त हूँ... लगभग प्रेमासक्त।"

अलेक्सान्द्र ने तकिये से अपना सिर भी उठा दिया, ताकि दोनों कानों से सुन सके।

"लगभग या सचमुच, मुझे उससे कोई डर नहीं है। तुम मेरी समझदार बेटी हो और तुममें आत्म-संयम है। यही वजह है कि मैं तुमसे उस चीज़ के लिये नाराज़ नहीं हूँ।"

"तब क्यों?"

"मुझे तुमसे ऐसी दुर्बल-हृदयता की कभी आशा नहीं थी। मेरा ख़्याल था कि तुममें कहीं अधिक गर्व होगा, स्त्रियोचित आत्म-सम्मान होगा। और तुम एक आदमी से सिर्फ़ दूसरी बार मिलने गयी और उसके साथ रात के एक बजे तक रुकी रही।"

"ओह!'

"यह, सचमुच, दुर्बलता है। यह अपने साथ न्याय करना नहीं है।"

फिर वहाँ निश्शब्दता छा गयी। शायद नाद्या ने अपना मुँह तकिये में छुपा लिया होगा और शर्म के मारे बोल नहीं रही होगी। यहाँ तक कि अलेक्सान्द्र भी किंचित बेचैनी का अनुभव करने लगा। माँ शयन-कक्ष से बाहर आयी और हाथ-मुँह धोने के लिये रसोई को चली गयी। नाद्या बिल्कुल शान्त हो गयी थी।

अलेक्सान्द्र वोल्गिन ने ज़ोर से अंगड़ाई ली, खाँसा, जँभाई ली और ऐसी कई हरकतें

कीं, जिससे यह ज़ाहिर हो कि वह अभी-अभी गहरी नींद से जागा है और हल्के मन से दिन की अगवानी कर रहा है। नाश्ते के समय उसने अपनी माँ और बहन के चेहरे को ग़ौर से देखा और अपनी जानकारी पर प्रसन्न था। नाद्या के चेहरे में देखने को कुछ ख़ास नहीं था; वह ख़ासी अच्छी नज़र आ रही थी, यहाँ तक कि उसने हँसी-मज़ाक भी किया और मुस्करायी भी। लेकिन उसकी आँखें अवश्य लाल थीं, और उसके बाल हमेशा की तरह सुव्यवस्थित नहीं थे और सामान्यतः वह पहले जैसी सुन्दर नहीं लग रही थी। माँ ने प्यालों की तरफ़ देखते और नीरस ढंग से किंचित मुस्कराते हुए चाय उँड़ेली; बहुत सम्भव है कि उसकी मुस्कान में उदासी अभिव्यक्त हो रही हो। फिर उसने अलेक्सान्द्र की तरफ़ देखा और असली ढंग से मुस्कराई।

''तुम मुँह क्यों बना रहे हो?''

अलेक्सान्द्र चौंक पड़ा और उसने जल्दी से अपने चेहरे को ठीक बना लिया; उसका चेहरा वस्तुतः ऐसी हरकतें कर रहा था, जो उसके मालिक को मंजूर नहीं थीं।

''मैं मुँह नहीं बना रहा हूँ।''

नाद्या ने अपने भाई पर प्रसन्न, परिहासपूर्ण नज़र डाली, दो या तीन बार सिर हिलाया और... कहा कुछ नहीं। यह उसका दम्भपूर्ण व्यवहार था और शायद कल होता, तो चल भी जाता, लेकिन आज यह अलेक्सान्द्र की जानकारी के लिये एक अपमानजनक चुनौती थी। वह उसे निहायत आसानी से धराशायी कर सकता था.. . लेकिन गोपनीयता सम्मान से बढ़कर थी, और अलेक्सान्द्र को एक औपचारिक प्रत्युत्तर से सन्तोष करना पड़ा :

''वाह, ऐसी नज़र से मुझे क्यों देखती हो?''

नाद्या मुस्कराई :

''तुम्हें देखकर ऐसा लगता है मानों तुम्हें भूगोल में 'उत्कृष्ट' अंक मिले हो।''

इन शब्दों में उपहास का पुट था, लेकिन उसे अलेक्सान्द्र पर असर डालने का समय नहीं मिला। अचानक ही उसके दिमाग़ पर भूगोल हावी हो गया : उसकी स्मृति में नदियाँ और नहरें झिलमिलाने लगीं, आँकड़ों और नगरों के नाम घूम गये। आज इम्तहान था। अलेक्सान्द्र ने बहन की तरफ़ हाथ हिलाया और सब कुछ छोड़कर भूगोल की पुस्तक को लेने के लिये दौड़ा।

लेकिन स्कूल को जाते समय वह सुबह के वार्तालाप को ही याद करता रहा। पृष्ठभूमि सुखद थी : अलेक्सान्द्र वोल्गिन को राज मालूम है और इसकी किसी को कानोंकान ख़बर नहीं। यह पृष्ठभूमि अनेक बिम्बों से अलंकृत थी, लेकिन अलेक्सान्द्र उन सबको पूरी तरह से नहीं देख पाया था। कभी एक सामने आ खड़ा होता और कभी दूसरा, और प्रत्येक केवल अपनी बात बताता था। एक सुखद बिम्ब कहता था कि उसकी बहन ने कोई ग़लत काम किया है, लेकिन वहीं पास में एक और बिम्ब था, जो उसे चिन्ता में डाले जा रहा था-यह अप्रिय बात थी कि उसकी बहन को कुछ हो गया था। और बिल्कुल क़रीब ही चौड़ी-चौड़ी विशद रेखाओं से निरूपित, ऊँचे

धवल मेघों की तरह, पहले जैसा ही मोहक उनका वह सम्पूर्ण बालिका-संसार था। और फिर किसी भी तरह के बादलों के बग़ैर बौनी विरूपित आकृतियाँ नाचती थीं जो यह इशारा करती थीं कि लड़कियाँ केवल दिखावा कर रही हैं और शायद वोलोद्या ही सही हो। फिर यह सब धूमिल और विस्मृत हो गया और अलेक्सान्द्र को तड़के सवेरे बोले गये माँ के शब्द याद आ गये। वे अपेक्षाकृत असाधारण महत्वपूर्ण शब्द थे, जिन पर वह विचार करते रहना चाहता था, परन्तु यह नहीं जानता था कि विचार किया कैसे जाये; वह उनकी वास्तविक, स्नेहमय शक्ति को ही याद कर पाया। उसे किसी मर्द द्वारा किसी औरत की इज़्ज़त न करने से सम्बन्धित शब्द याद आये। इसमें कोई दिलचस्प बात थी, लेकिन क्या थी इसे वह समझ नहीं पाया, क्योंकि दृश्य एक बड़े परिचित शब्द ''मर्द'' से निरुद्ध हो गया था। एक मर्द-यह वही था, अलेक्सान्द्र वोल्गिन। यह शब्द पिता के साथ वार्तालाप में कई बात आया था। यह कोई शक्तिशाली, कठोर, सहिष्णु और अत्यन्त रहस्यमय चीज़ थी। फिर यह बिम्ब भी धुँधला हो गया और शर्मनाक विचार जबरन सतह पर आ गये, इल्या कोमारोव्स्की के गन्दे क़िस्से और वोलोद्या उवारोव का कटु-कठोर मानवद्वेष। लेकिन यह भी ग़ायब हो गया और एक बार फिर नीले आकाश में ऊँचे धवल मेघ चमचमाने लगे और पवित्र कमनीय बालिकाएँ कोमलता से मुस्कराने लगीं।

ये सब अलेक्सान्द्र की आत्मा के गिर्द दीवारों पर दस्तक देते मंडरा रहे थे, हर कोई अपनी कहानी कहता था, लेकिन अन्दर केवल उसके पिता का दिया हुआ उपहार था-एक मर्द शक्ति और श्रेष्ठता का प्रतीक होता है।

अलेक्सान्द्र समय से पहले स्कूल पहुँच गया। इम्तहान ग्यारह बजे शुरू होने वाला था और अभी सिर्फ़ सवा दस हुए थे। कई शिक्षार्थी, नक़्शों के गिर्द पहले से ही काम में जुटे थे। वोलोद्या उवारोव अपने हाथों को पीछे की तरफ़ करके स्कूल के छोटे उद्यान में शान दिखाता घूम रहा था। क्या वह भूगोल में सचमुच इतना अच्छा है? वोलोद्या ने अलेक्सान्द्र की मनोदशा के बारे में, सैंडविच द्वीप समूह के बारे में कुछ दुनियावी सवाल किये और सहसा पूछा :

''क्या अब तुम्हारी बहन की शादी हो गयी है?''

अलेक्सान्द्र के सारे बदन में एक थरथराहट दौड़ गयी, उसने विस्फारित नेत्रों से वोलोद्या को घूरा।

''क्यों?''

''हो-हो! उसकी शादी हो गयी, और उसे खबर नहीं ! क्या कहने तुम्हारे!''

''क्या मतलब है तुम्हारा? शादी हो गयी? कैसे?''

''क्या मासूम बछेड़ा है! तुम्हें यह भी पता नहीं कि लोगों की शादी कैसे होती है। निहायत आसान : एक, दो और नौ महीने में बच्चा।''

वोलोद्या अपने हाथों को पीछे किये अपने सुन्दर गोल सिर को ऊँचा किये खड़ा था।

''तुम झूठ बोल रहे हो!''

वोलोद्या ने वयस्कों की तरह कन्धे उचकाये और उसी दुर्लभ मुस्कानों में से एक उसके होंठों पर आ गयी।

''तुम ख़ुद देख लोगे।''

और वह इमारत की तरफ़ को बढ़ गया। अलेक्सान्द्र उसके पीछे नहीं गया; वह एक बेंच पर बैठ गया और सोच-विचार करने लगा। सोचना कठिन था और वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका, लेकिन उसे यह याद आया कि उसे एक मर्द बनना चाहिये। सौभाग्य से भूगोल का इम्तहान अच्छा हुआ और अलेक्सान्द्र उल्लसित मुद्रा में घर लौटा। लेकिन जब उसने अपनी बहन को देखा, तो उसका उल्लास तिरोहित हो गया। नाद्या अध्ययन कक्ष में बैठी-बैठी अपनी नोटबुक में कुछ उतार रही थी। अलेक्सान्द्र दरवाज़े पर खड़ा रहा और उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह नाद्या की तरफ़ दृढ़संकल्प से बढ़ रहा है। नाद्या ने अपना सिर उठाया।

''क्यों, भूगोल कैसा रहा?''

''भूगोल? मुझे उत्कृष्ट अंक मिला, लेकिन तुम सिर्फ़ एक बात बताओ।''

''बोलो, क्या जानना चाहते हो?''

अलेक्सान्द्र ने एक लम्बी साँस ली और फटाक से बोला :

''सुनो, तुमने शादी कर ली है या नहीं?''

''क्या?''

''बताओ... तुम शादीशुदा हो गयी हो या नहीं?''

''मैं शादीशुदा? तुम क्या बेसिर पैर की बातें कर रहे हो?''

''नहीं, तुम बताओ।''

नाद्या ने ग़ौर से भाई के चेहरे को देखा और उठकर उसके कन्धे पकड़ लिये :

''ज़रा ठहरो। इसका क्या मतलब है? तुमने पूछा क्या?''

''अलेक्सान्द्र ने अपनी आँखें उसके चेहरे की तरफ़ उठायीं। वह क्रोध से भरा और शत्रुतापूर्ण था। नाद्या ने उसे धक्का दिया और दौड़ते हुए कमरे से बाहर निकल गयी। शयन-कक्ष से उसकी रुलाई फूटने की आवाज़ सुनायी पड़ी। अलेक्सान्द्र मेज़ के पास खड़ा सोचने लगा, लेकिन सोचना कठिन था। वह झटकता हुआ भोजन-कक्ष की तरफ़ चला। दरवाज़े में वह अपनी माँ से टकरा गया।

''तुम नाद्या से कैसी घृणित बातें कह रहे थे?''

और अब अलेक्सान्द्र वोल्गिन एक बार फिर अपने पिता के सामने बैठता है और एक बार फिर वह उन रजत सितारों को ग़ौर से देखता है। लेकिन इस बार अलेक्सान्द्र शान्त है, वह अपने पिता से आँख मिला सकता है और उसके पिता उससे मुस्कराकर बातचीत करते हैं।

''अच्छा तो?''

'मैंने आपसे वादा किया था...''

''किया था।''

''मैंने आपसे कहा था कि मैं मर्द बनूँगा।''

''ठीक है।''

''तो, मैं रहा... हर मामले में।''

''लेकिन एक मामले में तुमने ग़लती की।''

''क्या मैंने मर्द की तरह व्यवहार नहीं किया?''

''नहीं, तुम्हें नाद्या से नहीं पूछना चाहिये था।''

''तो किससे पूछता?''

''मुझसे।''

''आपसे?!''

''हाँ, चलो, सारी बातें मुझे बताओ।''

अलेक्सान्द्र वोल्गिन ने सारी बातें पिता को बतायीं और वह वार्तालाप भी बता दिया, जो उसने उस सुबह चोरी से सुना था। जब वह अपनी बात ख़त्म कर चुका तो उसने आगे कहा :

''मैं जानना चाहता हूँ कि उसकी शादी हुई या नहीं। मुझे यह मालूम होना ही चाहिये।''

पिता ने ध्यान से सुना था और वे एक भी प्रश्न पूछे बिना बीच-बीच में सिर हिलाते जा रहे थे। फिर वे मेज़ के गिर्द घूमकर गये, डेस्क पर पड़ी डिबिया में से एक सिगरेट निकाली, धुओं का एक गुबार छोड़ा और जली हुई तीली को हिलाकर बुझाया। इस बीच सिगरेट को दाँतों से थामे उन्होंने पूछा :

''तुम्हें यह क्यों जानना चाहिये?''

''ताकि वोलोद्या यह न कह सके।''

''क्या न कह सके?''

''कि उसकी शादी हो गयी है।''

''किसी को ऐसा क्यों नहीं कहना चाहिये?''

''क्योंकि वह झूठ बोल रहा है।''

''झूठ बोल रहा है? तो बोलने दो।''

''लेकिन वह बोलता ही जायेगा।''

''वह जो कहता है उसमें क्या नुक़सान है? क्या शादी करना बुरा है?''

''वह महज़ कहता है उसकी शादी हो गयी है, लेकिन...''

''तो फिर?''

''लेकिन वह कहता है... वह गन्दी बातें कहता है।''

''अहा... तो अब तुम समझते हो।''

''हाँ, समझता हूँ।''

अलेक्सान्द्र ने हामी भरी, स्वयं अपने से यह पुष्टि की कि वह सचमुच समझ गया है।

उसके पिता ने उसके बिल्कुल पास आकर उसकी ठोड़ी पकड़ी, तथा गम्भीरता और कठोरता से उससे आँखें मिलायीं।

''हाँ, तुम एक मर्द हो। अच्छा, अब आगे इस बात को हमेशा याद रखना। बस, जाओ।''

अगले दिन अलेक्सान्द्र वोलोद्या के निकट नहीं गया और एक दूसरी ही मेज़ पर बैठ गया। पाठों के बीच अन्तराल के दौरान वोलोद्या ने अलेक्सान्द्र के कन्धे पर हाथ रखा, लेकिन अलेक्सान्द्र ने उसे झटक से अलग कर दिया।

''दूर हट!''

वोलोद्या ने तिरस्कारपूर्वक उसे देखा।

''तू समझता है मुझे तेरी ज़रूरत है?'' उसने कहा।

वास्तव में यह कहानी यहीं पर खत्म हो जाती है। वोलोद्या उवारोव और अलेक्सान्द्र वोल्गिन के रास्ते बहुत लम्बे समय के लिये, शायद हमेशा के लिये एक दूसरे से अलग हो गये। लेकिन एक पखवारे से ज़्यादा समय नहीं हुआ था कि वे एक बार, एक मिनट के लिये, फिर एक-दूसरे से टकरा गये। वह स्कूली वर्ष का अन्तिम दिन था।

उसी उद्यान में, लड़कों की एक टोली के बीच वोलोद्या कह रहा था :

''दसवें दर्जे की क्लावा पहली...''

लड़के वोलोद्या की बातों को अपने रोज़ की तरह अनिच्छासहित ध्यान से सुन रहे थे।

अलेक्सान्द्र भीड़ के बीच से धँसता हुआ आया और इस क़िस्सागो के सामने आ डटा :

''वह झूठ था, तूने जानबूझकर झूठ बोला था।''

वोलोद्या ने उसकी तरफ़ एक निस्तेज नज़र डाली :

''था, तो क्या!''

''तू हमेशा झूठ बोलता है और हमेशा ऐसा ही करता रहा है।''

लड़कों को अलेक्सान्द्र की स्वर-शैली में कुछ नयी बात सुनायी पड़ी, एक नया ख़ुशग़वार स्वर सुनायी पड़ा। वे निकटतर आ गये। वोलोद्या ने भौं सिकोड़ी :

''मेर पास तेरी कूड़ा बात सुनने का वक्त नहीं है...''

वह जाने लगा। पर अलेक्सान्द्र ज़रा भी नहीं हटा :

''नहीं, जा मत!''

''वाह, क्यों न जाऊँ?''

''मैं तेरी मरम्मत करने वाला हूँ!''

वोलोद्या का चेहरा लाल हो गया, लेकिन उसने अभी भी 'अंग्रेज' बनने के प्रयत्न में अपने होठों को भींचा और चटाक से बोला :

''ज़रा देखूँ तो सही, कैसे करता है!''

अलेक्सान्द्र ने अपना घूँसा घुमाया और वोलोद्या के नाक में दे मारा। वोलोद्या ने इस चोट का तुरन्त जवाब दिया। यह उन अच्छी-ख़ासी बालकोचित लड़ाइयों में से एक की शुरुआत थी, जहाँ यह जानना हमेशा कठिन होता है कि विजेता कौन है। किसी वरिष्ठ लड़के के वहाँ पहुँचने से पहले दोनों योद्धाओं की नाकों से रक्त बहने लगा था और कई बटन उड़ चुके थे।

''लड़ाई क्यों हो रही है,'' दसवें दर्जे के एक लम्बे लड़के ने पूछा। ''इसकी शुरुआत किसने की?''

एक अकेली आवाज़ ने सुलह कराने के अन्दाज़ से कहा, ''बस, योंही लड़ाई हो रही है। दोष दोनों का है।''

लड़कों की भीड़ में अस्वीकृति की गुनगुनाहट-सी हुई :

''दोनों कका ज़रा सुनो इसे! उसे तो बहुत पहले ही पीटना चाहिये था!''

उस कोलाहल के बीच कोस्त्या नेचिपोरेंको की सहज स्वाभाविक आवाज़ उभरी :

''उन दोनों का दोष नहीं है। उन दोनों के बीच बहुत फर्क है। वोल्गिन इस साँप को झूठे क़िस्से फैलाने के लिये उसकी पिटाई कर रहा था और वह पलटकर हाथों से हिला रहा था... न करे तो क्या करे!''

लड़के ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे।

वोलोद्या ने अपनी आस्तीन से नाक पोंछी, जल्दी से इधर-उधर देखा और इमारत की ओर चल पड़ा। सबने उसे जाते हुए देखा। उसकी उस चाल में 'अंग्रेजियत' ज़रा भी नहीं रह गयी थी।

बच्चों के साथ सेक्स की समस्या पर कोई भी बातचीत उस जानकारी में कोई वृद्धि नहीं कर सकती, जो उचित समय पर उसे ख़ुद-ब-ख़ुद प्राप्त हो जायेगी। लेकिन ऐसी बातें प्रेम की समस्या को सस्ता ज़रूर बना देती है, उसके उस संयम को छीन लेती हैं, जिसके बिना प्यार व्यभिचार कहलाने लगता है। राज़ को खोलने से, चाहे वह सर्वाधिक बुद्धिमत्ता से ही क्यों न खोला जाये, प्रेम का शरीर क्रियात्मक पक्ष तीव्रतर हो जाता है, वह सेक्स का बोध नहीं कराता, बल्कि सेक्सी कौतूहल को जगाता है, उसे सरल और सुगम बना देता है।

बालपन के दौरान सुव्यवस्थित ढंग से विरचित संयम के बिना प्रेम की भावनाओं का पोषण असम्भव है। और सेक्स की शिक्षा सेक्स के सवालों के प्रति उस आन्तरिक सम्मान को बढ़ावा देने में निहित होनी चाहिये, जिसे कुमारीत्व कहते हैं। अपनी भावनाओं को, अपनी कल्पना तथा अपनी वासनाओं को नियंत्रण में रखने की योग्यता एक ऐसी सबसे अधिक अनिवार्य योग्यता है, जिसके सामाजिक महत्व को पूरी तरह से नहीं समझा गया है।

बहुत-से लोग सेक्स-शिक्षा की बातें करते समय सेक्स के क्षेत्र की कल्पना ऐसी चीज़ के रूप में करते हैं, जो पूर्णतः अलग-थलग व पृथक होती है, जो कुछ ऐसी

चीज़ होती है, जिससे सम्बन्धित बात-व्यवहार गोपनीय होना चाहिये। इसके विपरीत कुछ अन्य सेक्स की भावना को मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिये एक प्रकार का सार्विक आधार-सा बना देते हैं; उनके विचार में एक व्यक्ति मुख्य रूप से या तो नर होता है या मादा। स्वाभाविक है कि वे भी इस विचार पर जा पहुँचते हैं कि शिक्षा मुख्यतः सेक्स की शिक्षा होनी चाहिये। इन दोनों विचारों में भेद होने के बावजूद वे सभी यह मानते हैं कि प्रत्यक्ष और जानबूझकर दी गयी सेक्स-शिक्षा उपयोगी और आवश्यक है।

मेरा अनुभव बतलाता है कि विशेष व सोच-समझकर दी जाने वाली सेक्स-शिक्षा के केवल अफ़सोसनाक परिणाम ही हो सकते हैं। वह सेक्स की भावना को ऐसे वातावरण में ''शिक्षित'' करेगी मानो मनुष्य को किसी दीर्घ सांस्कृतिक इतिहास का अनुभव ही न हो, मानो सेक्सी प्रेम के श्रेष्ठ रूप दाँते, पेट्रार्क और शेक्सपियर के समय में ही उपलब्ध न कर लिये गये हों, मानों लोग कुमारीत्व के विचार को बहुत पहले ही, प्राचीन ग्रीस में व्यवहार में न लाये हों।

यदि सेक्स की भावनाओं को व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास से अलग-थलग अस्तित्व की कोई चीज़ माना जाता है, तो सामाजिक मायनों में उनकी सही शिक्षा नहीं दी जा सकती है। लेकिन साथ ही सेक्स के क्षेत्र को मानवीय मानसिकता का आधार भी कतई नहीं माना जाना चाहिये और उसे शिक्षक के ध्यान का केन्द्र बिन्दु नहीं बनाया जाना चाहिये। सेक्स-जीवन प्रेम के सम्पोषण का प्रारम्भ नहीं निष्कर्ष है। सेक्स की भावनाओं को अलग से सिखाकर हम नागरिक को शिक्षित नहीं करते, लेकिन, इसके बावजूद, नागरिक को शिक्षा देकर हम सेक्स की भावनाओं की शिक्षा भी दे देते हैं, लेकिन सेक्स की यह भावना हमारी शिक्षा की मूल प्रवृत्ति के प्रभाव से पहले ही श्रेष्ठता को प्राप्त हो चुकती है।

अतः प्रेम का सम्पोषण महज़ पाशविक सेक्स आकर्षण से नहीं हो सकता है। ''प्रेममय'' प्रेम की शक्ति केवल ग़ैरसेक्सी मानवीय स्नेह के अनुभव में ही पायी जा सकती है। यदि एक युवक ने अपने माता-पिता से, अपने दोस्तों से, अपने साथियों से प्यार न किया हो, तो वह उस औरत को कभी प्यार नहीं करेगा, जिसे उसने अपनी पत्नी के रूप में छाँटा है। और उसके ग़ैर-सेक्सी प्यार का दायरा जितना व्यापक होगा, उसका सेक्सी प्यार भी उतना ही श्रेष्ठ होगा।

एक आदमी जो अपने देश, अपने लोगों, अपने काम से प्यार करता है, वह कभी भी लम्पट दुराचारी नहीं बनेगा, वह एक नारी को महज़ एक मादा के रूप में नहीं देखेगा। और इसका विलोम निष्कर्ष भी इतना ही सही है : जो आदमी एक औरत के साथ भद्दे और शर्मनाक विद्वेष का व्यवहार करने में समर्थ है, उस पर एक नागरिक की हैसियत से विश्वास नहीं किया जा सकता है; लोगों के सर्वनिष्ठ उद्देश्य के लिये भी उसका रवैया ऐसा ही विद्वेषपूर्ण होगा और उस पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता है।

सेक्स की सहजवृत्ति एक विराट प्रेरक शक्ति है, अपनी मूल ''असभ्य'' अवस्था में छोड़ दिये जाने पर या ''असभ्य'' शिक्षा से तीव्रीकृत होकर यह केवल एक समाजविरोधी घटना ही बन सकती है। लेकिन सामाजिक अनुभव से, अन्य लोगों के साथ एकता के, अनुशासन और आत्मनिग्रह के अनुभव से संयमित और सुशिष्ट होने पर यह अत्यन्त उत्कृष्ट सौन्दर्यबोधात्मक गुणग्राहकता और सर्वाधिक सुन्दर मानवीय सौख्य का एक आधारस्तम्भ बन जाती है।

परिवार वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जहाँ मनुष्य सामाजिक जीवन में अपने पहले चरण रखता है! यदि वे चरण सही ढंग से व्यवस्थित होते हैं, तो सेक्स की शिक्षा भी सही ढंग से चलेगी। जिस परिवार में माता-पिता सक्रिय होते हैं और उनका प्राधिकार उनके जीवन और कार्य से सहज रूप से निकलता है, जहाँ बच्चों के जीवन, समाज के साथ उनके पहले सम्पर्क, उनके अध्ययन, खेल, मनोदशाओं, उल्लास और निराशाओं पर माता-पिता का हमेशा ध्यान रहता है, जहाँ अनुशासन है, अच्छा प्रबन्ध और नियंत्रण है, ऐसे परिवार में बच्चों की सेक्स की सहजवृत्ति भी हमेशा सही ढंग से विरचित होती है। ऐसे परिवार में किसी तरह की ज़ोर-ज़बरदस्ती और आकस्मिक आवेगपूर्ण करामातों की कभी भी ज़रूरत नहीं पड़ती है, क्योंकि, यहाँ सबसे पहले, माता-पिता और बच्चों के बीच सुकुमारता और ख़ामोश विश्वास का पूर्णतः आवश्यक बन्धन होता है। इस बन्धन के होने पर यथार्थवादी विश्लेषणों तथा तथ्यों के कोर विवरणों का इस्तेमाल किये बग़ैर पारस्परिक समझ सम्भव है। और दूसरी बात यह है कि इस आधार पर उचित समय पर बोले गये हर शब्द में पौरुष और कुमारीत्व के बारे में, जीवन के सौन्दर्य और उसकी प्रतिष्ठा के बारे में, जीवन के सौन्दर्य और उसकी प्रतिष्ठा के बारे में कहे गये हर संक्षिप्त व गम्भीर शब्द में आशय और बुद्धिमत्ता होगी, जो भविष्य में महान प्यार को, जीवन के रचनात्मक बल को जन्म देने में मदद करेगा।

हर स्वस्थ परिवार में सेक्स की शिक्षा संयम और पवित्रता के ऐसे ही वातावरण में सम्पन्न होती है।

हम अपने बच्चों के साथ प्यार के बारे में जितनी अधिक बुद्धिमत्ता तथा संयम से बातें करते हैं, भविष्य में उनका प्यार भी उतना ही सुन्दर होगा, लेकिन वह संयम हमारे बच्चों के व्यवहार पर लगातार और नियमित ध्यान के साथ-साथ चलना चाहिये।

यदि परिवार में सही व्यवस्था, व्यवहार की समुचित मर्यादाएँ न हों, तो किसी भी दर्शन और कैसी ही भाषणबाजी से कोई भला नहीं होगा।

यदि परिवार में कोई भी सदस्य ठीक समय का, संगठन और समझदारी की एक कठोर व्यवस्था का परिपालन नहीं करता है, तो उससे परिवार को सबसे ज़्यादा हानि होती है और युवजन के सामान्य सेक्स-अनुभव में सबसे ज़्यादा गड़बड़ी इसी से होती है। यदि बेटा या बेटी जब ठीक समझें तभी सोयें या तभी उठें अथवा केवल तभी ऐसा करें, जब उन्हें करना ही पड़े, अगर शामों को वे न जाने कहाँ ''बाहर घूमने

जायें'' या ऐसी ''एक सहेली के यहाँ '' अथवा ''एक साथी के साथ'' रात बितायें, जिनका पता और पारिवारिक वातावरण का कुछ पता न हो, तो लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा की बात कैसे की जा सकती है। इस मामले में हमारे सामने ऐसी घरेलू शिथिलता है, जिसमें किसी भी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा सम्भव नहीं है-हर चीज़ संयोग के वशीभूत है, अस्त-व्यस्त और अनुत्तरदायित्वपूर्ण है।

बच्चों को प्रारम्भिक अवस्था से ही समय का पाबन्द होना तथा व्यवहार की सुस्पष्ट रूप से निर्धारित सीमाओं में काम करना सिखलाना चाहिये। परिवार को चाहिये कि वह पूर्णतः स्पष्ट और भरोसेमन्द मामलों को छोड़कर अन्य किसी भी हालत में अजनबी परिवार में ''रात बिताने'' की अनुमति न दे। यही नहीं, दिन कि समय भी बच्चे जिन जगहों में कुछ घण्टों तक रहते हैं उनके बारे में माता-पिता को सब कुछ मालूम होना चाहिये। यदि यह जगह एक साथी का परिवार है, तो माता-पिता को, उसे अधिक अच्छी तरह से जानने के लिये आलस्य के सिवा और कोई चीज़ नहीं रोक सकती।

बच्चे के दिन की एक कठोर समय-सारणी लालन-पालन की एक अनिवार्य शर्त है। यदि आपके पास ऐसी समय-सारणी नहीं है और आप उसकी व्यवस्था करने का इरादा नहीं कर रहे हैं, तो इस पुस्तक को पढ़ने में लालन-पालन से सम्बन्धित किसी भी पुस्तक को पढ़ने में आपका वक़्त बिल्कुल व्यर्थ बर्बाद हो रहा है।

समय की पाबन्दी की आदत अपने आपसे सख़्त माँग करने की आदत है। बिस्तर से उठने का बिल्कुल ठीक वक्त दृढ़संकल्प के लिये सबसे ज़्यादा ज़रूरी प्रशिक्षण है, यह नामर्दपन से तथा लिहाफ़ तले दिवास्वप्न देखने से मुक्ति पाना है। खाने की मेज़ पर ठीक समय पर पहुँचना माँ के प्रति, परिवार के प्रति, अन्य लोगों के प्रति सम्मान है और यह स्वयं अपने प्रति भी सम्मान है। और वक़्त की हर तरह की पाबन्दी का मतलब अनुशासन की तथा माता-पिता के प्राधिकार की पहुँच में रहना; अतः यह भी सेक्स की शिक्षा हे।

और उसी दैनिक संस्कृति के एक अंग के रूप में हर परिवार के अन्दर डाक्टर को, उसकी सलाह को, उसके आरोग्य-वैज्ञानिक व रोगनिरोधात्मक मार्गदर्शन को एक प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिये। कुछ विशेष अवधियों में लड़कियों को डाक्टरी देखभाल की ख़ास तौर से ज़रूरत होती है और डाक्टर को माँ की सहायता व समर्थन हमेशा प्राप्त होना चाहिये। चिकित्सीय दायित्व मुख्य रूप से स्कूल पर ही होना चाहिये। सेक्स के सवालों पर गम्भीर बातचीत की, लड़कों को आरोग्य-विज्ञान की, आत्म निग्रह की और बड़ी अवस्था में रतिजन्य रोगों के ख़तरे से परिचित कराने की व्यवस्था के लिये स्कूल ही उचित स्थान है।

यह बात नोट की जानी चाहिये कि यदि सारा समाज इस समस्या पर बहुत सक्रिय रूप से ध्यान दे, तो एक परिवार की परिधि के अन्दर सही सेक्स शिक्षा का काम बहुत सुविधाजनक हो जायेगा। जनमत और सार्वजनिक नैतिकता को चाहिये

कि वे स्वयं समाज में ऊँचे आचरण की अधिक दृढ़ और अधिक आग्रहपूर्ण माँग करे।

इस दृष्टि से हमें, ख़ास तौर से, गन्दी भाषा जैसी ''छोटी बात'' की चर्चा करनी ही चाहिये।

ज़िम्मेदार पदों पर काम करनेवाले अत्यन्त संस्कृत लोग, जिन्हें रूसी भाषा में महारत हासिल होती है, कभी-कभी गाली-गलौज में एक प्रकार की वीरतापूर्ण प्रेरणा खोज निकालते हैं तथा हर सम्भव मौके पर उसका इस्तेमाल करते हैं और साथ ही अपने चेहरों पर अत्यन्त संस्कृत एवं प्रज्ञापूर्ण भाव बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। इस मूर्खतापूर्ण, घृणास्पद परम्परा के कारणों को समझना बहुत कठिन है।

पुराने ज़माने में शायद गाली-गलौज की गन्दी भाषा कमज़ोर शब्दावली तथा मूक निरक्षरता के लिये सहायक की तरह अपने ही ढंग से काम आती थी। स्टैण्डर्ड गाली की सहायता से आद्य भावों को अभिव्यक्त किया जा सकता था, जैसे क्रोध, प्रसन्नता, आश्चर्य, निन्दा और ईर्ष्या। लेकिन अधिकांशतः यह किसी भी भावना को व्यक्त नहीं करताी थी, बल्कि असम्बद्ध मुहावरों और विचारों को जोड़ने के साधन का काम देती थी-एक सार्विक कोष्टकीय मुहावरा। इस मामले में यह फ़ार्मूला ज़रा भी अनुभूति के बग़ैर बोला जाता था और सिर्फ़ बोलेने वाले के मात्र विश्वास और भाषण के प्रवाह को प्रदर्शित करता था।

मूक निरक्षरता हमारे आज के जनगण का लक्षण क़तई नहीं है। यह साक्षरता, पुस्तकों और अख़बारों के व्यापक प्रसार के फलस्वरूप ही नहीं, बल्कि इस तथ्य के कारण से भी आयी कि सोवियत मानव के पास कुछ बोलने के लिये था; ऐसे विचार और भावनाएँ थीं, जिन्हें अभिव्यक्त करने की ज़रूरत थी और जो अभिव्यक्त किये जा सकते थे।

हमारे देश में गाली-गलौज के शब्दों का ''तकनीकी'' महत्व खत्म हो गया है, लेकिन भाषा में वे अभी भी मौजूद हैं। अब वे मिथ्या साहस को, ''लौह चरित्र'' को निर्णायकत्व, सरलता, सुरुचि के लिये तिरस्कार को अभिव्यक्त करते हैं। अब वे एक क़िस्म के ऐसे नख़रे हैं, जिनका मकसद सुननेवाले को ख़ुश करना, उसको जीवन के प्रति सुनानेवाले के साहसिक रवैये तथा पूर्वाग्रहहीनता को दर्शाना है।

इस सहज और बिल्कुल स्पष्ट तथ्य को हर कोई नहीं समझता है कि गाली का शब्द एक सस्ती, घृणित और बिल्कुल नीच अश्लीलता है, सबसे अधिक असभ्य, सर्वाधिक आदिम संस्कृति का एक चिह्न है-महिलाओं के प्रति हमारे सम्मान को तथा गहन व वास्तविक मानव-सौन्दर्य के लिये हमारे प्रयासों को मानवद्वेषी, धृष्ट और गुण्डों की तरह से नकारना है।

लेकिन, यदि अनियंत्रित रूप से प्रयुक्त अश्लील शब्द महिलाओं के लिये सिर्फ़ अपमानजनक है, तो बच्चों के लिये यह अत्यन्त हानिकारक है। हम आश्चर्यजनक लापरवाही से इसे बर्दाश्त करते हैं, हम शिक्षा के लिये अपनी महान और सक्रिय

महात्वाकांक्षाओं के साथ ही साथ उसके अस्तित्व को बर्दाश्त करते हैं।

यह ज़रूरी है कि हम अश्लील भाषा के ख़िलाफ़ एक दृढ़ और अनवरत संघर्ष शुरू करें और अगर सौन्दर्यबोध की दृष्टि से नहीं, तो विशुद्ध शैक्षिक दृष्टि से करें। यह उत्तराधिकार हमारे बच्चों और समाज को जो भयानक नुक़सान पहुँचाता है, उसकी गणना करना कठिन है और उसका वर्णन करना तो और भी कठिन है।

एक व्यस्क व्यक्ति के लिये गाली का शब्द महज़ एक अत्यन्त अपमानजनक गन्दा शब्द है, इसे कहते या सुनते समय उन्हें सिर्फ़ यांत्रिक आघात पहुँचता है। उनमें अश्लील शब्द न तो कोई सेक्सी बिम्बों को जगाते हैं न अनुभूतियों को। लेकिन जब एक लड़का उस शब्द को सुनता या बोलता है, तो वह उस तक गाली के किसी सापेक्ष शब्द के रूप में नहीं पहुँचता, बल्कि वह अपने में अन्तर्निहित सेक्स के अर्थ को लेकर पहुँचता है। इस दुर्भाग्य का मूल सार यह नहीं है कि सेक्स का राज़ लड़के के सामने खुल जाता है, बल्कि यह कि वह राज़ अपने सबसे ज़्यादा कुरूप, मानवद्वेषी तथा अनैतिक रूप में उद्घाटित होता है। ऐसे शब्दों का बारम्बार होनेवाला उच्चारण उसे सेक्सी मामलों पर अत्यधिक ध्यान देने की, विरूपित दिवास्वप्न देखने की आदत प्रदान कर देता है। इससे लड़के को औरतों में अस्वास्थ्यकर दिलचस्पी पैदा होने लगती है, दृष्टि की संवेदनशीलता सीमित और अन्धी हो जाती और चालू शब्दों, गन्दे क़िस्सों और अश्लील मज़ाकों का अधमतापूर्ण विरक्तिकर परपीड़न पैदा होता है। उसके सामने एक औरत अपने मानवीय आकर्षण व सौन्दर्य की पूरी गरिमा में, अपनी आत्मिक व शारीरिक कमनीयता के पूर्ण सामंजस्य में, अपने स्वत्व के सम्पूर्ण रहस्य और सारी शक्ति में प्रकट नहीं होती, बल्कि महज़ हिंसा और उपयोग की एक सम्भव वस्तु के रूप में, महज़ एक अपमानित मादा के रूप में प्रकट होती है। और ऐसा युवक प्रेम को उस पृष्ठ भाग से, उस पार्श्व से देखता है, जहाँ मानव इतिहास बहुत समय पहले अपने आदिम शरीरक्रियात्मक मानकों को कूड़े के ढेर में फेंक चुका है। उस लड़के के सेक्स की पहली अस्पष्ट संकल्पना इतिहास के इसी घूरे से पोषित होती हैं

इस घटना के दुखद परिणामों को बढ़ाना-चढ़ाना निश्चय ही अनावश्यक है। बचपन, जीवन, परिवार, स्कूल, समाज तथा पुस्तकें उस लड़के और युवक को बचाने के लिये विपरीत दिशा की ओर अनेक प्रेरणाएँ और आवेग प्रदान करती हैं; हमारी सम्पूर्ण जीवन-प्रणाली, लड़कियों तथा औरतों के साथ व्यावहारिक तथा साथियों जैसा संसर्ग उच्चतर भावनाओं तथा अधिक मूल्यवान संकल्पनाओं के लिये नूतन पोषण प्रदान करता है।

लेकिन उन्हें कम करके भी नहीं आँका जाना चाहिये।

हर आदमी, जो गाली-गलौज के शब्दों से गुरेज़ करता है, जो अपने साथी को ऐसा करने के लिये प्रोत्साहित करता है, जो उसे मिलने वाले हर उच्छृंखल ''नायक'' से संयम की माँग करता है, वह हमारे बच्चों का भी तथा सारे समाज का भी बहुत भला करेगा।

आठवाँ अध्याय

वेरा इग्नात्येव्ना कोरोबोवा एक बड़ी फ़ैक्टरी के पुस्तकालय में काम करती थी, जो नगर के बाहरी किनारे पर बनी थी। वह सामान्यतः पाँच बजे के लगभग घर लौटती थी। लेकिन आज वह और उसके सहायक देर तक रुके थे-वे एक सम्मेलन की तैयारी कर रहे थे। सम्मेलन कल होने वाला है। एक लेखक, जो सुज्ञात साहित्यिक व्यक्तित्व है, सम्मेलन में भाग लेने वाले हैं। पाठक उनकी पुस्तकें पसन्द करते हैं और वेरा इग्नात्येव्ना भी उनकी पुस्तकें पसन्द करती है। आज उसने शो-केस में स्वयं प्रसन्नतापूर्वक काम किया। उसने लेखक से सम्बन्धित सम्पूर्ण आलोचनात्मक साहित्य को ख़ानों में प्रेमपूर्वक, सावधानी से, सिलसिलेवार सजा दिया, अनुशंसा के विवरणों को पत्रिका के पृष्ठों की बग़ल में सुन्दर ढंग से रख दिया और शो केस के बीचोबीच लेखक का एक चित्र लगा दिया। वह एक अच्छा चित्र था, एक असाधारण चित्र था; लेखक की नज़र में भली-भली सी, सहज, सुपरिचित उदासी भरी थी, उससे सारा शो-केस मैत्रीपूर्ण और अत्यन्त अन्तरंग-सा लग रहा था। काम समाप्त हो जाने के बाद भी वेरा इग्नात्येव्ना देर तक घर के लिये रवाना नहीं हो सकी-वह अभी भी कुछ और करना चाहती थी।

वेरा इग्नात्येव्ना को शाम की इस वेला में अपना पुस्तकालय विशेष प्रिय लगता था। उसे पाठकों की लौटायी हुई पुस्तकों को इकट्ठा करना और विशेष सावधानी से उन्हें ख़ानों में रखना, पाठकों के कार्डों को सुव्यवस्थित करना बहुत अच्छा लगता था। उसकी देखभाल के अन्तर्गत जब पुस्तकालय में एक सुखद, आरामदेह व्यवस्था हो जाती, तभी वह घर जा सकती थी। लेकिन, जैसा कि आज हुआ, अपने ही जैसे उत्साही कार्यकर्ताओं की छोटी-सी मण्डली के साथ रुके रहना तथा काम करना तो और भी अधिक अच्छा था।

खानों के बीच के छायादार गलियारों में, शेल्फ़ों के ऊपर टँगें लैम्प के प्रकाश में कुछ ही पुस्तकें नज़र आती हैं। ये पुस्तकें ऐसी दिखायी देती हैं मानो वे रात को सुप्रकाशित सड़क पर घूमने के लिये निकली हैं। उनसे आगे अन्य पुस्तकें छाया में बैठी शान्तिपूर्वक सपने देखती हैं या एक दूसरे के साथ मृदुलता से फुसफुसाती बातें करती हैं, उन्हें प्रसन्नता है कि वे आज शाम अकेली नहीं हैं। दूर अँधेरे कोनों में वे वृद्धा पत्रिकाएँ गहरी नींद सोयी पड़ी हैं; वे दिन के समय भी ऊँघना पसन्द करती हैं, क्योंकि पाठकगण कभी-कभार ही उन्हें परेशान करते हैं। वेरा इग्नात्येव्ना अपने पुस्तक-संसार को अच्छी तरह से जानती है। उसकी कल्पना में प्रत्येक पुस्तक का

अपना ही चेहरा तथा अपनी ही विशेष प्रकृति है। यह प्रकृति पुस्तक की बाह्याकृति, उसकी विषयवस्तु की सामान्य रूपरेखा और, जो सबसे बड़ी चीज़ है, अपने पाठकों के साथ उसके सम्बन्धों की क़िस्म का एक अपेक्षाकृत जटिल मिश्रण है।

वेरा इग्नात्येव्ना की कल्पना में सभी पुस्तकों की अपनी ही विशेष दिलचस्प व प्रज्ञावान जिन्दगियाँ हैं, जिनसे उसे ख़ुद थोड़ी ईर्ष्या है, फिर भी वह उन्हें प्यार करती है।

वेरा इग्नात्येव्ना अड़तीस वर्ष की है। उसके चेहरे, उसके कन्धों, उसकी श्वेत ग्रीवा में अभी भी काफ़ी कुछ जवाँ है, लेकिन वेरा इग्नात्येव्ना इसे नहीं जानती, क्योंकि वह अपने बारे में कभी नहीं सोचती। वह केवल पुस्तकों के बारे में तथा अपने परिवार के बारे में सोचती है और ये विचार हमेशा ही इतने ज़्यादा होते हैं कि उसके दिमाग़ में उनकी उलझन भरी भीड़-सी लग जाती है और उनमें कोई क्रम नहीं रह पाता।

शाम को पुस्तकालय में रुकना सुखद होते हुए भी उसके विचार घर की तरफ़ मुड़ जाते हैं। वेरा इग्नात्येव्ना विभिन्न वस्तुओं को जल्दी-जल्दी अपने हैण्डबैग में डालती है और ट्राम पकड़ने के लिये चल पड़ती है। भीड़-भाड़ से भरी ट्राम में वह एक सीट के पिछले हिस्से से टिकी देर तक खड़ी रहती है, और इस बीच पुस्तकों के जीवन की संयमित फुसफुसाहट धीरे-धीरे ख़त्म हो जाती है और उसका स्थान घरेलू मामले घेर लेते हैं।

आज शाम को वह देर से घर पहुँचेगी इसलिये शाम भी बहुत व्यस्त रहेगी। वह अभी ट्राम ही में थी कि शाम की चिन्ताएँ उसके दिमाग़ में घिर आयीं और उसके समय को आनन्द से काटने-छाँटने लगीं। वह नहीं जानती कि यह आनन्द कहाँ से आता है। कभी-कभी उसको लगता है कि यह प्यार का आनन्द है। बहुत सम्भव है ऐसा ही हो। जब पाव्लूशा या तमारा का चेहरा उसके मन की आँख के सामने उभरता है, तो वेरा इग्नात्येव्ना को यात्री या तेज़ी से पीछे को जाती हुई सड़कों का दिखना बन्द हो जाता है, वह ट्राम के झटकों और उसके बार-बार ठहरने पर भी ग़ौर नहीं करती, उसे अपने शरीर का भी अहसास नहीं रहता और उसके हैण्डबैग का स्ट्रैप तथा ट्राम का टिकट केवल पुरानी आदत के कारण ही उसकी उँगलियों में टिका रहता है। पाव्लूशा का चेहरा प्यारा-प्यारा, ताज़गी से भरा है और उसकी आँखें भूरी हैं। लेकिन उसकी आँखों की सफ़ेदी में इतना नीलापन है कि पाव्लूशा, सारा का सारा, सुनहरा-नीला जान पड़ता है। पाव्लूशा का चेहरा और आँखें ऐसी आकर्षक हैं कि वेरा इग्नात्येव्ना उसके बारे में सोच भी नहीं सकती, वे उसे देखती भर है। परन्तु तमारा के बारे में वह सोच सकती है। तमारा निस्सन्देह सुन्दर है। वेरा इग्नात्येव्ना को उसमें हमेशा कुछ निराला ही आकर्षक, स्त्रियोचित तथा कमनीय दिखायी देता है। उसकी लम्बी-लम्बी बरौनियों में; उसके माथे और नीचे ग्रीवा तक फैले काले कुन्तल केशों में, उसकी संजीदा भूरी आँखों की गहन रहस्यमयी दृष्टि में और उसकी गति के अवर्णनीय आकर्षण में इन गुणों की भरमार है। वह अक्सर तमारा के बारे में सोचती है।

स्वयं वेरा इग्नात्येव्ना का जीवन मुद्दत से एक ही पुरानी धारा में बहता चला जा रहा है। इस सीधी धारा के लिये कठिन श्रम और दैनिक दायित्वों के नीरस मैदानों के आर-पार रास्ता निकला है-यहाँ छोटी-छोटी दैनिक बातों की एक बेलबूटेदार जाली-सी थी, जो सारा दिन उसे कभी नहीं छोड़ती थी, बल्कि उसके गिर्द उन्हीं पुराने फन्दो, वृत्तों और काँटों में घूमती रहती थी। क्रान्ति कोलाहल करती आयी और वेरा इग्नात्येव्ना के पास से गर्जन करती निकल गयी, उसने उसके गर्म उच्छवास को महसूस किया और देखा कि पुराना जीवन, पुराने लोग, पुराने रीति-रिवाज उसके प्रबल वेग में फँसकर जाते रहे। एक कार्यशील नारी के रूप में वह इस जीवनदायी चक्रवात पर ख़ुश थी, लेकिन वह उस जाली से अपने को विलग नहीं कर पायी, एक मिनट के लिये भी हटा न पायी, क्योंकि किसी को उस जाली की ज़रूरत थी। वेरा इग्नात्येव्ना ने इसे कर्तव्य कभी नहीं समझा, वह यह कल्पना ही न कर सकी थी कि अगबर तमारा, या पाव्लूशा, या इवान पेत्रोविच इस मामले को लेकर सारे मकान को सिर पर उठा लेंगे, तो उसकी जाली के एक भी फँदे को कैसे तोड़ा जा सकता है। यहाँ तक कि इवान पेत्रोविच के साथ उसकी शादी भी ऐसे हुई थी कि मानो उस जाली का एक और हिस्सा बनाया जा रहा हो। वह इनकार कर ही नहीं सकती थी : उसके अलावा और कुछ नहीं हो सकता था, क्योंकि इवान पेत्रोविच रिरियाने-पिपियाने लगता।

वेरा इग्नात्येव्ना ने अपने सारे जीवन में एक बार भी शिकायत नहीं की। अन्त में सभी कुछ ठीक ही हुआ, और अब वह अपने बच्चों की ओर ख़ुशी से देख सकती है और उनके बारे में सोच सकती है। और इसके अलावा पुस्तकें उसके अस्तित्व को अतिरिक्त आकर्षण प्रदान करती हैं। वास्तव में वेरा इग्नात्येव्ना ने अपने जीवन का कभी विश्लेषण नहीं किया-उसे समय ही नहीं मिला। इसमें क्या बुरा है क्या भला यह बताना कठिन है। लेकिन जब उसके विचार तमारा की ओर गये तो वे एक बहुत ही असामान्य से तरीक़े से काम करने लगे। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि तमारा का जीवन भिन्न होना ही चाहिये था। अब तमारा वास्तु-कला संस्थान में थी, और किसी चीज़ का अध्ययन कर रही थी; उसकी मेज़ पर एक रेखा-चित्र था जिसे उसने शुरू किया था -किसी प्रकार की मेहराबें थीं या कार्निसें, फूलों के गुच्छों जैसी पूँछों और परिन्दों की चोंचों वाले कुछ सिंह थे। सच है कि तमारा की नियति इन सिंहों में नहीं किसी और चीज़ में निहित थी। वह 'कुछ' बिल्कुल स्पष्ट नहीं था, लेकिन पुस्तकों में उसे सुख कहा जाता था। वेरा इग्नात्येव्ना सुख की कल्पना कान्तिमय अत्यन्त सुन्दर नारी के रूप में, उसकी निगाहों के जाज्वल्यमान गर्व के रूप में, उससे निःसृत होने वाले उल्लास के रूप में करती थी। हर चीज़ से यह प्रदर्शित होता था कि तमारा उसी क़िस्म के सुख के लिये जन्मी है और कि उसे स्वयं इस बात पर सन्देह नहीं है।

वेरा इग्नात्येव्ना ने बाहर निकलने के द्वार को यंत्रवत ठेला और अपने घर तक की थोड़ी-सी दूरी को पार करने के लिये जल्दी-जल्दी चलने लगी। तमारा ने दरवाज़ा

खोला। वेरा इग्नात्येव्ना ने अपना हैण्डबैग खिड़की की चौखट पर रख दिया और बैठक-खाने में नज़र डाली।

''क्या पाव्लूशा भोजन कर चुका है?''

''हाँ।''

''क्या वह कहीं बाहर चला गया है?''

''मुझे नहीं मालूम। मैं सोचती हूँ कि वह स्केटिंग कर रहा है।''

यह बात साफ़ ज़ाहिर थी कि हर कोई भोजन कर चुका है और पाव्लूशा स्केटिंग रने चला गया है। मेज़ पर गन्दी तश्तरियों के बीच जूठन बिखरी पड़ी थी। हाल की फ़र्श पर मिट्टी के दाग पड़े थे और तारों तथा धागों के टुकड़े इधर-उधर फैले हुए थे।

वेरा इग्नात्येव्ना ने आदतन अपने सीधे बालों को माथे से अलग हटाया, चारों तरफ़ देखा और हाल में से झाड़ू उठाया। तमारा एक बड़ी-सी आराम-कुर्सी पर बैठी थी, उसने अपने बाल खोले और अपनी प्यारी-प्यारी स्वप्निल आँखों से खिड़की को ताकने लगी।

''ममी, बताइये मेरे जूतों का क्या करना है?''

तमारा की आराम-कुर्सी के नीचे से कूड़ा झाड़ते हुए वेरा इग्नात्येव्ना ने शान्ति से कहा :

''मेरी अच्छी तमारा, हो सकता है कि तुम उन्हीं से काम चला लो?''

तमारा ने अपनी कुर्सी को ज़ोर से पीछे धकेला और कंघी मेज़ पर फेंक दी : उसकी आँखों का प्यारापन सहसा ग़ायब हो गया। वह अपने गुलाबी हाथों को अपनी माँ की तरफ़ नचाने लगी, उसका रेशमी ड्रेसिंग गाउन आगे से खुल गया और उसके अंतरंग-वस्त्रों के गुलाबी रिबन भी क्रोध से वेरा इग्नात्येव्ना की ओर ताकने लगे।

''माँ! आप इस तरह की बात कैसे कह सकती हैं! गुस्सा भड़क उठता है! भूरा लिबास और गुलाबी जूते! ज़रा नज़र तो डालिये!''

तमारा ने क्षुब्ध होकर सुन्दर गुलाबी जूते से ढँका एक छोटा-सा पैर झटके से आगे को किया। उस क्षण सब कुछ एक दूसरे से मेल खा रहा था : गुलाबी ड्रेसिंग गाउन, गुलाबी-गुलाबी जुराबें। वेरा इग्नात्येव्ना झाड़ू थामे कुछ देर रुकी और उसने सहानुभूति के साथ तमारा के पैर पर नज़र डाली।

''हाँ... एक जोड़ी जूता ख़रीदना ही होगा। जब वेतन का दिन आयेगा तब।''

तमारा ने अपनी निगाह को झाड़ू की गति का अनुसरण करने दिया। भौतिकी और ज्यामिति के सारे नियमों के मुताबिक उसकी नज़र अपनी माँ के घिसे-पिटे, आकृतिहीन, मलिन जूतों की तरफ़ जानी चाहिये थी, लेकिन किसी कारणवश ऐसा नहीं हुआ। तमारा ने पीड़ा से थकी आँखों से कमरे के चारों ओर देखा।

''मैं तंग आ गयी हूँ,'' उसने कहा, ''वेतन के कितने ही दिन आ चुके हैं और मैं इन्तज़ार ही कर रही हूँ।''

तमारा ने ठण्डी साँस भरी और शयन-कक्ष की ओर चली गयी। वेरा इग्नात्येव्ना

बैठकख़ाने को व्यवस्थित करने के बाद बर्तन धोने के लिये रसोई में चली गयी।

वेरा इग्नात्येव्ना गन्दी तश्तरियों के भावों को भी पढ़ना जानती थी। इससे वह उन्हें देखकर मुस्करा तक पड़ती थी-उनकी मुद्रा कैसी प्यारी, कैसी विनोदी थी। वे विश्वासपूर्ण निश्शब्द अपेक्षा से उसे दौड़-धूप करती देखतीं और गर्म जल में स्नान कराये जाने का बेसब्री से इन्तज़ार करतीं। वे बेसब्री से बेचैन हो गयी होंगी!

वेरा इग्नात्येव्ना अपने आस-पास की वस्तुओं के जीवन से प्यार करती थी और जब वह उनके साथ अकेली होती तो उसे सुख और चैन की अनुभूति होती। कभी-कभी वह उनसे बातें तक करती थी। काम करते वक्त वेरा इग्नात्येव्ना का चेहरा जीवन्त हो जाता, उसकी आँखों में कौशल की चिंगारियाँ थिरकतीं और उसके भरे-भरे होंठों पर एक सरल-सी मुस्कान नाच उठती। लेकिन लोगों के सामने, घनिष्ठ सम्बन्धियों के सामने भी, उसकी यह सारी सनकी जीवन्तता गायब हो जाती : अन्य लोगों के सामने बेवकूफ़ बनना फूहड़पन होता, फूहड़ और हास्यास्पद। वेरा इग्नात्येव्ना इसकी आदी नहीं थी।

आज शाम को, बर्तन धोते समय, उसने रंच मात्र ठिठोली की और तभी उसे तमारा के जूते याद आ गये, और वह बाकी सारा समय उन्हीं के बारे में सोचती रही।

उसने जूतों की सारी समस्या का भली भाँति अध्ययन किया। शायद गुलाबी जूते महज़ इसलिये ख़रीदना ग़लती थी कि ड्रेसिंग-गाउन भी गुलाबी है। सामान्यतः ड्रेसिंग-गाउन से मेल खानेवाले जूते नहीं ख़रीदे जाते। लेकिन अब यह हो गया है, और अब इस बारे में कोई कुछ नहीं कर सकता है। फिर वह भूरे लिबास का मामला था, जो अपेक्षाकृत लम्बा खिंच गया था। लिबास रेशमी था और उसका रंग वस्तुतः भूरे रंग की हल्की आभा लिये हुए था। तमारा की हल्की भूरी आँखों और काले कुन्तल केशों के साथ वह बहुत अच्छा लगता था। लेकिन न जाने कैसे भूरे जूतों की यह समस्या पैदा हो गयी, पहले उसने सोचा था कि भूरा लिबास सूची की अन्तिम वस्तु होगी। परसों जब वेरा इग्नात्येव्ना घर में थी तब उसने एक तुलना की थी। लिबास हल्का भूरा था और जूते गुलाबी पर गुलाब जैसे गुलाबी नहीं, बल्कि किंचित गहरे रंग के और उससे कम उजले। पल भर के लिये वेरा इग्नात्येव्ना को यह ख़्याल आया कि ऐसे जूतों ने भी सहमति ज़ाहिर कर दी है। लेकिन वह महज़ कमज़ोरी का क्षण था। वेरा इग्नात्येव्ना ने उसे याद न करने की कोशिश की। अब उसे केवल तमारा का परेशान चेहरा याद था और इस याद से उसे तकलीफ़ हो रही थी।

घर के बाहरी दरवाज़े पर दस्तक हुई, वेरा इग्नात्येव्ना ने बर्तन धोने के पात्र पर अपने हाथ झटके और दरवाज़ा खोलने गयी। उसने आश्चर्य से देखा कि आन्द्रेई क्लीमोविच स्तोयानोव द्वार पर खड़ा है।

आन्द्रेई क्लीमोविच को पुस्तकालय तथा उसकी पुस्तकों से प्यार था और शायद वेरा इग्नात्येव्ना के मुकाबले कम नहीं था। लेकिन वह पुस्तकाध्यक्ष नहीं था, वह

मिलिंग मशीन का चालक था और उस काम में एक तरह का विशेषज्ञ था, क्योंकि अन्य चालकगण उसके नाम की चर्चा दोहरे शब्दों के सिवा और किसी भी तरह से नहीं करते थे।

''स्वयं-स्तोयानोव।''

''स्तोयानोव-भी।''

''स्तोयानोव-ही।''

''ओहो-स्तोयानोव!''

''वही-स्तोयानोव।''

पर इस सब के बावजूद वेरा इग्नात्येव्ना आन्द्रेई क्लीमोविच में सिर्फ़ यह बात देख सकी थी कि वह एक पुस्तकप्रेमी है। उसके लिये यह बात समझना कठिन था कि अगर उसे पुस्तकों से सचमुच इतना प्यार है, तो वह अपनी मिलिंग-मशीन से कैसे निबटता होगा।

आन्द्रेई क्लीमोविच पुस्तकों को अपने ही ढंग से चाहता था। उसके लिये पुस्तकें जिल्दों के बीच बसे लोग थीं। वह कभी-कभी इस बात पर आश्चर्य करता था कि पुस्तकों में प्रकृति, वर्षा या जंगलों का वर्णन क्यों होता है। वह वेरा इग्नात्येव्ना के कमरे में आता और कहता :

''लोगों को समझना कठिन है, लोगों में कुछ छिपा हुआ होता है; लेखक बतला सकता है कि वह क्या है और हम पुस्तक पढ़कर उसका पता लगा सकते हैं। लेकिन वर्षा-वह तो महज़ वर्षा है। अगर मैं वर्षा को देखता हूँ तो मैं तुरन्त जान जाता हूँ कि वह वर्षा है। और मैं यह भी बता सकता हूँ कि किस तरह की वर्षा है, झड़ी है या आँधी है, हानिकारक है या हानिरहित। यही बात जंगलों की भी है। जो आप देखते हैं उसका वर्णन लेखक कभी नहीं कर सकता है।''

दूसरी तरफ़, पुस्तक में वर्णित लोगों से आन्द्रेई क्लीमोविच का ध्यान हमेशा आकृष्ट हो जाता है। वह इन लोगों के बारे में बातें करना पसन्द करता था और जानता था कि उनमें अन्तर्विरोधों का कैसे पता लगाया जा सकता है। यदि कोई लेखक लोगों के प्रति न्याय नहीं करता था तो वह हमेशा बुरा मान जाया करता था।

और अब वही आन्द्रेई क्लीमोविच मुस्कराता हुआ यहाँ द्वार पर खड़ा है। उसकी मुस्कान में किंचित लज्जा थी, सुन्दर मृदु मुस्कान, वही मुस्कान चालीस वर्षीय मिलिंग-आपरेटर के मुक़ाबले एक बालिका की मुस्कान से अधिक मिलती-जुलती थी, पर इसके साथ ही उसमें बहुत साहस, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा भी थी।

''वेरा इग्नात्येव्ना, यदि मैं अन्दर आ जाऊँ, तो आपको एतराज़ तो नहीं होगा, मुझे एक छोटे-से मामले में आपसे बातें करनी है।''

आन्द्रेई क्लीमोविच पुस्तकों के बारे में बातें करने पहले भी आया था-वह उसी गली में रहता था-लेकिन इस बार वह किसी विशेष काम से आया था।

''क्या अभी भी घरेलू काम में व्यस्त हैं?''

''नहीं, यह असल में कोई घरेलू काम नहीं है। सिर्फ़ दो चार तश्तरियाँ थीं। आइये, बैठक में बैठिए।''

''नहीं, यहीं रसोईघर में, यानी कि एक कार्यशाला में ही बातचीत कर लेते हैं।''

''लेकिन क्यों?''

''वेरा इग्नात्येव्ना, आपको बताऊँ कि मामला... एक तरह का राज़ है।''

आन्द्रेई क्लीमोविच धूर्तता से मुस्कराया और उसने एक नज़र बैठक-खाने में डाली, लेकिन वहाँ किसी को नहीं देखा।

रसोईघर में आन्द्रेई क्लीमोविच लकड़ी के एक स्टूल पर बैठ गया, साफ़, मगर अभी भी गीली तश्तरियों के ढेर की तरफ़ व्यंग्य से देखते हुए उसने पूछा :

''आपने इतने बर्तन-भांड़े अपने भोजन के लिये तो इस्तेमाल नहीं किये, किये क्या?''

वेरा इग्नात्येव्ना ने तौलिये से हाथ पोंछे।

''नहीं, बच्चों ने किये।''

''बच्चों ने? अच्छा, समझा! मैं फ़ैक्टरी की ट्रेड यूनियन समिति की तरफ़ से आया हूँ। एक समस्या है, जिसका समाधान करना है।''

''क्या यह कल के सम्मेलन के बारे में है?''

''नहीं यह आपसे व्यक्तिगत रूप से सम्बन्धित है। हमने कुछ लोगों को उनकी सांस्कृतिक सेवाओं के लिये पुरस्कार देना तय किया है। यह नव-वर्ष पर होना चाहिये, लेकिन पुस्तकालय में एक प्रकार का समारोह-सा होने जा रहा है, इसलिये हमने तय किया है कि आपका पुरस्कार अभी दे दिया जाये। सामान्यतः वे लोग नक़द पुरस्कार देते हैं, लेकिन इस मामले में मैंने दखलन्दाज़ी कर दी : 'तुम वेरा इग्नात्येव्ना को नक़द पुरस्कार नहीं दे सकते,' मैंने कहा, 'इसका कोई लाभ नहीं होगा, केवल खलबली मचेगी, बस'।''

''मैं समझी नहीं,'' वेरा इग्नात्येव्ना मुस्कराकर बोली।

''भई, यह तो निहायत सरल है। नक़द धन बड़ी फिसलनी चीज़ है : आज एक जेब में है कल दूसरी में, और अगले दिन उसका कहीं नामोनिशान नहीं। नक़द आपके मतलब का नहीं, और आपके पास तो कोई जेब भी नहीं है। इसलिये यह पुरस्कार कोई निश्चित चीज़ होनी चाहिये!''

''क्या चीज़?''

''आप सोच निकालिये।''

''एक चीज़? समझी, यह तो अच्छी बात है। लेकिन क्या मैं पुरस्कार पाने लायक हूँ?''

''यह बात उच्चतर स्तर पर तय की गयी है। उससे आपका कोई वास्ता नहीं। हाँ, तो वह चीज़ क्या होगी?''

''आन्द्रेई क्लीमोविच, मुझे एक जोड़ी जूते चाहिये, सचमुच चाहिये, बहुत चाहिये।''

आन्द्रेई क्लीमोविच ने सतर्कता के साथ वेरा इग्नात्येव्ना के जूतों पर नज़र डाली, और वह उससे भी ज़्यादा सतर्कता से लकड़ी के उस स्टूल की तरफ़ बढ़ी, जहाँ बर्तन रखे हुए थे।

''जूते, ये... हाँआँ-आँ! जूते अच्छी चीज़ होंगे। हम आपको एक जोड़ी जूते दे सकते हैं।''

''लेकिन...''

वेरा इग्नात्येव्ना झेंप गयी।

''सिर्फ़ भूरे.. वे भूरे ही होने चाहिये, आन्द्रेई क्लीमोविच!''

''भूरे?''

आन्द्रेई क्लीमोविच ने एक प्रकार की उदास मुस्कान के साथ बग़ल की ओर देखा।

''हाँ, मैं समझता हूँ कि हम भूरे ले सकते हैं... लेकिन जूते, आप जानती हैं, परखे बिना नहीं ख़रीदे जा सकते। हम दुकान में साथ-साथ जायेंगे और उन्हें आपके पैरों में परख कर देखेंगे। कभी-कभी उनके चाप ठीक नहीं होते और फिर शैली को भी देखना होता है, वरना वे, भगवान जाने, आपको कैसे क्या फैशन दे दें!''

वेरा इग्नात्येव्ना झेंपी और मुस्करायी। आन्द्रेई क्लीमोविच ने कनखियों से उसकी तरफ़ देखा और चिन्तन सा करता हुआ अपने जूते की नोक से फर्श को थपथपाने लगा।

''तो कल चलें और जूते ख़रीद लायें?''

''लेकिन, आन्द्रेई क्लीमोविच, इतनी परेशानी की क्या ज़रूरत है? मैं तो जूतों को कभी भी नहीं परखती। उन्हें सीधे अपना साइज़ बता देती हूँ।''

''साइज? आपका क्या साइज़ है, वेरा इग्नात्येव्ना?''

''साइज़?... चौंतीस।''

''चौंतीस? क्या यह थोड़ा छोटा नहीं पड़ेगा?''

वेरा इग्नात्येव्ना को अचानक याद आया कि तश्तरियों को पोंछने का समय आ गया है, वह उन्हें पोंछने का कपड़ा उठाने के लिये दूसरी ओर मुड़ी।

''वेरा इग्नात्येव्ना,'' आन्द्रेई क्लीमोविच ने प्रमुदित स्वर में कहा, ''आप इससे बचकर नहीं जा सकतीं।''

वेरा इग्नात्येव्ना ने पहले तश्तरी उठा ली, लेकिन वह तश्तरी भी तश्तरीनुमा मुस्कान से उसे देख रही थी।

''किस चीज़ से बचकर नहीं जा सकती?'' वेरा इग्नात्येव्ना ने बाहरी दिखावे के लिये पूछा।

''साइज़ चौंतीस से। यह है वह चीज़, जिससे आप बच नहीं सकतीं!''

आन्द्रेई क्लीमोविच ज़ोर से हँसा, स्टूल से उठा और दरवाज़े को मजबूती से बन्द करने के बाद उसकी तरफ़ पीठ करके छत की ओर आँखें उठाकर जैसे पाठ करता हुआ बोला :

‘‘इस बार तुम्हारी युवा महिला को कुछ नहीं मिलेगा... क्योंकि मुझे ख़ास तौर से इसी काम के लिये नियुक्त किया गया है। उसे एक भी भूरा जूता नहीं मिलेगा। वह उन जूतों के बिना भी काफ़ी सुन्दर हैं।’’

वेरा इग्नात्येव्ना नहीं जानती थी कि यह कैसे कहा जाये कि ‘‘आपसे इसका क्या मतलब?’’ और जो भी हो, आप आन्द्रेई क्लीमोविच जैसे व्यक्ति से दुव्यवहार नहीं कर सकते। वह उलझन भरी ख़ामोशी में डूब गयी।’’ आन्द्रेई क्लीमोविच फिर स्टूल पर बैठ गया।

‘‘आपकी गृहस्थी में हस्तक्षेप करने के लिये मुझ पर नाराज़ मत होइयेगा। यकीन मानिये, यह कभी-कभी ज़रूरी होता है। फ़ैक्टरी की ट्रेड-यूनियन समिति की तरफ़ से काम करते हुए मेरे पास राजकीय प्राधिकार है और जो मैंने कहा वह यही है : हम यह पुरस्कार कामरेड कोरोबोवा को दे रहे हैं, और आपकी वह बेटी, वह बनठन कर रहने वाली किशोरी अपना पुरस्कार अपने पिता से प्राप्त कर सकती है!’’

‘‘आप ऐसा क्यों कह रहे हैं! वह बनठन कर रहनेवाली लड़की नहीं है! एक जवान लड़की...’’

वेरा इग्नात्येव्ना ने क्रोध से अपने अतिथि की तरफ़ देखा। उसने ऐसी बात सचमुच क्यों कही : बनठन कर रहनेवाली! और वह भी तमारा के बारे में, लम्बी बरौनियों, सुन्दर घूँघरदार बालों वाली उसकी सुन्दर लड़की के, एक ऐसी सुन्दर औरत के बारे में, जिसके लिये भविष्य खुशियाँ ही खुशियाँ लानेवाला है। कहीं आन्द्रेई क्लीमोविच उसकी बेटी का शत्रु तो नहीं है, वेरा इग्नात्येव्ना ने शंकित होकर सोचा। उसने अपने जीवन में कुछ ही शत्रु देखे थे। आन्द्रेई क्लीमोविच की घूँघरदार मूँछें थीं, जो उसकी मृदु मुस्कान पर रुचिकर ढंग से हिलती-डुलती थीं, और इससे उसके शत्रुतापूर्ण शब्दों का, सचमुच, निराकरण हो जाता था। फिर भी यह ज़रूरी था कि वह अपने शब्द स्पष्ट करे।

‘‘आप तमारा के बारे में ऐसा क्यों बोलते हैं?’’

आन्द्रेई क्लीमोविच का मुस्कराना बन्द हो गया और वह अपने सिर के पिछले भाग को चिन्तित होकर सहलाने लगा।

‘‘वेरा इग्नात्येव्ना, मैं आपको सत्य बता ही देता हूँ। इजाजत दीजिये।’’

‘‘कैसा सत्य?’’ वेरा इग्नात्येव्ना को सहसा महसूस हुआ कि वह सत्य सुनना नहीं चाहती।

‘‘हाँ, मैं आपको सत्य बता देता हूँ,’’ आन्द्रेई क्लीमोविच ने अपने घुटने पर थाप मारते हुए गम्भीरता से कहा। ‘‘लेकिन एक मिनट के लिये उन तश्तरियों को पोंछना बन्द कीजिये और सुनिये!’’

उसने पुछी हुई तश्तरी उसके हाथ से ले ली और सावधानी से सूखी तश्तरियों के ढेर पर रख दी, और उस ढेर पर हाथ फेरकर यह भी दिखा दिया कि वे ठीक-ठाक ढंग से रखी हैं। वेरा इग्नात्येव्ना खिड़की के पास एक स्टूल पर बैठ गयी।

''वेरा इग्नात्येव्ना, बुरा न मानें, सत्य से डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं जानता हूँ कि मामला सचमुच आपका अपना है और बेटी भी आपकी ही है। लेकिन बात सिर्फ़ यह है कि एक श्रमिक की हैसियत से हम आपको बहुत चाहते हैं। और हम सब बातों को देखते हैं। मसलन, यह देखिये कि आप कैसे कपड़े पहने हुई हैं। हमने इस पर ग़ौर किया है। और आपका यह घाघरा...'' आन्द्रेई क्लीमोविच ने उसके घाघरे की एक सलवट को अपनी दो उँगलियों से सावधानी से पकड़ा :

''...कोई भी समझ सकता है कि आपके पास सिर्फ़ एक ही है। यही काम के वक़्त पहना जाता है, यही सम्मेलन में काम आता है और इसी को पहनकर बर्तनों की धुलाई की जाती है। लेकिन उसे देखकर ज़ाहिर हो जाता है कि उसके दिन पूरे हो गये हैं। अच्छा है कि यह काला है, वरना... यह बहुत समय पहले ही नाकाम हो गया होता! मैं आपके जूतों की चर्चा नहीं करूँगा। क्या यह ग़रीबी है? आपके पति कमाते हैं, आप ख़ुद कमाती हैं और आपकी लड़की को अनुदान मिलता है तथा बच्चे कुल दो हैं, हैं कि नहीं? कुल दो। बात यह है कि आपकी युवा महिला बनठन कर रहने की बेहद शौक़ीन है! ज़रा उसे देखिये! महिला-इंजीनियर भी उसका मुक़ाबला नहीं कर सकती है। वह क्लब में आती है-सोलह श्रृंगार करके। कभी नीला लिबास है, तो कभी काला, और कभी कोई और रंग। लेकिन मुद्दा यह नहीं है, वह जो चाहे पहने; लोग आपके बारे में बातें करने लगे हैं, और आप! यह बर्तन-भांड़े केवल आपको क्यों धोने पड़ते हैं!''

''आन्द्रेई क्लीमोविच! मैं एक माँ हूँ-मैं चाहूँ तो मैं अपने परिवार की देखरेख कर सकती हूँ।''

''आप एक माँ हैं-अच्छा तो यह बात है। मेरी येलेना वसील्येव्ना भी एक माँ है, लेकिन ज़रा देखिये मेरी लड़कियाँ कितना काम करती हैं। वे बुरा नहीं मानतीं, वे जवान हैं, उन्हें सुख उठाने के लिये बहुत समय मिलेगा। और मेरी येलेना के हाथ आपके जैसे नहीं हैं, यद्यपि आप, जैसा कि वे कहते हैं, एक बौद्धिककर्मी हैं। यह शर्मनाक है। मैं आपको साफ़-साफ़ बतला रहा हूँ। आपके सामने अभी बहुत ज़िन्दगी है, आप अभी भी जवान हैं और सुन्दर हैं, तो ऐसा क्यों न हो, क्यों?''

वेरा इग्नात्येव्ना ने अपनी आँखें झुका लीं और जैसा कि ऐसी स्थितियों में औरतें हमेशा करती हैं, अपने घाघरे को पकड़कर घुटने के पास सीधा करने को उद्यत हुई कि उसे याद आया कि आन्द्रेई क्लीमोविच उसके घाघरे की अभी-अभी कितनी निन्दा कर रहा था और उसे यह भी याद आया कि उसमें कितने पैबन्द लगे हैं और उसे कितनी जगहों पर रफ़ू किया गया है। उसने घुटने से हाथ हटा लिया और धीरे-धीरे आन्द्रेई क्लीमोविच से खिन्न होने लगी।

''आन्द्रेई क्लीमोविच, हर कोई अपनी ज़िन्दगी जीता है, मैं जिस तरीक़े से रहती हूँ, वही मुझे पसन्द है।''

लेकिन आन्द्रेई क्लीमोविच ने उसे क्रोध से देखा, यहाँ तक कि उसकी मूँछें भी

क्रोध से खड़ी हो गयी थीं :

"लेकिन हमें यह पसन्द नहीं है।"

"किसे पसन्द नहीं?"

"हमें, लोगों को पसन्द नहीं। यह क्या : हमारी पुस्तकाध्यक्ष, जिसका हम सब सम्मान करते हैं, ऐसे कपड़े पहनती हैं कि... मैं नहीं जानता कि कैसे। और आपके पति भी इसे पसन्द नहीं करते।"

"मेरे पति? आप कैसे जानते हैं? आप तो उनसे कभी मिले नहीं।"

"पहली बात तो यह है कि मैं उनसे मिला हूँ, और दूसरी, यदि वह पति हैं, तो-आप जानती हैं, पति सब एक जैसे होते हैं-वह एक दिन... बस... ये मर्द, आप जानती हैं, कैसे होते हैं, आपको उन पर नज़र रखनी चाहिये।"

आन्द्रेई क्लीमोविच विनम्रता से मुस्कराया और अपने स्टूल से उठ खड़ा हुआ।

"लम्बी बात न करके मैं आपको बतलाता हूँ कि हमने आपको एक पूरे लिबास का कपड़ा पुरस्कार में देने का फ़ैसला किया है। वह रेशम का कपड़ा होगा, उसका किसी क़िस्म का अजीब-सा नाम है, एक असली जबड़ातोड़ नाम। मेरी पत्नी तो उसका सही उच्चारण कर सकती है, पर मर्द कोई नहीं कर सकता है। और आपका यह लिबास हमारी फ़ैक्टरी का दर्ज़ी बनायेगा; ताकि वह आपके ही आकार का बने!"

वेरा इग्नात्येव्ना ने उसकी तरफ़ देखा और फिर अनपुछी तश्तरियों की तरफ़ देखा और चुपचाप एक ठण्डी साँस ली। उसके शब्दों में थोड़ी न्याय की बात ज़रूर थी, लेकिन इससे उसके जीवन के बेलबूटेदार जाली के कुछ आवश्यक फन्दे विस्फोटक ढंग से टूट गये। यह किंचित भयोत्पादक था। और वह तमारा के प्रति आन्द्रेई क्लीमोविच के वैरभाव से समझौता नहीं कर सकी। यह सारी बात अजीब थी। लेकिन आन्द्रेई क्लीमोविच को पुस्तकों से प्रेम था और वह फ़ैक्टरी ट्रेड-यूनियन समिति का सदस्य था और उसे उसका सीधा-सादा विश्वसनीय ढंग पसन्द था।

"हाँ, तो आप क्या कहती है?" आन्द्रेई क्लीमोविच ने दरवाज़े पर खड़े होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा।

वह जवाब देने ही वाली थी कि उसी समय दरवाज़ा भड़ाक से खुला और उनके सामने एक आकर्षक दृश्य आ खड़ा हुआ : तमारा आगे से बिल्कुल खुला ड्रेसिंग-गाउन पहने, अपनी जुराबें, रिबन, जूते आदि सबका प्रदर्शन करती नज़र आयी। उसने एक कर्णभेदी किलकार छोड़ी और दरवाज़ा बन्द करती हुई भाग खड़ी हुई। आन्द्रेई क्लीमोविच ने अपनी मूँछों को किनारों की तरफ़ को सहलाया।

"हूँ... तो वेरा इग्नात्येव्ना आपका क्या उत्तर है?"

"मैं, मैं सोचती हूँ... अगर यह ज़रूरी है... मैं आपकी बहुत आभारी हूँ।"

यद्यपि उस शाम की यह घटना काफ़ी सामान्य थी फिर भी वह शाम हमेशा की तरह सामान्य नहीं थी। वेरा इग्नात्येव्ना ने धोने का काम ख़त्म किया, रसोईघर को

तरतीब दी और रात का भोजन तैयार करना शुरू कर दिया। तभी पाव्लूशा भीतर आया, जीवन्त, तमतमाया और नीचे तक भीगा हुआ। उसने अपना सिर रसोईघर के अन्दर डाला और कहा :

''जानते हो, मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं! खाने के लिये क्या है? दलिया और दूध? अगर मुझे दूध मिला दलिया नहीं चाहिये तो? मुझे सिर्फ़ दलिया और सिर्फ़ दूध चाहिये अलग-अलग।''

''तुम इतने भीगकर कहाँ से आ रहे हो?''

''मैं भीगा नहीं हूँ, हम तो एक दूसरे पर सिर्फ़ बरफ फेंक रहे थे।

''क्यों? तब क्यों तुम्हारे कपड़ों के नीचे तक पानी चला गया है?''

''नहीं, सिर्फ़ एक जगह पर, केवल यहाँ।''

वेरा इग्नात्येव्ना जल्दी-जल्दी अपने बेटे के कपड़े बदलवाने में जुट गयी। ''सिर्फ़ एक जगह'' जो उसकी सारी पीठ थी, के अलावा वह बहुत-सी और जगहों पर भी भीगा हुआ था। वेरा इग्नात्येव्ना चाहती थी कि पाव्लूशा बिस्तर में घुस जाये, अपने बदन को गर्म करे। लेकिन उसे यह योजना पसन्द नहीं आयी। जिस समय उसकी माँ उसके कपड़ों को सुखाने के लिये रसोईघर में टाँग रही थी, उस समय उसने पिता के जूते और तमारा का काम करने का नीला ओवरऑल पहन लिया। फिर उसने पहला काम यह किया कि वह इन कपड़ों में अपने आपको दिखाने के लिये अपनी बहन के पास जा पहुँचा। इसके लिये उसे विपुल पुरस्कार मिल गया।

''इसे वापस कर!'' तमारा ने चिल्लाकर कहा और ओवरऑल लेने के लिये उस पर झपटी। पाव्लूशा कमरों में दौड़ लगाने लगा, पहले बैठक-ख़ाने में, फिर शयन-कक्ष में, और अपने पिता की चारपाई के ऊपर से दो बार कूदने के बाद वह वापस बैठक-ख़ाने में आ पहुँचा। यहाँ तमारा उसे पकड़ लेती है, लेकिन उसने उसके रास्ते में बड़ी सफ़ाई से कुछ कुर्सियाँ सरका दी और अपनी सफलता पर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। तमारा चिल्लायी, ''वापस ला,'' कुर्सियों से टकरायी, और उन्हें बग़ल की तरफ़ धकेल फेंका। धड़ाम-धड़ाम की आवाज़ों से वेरा इग्नात्येव्ना घबरा गयी। वह भागती हुई रसोई से बाहर आयी। अपने भाई का पीछा करती हुई तमारा ने उसे नहीं देखा और धकियाती निकल गयी, वेरा इग्नात्येव्ना एक आलमारी से टकरायी और उसकी बाँह में बुरी तरह से चोट लग गयी, परन्तु दर्द महसूस करने से पहले वह फूटते हुए शीशे की कड़कड़ाहट से स्तम्भित रह गयी : गिरते समय वह दीवार से लगी आलमारी पर से पानी की एक सुराही को खुद ही गिरा बैठी। उस समय तक पात्लूशा तमारा की बातों पर हँस रहा था और आज्ञाकारी ढंग से ओवरऑल उतार रहा था। तमारा ने अपने भाई के हाथों से ओवरऑल छीन लिया और उसके कन्धों पर अपने छोटे गुलाबी हाथ से तमाचा मारा।

''अगर तू फिर कभी मेरा ओवरऑल लेगा, तो मैं तेरी पिटाई करूँगी।''

''ओहो, पिटाई! तू बड़ी ताक़तवर है, ना!''

‘‘मैं अभी करती हूँ!’’

‘‘तो आ, ज़रा कोशिश तो कर, आ तो सही!’’

अपनी माँ को सुराही के टुकड़ों पर झुकते हुए देखकर तमारा चिल्लाकर बोली :

‘‘अम्मा, यह तो हद हो गयी! वह हमेशा मेरी चीज़ें उठा लेता है! जब मुझे किसी कपड़े की ज़रूरत होती है तो मुझे तीन साल तक लगातार उनकी माँग करनी पड़ती है। मुझे एक जोड़ी जूते तक नहीं मिलते। लेकिन जब वह चीज़ों को छीनने-झपटने और फाड़ने लगता है, तो उससे किसी को कुछ नहीं कहना चाहिये। उफ़, यह ज़िन्दगी इतनी... भयानक क्यों है!’’

अन्तिम शब्द तक पहुँचते-पहुँचते सुबकियों से उसका गला रुँध गया, उसने ओवरऑल को दुःशीलता के साथ मेज़ पर फेंक दिया और दीवार से लगी आलमारी की तरफ़ घूम गयी, लेकिन अब और अधिक सुबकियाँ लेने के बजाय उस मेज़ को चुपचाप ताकती खड़ी हो गयी। सामान्यतः, इस अन्दाज़ में वह इतनी अवमानित और दुखी दिखायी पड़ती थी कि उसकी माँ उसे देखते ही तुरन्त दुख से कातर हो जाती थी। लेकिन इस बार वेरा इग्नात्येव्ना ने उसकी तरफ़ नज़र नहीं डाली- वह टूटी हुई सुराही के टुकड़ों को जमा करने के नीरस काम में बहुत व्यस्त थी। तमारा ने अपनी माँ की तरफ़ तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और एक बार मेज़ के तराशे हुए किनारे को ताकने लगी। उसकी माँ ने कुछ नहीं कहा और शीशे के टूटे टुकड़े उठाकर रसोई की तरफ़ चली गयी। तमारा ने किंचित आश्चर्य में पड़कर उसको जाते देखा, लेकिन उसके लौटते हुए क़दमों की आवाज़ सुनकर फिर से पहले जैसी ही मुद्रा बना ली। वेरा इग्नात्येव्ना एक पोंछा लेकर रसोई से वापस आयी और गिरे हुए पानी पर झुकते हुए शान्ति और गम्भीरता से बोली :

‘‘तुम पानी में पैर रख रही हो... अलग हटो।’’

तमारा गिरे हुए पानी को लाँघकर निकली और अपनी मेज़ पर बैठ गयी, लेकिन वहाँ बैठी-बैठी अपनी माँ को देखती रही। वास्तव में घटनाक्रम नितान्त सामान्य रूप से चल रहा था। इस तरह के हँसी-ख़ुशी के खेल और बर्तनों की टूट-फूट पहले भी होती रही थी। इसी सामान्य ढंग से वेरा इग्नात्येव्ना ने मेज़ पर भोजन लगाया। आधे कपड़े पहने पाव्लूशा दलिये की तरफ़ झपटा। कुछ समय तक उसने एक हाथ से दलिये में मक्खन मिलाया और दूसरे हाथ से मेज़ पर रखे दूध के गिलास को मजबूती से पकड़े रहा-उसे दूध बहुत पसन्द था। तमारा दलिया कभी नहीं खाती थी, उसे मांस पसन्द था, और उस समय दो गर्मागरम कटलेट तश्तरी में उसका इन्तज़ार कर रहे थे। लेकिन तमारा अपने ड्राइंग-मेज़ पर यंत्रवत चिपकी बैठी थी, और अपनी माँ तथा कटलेट दोनों की देखी-अनदेखी कर कहीं ताक रही थी। वेरा इग्नात्येव्ना ने अपनी बेटी की तरफ़ देखा तो उसका मातृहृदय दया से उमड़ आया।

‘‘तमारा, आओ बैठो और कुछ खा लो।’’

‘‘अच्छी बात है,’’ तमारा ने फुसाफुसाकर कहा और अपने कन्धों को इस तरह

कड़ुवाहट से उचकाया जैसे कोई जीवन से क्लान्त होकर करता है। लेकिन जीवन सामान्य गति से चलता रहा। ग्यारह बजे इवान पेत्रेविच घर आया। यह एक दीर्घ-स्थापित परम्परा बन गयी थी कि इवान पेत्रोविच हमेशा काम से लौटता था, इसलिये अनेक वर्षों से यह प्रश्न पैदा ही नहीं हुआ कि वह कहाँ से आता था। इस परम्परा का ऐसे जतन से इसलिये पालन होता था कि इवान पेत्रोविच अपने अद्‍भुत अपरिवर्तनीय चरित्र के लिये उल्लेखनीय था, जिससे उचित ही कई पत्नियों की ईर्ष्या उठती थी। वेरा इग्नात्येव्ना के परिचित उससे अक्सर कहा करतेः

''तुम्हारे पति कितने अद्‍भुत हैं! ऐसे चरित्रवान पति आसानी से नहीं मिलते। वेरा इग्नात्येव्ना, तुम ख़ुशक़िस्मत हो!''

वेरा इग्नात्येव्ना पर इन शब्दों का हमेशा सुखद प्रभाव पड़ता था-जीवन में, सामान्यतः, उससे कोई भी ईर्ष्या नहीं करता था।

इवान पेत्रोविच एक वरिष्ठ नियोजन विशेषज्ञ था, लेकिन जहाँ अन्य नियोजन विशेषज्ञ, जैसा कि हर कोई जानता है, चिड़चिड़े स्वभाव के लोग होते हैं और इधर-उधर की दशाओं के विश्लेषण तथा अपने काम में बहुधा परिवर्तनों के लती होते हैं, वहाँ इवान पेत्रोविच सन्तुलित स्वभाव का आदमी था और उसमें विश्लेषण की तरफ़ कोई रुझान नहीं था। वह पिछले पन्द्रह वर्षों से भी अधिक समय से एक ही नौकरी और पद पर बना हुआ था। सच है कि उसने अपनी पत्नी को अपने काम के बारे में कभी नहीं बताया, और वेरा इग्नात्येव्ना को केवल यह मालूम था कि वह किसी जगह पर एक नियोजन विशेषज्ञ है, और यह बात उसकी अपनी जवानी के दिनों की एक याद थी।

इवान पेत्रोविच बहुत बढ़िया काट की सूट पहनता था, उसका चेहरा साफ़ और भरा हुआ था और वह सुन्दर ढंग से काटी-छाँटी हुई छोटी-सी दाढ़ी रखता था। वेरा इग्नात्येव्ना उसकी सूटों की देखभाल उनके बनने के बाद ही करती थी ; उसे इस बात का क़तई कुछ पता नहीं था कि वे कैसे बनती हैं। इवान पेत्रोविच उसकी सलाह के बिना ही यह काम करता था। वह वेरा इग्नात्येव्ना को हर माह तीन सौ रूबल देता था।

इवान पेत्रोविच घर आने के बाद, हमेशा की तरह सीधे मेज़ पर जा बैठा और वेरा इग्नात्येव्ना ने उसका खाना परोस दिया। जब वह खाना परोस रही थी, तब उसने अपनी दाढ़ी को अपने जुड़े हुए हाथों पर टिकाया और अपनी उँगलियों के जोड़ों को कुतरा, उसकी आँखें शान्ति से कमरे में चारों तरफ़ देख रही थीं। उसके सामने तश्तरियाँ रखी गयीं, उसने प्रतिष्ठित मुद्रा बनायी और नैपकिन को अपने कॉलर के एक कोने में खोंस लिया। वह नैपकिन के बिना कभी नहीं खाता था और सामान्यतः बहुत साफ़-सुथरा आदमी था। वह तभी बात कर सकता था जब दो-चार कौर निगल चुका हो।

आज हर चीज़ सामान्य ढंग से चल रही थी। इवान पेत्रोविच ने अपने कटलेट खाये ओर सीझे फलों की तरफ़ हाथ बढ़ाया और ऐसा करते समय बोला, ''हाँ तो

तमारा, तुम्हारी वास्तुकला कैसी चल रही है?''

तमारा ने अपनी मेज़ पर बैठे-बैठे विनीत भाव से कन्धे उचका दिये। वेरा इग्नात्येव्ना दीवार से लगी एक कुर्सी पर बैठ गयी और बोली :

''तमारा बहुत परेशान है। हम उसके लिये वे भूरे जूते ख़रीद ही नहीं पा रहे हैं।

इवान पेत्रेविच ने अपने माचिस की डिबिया से एक तीली तोड़कर दन्त-कुरेदक बनाया और दाँत कुरेदने लगा तथा इस काम में जीभ की मदद लेता हुआ उसे आनन्दपूर्वक चूसने-सा लगा। उसने प्रयत्न करके अपनी आँख तमारा की तरफ़ घुमायी। फिर ध्यान से अपने दन्त-कुरेदक को देखा और कहा :

''जूते, यह गम्भीर मामला है। क्यों, क्या हमारे पास पर्याप्त धन नहीं है?''

''जब मेरी बारी आती है, तो कभी भी पर्याप्त नहीं होता,'' तमारा ने दुखी होकर कहा।

इवान पेत्रोविच मेज़ से उठ खड़ा हुआ और अपने हाथ पतलून की जेब में डालकर, अपनी खाली तश्तरी की तरफ़ ताकता हुआ कुछ सोचने लगा। इस विचारशील मुद्रा में वह पंजों के बल उठा और फिर दो-चार मरतबा ऊपर-नीचे होने के बाद घुँघराले छैले के बारे में एक गाने की हँसोड़ धुन पर सीटी बजाने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह जूतों के बारे में सोच रहा है। लेकिन जाहिर था कि उसने कोई अच्छी बात नहीं सोच रहा है। लेकिन ज़ाहिर था कि वह कोई अच्छी बात नहीं सोच रहा था। अन्तिम बार पंजों के बल खड़ा होकर वह धीरे-धीरे शयन-कक्ष की ओर चल पड़ा और वहाँ से भी उसकी सीटी की आवाज़ सुनी जा सकती थी। तमारा ने अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही घूमकर शयन-कक्ष के दरवाज़े की तरफ़ क्रुद्ध दृष्टि डाली। वेरा इग्नात्येव्ना मेज़ साफ़ करने लगी।

और इस तरह, वह शाम भी-इग्नात्येव्ना के जीवन में से एक शाम-सामान्य रूप से बीत गयी। लेकिन इसके बावजूद यह अन्य शामों से भिन्न थी। जब से आन्द्रेई क्लीमोविच गया था, तब से वेरा इग्नात्येव्ना के अन्तर में कोई चीज़ कुलबुलाने लगी थी। यह पहला अवसर नहीं था जबकि वेरा इग्नात्येव्ना ने घरेलू काम करते समय दिलचस्प चीज़ों के बारे में सोचा हो। सामान्यतः वह पुस्तकालय के अपने काम को याद करती, अपने दिमाग़ में उन पुस्तकों की कल्पना करती जो हासिल की गयी थीं, पाठकों के साथ अपने वार्तालाप तथा उस सलाह को याद करती, जो उसने उन्हें दी थी। वह सफलताओं को, बुद्धिमत्तापूर्ण टिप्पणियों और प्रोत्साहन के हार्दिक शब्दों को याद करना पसन्द करती थी। जब कोई प्रेरणाप्रद या उल्लेखनीय विचार उसके स्मृति-पट पर आता, तो वह उसे एक आन्तरिक मुस्कान से जाँचती, उसके सूक्ष्म अर्थाभासों पर ध्यान देती और प्रसन्न होती थी।

अगर आन्द्रेई क्लीमोविच न आया होता, तो वह उस शाम कल के सम्मेलन की बात सोचती, शो-केस और अपने प्रिय लेखक के चित्र की याद करती और सुन्दर स्लेटी-नीली जिल्दों में बँधी उसकी पुस्तकों की बात सोचती। उसकी पुस्तकों की प्रकृति

में एक जवाँ, उल्लासमय स्वर था, उनकी याद करना बहुत सुखद था।

लेकिन उस शाम उसने इनमें से किसी के बारे में नहीं सोचा। रात का भोजन तैयार करते समय, और टूटे हुए शीशे के टुकड़े जमा करते समय फिर जब वह तश्तरियों को पोंछ रही थी और जब सब बिस्तरों में जा लेटे थे, तो वेरा इग्नात्येव्ना आन्द्रेई क्लीमोविच की कही हुई बातों पर विचार करती रही। किसी कारणवश केवल एक ही विषय सामने आया : उसके घाघरे के बारे में आन्द्रेई क्लीमोविच की अतिशय प्रभावकारी टिप्पणियाँ। यह जानकारी अत्यन्त निराशाजनक थी कि उसके सारे प्रयत्न, श्रम और आशाएँ सब व्यर्थ थी। उसने उस घाघरे की मरम्मत करने में कितनी शामें बितायी थीं, जब वह ख़त्म कर चुकती थी, तो उसे पक्का यकीन हो जाया करता कि लक्ष्य पूरा हो गया और वह अगले दिन उसे पहनकर निहायत सम्मानजनक नज़र आते हुए काम पर जा सकती है। कभी-कभी उसे ऐसा भी लगता था कि उसका बाह्य रूप केवल सम्मानजनक ही नहीं, बल्कि सुरुचिपूर्ण भी है। और बात बिल्कुल उल्टी निकली। ''लोग आपके बारे में बातें कर रहे हैं।'' तो हर कोई देख चुका था और वे इस पर हँस रहे थे। और कल? कल सम्मलन होगा।

बर्तन साफ़ करने और सब कुछ तरतीब से लगा देने के बाद वेरा इग्नात्येव्ना ने मेज़ साफ़ किया और अपना घाघरा उतारकर मेज़ पर फैला दिया। उसकी पुरानी सलवटें साफ़ नज़र आ रहीं थी। वेरा इग्नात्येव्ना ने उसे ग़ौर से देखा और उसकी आँखों में, अपेक्षित रूप से आँसू भर आये; उसे उस ''वृद्ध-महिला'' के लिये बहुत अफ़सोस हुआ। घाघरे ने उसकी ओर ज़राजीर्णता के ऐसे उदास और परिक्लान्त भाव से देखा कि कोई भी आसानी से समझ सकता था कि उसे आराम की सख़्त ज़रूरत है, आलमारी की किसी दराज़ के एक गर्म कोने में पड़े रहने की और एक लम्बी नींद की ज़रूरत है। किसी ज़माने की बात है, वह रेशम का बना था। तब उसमें अत्यधिक कोमलता और सजीवता थी। अब उसका रेशमीपन तभी नज़र आता था, जब गहरी निगाह जम कर दखा जाये और रेशमीपन भी स्लेटी हो गया था। और इन कमज़ोर स्लेटी धागों के बीच हर जगह सलवटें थी। और जीवन में लगे घावों के निशान थे। बहुत समय पहले रफ़ू की गयी जगहें किसी प्रकार से ठीक ही थीं, परन्तु ताज़े सूराख़ तो रफ़ के धागों की बारीक जाली भर थे और उनके पार से मेज़ की सफ़ेद सतह साफ़ नज़र आ रही थी। वेरा इग्नात्येव्ना ने बिजली की इस्तरी को प्लग से जोड़ा। उसने बेहद सावधानी से ज़्यादा दबाव न डालने की कोशिश करते हुए, इस्तरी को कुछ मरतबा घाघरे के ऊपर चलाया। जहाँ वह घूमी, वहाँ सलवटें हमवार होकर गायब हो गयीं और 'वृद्धा-महिला' उदास और कमनीय दिखायी देने लगी।

इस्तरी समाप्त करने के बाद, वेरा इग्नात्येव्ना ने उसे उठाकर निरीक्षण किया। नहीं, अब अपने को धोखा नहीं दिया जा सकता : इस्तरी करने के बाद भी उसमें सुरुचि की कोई सम्भावना नहीं थी। लेकिन वेरा इग्नात्येव्ना बहादुरी से मुस्करायी : कोई बात नहीं, हमने साथ-साथ ज़िन्दगी बितायी है और हम उसके साथ ही साथ

जवाबदेह भी होंगे।

वेरा इग्नात्येव्ना की भावनाओं का तनाव घटने लगा।उसने कल्पना की कि वह एक नया रेशमी लिबास पहने है तो उसे वह भी अजीब... और हास्यास्पद लगा। अपने घरेलू कामों की धुन्ध से होकर उसने देखा कि यह नया लिबास अवश्यम्भावी है, लेकिन वह एक लिबास ही नहीं था... यह सोचना मर्यादारहित और शर्मनाक है-इसके सम्बन्ध में कोई चीज़ थी, जो जवान सरीखी थी। वेरा इग्नात्येव्ना ने आश्चर्य से अपना सिर भी हिलाया। वह सावधानी से हौदी के ऊपर लगे दर्पण के क़रीब गयी। इस बार वह दो युवा मुस्कराती आँखों और उन भरे-भरे प्रमुदित होंठों को देखकर सचमुच चकित रह गयी, जो फुसाफुसाकर कुछ कहते हुए-से प्रतीत होते थे। दर्पण में गुलाबीपन नज़र नहीं आ रहा था, लेकिन वेरा इग्नात्येव्ना को अपने गालों में उसके गर्म आकस्मिक प्रवाह का अनुभव हो रहा था। सहसा आने-वाले एक विचार से उसे इवान पेत्रोविच की याद आ गयी। वह दर्पण से परे हट गयी। यह स्पष्ट रूप में उसके सामने आया : वह किस प्रकार की पत्नी थी? वह सुसज्जित वेशभूषावाले, साफ़-सुथरी हजामत बने, उस आत्मविश्वासी व्यक्ति की पत्नी कैसे हो सकती है? वह बहुत लम्बे समय से उसकी पत्नी नहीं रही है और न हो सकती थी। इवान पेत्रोविच ने उसके अंगवस्त्र, उसकी जुराबें नहीं देखी हैं, ऐसा बहुत कुछ था, जो उसने नहीं देखा था...

सम्मेलन बहुत दिलचस्प ढंग से चला। पाठकगण हार्दिकता और भावुकता से बोले और उन्होंने मंच से उतरने से पहले लेखक से हाथ मिलाये तथा उसे धन्यवाद दिया। वेरा इग्नात्येव्ना ने मंचपर आनेवाले हर भाषणकर्ता की तरफ़ व्यग्रतापूर्ण ध्यान से दृष्टि डाली और राहत और उल्लास की भावना का अनुभव करते हुए उन्हें जाते देखा। हर बूढ़ा और जवान जानता था कि कैसे बोलते हैं और कैसे महसूस करते हैं, और यह एक बड़ी सफलता की बात थी।

आन्द्रेई क्लीमोविच भी मंच पर आया और संक्षेप में बोला :

''इस साथी की जो पुस्तकें मैंने पढ़ी, वे मेरे जीवन के लिये सचमुच, एक ख़तरा रही है : मैं लगातार दो रात नहीं सो सका। वे ऐसे अद्‌भुत लोगों के दर्शन कराती हैं, ऐसे साहसी युवा लोगों को दिखलाती हैं, जो उल्लास से भरे-पूरे हैं। इस प्रकार के लोग, चाहे कुछ भी क्यों न हो, अपने ध्येय को समर्पित होते हैं! और यह सत्य है। आप रात को पुस्तक पढ़िये, फिर सुबह उठिये और अपने आस-पास देखिये, आप सचमुच ऐसे अनेक लोगों को देखते हैं। सही है, क्यों, मैं ख़ुद उन्हीं में से एक हूँ...''

श्रोतागण ज़ोर से हँसे। आन्द्रेई क्लीमोविच समझ गया कि वह अति कर गया है, उसने उलझन में पड़कर अपनी मूँछों पर ताव दिया। फिर वह सम्भल गया।

''सच है, हमें अधिक संस्कृति की ज़रूरत है, यह बिल्कुल सच है और आपने इसका ज़िक्र करके नितान्त सही काम किया। संस्कृति वह चीज़ है जिसके लिये हम प्रयत्नशील है। हमारे पुस्तकालय को, इस उत्तम क्लब को देखिये, और यह देखिये,

कि तरह-तरह के लेखक और विद्वज्जन हमसे मिलते आते हैं। और सोवियत सत्ता को धन्यवाद है कि उसने इस काम में वेरा इग्नात्येव्ना कोरोबोवा जैसे व्यक्तियों को लगाया है।''

सारे सभा-भवन में एक पुरजोश हर्षध्वनि गूँज उठी। वेरा इग्नात्येव्ना ने लेखक की तरफ़ देखा, लेकिन वह मेज़ के पास खड़ा हो चुका था और उसकी तरफ़ मुस्कराकर देखता हुआ ताली बजा रहा था। सभा-भवन में अनेक लोग अपनी-अपनी जगहों पर खड़े हो गये थे और हर कोई वेरा इग्नात्येव्ना की तरफ़ देख रहा था, हर्षध्वनि का शोर तीव्र से तीव्रतर होता गया। वेरा इग्नात्येव्ना घबराहट में दरवाज़े की तरफ़ भागने ही वाली थी, कि लेखक ने, कोमलता से, अपना हाथ उसके गिर्द रख दिया और उसे सावधानी से मेज़ की तरफ़ बढ़ाया। वह बैठ गयी और उसने स्वयं अपने लिये अनपेक्षित ढंग से अपनी बाहें कुर्सी की पीठ पर टिका ली तथा अपने सिर को बाहों पर रखकर रोने लगी। सभा-भवन में तुरन्त निश्शब्दता छा गयी, लेकिन आन्द्रेई क्लीमोविच ने बनावटी हताशा प्रदर्शित करते हुए अपनी बाहें हिलायीं और हर कोई सदयता और स्नेह से हँसने लगा। वेरा इग्नात्येव्ना ने अपना सिर उठाया और जल्दी से अपने आँसुओं को क़ाबू में किया और ख़ुद भी हँसने लगी। श्रोताओं के बीच बातचीत की एक लहर-सी दौड़ी। आन्द्रेई क्लीमोविच ने क़ागज़ का एक टुकड़ा उठाया और पढ़ा कि फ़ैक्टरी की ट्रेड-यूनियन समिति और प्रबन्धकों ने प्रमुख पुस्तकाध्यक्ष वेरा इग्नोत्व्ना कोरोबावा को उनके सोत्साह समर्पित कार्य के लिये क्रेप...द...शीन का एक वस्त्र देखकर पुरस्कृत करने का फ़ैसला किया है। आन्द्रेई क्लीमोविच ने वस्त्र के इस नाम का उच्चारण कुछ सन्देह के साथ किया और यह दिखलाने के लिये अपना सिर हिलाया कि यह कितना कठिन था; जो भी हो इस शब्द का फिर हर्षध्वनि से स्वागत किया गया। आन्द्रेई क्लीमोविच ने अपने बैग से नीले रिबन से बन्धा एक हल्का पुलिन्दा निकाला, उसे अपने बाँयें हाथ में रखा और मिलाने के लिये दायाँ हाथ आगे बढ़ाया। वेरा इग्नात्येव्ना पुलिन्दे को लेने ही वाली थी कि तभी उसने महसूस कर लिया कि ऐसा करना ग़लत होगा। आन्द्रेई क्लीमोविच ने उसका हाथ थामा और पूरे जोश से हिलाया। सभा-भवन में उपस्थित लोगों ने हर्षध्वनि की और उल्लसित होकर हँसे। वेरा इग्नात्येव्ना का चेहरा लज्जा से गहरा लाल हो गया और उसने आन्द्रेई क्लीमोविच की तरफ़ हार्दिक उलाहने की नज़र से देखा। लेकिन वह शान से मुस्कराया और समारोह की सारी औपचारिकताओं को धैर्य से निभाता रहा। और अन्त में, पतले क़ागज़ में लिपटा, नीले रिबनों से बँधा क्रेप-दे-शीन का पुलिन्दा उसके सामने मेज़ पर रख दिया गा। उस क्षण पर उसे अपने पुराने घाघरे की याद आ गयी और उसने अपने पैरों को जल्दी से कुर्सी के नीचे कर लिया, ताकि दर्शक उसके जूते को न देख सकें।

लेकिन अभी सब कुछ समाप्त नहीं हुआ था। लेखक मंच पर खड़ा हुआ और उसने एक अच्छा भाषण दिया। लेखकीय जगत में वेरा इग्नात्येव्ना को अनेक लोग

जानते हैं। एक पुस्तक लिख भर देना काफ़ी नहीं होता, पुस्तक को लिखने के बाद उसे पाठक के व्यक्तिगत सम्पर्क में लाना होता है और यह राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक ज्ञानोदय का महान कार्य है। वेरा इग्नात्येव्ना जैसे लोगों के गिर्द एक नयी समाजवादी संस्कृति परिवर्द्धित व प्रसारित हो रही है। आज का सम्मेलन एक नये कारख़ाने के निर्माण, खेती में उत्पादकता बढ़ाने से, सड़कें व रेल-मार्ग बनाने से कम बड़ी उपलब्धि नहीं है। और हमारे सोवियत संघ में ऐसे अनेक सम्मेलन होते हैं जो नयी और गहन समाजवादी संस्कृति की अभिव्यक्तियाँ हैं। हमें, सब लोगों को, इस पर गर्व होना चाहिये और वेरा इग्नात्येव्ना जैसे व्यक्तियों पर गर्व होना चाहिये और वेरा इग्नात्येव्ना जैसे व्यक्तियों पर गर्व होना चाहिये। जहाँ फ़ासिस्ट राज्यों में पुस्तकों को जलाया जा रहा है, मानववाद के सर्वोत्तम प्रतिनिधियों को खोज-खोज करके उत्पीड़ित किया जा रहा है, वहाँ हमारे देश में पुस्तकों के साथ प्यार व आभार का सुलूक किया जाता है, वेरा इग्नात्येव्ना जैसे रचनात्मक कर्मियों को सम्मानित किया जाता है। उसने लेखकों की ओर से वेरा इग्नात्येव्ना के महान कार्य के लिये उसे धन्यवाद दिया और सोवियत पाठकों की शिक्षा पर दीर्घकाल तक काम करते रहने के वास्ते उसकी शक्ति तथा स्वास्थ्य के लिये शुभकामना की।

वेरा इग्नात्येव्ना ने लेखक के भाषण को ध्यान से सुना, ताज्जुब के साथ यह बात समझी कि वह सचमुच एक महान काम कर रही है, कि उसका पुस्तक-प्रेम किसी भी हालत में एक गोपनीय व्यक्तिगत भावना नहीं है, बल्कि कोई महान, उपयोगी और महत्वपूर्ण चीज़ है। उसका एक ऐसी चीज़ के साथ सामना हो गया जिस पर उसने पहले कभी ग़ौर नहीं किया-अपने काम का सामाजिक महत्व। उसने इस विचार पर गहराई से सोचा और सहसा उसके सम्पूर्ण अर्थ को तुरन्त समझ लिया : उसने लोगों द्वारा पढ़ी दसियों हज़ारों पुस्तकों को देखा, उसने स्वयं लोगों को देखा, जो अभी हाल-हाल तक भोले-भाले और संकोची थे, जो पुस्तकों की पंक्तियों और शीर्षकों को बेढंगे तरीक़े से देखते और पूछते थे : ''हमें डाकुओं के बारे में कुछ दीजिये,'' या ''कोई चीज़, आप जानती हो... ज़िन्दगी के बारे में।'' फिर उन्होंने युद्ध के बारे में, क्रान्ति के बारे में, लेनिन के बारे में पुस्तकें माँगनी शुरू कर दीं। और अब वे कुछ नहीं माँगते थे, बल्कि अपना नाम किसी पुस्तक की प्रतीक्षा-सूची में पैंतीसवीं अथवा पचपनवीं जगह पर लिखते और बड़बड़ाते थे :

''इस बारे में आपका क्या ख़्याल है! ऐसा पुस्तकालय और सिर्फ़ पाँच प्रतियाँ! इससे तो काम नहीं चल सकता!''

यह सब उसे पहले से ही मालूम था। उसके मातहत आठ पुस्तकाध्यक्ष काम करते थे, और इसे वे सब जानते थे और अक्सर किसी एक शाम को पुस्तकालय में बैठकर वे पुस्तकों, पाठकों, अपने काम की विधियों के बारे में बातें करते थे। उसे अन्य पुस्तकों, पाठकों, अपने काम की विधियों के बारे में बातें करते थे। उसे अन्य पुस्तकालयों के काम की जानकारी थी, वह कई सम्मेलनों में गयी थी। वह हर चीज़

जानती थी और उसने हर सम्मेलन में भाग लिया था, परन्तु इसके बावजूद उसे आज के जैसे गर्व का, किसी चीज़ की रचना की अनुभूति का ऐसा अहसास पहले कभी नहीं हुआ था।

और ऐसा प्रतीत हुआ कि लेखक उन प्रश्नों का उत्तर दे रहा है, जो पहले से ही उसके दिमाग़ में थे।

''वेरा इग्नात्येव्ना जैसे लोग अत्यन्त विनीत होते हैं, वे अपने बारे में कभी नहीं सोचते, वे अपने काम के बारे में सोचते हैं,वे उसके सन्देश से अभिभूत हो जाते हैं। लेकिन हम, आप और मैं उनके बारे में सोचते हैं, हम हार्दिक आभार के साथ उनसे हाथ मिलाते हैं ओर वेरा इग्नात्येव्ना को पुरस्कृत करने का आपकी फ़ैक्टरी का विचार बहुत उत्तम था। और हम उनसे कहते हैं : नहीं आप अपने बारे में भी सोचिये। सुख से रहिये, अच्छे वस्त्र पहनिये, आप इस लायक़ हैं, हमने अपनी क्रान्ति इसीलिये की है ताकि हर वास्तविक मेहनतक़श अच्छी तरह से रह सके।'' वह उल्लेखनीय दिन आख़िर तक उल्लेखनीय रहा। सम्मेलन के बाद पुस्तकालय में पुस्तकालय-कर्मियों और नियमित पाठकों की एक दावत का बन्दोबस्त किया गया। मेज़ें मदिरा, सैण्डविच और केकों से भरी थीं। युवा कर्मियों ने वेरा इग्नात्येव्ना को लेखक की बग़ल में बैठाया और शाम तक अपनी सफलताओं, अपनी कठिनाइयों व शंकाओं को याद किया और अपने पारस्परिक दोस्तों-पाठकों, पुस्तकों, लेखकों-के बारे में बातें कीं।

लेकिन जब वे विदा हुए, तो आन्द्रेई क्लीमोविच ने वेरा इग्ना-त्येव्ना की कांख में दबे, नीले रिबन से बन्धे पुलिन्दे को सावधानी से अपने कब्जे में ले लिया और कहा :

''इसे घर ले जाने की ज़रूरत नहीं है। हम इसे यहीं लॉकर में बन्द करके रख देंगे, और कल, क़िस्मत ने साथ दिया, तो दर्ज़ी के यहाँ पहुँच जायेंगे।

इन शब्दों पर लेखक भी ज़ोर से हँस पड़ा, ओर वेरा इग्नात्येवना ने पुलिन्दा चुपचाप वहीं छोड़ दिया।

जब वह घर पहुँची, तो अपने सामान्य कामों में जुट गयी। पाल्लूशा फिर स्केटिंग के लिये चला गया था और हॉल में अपने पीछे गन्दे निशान छोड़ता गया था। तमारा घर पर थी और उसने सारा दिन अपने बालों पर कंघी भी नहीं की थी। उसकी मेज़ पर वही पहले दिन का आरेख पड़ा था और एक सिंह की दुम में रंग लगने के सिवा और कहीं कोई परितर्वन नहीं हुआ था। तमारा का अपनी माँ से अनबोला चल रहा था : इसका मतलब था उन कारगर घेरे-बन्दियों में से एक की शुरुआत हुई, जो हमेशा एक तीव्र, पर नाकाम हमले के बाद होती थी।

इससे पहले, वेरा इग्नात्येव्ना इस रणनीति को अपनी बेटी की परेशानी का ही नहीं, बल्कि खुद अपने ही किसी दोष का संकेत समझती थी, लेकिन आज, किसी कारण से वेरा इग्नात्येव्ना यह महसूस नहीं कर पायी कि उसने कोई कुसूर किया है। तमारा को पीड़ित देखना बहुत दुःखद था, उसके सुन्दर और दुखी चेहरे ही पर नज़र डालना पीड़ाप्रद था और यह सोचकर बड़ी दया आती थी कि इस सबके बावजूद यह

बिल्कुल स्पष्ट था कि इसके लिये जिस व्यक्ति को दोष दिया जाना चाहिये, वह वेरा इग्नात्येव्ना नहीं है। उसके विचार इवान पेत्रोविच की तरफ़ घूम गये। बहुत सम्भव है यह उसका दोष हो। उसे उसके हँसोड़ गाने की धुन बरबस याद आ गयी। इवान पेत्रोविच को तमारा के जूतों में सचमुच कुछ दिलचस्पी लेनी चाहिये थी। और... तीन सौ रूबल प्रति माह बहुत कम रकम थी। उसे क्या वेतन मिल रहा है? पहले उसे सात सौ रूबल मिलते थे नहीं मिलते थे, न? लेकिन वह बहुत पहले की बात है...

इन बातों को सोचते समय भी वेरा इग्नात्येव्ना अपनी उस दिन की अद्‌भुत सफलता के प्रभाव में थी, और इसी वजह से उसका दिमाग़ अधिक अच्छा तथा साहसिकता से काम कर रहा था। वह न लोकप्रिय प्यार व सम्मान की उस तरंग को भूल सकती थी न अपने महान कार्य की उस विशद तस्वीर को, जो उस लेखक ने खींची थी। और अब उसे अपना घर नितान्त सामान्य और उजड़ा-उजड़ा-सा लग रहा था।

लेकिन घर के काम-काज का निवारण किसी ने नहीं कर दिया था। वे पहले किसी भी दिन की तरह मौजूद थे और उन्हें कई दशकों की आदत से बनी उन्हीं चिन्ताओं, उन्हीं ख़्यालों और उन्हीं भावनाओं के साथ अभी भी हमेशा की तरह पूरा करना था। वेरा इग्नात्येव्ना ने एक बार फिर तमारा और पाव्लूशा को उनके शाम का भोजन परोसा। तमारा ने अपने कटलेट को अपनी आँखों में ऐसी उदासी भरकर ताका, उसके काँटे ने तश्तरी पर रखे भोजन के टुकड़ों को ऐसी मर्मस्पर्शी असहायता से बटोरा कि वेरा इग्नात्येव्ना चैन से बैठ न पायी। उसका गला रुँधने को हो गया। तभी सहसा उसे नीले रिबन के उस पुलिन्दे की याद आयी। उसे वह पुलिन्दा लोभी अहंकार के सिवा और किसी चीज़ का द्योतक नहीं जान पड़ा, जबकि यह सुन्दर लड़की अपना प्रिय लिबास भी नहीं पहन सकती, तब वेरा इग्नात्येव्ना अपने कीमती क्रेप-दे-शीन को छुपाये हुए है। और फिर वह एक लिबास बनवायेगी और उसे किसी अभिनेत्री की तरह प्रदर्शित करती घूमेगी, पर इस लाचार लड़की की मदद कौन करेगा? अपनी कल्पना में वेरा इग्नात्येव्ना को बट्टे पर चीज़ें ख़रीदनेवाली दुकान का दरवाज़ा दिखायी भी देने लगा था, वहाँ वह अन्दर जा रही थी और बेचने के लिये पेश कर रही थी... लेकिन उसके पास बेचने को कुछनहींथा,कपड़े का पुलिन्दा अभी भी आन्द्रेई क्लीमोविच के पास रखा था। पल भर के लिये उसके दिमाग़ में यह विचार कौंधा कि वह उस पुलिंदे को ले सकती है, लेकिन उतनी ही शीघ्रता से आन्द्रेई क्लीमोविच की घुँघराली मूँछों सहित उसकी मुस्कान झलकी और बट्टे की दुकान ग़ायब हो गयी। वेरा इग्नात्येव्ना को अपनी छाती में घुटन का अहसास होने लगा और वह उस समय भी उसी बेचैनी की हालत में थी, जब इवान पेत्रोविच घर पहुँचा।

जब इवान पेत्रोविच ने अपना भोजन प्रारम्भ किया, तो वेरा इग्नात्येव्ना ने दीवार से लगी अपनी कुर्सी पर बैठ कर कहा :

''आज हमारे यहाँ एक सम्मेलन था, आपको यक़ीन नहीं आयेगा, सम्मेलन के

बाद उन्होंने मुझे एक पुरस्कार प्रदान किया।''

तमारा की आँखें फैल गयीं और वह अपनी पीड़ा भूल गयी। इवान पेत्रोविच ने पूछा :

''एक पुरस्कार? दिलचस्प! क्या उन्होंने तुम्हें काफ़ी कुछ दिया?

''एक लिबास के लिये कपड़ा।''

इवान पेत्रोविच ने चाकू और काँटे से लैस अपने दोनों हाथों को तश्तरी के दोनों ओर जमा दिया और स्वाद से और गम्भीर, प्रशंसनीय ढंग से भोजन चबाने लगा।

''पुराने फ़ैशन का जैसा पुरस्कार,'' उसने चाकू के हत्थे से मेज़ को ठकठकाते हुए कहा।

तमारा मेज़ के पास आ गयी, उसके आधे हिस्से में टिककर अपनी माँ की तरफ़ सक्रिय दिलचस्पी से निहारने लगी।

''क्या आपको वह मिल गया?''

''नहीं... वह वहाँ है... दर्ज़ी के यहाँ।''

''तो तुम्हें वह, वह कपड़ा पहले ही मिल चुका है?''

वेरा इग्नात्येव्ना ने हामी भरते हुए सिर हिलाया और शर्माते हुए अपनी बेटी की तरफ़ देखा।

''कपड़ा क्या है?''

''क्रेप-दे-शीन।''

''क्रेप-दे-शीन? कौन-सा रंग?''

''मुझे पता नहीं... मैंने उसे देखा नहीं।''

तमारा का सिर और उसके सहायक अंग-उसकी सुन्दर आँखें, गुलाबी होंठ, आधार पर चौड़ी और सिरे पर नुकीली प्यारी नाक-सब आराम के साथ उसकी हथेलियों पर टिके थे। तमारा ने अपनी माँ को ऊपर से नीचे तक ग़ौर से देखा, मानो यह सोच रही हो कि क्रेप-दे-शीन का लिबास पहने उसकी माँ कैसी दिखायी देगी। उसकी नज़रें कुछ देर तक अपनी माँ के घुटनों पर रुकीं, फिर उसके जूतों और एक बार फिर उठ कर उसके कन्धों पर जा रुकीं।

''क्या आप उससे अपने लिये लिबास बनवा रही हैं?'' उसने अपनी जांच जारी रखते हुए कहा।

वेरा इग्नात्येव्ना को और भी ज़्यादा शर्म लगी और उसने प्रयत्न करके कहा :

''हाँ... यही ख़्याल है... मेरा यह घाघरा अब बहुत पुराना हो गया है :

तमारा ने अपनी माँ पर अन्तिम दृष्टिपात किया, बदन सीधा किया, हाथ पीछे को समेटे और ऊपर लैम्प की ओर निगाह डाली।

''कौन जाने, वह किस रंग का होगा।''

इवान पेत्रोविच ने छेने की तश्तरी अपनी तरफ़ खींची और कहा : ''हमारे कार्यालय में पुरस्कार में कोई चीज़ उपहारस्वरूप देना पुरानी बात मानी जाती है। नक़द राशि

हर मामले में सुविधाजनक होती है।''

लेकिन वह नया लिबास अगले दिन ही अपने पूरे प्रभाव में सामने आया। भोजन के समय आन्द्रेई क्लीमोविच पुस्तकालय में आया और बोला : ''अच्छा तो चलिये, पोशाक बनवाने को।''

''आप क्यों आये हैं? क्या आप यह समझते हैं कि हम आपके बिना यह काम नहीं कर सकते?'' काली आँखों वाली ख़ुशमिज़ाज मरूस्या ने क़िताबों की आलमारी से लगे जीने के ऊपरी चरण से जवाब दिया।

''मैं जानबूझकर आया हूँ। वेरा इग्नात्येव्ना और मैं साथ-साथ दर्ज़ी की दुकान में जा रहे हैं।''

वेरा इग्नात्येव्ना ने अपनी कोठरी से सिर निकालकर झाँका। आन्द्रेई क्लीमोविच ने दरवाज़े की तरफ़ सिर से संकेत किया।

''आप कहाँ जाने की सोच रहे हैं? अपको वहाँ अन्दर कौन आने देगा? वह महिलाओं का दर्ज़ी है। हम आपके बग़ैर ही सारा बन्दोबस्त कर लेंगे।''

मरूस्या जीने से नीचे कूद आयी।

''आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये।''

''मरूस्या, इधर आओ तो, मुझे तुमसे एक गोपनीय बात करनी है।''

वे खिड़की तरफ गये। आन्द्रेई क्लीमोविच फुसफुसाकर बातें करने लगा और मरूस्या हँसी और ज़ोर से बोली। ''मैं समझती हूँ! बेशक! नहीं, यह कैसे हो सकता है। इसमें ऐसा गोपनीय क्या है? हम आपके बताये बिना भी इस बात को जानते हैं। हम बहुत लम्बे अर्से से इस बात को जानते हैं-चिन्ता मत कीजिये! नहीं-ईं! नहीं, हम सब कुछ समझते हैं।''

वे खिड़की से वापस आये और एक-दूसरे से काफ़ी प्रसन्न नज़र आ रहे थे। मरूस्या ने कहा :

''लाइये, वह पुरस्कार मुझे दीजिये।''

आन्द्रेई क्लीमोविच लाइब्रेरी के दूरस्थ कोने में चला गया। उसकी दूसरी सह-षड्यंत्रकारी, नताशा, जो ख़ुद भी उतनी ही ख़ुशमिज़ाज, पर हल्के रंग के बालोंवाली लड़की थी, अपने लबादे को उड़ाती उसके पीछे दौड़ी।

''वह तो ताले में बन्द है! आप उसे अपने बूते से कभी नहीं खोल सकते हैं!''

वे उस मशहूर पुलिन्दे को लेकर लौटे। वेरा इग्नात्येव्ना बिलों से घिरी अपनी मेज़ पर काम कर रही थी। नताशा ने स्नेह भरी मुद्रा से उसकी कलम थाम ली और उसे कलमदान में रख दिया। फिर बिलों को धकेलकर एक तरफ़ किया और किशोरियों जैसी मधुर गम्भीरता से रिबन से बँधा पुलिन्दा वेरा इग्नात्येव्ना के सामने रख दिया। उसकी दो उँगलियों ने रिबन की गाँठ खोली और क्षण भर में वह रिबन उसके कन्धों पर आ गया। फिर श्वेत टिशू-पेपर की तहों के अन्दर से रेशम की उल्लासमय दमक नज़र आयी।

“चेरी!” नताशा ने चिल्लाकर कहा और अपने हाथों को ऐसे बाँध लिया मानो प्रार्थना कर रही हो। “कितना प्यारा है!”

“चेरी! सचमुच!” वेरा इग्नात्येव्ना ने संकुचित उद्गार प्रकट किये। “यह रंग तो आपको नहीं ख़रीदना चाहिये था!

लेकिन नताशा के हाथ उस कपड़े की शानदार सलवटों पर दौड़ चुके थे और उन्हें वेरा इग्नात्येव्ना के कन्धों और छाती पर आजमाने लगे थे। वेरा इग्नात्येव्ना ने विरोध में नताशा की उँगलियों को खींचा और इतनी शर्मा गयी कि उसके बालों की जड़ें भी लाल हो गयीं।

“कितना सुन्दर है,” मरूस्या ने किलकारी भरते हुए कहा, “आपको कितना माफ़िक आता है! आप सचमुच सुन्दर हैं! आपके चेहरे के रंग से बिल्कुल मेल खाता है। कितनी शानदार पसन्द हैं! चेरी के रंग का क्रेप-दे-शीन!”

लड़कियों ने वेरा इग्नात्येव्ना को घेर लिया। वे रेशम की गहरी लाल तरंगों, वेरा इग्नात्येव्ना के संकोच तथा स्वयं अपने मैत्रीपूर्ण उत्साह पर ख़ुशी मना रही थीं। मरूस्या ने आन्द्रेई क्लीमोविच को कन्धों से पकड़कर खींचा।

“क्या इसे आपने चुना है? ख़ुद?”

“हाँ।”

“अकेले?”

“बिल्कुल अकेले।’

“और आपने चेरी का रंग पसन्द किया?”

“हाँ किया।”

‘मैं यकीन नहीं करती! आप अकेले यह कर ही नहीं सकते थे! आप अपने साथ अपनी पत्नी को ले गये थे।”

“जब मैं बचपन से, सचमुच ही, ऐसे रेशमों के बीच, हाँ सचमुच, पला-बढ़ा हूँ, तो मुझे इस काम के लिये पत्नी की क्या ज़रूरत?

“कैसा रेशम? आप कहाँ पले-बढ़े है?”

“क्यों, इन्हीं रेशमों में... यह.... क्या नाम, क्रीम-दूशीनों में! सचमुच, इन्हीं के बीच में!”

आन्द्रेई क्लीमोविच ने अपनी मूँछों पर ताव दिया और गम्भीर चेहरा बना लिया। मरूस्या ने अविश्वासपूर्वक उसकी तरफ़ देखा।

“तब आप क्या थे... कुलीन सामन्त?”

“और तुम क्या समझती हो! जब मेरी अम्मा कपड़े सुखाने डालती थी... धोने के बाद, तो वह देखने लायक़ दृश्य होता था : चारों तरफ़ रेशम ही रेशम-चेरी, सेब, आड़ू!”

“अहा-आ!” मरूस्या बोली। “सुखाने के लिये! रेशम धोने की किसने कब सोची?

“हूँ-ऊँ, तो क्या उसे धोते नही”

''नहीं, नहीं धोते!''

''तो इस हालत में मैं अपने अल्फ़ाज़ वापस लेता हूँ।''

लड़कियाँ किलकारी मारके हँसने लगीं, उन्होंने कपड़े को एक बार फिर वेरा इग्नात्येव्ना के कन्धों पर रखकर देखा, फिर अपने कन्धों पर भी लटकाया और आन्द्रेई क्लीमोविच के शरीर पर भी लटकाके परखा। और वह फिर अपनी पुरानी नीति पर आ गया : ''अरे, यह क्या? मैं तो इस तरह की चीज़ों का आदी हूँ!''

फ़ैक्टरी के दर्ज़ी के यहाँ भी इसी तरह की हँसी-ख़ुशी जारी रही। फ़ैशनों के प्रश्न पर ऐसी घमासान लड़ाई हो गयी कि आन्द्रेई क्लीमोविच पस्त होकर सिर हिलाकर पीछे हटा, परन्तु दरवाज़े पर रुककर बोला :

''कैसी पागलों की भीड़ है!''

वेरा इग्नात्येव्ना सरल से सरल फैशन पर ज़ोर दे रही थी।

''एक बूढ़ी औरत इस तरह की चीज़ नहीं पहन सकती।''

ऐसे शब्दों पर नताशा की साँस रुक जाती और वह वेरा इग्नात्येव्ना को फिर-फिर दर्पण के पास खींच लाती।

''अच्छी बात है तब, यहाँ चुस्त रहने दीजिये! लेकिन वहाँ पर चुन्नतें होनी ही चाहिये।'' सफ़ेद बालोंवाला अनुभवी दर्ज़ी हामी भरते हुए अपना सिर हिलाता।

''हाँ, यह अच्छा रहेगा,'' वह कहता, ''इससे उसमें भरा भरापन पैदा हो जायेगा।''

वेरा इग्नात्येव्ना को ऐसा महसूस हुआ कि उसे वहाँ पर बच्चों के एक खेल में भाग लेने के लिये लाया गया है। उसे दूर अतीत में, अपनी जवानी के दिनों में भी कपड़े बनवाने के मामले में ऐसे किसी शोरगुल की याद नहीं थी, और अब तो यह सारा हंगामा बिल्कुल निरर्थक जान पड़ता था। लेकिन लड़कियों को रोकना नामुमकिन था। जब वे फ़ैशन पर चालू हो गयीं, तो बाल सँवारने की शैलियों पर जा पहुँची और उस क्षेत्र में सर्वाधिक क्रान्तिकारी सुधारों का सुझाव देने लगीं। फिर जुराबों की, जूतों की और अंग वस्त्रों की बारी आयी। अन्त में वेरा इग्नात्येव्ना ने उन्हें इस आधार पर पुस्तकालय को भगाया कि भोजन की छुट्टी का समय पूरा हो गया है।

जब वह दर्ज़ी के साथ अकेली रह गयी, तो उसने दृढ़ता के साथ सादे फ़ैशन पर ज़ोर दिया और दर्ज़ी इस बात पर राज़ी हो गया कि चीज़ सर्वाधिक उपयुक्त बनेगी। वक्त तय करने के बाद वह वापस काम पर चली गयी। रास्ते में उसने आश्चर्य से ग़ौर किया कि वह सुन्दर कपड़े हासिल करने और पहनने का दृढ़संकल्प कर रही है और इस संकल्प के साथ ही उसकी एक नयी तस्वीर उभर आयी थी। वह एक नयी वेरा इग्नात्येव्ना थी। दर्ज़ी के यहाँ, दर्पण में उसने अपनी नयी आकृति को चेरी के रंग के लिबास में सज़ा देखा, और उसका नया चेहरा उससे प्रकाशित हो गया था। उसे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि इस नयी तस्वीर मे कुछ भी भड़कीला नहीं था, कोई मूर्खतापूर्ण चपलता नहीं थी और कोई छिछोरापन नहीं था। उन गहरी लाल सलवटों के ऊपर उसका चेहरा सचमुच अधिक सुन्दर, जवान और सुखी प्रतीत होता

था, लेकिन साथ ही उसमें बहुत सम्मान था, और एक बड़ी सच्चाई थी।

जब वेरा इग्नात्येव्ना पुस्तकालय के दरवाज़े पर पहुँची, तो उसे लेखक का भाषण याद आ गया। उसने नीचे झुककर अपने जूतों पर नज़र डाली। इसमें कोई भीसन्देह नहीं था कि इस प्रकार का कूड़ा उसे तथा उसके उस ध्येय को भी बदनाम कर सकता था, जिसकी वह सेवा करती थी।

उस शाम वेरा इग्नात्येव्ना असाधारण शान्ति का अनुभव करते हुए घर लौटी। उसने, पहले की ही तरह, स्नेहपूर्वक तमारा और पाव्लूशा के चेहरों को याद किया, ओर पहले ही की तरह उनकी प्रशंसा की, लेकिन अब वह उनके बारे में अधिक सोचना चाहती थी और छोटी चिन्ताओं से शंकित हुए बिना ही ऐसा कर सकती थी। अब वे उसे बच्चों के बजाय दिलचस्प लोग जैसे अधिक जान पड़ने लगे थे।

घर पर उसे वही, रोज़ की तरह जूठन से गन्दी मेज़ मिली। उसने उस पर आदतन नज़र डाली, लेकिन उसे साफ़ करने के लिये आदतन पैदा होनेवाला आन्तरिक आग्रह पहले की तरह तुरन्त उत्पन्न नहीं हुआ। वह तमारा की मेज़ के सामने आराम-कुर्सी पर बैठ गयी और उसे लगा कि यहाँ बैठने से कितना आराम मिलता है। अपने सिर को कुर्सी के पीछे टिकाकर वह अनवरोध एक अर्थ-तन्द्रिल अवस्था में पहुँच गयी, लेकिन इस तन्द्रा में उसके विचार नहीं सोये, बल्कि वे एक उन्मुक्त और उल्लसित भीड़ की शक्ल में उसके मस्तिष्क से होकर स्वच्छन्द नृत्य करते जा रहे थे।

शयन-कक्ष से तमारा का आगमन हुआ।

"तुम आज भी अपने संस्थान नहीं गयी क्या?" वेरा इग्नात्येव्ना ने पूछा।

"नहीं," तमारा ने खिड़की की तरफ़ चलते और बाहर की ओर देखते हुए उदास भाव से कहा।

"आजकल तुम वहाँ जाती क्यों नहीं?"

"मेरे पास कुछ पहनने को ही नहीं है।"

"तमारा, इसमें हम क्या कर सकते हैं?"

"आप जानती हैं कि क्या करना चाहिये।"

"क्या तुम्हें अभी भी जूतों की लगन लगी है?"

"हाँ।"

तमारा अपनी माँ की तरफ़ घूमी और उस पर बरस पड़ी : "आप चाहती हैं कि मैं गुलाबी जूते और भूरे कपड़े पहन कर जाऊँ? आप चाहती हैं कि लोग मुझ पर हँसें? कहिये, यही चाहती हैं न आप? चाहती हैं, तो कहिये!"

"तमारा, बेटी, तुम्हारे पास दूसरे कपड़े भी तो हैं। और तुम्हारे काले जूते हैं। वे पुराने ज़रूर हैं, लेकिन अच्छे हैं। क्या तुम्हारे साथ पढ़नेवाले सारे विद्यार्थी भी ऐसे हैं और यही चाहते हैं कि हर चीज़ एक दूसरे से मेल खाये?"

"काले? काले जूते?"

तमारा कपड़ों की आलमारी की तरफ़ झपटी और एक काला जूता लिये हुए वापस

आयी। उसने धृष्टता के साथ उसे अपनी माँ की नाक के सामने धकियाया।

''मुझे यह जूता पहनना चाहिये? क्या आप इसे जूता कहती हैं? शायद आप इसे पैबन्द नहीं कहतीं? शायद आप यह सोचती हैं कि इसे सिला नहीं गया है?''

''लेकिन तमारा ज़रा देखो, मैं क्या पहनती हूँ!''

वेरा इग्नात्येव्ना ने यह बात बहुत नरमी से, अत्यन्त मैत्रीपूर्ण तथा भरोसा दिलानेवाले तरीके से कही। वह इस उलाहने को अधिक से अधिक नरम बनाना चाहती थी। लेकिन तमारा ने इसमें कोई उलाहना देखा तक नहीं। उसे तो सिर्फ़ इस तुलना की तर्कहीनता से मतलब था।

''आप क्या कह रही हैं, अम्मा? आप यह समझती हैं कि मुझे आपकी तरह के कपड़े पहनने चाहिये? आप अपनी ज़िन्दगी बिता चुकी हैं, लेकिन मैं जवान हूँ, मैं जीना चाहती हूँ!''

''जब मैं जवान थी, तो मेरे पास उससे बहुत कम था, जो तुम्हें कभी भी मिला है। मुझे कई बार भूखे पेट ही सो जाना पड़ता था।''

'लो, अब शुरू हो गयीं! मैं क्या जानूँ कि आपके पास क्या था और क्या नहीं। वह ज़ारशाही के ज़माने की बात है, उसका मुझसे कोई वास्ता नहीं है! अब स्थिति बिल्कुल फ़र्क है! और अब माता-पिता को बच्चों के लिये जीना चाहिये, इस बात को हर कोई जानता है-सिर्फ़ हम नहीं जानते। लेकिन जब मैं बूढ़ी हो जाऊँगी, तो मैं अपनी लड़की को चीज़ें देने में ना-नुकुर नहीं करूँगी!''

तमारा मेज़ के सहारे टिकी थी और जूते को हिलाते हुए चिल्लाती चली जा रही थी, पर वह न तो जूते को देख रही थी न अपनी माँ को। उसके आँसू उमड़ रहे थे। वह थोड़ा साँस लेने को रुकी, तभी वेरा इग्नात्येव्ना एक बात कहने में कामयाब हो गयी :

''लेकिन मैं इतनी बूढ़ी तो नहीं हूँ कि सब कुछ छोड़ दूँ और चिथड़े पहने घूमती फिरूँ!''

''मैं क्या आपको चिथड़े पहनने के लिये मजबूर कर रही हूँ? जो पसन्द हो पहनिये, पर मेरी तो खिल्ली मत उड़वाइये! आप तो अपने लिये नये कपड़े बनवा रही हैं, नहीं बनवा रही हैं क्या? बेशक, आप बनवा रही हैं। आप तो कोई भी चीज़ ले सकती हैं, लेकिन मैं नहीं ले सकती। आप एक नया रेशम का लिबास बनवा रही हैं, नहीं बनवा रही हैं, क्या?

''बनवा रही हूँ।''

''यह बात है, देख लिया? मैं जानती थी! आप तो कपड़े पहनकर बन-ठन सकती हैं। आपको किसके लिये बनने-ठनने की ज़रूरत है? पिताजी के लिये?''

''तमारा, तुम्हारे पास भी तो कपड़े हैं!''

''और आप उसे बेच नहीं सकीं? आप मेरे भूरे लिबास को बेच सकती थीं। और उसका... उस पुरस्कार का रंग क्या है? क्या रंग है उसका?''

‘‘चेरी।’’

‘‘यह देखिये, चेरी! कितनी मरतबा मैं चेरी की माँग कर चुकी हूँ! मैंने बार-बार कहा, फिर-फिर कहा, लेकिन आप सब भूल गयीं। सब कुछ भूल गयीं।’’

अब तमारा आँसू नहीं रोक सकी, उसका चेहरा नम हो गया।

‘‘तो तुम क्या चाहती हो, वही?’’

‘‘हाँ, मैं वही चाहती हूँ! क्यों न चाहूँ? आप मुझे दुनिया में लायीं और अब कुछ पहनने को ही नहीं देतीं! लेकिन ख़ुद अपने लिये कपड़े बनवा लेती हैं, आपको अपनी इस उम्र में जवान बनने की कोशिश करने में शर्म आनी चाहिये, शर्म!’’

अब तमारा उन्माद की अवस्था में आ पहुँची थी। एक बार और ‘‘शर्म!’’ चिल्लाकर वह दौड़ती हुई शयन-कक्ष में घुस गयी। उसकी सुबकियाँ तकिये से अवरुद्ध होने पर भी सारे फ़्लैट में सुनी जा सकती थीं। वेरा इग्नात्येव्ना अपनी आरामकुर्सी पर किंकर्त्तव्यविमूढ़ बैठी रही। उदासी का काला बादल उसपर मँडराने लगा था, शायद वह सचमुच शर्म महसूस कर रही थी। दरवाज़े पर दस्तक की आवाज़ सुनाई दी। वह उसी काले बादल से घिरी, तमारा की सुबकियाँ सुनती हुई द्वार खोलने उठी।

वह आन्द्रेई क्लीमोविच था। जैसे ही वह अन्दर आया वैसे ही उसने सुबकियों की दिशा में नज़र डाली, लेकिन तुरन्त मुस्करा उठा।

‘‘मैंने सोचा, घर जाते समय इन्हें देता जाऊँ। यह निःशुल्क कपड़े सिलवाने के लिये कूपन है।’’

‘‘अन्दर आइये’’, वेरा इग्नात्येव्ना ने यंत्रवत कहा।

इस बार आन्द्रेई क्लीमोविच ने रसोई में बात करने की कोई इच्छा ज़ाहिर नहीं की और स्वेच्छा से बैठक में आ गया। वेरा इग्नात्येव्ना जल्दी-जल्दी शयन-कक्ष का द्वार बन्द करने के लिये बढ़ी, लेकिन व्यर्थ। दरवाज़े में कोई बड़ी और गहरे रंग की चीज़ लिये तमारा प्रकट हुई और उसने उस चीज़ को अपनी माँ के पैरों की तरफ़ फेंका। हवा में हल्की काली लहरें-सी उठीं और नीचे, फ़र्श पर आ गिरी। तमारा ने क्षण भर उन्हें गिरते देखा और शयन कक्ष को भाग गयी। फिर वापस आयी और भूरा लिबास भी वेरा इग्नात्येव्ना के पैरों के पास आ गिरा।

‘‘लीजिये, पहनिये इन्हें!’’ तमारा ने चिल्लाकर कहा। ‘‘अपने आपको सजाइये-बजाइये! मुझे आपके आभूषण नहीं चाहिये।’’

तमारा ने आन्द्रेई क्लीमोविच को देख लिया था, लेकिन वह किसी का लिहाज़ करने की मनोदशा में नहीं थी, वह क्रोध से पैरों को पटकती हुई शयन-कक्ष में चली गयी और दरवाज़े को फटाके से बन्द कर लिया।

वेरा इग्नात्येव्ना गिरे हुए वस्त्रों को देखती ख़ामोश खड़ी थी। वह सोच भी नहीं सकी। उसे अपमान का भी अनुभव नहीं हुआ और अतिथि की उपस्थिति में शर्म आनी चाहिये थी, पर उसका भी उसे कोई अहसास नहीं हुआ। मनुष्य के क्रोध से वह हमेशा हक्की-बक्की रह जाती थी।

आन्द्रेई क्लीमोविच ने कुछ क़ागज़ मेज़ पर रखे, फिर जल्दी से नीचे झुककर दोनों लिबास उठाये और उन्हें कुर्सी के हत्थे पर रख दिया। उसने यह काम सद्विवेक से किया और एक आस्तीन को सीधा भी कर दिया। फिर वह सवालिया निगाह से देखता हुआ वेरा इग्नात्येव्ना की तरफ़ उन्मुख हुआ और अपने हाथों को पीठ की तरफ़ किये उसने पूछा : ''यह क्या है? क्या आप इस... गोबर की चुड़ैल से डरती है...?''

उसने यह बात इस स्पष्ट कामना से, इतने ज़ोर से कही कि वह शयन-कक्ष में भी सुनायी दे। और सचमुच ही शयन-कक्ष में श्मशान का-सा सन्नाटा छा गया।

इन असभ्य शब्दों पर वेरा इग्नात्येव्ना चौंक पड़ी, उसने कुर्सी का पिछला हिस्सा थाम लिया और सहसा... मुस्करायी।

''आन्द्रेई क्लीमोविच आप क्या कह रहे हैं?''

आन्द्रेई क्लीमोविच उसी मुद्रा में खड़ा अत्यधिक गम्भीरता से वेरा इग्नात्येव्ना की तरफ़ देख रहा था। उसके होंठ विवर्ण हो गये थे।

''वेरा इग्नात्येव्ना, मैंने सख़्त बात ही कही और सिर्फ़ कुछ कहना भर काफ़ी नहीं है। यह तथ्य है कि हम आपका बहुत सम्मान करते हैं, लेकिन हम इस तरह की बात को माफ़ नहीं कर सकते। आप यहाँ किसे पाल-पोस कर बड़ा बना रही हैं? वेरा इग्नात्येव्ना, क्या आप शत्रुओं को पाल रही हैं?''

''कैसे शत्रुओं को, आन्द्रेई क्लीमोविच?''

''ज़रा सोचिये, ऐसे लोग किसी के लिये क्या काम के हैं! क्या आप यह समझती हैं कि यह केवल आपकी परेशानी है, महज़ एक पारिवारिक मामला है? यह देखिये, वह अपना भोजन खाकर बैठी है, लेकिन बरतन ऐसे ही जूठे पड़े हैं। गन्दी छोकरी, बरतन साफ़ करने के बदले वह क्या करती है? अपनी पोशाकों को आपके चेहरे पर फेंकती हैं! उन चीज़ों को जिन्हें आपने खून-पसीने की कमाई से ख़रीदा है! यदि वह आपके प्रति ऐसी भावना रखती है, तो सोवियत सत्ता के प्रति उसका क्या रुख़ होगा? और मैं आशा करता हूँ कि वह कोम्सोमोल की सदस्य है। है कि नहीं?''

''हाँ, मैं हूँ। तो क्या?''

आन्द्रेई क्लीमोविच ने घूमकर देखा। द्वार पर तमारा खड़ी थी और उसकी तरफ़ तिरस्कारपूर्वक देखती सिर हिला रही थी।

''अच्छा, तो तुम कोम्सोमोल की सदस्य हो, हो न? अच्छी बात है, तो तुम ये बरतन धोकर तो दिखाओ, बनठनकर रहनेवाली फूहड़ छोकरी, कि तुम यह काम कर सकती हो!''

तमारा ने बरतनों की तरफ़ नहीं देखा। वह अपनी घृणा भरी निगाहों को आन्द्रेई क्लीमोविच की तरफ़ से हटा ही न सकी।

''तुमने खाना खाया था?'' उसने मेज़ की तरफ़ इशारा करके कहा।

''आपसे क्या मतलब,'' तमारा ने घमण्ड से कहा। ''आपको मुझसे चिल्लाकर

बोलने का क्या हक़ है?''

''कोम्सोमोल की सदस्य! क्या कहने हैं! मैं 1918 में कोम्सोमोल का सदस्य था, और मैंने तुम जैसी हज़ारों निकम्मी-निठल्ली महिलाएँ देखी हैं।''

''मैं कहती हूँ, चिल्लाना बन्द कीजिये! निकम्मी-निठल्ली! हो सकता है कि मैं आपसे ज़्यादा काम करती हूँ!''

तमारा ने अपने कन्धे अतिथि की तरफ़ घुमा दिये। कुछ क्षण तक वे एक-दूसरे को क्रोध से घूरते रहे। पर सहसा आन्द्रेई क्लीमोविच शिथिल पड़ गया, उसने अपने हाथ फैला दिये और अपनी आँखों को धूर्ततापूर्वक सिकोड़ा।

''अच्छी बात है, मैं तुमसे अच्छी तरह से कहूँगा : मेरी ख़ुशी के लिये इन बर्तनों को धो दो।''

तमारा के चेहरे पर एक मुस्कान फैली और तुरन्त अवज्ञा के भाव में बदल गयी। उसने अपनी शान्त माँ पर एक तेज़ निगाह डाली और फिर कपड़ों की तरफ़ देखा।

''क्यों? क्या करना है? आओ हम इन्हें मिलकर धो डालें।''

तमारा लपककर मेज़ के पास गयी और तश्तरियों को, एक के ऊपर एक, रखने लगी। उसका चेहरा भावशून्य हो गया था, उसकी आँखें तक आधी मँदी थी और उसकी काली बरौनियाँ किंचित काँप रही थीं।

आन्द्रेई क्लीमोविच का मुँह आश्चर्य से खुल गया।

''वाह, यह है लड़की!''

''आपसे कोई मतलब नहीं,'' तमारा ने भारी स्वर में फुसफुसाकर कहा।

''तुम यह सब धो सकोगी?''

''अपना ओवरऑल पहन आऊँ,'' उसने शयन-कक्ष की तरफ़ जाते हुए ऐसे कहा जैसे अपने आप से कह रही हो।

वेरा इग्नात्येव्ना ने अपने अतिथि की तरफ़ बड़ी आँखों से देखा और उसे पहचान न पायी। उस पुस्तकप्रेमी आन्द्रेई क्लीमोविच का, घुँघराली मूँछों और मृदु मुस्कान वाले उस आदमी का क्या हुआ। कमरे के बीच में एक हृष्ट-पुष्ट, रोबीला, धृष्ट, आक्रामक आदमी खड़ा था। भालू जैसा, पर चालाक, वह शयन-कक्ष की तरफ़ तिरछी निगाह से देख रहा था और एक बूढ़े आदमी की भाँति घुरघुरा रहा था : ''तुम ज़रा सम्भल के चलो, ढीठ छोकरी, देखना कि मैं तुमसे कैसे काम करवाता हूँ!''

वह अपनी आस्तीनें समेटने लगा। तमारा अपना ओवरऑल पहने तेज़ी से बाहर आयी और उसने स्तोयानोव की तरफ़ चुनौती की निगाहों से देखा।

''क्या आप समझते हैं, सिर्फ़ आप ही काम कर सकते हैं? आप ही श्रमजीवी वर्ग के सदस्य हैं! अपने बारे में बड़े ऊँचे ख़्याल हैं आपके! आप ख़ुद धोने-धाने का काम नहीं कर सकते! घर में आपकी पत्नी यह काम करती है और आप भी श्रीमान बने बैठे रहते हैं।''

''इतनी ज़्यादा बातें नहीं, तश्तरियाँ लाओ।''

वेरा इग्नात्येव्ना को होश आया और वह मेज़ की तरफ़ को लपकी।

''साथियो! आप क्या कर रहे हैं?''

स्तोयानोव ने उसको हाथ से पकड़कर कुर्सी पर बिठा दिया। वेरा इग्नात्येव्ना को उसके निरावरण रोमयुक्त हाथों के लिये विशेष सम्मान की अनुभूति हुई।

तमारा ने प्लेटों, थालियों, छुरियों, काँटों और चम्मचों को जल्दी से और सफ़ाई से जमा किया। स्तोयानोव उसे गम्भीर निगाहों से देखता रहा। वह रसोईघर में गयी, तो स्तोयानोव उसके पीछे-पीछे से अपने रोमयुक्त हाथों को हिलाते तथा इस प्रकार देखता हुआ चला मानो बर्तन धोने के लिये नहीं, पहाड़ खोदने के लिये आ रहा हो।

वेरा इग्नात्येव्ना कुर्सी पर बैठी रह गयी। उसकी उँगलियाँ कुर्सी के हत्थे पर पड़े शीतल रेशम का अनुभव कर रही थीं, लेकिन अब वह कपड़ों की बात नहीं सोच पायी। उसके दिमाग़ में स्तोयानोव का ख़्याल आ घुसा था। उसे उससे ईर्ष्या होने लगी।

वेरा इग्नात्येव्ना उठी और धीरे-धीरे रसोईघर की तरफ़ चली। हॉल में आकर वह रुक गयी। अधखुले दरवाज़े से वह केवल स्तोयानोव को देख सकती थी। वह स्टूल पर बैठा था, उसके पैर एक-दूसरे से काफ़ी दूर फ़र्श पर टिके थे, उसके रोमयुक्त हाथ घुटनों पर रखे थे और उसके चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान थी। वह देख रहा था। अब उसकी मूँछें मृदु मुस्कान से बल नहीं खा रही थीं, वे नीचे को निकली थीं और मूंछों के बजाय किसी तेज़ हथियार से ज़्यादा मिलती-जुलती थीं।

वह कह रहा था :

''अब जब मैं तुम्हें काम करता देख रहा हूँ, तो तुम्हारी तरफ़ देखना रुचिकर लग रहा है। अब तुम बिल्कुल भिन्न लड़की हो। लेकिन जब तुम कपड़े इधर-उधर पटकने लगती हो, तो तुम क्या बन जाती हो, एक चुड़ैल, बिल्कुल असली चुड़ैल। क्या तुम उसे सुन्दर दृश्य समझती हो?''

तमारा ने कुछ नहीं कहा। हौदी में तश्तरियाँ ही खड़खड़ा रही थी।

''उधर तुम, अपना कलेजा निकालकर ख़ूबसूरती के पीछे भागती हो, मगर वह ऐसा गन्दा दृश्य होता है कि मैं उसपर थूकना भी पसन्द न करूँ। तुम्हें ये तरह-तरह के फ़ैशन क्यों चाहिये? काले कपड़े, भूरे कपड़े, पीले कपड़े! अरे, तुम तो ऐसे ही इतनी सुन्दर हो कि कोई तुम्हारी ख़ातिर संकट में पड़ने ही वाला होगा!''

''मुमकिन है यह किसी का संकट न हो, मुमकिन है, इसका मतलब-किसी के लिये सुख ही हो!''

तमारा ने यह बात बिना क्रोध के कही, एक विश्वासपूर्ण उल्लसित स्वर में कही। स्पष्ट था कि स्तोयानोव की बात से उसे बुरा नहीं लगा था।

''तुम किसी पुरुष को क्या सुख दे सकती हो?'' स्तोयानोव ने अपने कन्धे उचकाकर कहा। ''अगर तुम संकीर्ण विचारों की, बदमिज़ाज और मूर्ख लड़की होगी, तो उससे क्या सुख मिलेगा!''

‘‘मुझ से बदज़बानी मत कीजिये, कहे देती हूँ!’’

‘‘तुम कैसी एहसान-फ़रामोश छोकरी हो! ज़रा अपनी माँ के बारे में सोचो... सारा कारख़ाना उनकी इज़्ज.त करता है। मैं जानता हूँ कि उनके पास एक सबसे ज़्यादा मुश्किल काम है... मैं ख़ुद भी मेहनत से काम करने वाला आदमी हूँ, लेकिन उनकी अपने श्रम से तुलना नहीं करूँगा... अब यह देखो, इसे तुम धुला हुआ कहती हो? इसके दूसरे हिस्से को कौन धोयेगा...? चन्द्रमा में बैठी हुई बुढ़िया?’’

‘‘ओहो’’, तमारा ने कहा।

‘‘तुम ‘ओहो-ओहो’ कर सकती हो, लेकिन तुम अपनी माँ को नहीं देखती। हज़ारों किताबें हैं और उन्हें उन सबके बारे में जानना होता है, हरेक को उनके बारे में बताना होता है, और हरेक की रुचि के अनुसार कुछ छाँटना होता है और विशेष विषयों की पुस्तकों के लिये भी ऐसा ही करना होता है। क्या यह कठिन श्रम नहीं है? और जब वह घर आती हैं तो एक नौकरानी हो जाती हैं! और किसकी? तुम्हारी। ऐसा क्यों हो, ज़रा मुझे बताओ ऐसा क्यों हो? ताकि तुम किसी और की गर्दन पर जा चिपकनेवाली ऐसी चुड़ैल बन सको? अरे, तुम्हें तो उस धरती की पूजा करनी चाहिये जिस पर उनके चरण पड़ते हैं। तुम्हें चाहिये कि हर चीज़ उन्हें दो, हर काम उनके लिये करो, सब जगह उन्हीं के लिये जाओ, तुम जवान हो, धिक्कार तुम्हारी काया को! ज़रा मेरे घर आकर देखो-मेरी बेटियाँ, तुमसे बुरी नहीं हैं, उनके प्यारे-प्यारे केश हैं, सुशिक्षित हैं, उनमें से एक इतिहासज्ञ बननेवाली है और एक डाक्टर।’’

‘‘अच्छी बात है, मैं आऊँगी कभी।’’

‘‘हाँ, ज़रूर आओ, इससे तुम्हें लाभ होगा। तुम अच्छे दिल की हो, पर तुम बिगड़ गयी हो। क्या तुम समझती हो कि मेरी दो लड़कियाँ अपनी माँ से नौकरों की तरह अपना काम करवाती हैं? उनकी माँ, ओहो! एक रानी है, रानी! और तुम बर्तन धोना भी नहीं जानती। यह क्या है... पोछे को आधे घण्टे से घिस रही हो, पर चिकनाई अभी भी वहीं मौजूद है!’’

‘‘कहाँ?’’

‘‘देखो, उसे ज़ोर से रगड़ना होता है।’’

स्तोयानोव स्टूल से उठा और निगाहों से ओझल हो गया। तब तमारा ने धीरे से कहा : ‘‘धन्यवाद।’’

‘‘यह ठीक है,’’ स्तोयानोव ने कहा, ‘‘धन्यवाद’’ कहना चाहिये। आभार का प्रदर्शन बहुत ज़रूरी चीज़ है।’’

वेरा इग्नात्येव्ना पंजों के बल चलकर बैठकख़ाने में गयी। उसने कुर्सी से तमारा के कपड़े उठाये और उन्हें कपड़ों की आलमारी में टाँग दिया। फिर उसने मेज़ पर पड़े चूरे को साफ़ किया और कमरे में बुहारी देने लगी।

उसे यह सोचकर बेचैनी हो रही थी कि दूसरे कमरे में एक अजनबी उसकी लड़की को शिक्षा-दीक्षा देने का उसका काम कर रहा है। वह जानना चाहती थी कि तमारा

उसकी बात को जवाब दिये या बुरा माने बग़ैर इतने ध्यान से क्यों सुन रही है, शिक्षा का यह क्रम ऐसे सुचारु और अच्छे ढंग से क्यों चल रहा है?

तमारा रसोई से बर्तन लेकर आयी और उन्हें दीवार से लगी मेज़नुमा आलमारी में रखने लगी। स्तोयानोव द्वार पर खड़ा था। जब उसने आलमारी के दरवाज़े बन्द किये तो उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया।

''तो कामरेड, फिर मुलाक़ात होगी।''

तमारा ने अपनी गुलाबी उँगलियाँ उसकी हथेली पर मारी।

''माफ़ी माँगिये, फ़ौरन। जो कुछ आपने कहा, जो मुझसे अपशब्द कहे सबके लिये माफ़ी माँगिये : निठल्ली, चुड़ैल, गन्दी छोकरी, कूड़ा-करकट और इससे भी अधिक गन्दी बातें। क्या आप एक लड़की से ऐसे बातें करना ठीक समझते हैं? और अपने आप को श्रमिक वर्ग का भी बताते हैं! फ़ौरन माफ़ी माँगिये!''

आन्द्रेई क्लीमोविच की मृदु मुसकान प्रकट हो गयी।

''माफ़ करना, कामरेड, यह आख़िरी बार है, अब आगे ऐसा नहीं होगा। तुम ठीक कहती हो : श्रमिक वर्ग में लोगों को एक-दूसरे से विनम्रता का व्यवहार करना चाहिये।''

तमारा मुस्करायी और उसने सहसा अपनी बाँहों को स्तोयानोव के गले में डाल दिया और उसके गालों को चूम लिया। फिर वह दौड़कर अपनी माँ के पास गयी और इसी कार्रवाई को दोहराकर शयन-कक्ष को खिसक गयी।

स्तोयानोव दरवाज़े पर खड़ा गम्भीरता से अपनी मूँछों पर ताव दे रहा था।

''बहुत अच्छी लड़की है, आपकी बेटी, बड़ी स्नेहशील है, लेकिन उसे बिगाड़ना नहीं चाहिये।''

उस शाम के बाद से वेरा इग्नात्येव्ना के दिन एक नये ढंग से बीतने लगे। तमारा ने अपनी सारी उफनती हुई ऊर्जा को घर की देखरेख में लगा दिया। जब वेरा इग्नात्येव्ना घर आती, तो हर चीज़ करीने से सजी-बजी होती। शाम को वह कुछ काम करने की कोशिश करती, लेकिन अपना ओवरऑल पहने तमारा बवण्डर की तरह घूमती और उसके साथ चलना कठिन होता। वह अपनी माँ के हाथों से घरके कामकाज की चीज़ों को किंचित धृष्टता से छीन लेती, उसके कन्धे पकड़ती और नम्रता के साथ या तो बैठकख़ाने में धकेल देती या शयन-कक्ष में। पाव्लूशा तो असली आतंक-राज्य में पहुँच गया था, शुरू में उसने विरोध किया, फिर विरोध करना बन्द कर दिया और सड़क पर अपने साथियों के बीच शरण खोजने चला गया। कुछ दिन बाद तमारा ने घोषणा की कि वह फ़्लैट की पूरी वसन्तकालीन सफ़ाई करेगी, और माँ को चाहिये कि वह पुस्तकालय में देर तक रहे, अन्यथा वह काम में बाधक होगी। वेरा इग्नात्येव्ना ने कोई एतराज़ नहीं किया, लेकिन काम पर जाते समय वह विचारमग्न हो गयी।

वह अपनी लड़की में आये परिवर्तन से प्रसन्न थी। उसने अपने जीवन में, शायद

पहली बार, विश्राम के पूर्ण लाभ को जाना, वह किंचित मोटी भी हो गयी और पहले से अच्छी दिखायी देने लगी, पर इसके बावजूद कोई चीज़ अभी भी उसके दिमाग़ को परेशानी में डाले हुए थी और उसके अन्तर में शंका की ऐसी अनुभूति होती थी, जो पहले कभी नहीं होती थी। कभी-कभी उसे यह महसूस होता कि लड़की पर घरेलू काम के गन्दे और अलाभकर काम का बोझ डालना ग़लत ही नहीं है, बल्कि अपराध की बात है। पिछले कुछ दिनों में तमारा के हाथ पहले जैसे साफ़-सुन्दर नहीं रह गये थे। वेरा इग्नात्येव्ना ने देखा कि तमारा अध्ययन भी बहुत ज़ोरशोर से करने लगी है। वे अद्भुत सिंह और उनकी फूलनुमा पूँछें खत्म हो गयीं और तमारा की मेज़ से गायब हो गयी थीं, उनके स्थान पर खाने की आधी मेज़ क़ागज़ की विशाल चादर से ढँक गयी थी और उस क़ागज़ पर तमारा नुक़्तेदार रेखाओं, वर्तुलों तथा वृत्तों का ऐसा जंगल बना रही थी, जिसे कोरिन्थी-वास्तुकला कहा जाता है। वेरा इग्नात्येव्ना ने इन सब बातों पर विचार किया, परन्तु उसे अभी भी यही लग रहा था कि कहीं कुछ गड़बड़ है। उसके विचार एक और दिशा को भी चले गये थे। इस बात में सन्देह का लेशमात्र भी नहीं था कि अब पुराना जीवन वापस नहीं आने का। जो तमारा नादानी भरे लोभ के वश अपनी माँ के जीवन का उपयोग कर रही थी, जिसने अपनी माँ के मुँह पर कपड़े दे मारे थे वह तमारा अब वापस नहीं आ सकती। अब वेरा इग्नात्येवना अपने जीवन की उस मूर्खतापूर्ण ग़लती की भयंकरता को अच्छी तरह से समझ गयी थी जिसे वह अपने सारे जीवन में करती चली जा रही थी। देश के सम्भाव्य शत्रु को पालने-पोसने के बारे में आन्द्रेई क्लीमोविच के कटु शब्द उसे गम्भीर और सही आरोप जान पड़े थे। और उसने अभी भी उस आरोप का लगभग कोई उत्तर नहीं दिया था। जब उसे याद आता कि उसने कैसे असहाय व निष्क्रिय ढंग से एक बाहरी आदमी को अपनी लड़की को समझाने-सिखाने दिया और ख़ुद गलियारे में खड़ी होकर कायरों की तरह उसकी बातें सुनीं, फिर पंजों के बल चलकर चुपचाप खिसक गयी थी, तो वह बेचैनी का अनुभव करने लगती थी। भविष्य में उसकी बेटी को कौन समझायेगा-पढ़ायेगा, पाव्लूशा का लालन-पालन कौन करेगा, इसके लिये उसे फिर आन्द्रेई क्लीमोविच से तो अपील नहीं करनी पड़ेगी?

वेरा इग्नात्येव्ना ने इस पर बहुत ध्यान से विचार किया, बहुत सारी सही व महत्वपूर्ण बातें खोज निकालीं, पर इसके बावजूद उसे अब भी यही महसूस हो रहा था कि यह मुख्य चीज़ नहीं है, ''वांछित वस्तु'' नहीं है। कोई और चीज़ थी, जिसे वह बिल्कुल नहीं समझ पायी, और यही वह बात थी, जिसने उसके अन्दर आशंका की उस हल्की भावना को जगा दिया था। पिछले सम्मेलन में उसने अपने आप में जिस नये मानवीय सम्मान की खोज की थी, जिस नयी वेरा इग्नात्येव्ना को खोज निकाला था, वह अभी सन्तुष्ट नहीं हुई थी।

आशंका की इस अनुभूति से चिंतित, असंतोष की भावना से ग्रस्त वेरा इग्नात्येव्ना पुस्तकालय पहुँची।

दिन का काम अच्छी तरह से नहीं शुरू हुआ। काली आँखोंवाली मरूस्या किताबों की आलमारी के खानों से लगे ज़ीने पर कभी ऊपर चढ़ती कभी नीचे, ख़ाने-दर-ख़ाने देखने के बाद सम्भ्रमित सी होकर वापस पाठकों की लाइन के पास आयी और एक ही इंडेक्स-कार्ड को व्यर्थ ही बार-बार देखती रही।

वेरा इग्नात्येव्ना उसके पास गयी।

''क्या गड़बड़ है?''

मरूस्या ने फिर कार्ड में देखा और वेरा इग्नात्येव्ना समझ गयी कि मामला क्या था।

''कार्ड हमारे पास है, लेकिन पुस्तक कहाँ है?'' मरूस्या ने घबराकर वेरा इग्नात्येव्ना की तरफ़ देखा।

''जाओ, उसे खोजो, पाठकों की पंक्ति को मैं देखती हूँ।''

अपराधी-सी मरूस्या वापस ख़ानों की तरफ़ चली गयी। उसके लिये यह सोचना और भी ज़्यादा कठिन हो गया कि उसने किस विचित्र स्थान पर उस पुस्तक को रख दिया था। अब वह ज़ीने पर ऊपर-नीचे नहीं जा रही थी, बल्कि चिन्तित हो पुस्तकालय में भटक रही थी और वेरा इग्नात्येव्ना से आँखें मिलाने से डर रही थी।

वेरा इग्नात्येव्ना ने पाठकों की क़तार को शीघ्र निबटा दिया और जब वह अपना काम फिर शुरू करने जा रही थी कि नज़दीक ही उसे व्यवस्था के टूट जाने की आशंकाजनक आवाज़ें सुनायी दीं। वार्या बुंचूक के सामने चश्मा पहने एक हृष्ट-पुष्ट युवक खड़ा था, वह ज़ोर-ज़ोर से अपने आश्चर्य को व्यक्त कर रहा था।

''समझ में नहीं आता कि बात क्या है? मेहरबानी करके मुझे मोपांसा के बारे में किसी क़िस्म की पुस्तक दीजिये। किसी नौसिखिये लेखक के बारे में नहीं, मोपांसा के बारे में। और आप कहती है 'ऐसी कोई किताब ही नहीं'!''

''यहाँ ऐसी कोई पुस्तक नहीं है...''

वार्या बुंचूक, जो बुन्दकीदार चेहरे की लड़की थी, ने हकलाते हुए 'कोई नहीं है' तो कह दिया और वेरा इग्नात्येव्ना की तरफ़ भयभीत दृष्टि से देखा।

''वार्या'', वेरा इग्नात्येव्ना ने स्नेहपूर्वक कहा, ''तुम यहाँ का काम देखो, मैं देखती हूँ कि हमारे कामरेड को क्या चाहिये।''

वार्या का चेहरा शर्म से ऐसा लाल हो गया कि सारी बुन्दकियाँ लाली में गायब हो गयीं। जगह बदलते समय वह फूहड़पन से वेरा इग्नात्येव्ना से टकरा गयी, जिसके हाथों में वांछित क़िताब थी, इससे उसकी गर्दन और कान तक लाल हो गये और दबी ज़बान में ''आह'' की ध्वनि निकल आयी। काउण्टर के दूसरे छोर पर मरूस्या को अन्ततः पुस्तक मिल गयी और उसने उसे चुपचाप पाठक के हवाले किया और अन्य पाठकों के पास चली गयी, लेकिन अब वह सिर्फ़ फुसफुसाकर बोल रही थी।

वेरा इग्नात्येव्ना ने मोपांसा के प्रेमी की सहायता की और वापस अपने कमरे में चली गयी। दस मिनट बाद मरूस्या उसकी मेज़ पर सिर लटकाये आयी और बोली

: ''माफ़ कीजियेगा, वेरा इग्नात्येव्ना, माफ़ कीजियेगा।''

''मरूस्या तुम्हें इतना लापरवाह नहीं होना चाहिये। तुम्हें समझना चाहिये कि ऐसी स्थिति में तुम सारा दिन क़िताब ही ढूँढती रह जाती।''

''वेरा इग्नात्येव्ना, नाराज़ मत होइये, अब आगे ऐसा कभी नहीं होगा।''

वेरा इग्नात्येव्ना उन आँखों की तरफ़ देखकर मुस्करायी, जो मुस्कराने की प्रार्थना कर रही थीं। मरूस्या पुस्तकालय के किसी भी बड़े काम को ख़ुशी-ख़ुशी करने के लिये तत्पर, प्रसन्न होकर चली गयी।

आधे घण्टे बाद वार्या बुंचूक ने दरवाज़े से झाँका और ग़ायब हो गयी। चन्द मिनट बाद फिर झाँका।

''क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ?'' उसने पूछा।

इसका मतलब था उसने कोई ग़लती की है। कोई और मौका होता, तो वह धमधमाती हुई अन्दर चली आती।

वेरा इग्नात्येव्ना समझ गयी कि वार्या बुंचूक को क्या चाहिये।

''वार्या, तुम्हें पुस्तक-सूची पढ़नी चाहिये,'' उसने सख़्ती से कहा, ''और उसे इस्तेमाल करने के योग्य होना चाहिये। यह कहना कितनी मूर्खता की बात है : 'यहाँ कोई नहीं है'।''

वार्या बुंचूक ने अधखुले दरवाज़े पर खड़ी होकर उदास भाव से सिर हिलाया।

''मैं तुम्हें दस दिन का वक़्त देती हूँ, बीसवीं तारीख तक। तब मैं तुम्हारा इम्तहान लूँगी कि तुम्हें पुस्तक-सूची के बारे में क्या मालूम है।''

''वेरा इग्नात्येव्ना, मैं उसके भारी-भरकम चेहरे और चश्मे को देखकर घबरा गयी थी। और उसका बोलने का तरीक़ा, वह बोलता जाता, बोलता जाता...''

''क्या तुम इसे स्पष्टीकरण कहती हो? क्या तुम सिर्फ़ दुबले-पतले कमज़ोर लोगों से ही बात-व्यवहार कर सकती हो?''

वार्या बुंचूक ने उत्साह से वायदा किया : ''वेरा इग्नात्येव्ना आप बीसवीं तारीख को देखियेगा!'' उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया और प्रसन्नतापूर्वक अपनी एड़ियों को खटखटाती चली गयी।

अच्छी लड़कियाँ हैं! वेरा इग्नात्येव्ना को उन्हें आज से ज़्यादा सख़्त झिड़की कभी नहीं देनी पड़ी, वह अपनी आवाज़ को कभी तेज़ नहीं करती थी और उनके अपराधों को ज़्यादा देर तक याद नहीं रखती थी। पर इसके बावजूद उसकी नाख़ुशी और अस्वीकृति को महसूस करने का उनका अपना ही एक अत्यन्त संवेदनशील तरीक़ा था। तब वे तुरन्त दुखी हो जातीं और अपने अपराध को किताबों के बीच ढोतीं तथा उदास होकर दुनिया को देखतीं। उन्हें वेरा इग्नात्येव्ना से कुछ कड़े शब्द सुनने की सख़्त ज़रूरत होती, चाहे उन शब्दों का अपना, शायद, कोई व्यावहारिक महत्व नहीं होता था। उनके बिना भी मरूस्या पुस्तकों की व्यवस्था में हुई लापरवाही के लिये अपने को कभी माफ़ नहीं कर सकती थी, और अब वार्या बुंचूक ने पुस्तक-सूचियों को उसी शाम पढ़ने के

लिये अलग रख भी लिया था। लेकिन यह ज़रूरी होता था कि कोई उन पर ध्यान दे और उनके काम के प्रति सम्मान प्रकट करे।

यहाँ, पुस्तकालय में, अजनबी लोगों के बीच यह सब इतना आसान, इतना सरल क्यों था, पर घर में, अपने ही लोगों के बीच, यह इतना कठिन क्यों था?

वेरा इग्नात्येव्ना इस समस्या पर विचार करने के लिये रुक गयी। उसने काफ़ी प्रयत्न करके अपने पारिवारिक तथा कामकाजी जीवन का विश्लेषण व तुलना करने की कोशिश की। पुस्तकालय में कर्तव्य था, श्रम का सुख था और अपने काम के प्रति प्यार था। परिवार में भी श्रम की खुशी थी, प्यार था और कर्तव्य भी था। कर्तव्य! यदि इस प्रक्रिया की समाप्ति "एक शत्रु के लालन-पालन" में होती थी, तो ज़ाहिर था कि कर्तव्य के मामले में सब कुछ ठीक नहीं था। प्रश्न है कि परिवार में कर्तव्य इतना कठिन क्यों था, जबकि यहाँ काम पर कर्तव्य की समस्या सरल थी, इतनी सरल कि यह पहचानना लगभग असम्भव था कि कर्तव्य कहाँ समाप्त होता था और काम का सुख, श्रम का उल्लास कहाँ शुरू होता था। यहाँ कर्तव्य और सुख ऐसे मृदु सामंजस्य में घुल-मिल गये थे।

सुख! कैसा अजीब, पुराने ढंग का शब्द है। पुश्किन की रचनाओं में यह शब्द कैसे सरल आकर्षक सौन्दर्य से गुंजित होता है और इसके पास ही आपको "मधुरता" तथा "यौवन" का मिलना अनिवार्य है। यह शब्द है सुखी कवियों के लिये, प्रेमियों के लिये, पारिवारिक नीड़ के लिये। क्रान्ति से पहले इस शब्द को कामकाज पर, श्रम पर, कार्यालय के कार्य पर लागू करने की कौन सोच सकता था? लेकिन अब वेरा इग्नात्येव्ना ने किसी भी तरह की लज्जा या हिचकिचाहट के बिना इसे ठीक इसी क्षेत्र में लागू किया था और उधर उसके पारिवारिक जीवन में इसके लिये इतनी कम गुंजाइश थी।

एक पुस्तक सूची के पृष्ठों की तरह वेरा इग्नात्येव्ना ने अपने जीवन के पन्नों को पलट-पलटकर देखा और वह पारिवारिक सुख की एक भी सुस्पष्ट घटना की याद नहीं कर पायी। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं था कि परिवार में प्यार पहले भी था और अब भी है। इस प्यार के कारण आप यह तक भूल सकते हैं कि आपको एक कर्तव्य पूरा करना है और कि दुनिया में सुख जैसी कोई चीज़ भी है।

वेरा इग्नात्येव्ना अपनी मेज़ से उठी और कई बार इधर-उधर टहली। यह कैसी वाहियात बात है : प्यार-सुख विहीन जीवन का कारण! ऐसा नहीं हो सकता है!

वेरा इग्नात्येव्ना बन्द द्वार के पास रुक गयी, उसने अपना हाथ माथे पर रखा। कैसा था यह? कैसा? उसने अपने बच्चों को जितना प्यार किया, क्या उससे अधिक कोई अपनों को प्यार कर सकता था? लेकिन उसने अपने इस विराट प्यार को भी कभी अभिव्यक्त नहीं किया। वह पाव्लूशा को दुलराने या तमारा को चूमने में हिचकिचाती थी। वह प्यार को ख़ामोशी और उदासी में लिपटी सतत और उल्लासहीन शहादत समझने के सिवा और कुछ सोच ही नहीं पाती थी। और ऐसे प्यार में, ऐसा

लगता था कि सुख है ही नहीं। शायद सिर्फ़ उसके लिये? नहीं, नितान्त स्पष्ट है कि बच्चों के लिये भी नहीं। हाँ, सच है हर चीज़ अपने-अपने स्थान पर उपस्थित हो गयी थी : चिड़चिड़ा स्वभाव, लोभ, अहंकार और शून्य हृदय। ''एक शत्रु का लालन-पालन!''

क्या यह प्यार का फल था? उसके महान मातृक-प्यार का?

हाँ, महान मातृक-प्यार का।

अन्धे मातृक-प्यार का!

सहसा वेरा इग्नात्येव्ना को प्रकाश दिख गया। वह समझ गयी कि उसके व्यक्तिगत जीवन में इतना कम सुख क्यों है, एक नागरिक और एक माँ के रूप में उसका कर्तव्य ऐसे ख़तरे में क्यों है। यह ज़ाहिर हो गया कि मरूस्या और वार्या बुंचूक के प्रति उसका प्यार अपनी बेटी के प्रति उसके प्यार से अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और फलप्रद था। यहाँ, पुस्तकालय में वह यह देख सकती थी कि उसके प्यार के जरिये एक व्यक्ति का कैसे निर्माण हो रहा है, एक शब्द से, या निगाह से, या संकेत से, या आवाज़ के स्नेहपूरित अथवा सख़्त स्वर से वह उस व्यक्ति को इतनी आसानी और इतनी किफायतसारी से मदद दे सकती थी, लेकिन घर पर वह एक अन्धी जैविक सहजवृत्ति के सम्मुख निरर्थक, अहितकर और तुच्छ कामों में उलझने के सिवा और कुछ नहीं कर पाती थी।

अब वेरा इग्नात्येव्ना एक क्षण भी नहीं रुक पायी। उस समय दोपहर के सिर्फ़ दो बजे थे। वह पाठकों को पुस्तक देनेवाले विभाग में गयी और मरूस्या से बोली :

''मुझे घर जाना है। क्या तुम मेरे बिना काम चला लोगी?''

लड़कियों ने एक स्वर से सोत्साह कुछ बातें कह दीं।

वह इस तरह से जल्दी-जल्दी घर की तरफ़ भागी मानो वहाँ कोई दुर्घटना हो गयी हो। उसे अपनी इस घबराहट का पता सहसा तभी लगा जब वह ट्राम से नीचे उतरी और यह याद आया कि उसे वैसे ही शान्त और दृढ़ विश्वासी बना रहना चाहिये जैसे कि पुस्तकालय में।

वेरा इग्नात्येव्ना अपनी बेटी को देखकर मुस्कायी और बोली :

''क्या पाव्लूशा अभी वापस नहीं लौटा?''

''नहीं, अभी नहीं लौटा,'' तमारा ने उत्तर दिया और अपनी माँ पर हमला-सा करते हुए कहा : ''आप क्यों आयीं? मैंने कहा था कि आप आयें ही नहीं!''

वेरा इग्नात्येव्ना ने अपना बैग हाल में खिड़की की चौखट पर रखा और बैठकख़ाने में चली गयी। तमारा ने अपना पैर पटका और चिल्लाकर कहा : ''अम्मा, आपकी क्या मंशा है? मैंने आपसे कहा था कि आप मत आइयेगा! जाइये, काम पर वापस जाइये!''

वेरा इग्नात्येव्ना ने चारों तरफ़ देखा। उसने एक अतिमानवीय प्रयास से तमारा के स्थान पर वार्या बुंचूक के चेहरे को देखने के लिये अपने आप को प्रेरित किया। एक

क्षण के लिये ऐसा लगा कि वह सफल हो गयी है। शान्तिपूर्वक एक कुर्सी पकड़ते हुए उसने सुरुचिपूर्ण-औपचारिक स्वर में कहा :

''बैठो।''

''माँ!''

''बैठ जाओ!''

वेरा इग्नात्येव्ना आराम-कुर्सी पर बैठ गयी और उसने दूसरी कुर्सी की तरफ़ इशारा किया।

तमारा एतराज़ करती हुई कुछ बुदबुदायी और असन्तोष से कन्धे उचकाकर कुर्सी के किनारे पर ऐसे बैठ गयी, मानो वह इस पर ज़ोर दे रही हो कि वह समय बैठने के लिये बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है। लेकिन उसकी नज़र में कौतूहल था और उस कौतूहल में किंचित आश्चर्य भी मिला था। वेरा इग्नात्येव्ना ने एक बार फिर यह जादुई कल्पना की कि उस कुर्सी पर उसकी एक युवा सहायिका बैठी है। उसे सन्देह हो रहा था कि वह अपने स्वर पर नियंत्रण रख सकेगी या नहीं।

''तमारा, समझदारी से यह स्पष्ट बतलाओ कि मुझे घर से क्यों चला जाना चाहिये।''

''क्यों?! मैं वसन्तकालीन सफ़ाई का काम कर रही हूँ।''

''इसका फ़ैसला किसने किया?''

इस प्रश्न से तमारा हैरत में पड़ गयी। उसने जवाब देने की कोशिश की, लेकिन एक ही शब्द बोल पायी :

''मैं...''

वेरा इग्नात्येव्ना उसकी आँखों में देखती हुई ठीक वैसे ही मुस्करायी जैसे वह पुस्तकालय में मुस्काती थी, जैसे एक वरिष्ठ दोस्त गर्ममिज़ाज, अनुभवशून्य युवक को आँखों में देखकर मुस्कराता है।

और तमारा ने इस मुस्कराहट का उत्तर दिया, उसका उत्तर था-एक प्रकार का प्रिय, सुखद, खेदसूचक संकोच।

''तो ममी, कैसे?''

''हम इस पर बात कर लेते हैं। मुझे यह लग रहा है कि तुम और मैं एक साथ नया जीवन शुरू कर रहे हैं। तो आओ, हम इसे एक सार्थक जीवन बनायें। तुम समझीं?''

''मैं समझ रही हूँ,'' तमारा ने फुसफुसाकर कहा।

''अगर तुम समझती हो, तो तुम घर में मुझपर ऐसे हुक्म कैसे चला सकती हो और घर से बाहर कैसे धकेल सकती हो? यह क्या है : एक सनक है, फूहड़ मज़ाक है या महज़ जिद है? मैं नहीं मानती कि तुम सचमुच समझती हो।''

तमारा चिन्तित हो कुर्सी से उठी, दो क़दम खिड़की की तरफ़ बढ़ी और मुड़कर अपनी माँ की तरफ़ देखने लगी।

''क्या आप सचमुच यह सोच रही हैं कि मैं वसन्तकालीन सफाई ही करना चाहती

थी?''

''तो क्या चाहती थी?''

''पता नहीं... कोई चीज़... कोई अच्छी चीज़...''

''लेकिन तुम्हारा मतलब मुझे नुकसान पहुँचाना नहीं था?''

इसके बाद तमारा का बाँध टूट गया। वह अपनी माँ के पास गयी, उसके गले से लिपट गयी और उसने सुखद आश्चर्य से अपना चेहरा दूसरी तरफ़ घुमा लिया...

नया लिबास समय पर तैयार हो गया। वेरा इग्नात्येव्ना ने उसे सबसे पहले अपने घर पर पहना। तमारा ने उसे पहनने में मदद दी, वह बार-बार पीछे हटती और रह-रहकर अगल-बग़ल से उसे निहारती और अन्त में क्रोधित होकर कुर्सी पर बैठ गयी।

ममी, तुम इसके साथ ये जूते किसी हालत में नहीं पहन सकती!''

सहसा वह उछली और अपना पूरा ज़ोर लगाकर बोली : ''ओहो, मैं भी कैसी बुद्धू हूँ!''

वह तीर की तरह अपने सूटकेस के पास गयी, और उसके पास खड़ी होकर ऐसी प्रेरणा से गाती रही कि गीत की लय में उसके पैर थिरकने लगे : ''कैसी बुद्धू! कैसी बुद्धू!''

अन्त में उसने अपने बटुवे में से पाँच रूबल के नोटों का एक बण्डल निकाला और उसे लेकर दौड़ती हुई वापस शयन-कक्ष में आयी।

''यह मेरा वज़ीफ़ा है! इसे अपने जूतों के लिये ले लीजिये!''

जब पाव्लूशा ने अपनी माँ को देखा, तो उसकी सुनहरी-नीली आँखें कपार पर चढ़ आयीं।

''अरे ममी! ये हुए कपड़े!'' उसने दम साधकर कहा।

''पाव्लूशा, तुम्हें यह पसन्द आये?''

''बेशक ममी, बेशक!''

''यह मुझे अच्छे काम के लिये पुरस्कार में मिले हैं।''

''आह, आप...''

पाव्लूशा उस सारी शाम लगभग लगातार ही अपनी अम्मा को भीत-भाव से निहारता रहा और जब उससे उसकी माँ की नज़र मिलती, तो उसका चेहरा सुखद मुस्कान से खिल उठता।

''ममी,'' उसने अन्त में थूक निगलते हुए रोमांचित स्वर में कहा, ''आप जानती हैं... आप इतनी सुन्दर हैं! तो ना... आप हमेशा ऐसी ही बनी रहिये! इतनी... सुन्दर!''

ये शब्द उसके हृदय के अन्तरतम से निकले थे और महज़ शब्द नहीं, विशुद्ध भाव थे।

वेरा इग्नात्येव्ना ने अपने बेटे की तरफ़ गम्भीर संयमित मुस्कान से देखा।

''यह अच्छी बात है। शायद अब तुम सारी शाम स्केटिंग करते बाहर ही तो नहीं घूमते रहोगे?''

''सच, अब नहीं घूमूँगा।''

नाटक का अन्तिम अंक देर शाम को हुआ। इवान पेत्रोविच जब काम से घर लौटा, तो उसने चेरी के रंग का रेशमी लिबास पहने एक सुन्दर औरत को मेज़ पर बैठे देखा। कमरे में प्रविष्ट होने से पहले उसने अपनी टाई को सीधा करने के लिये हाथ भी उठाया और उसी क्षण उसने अपनी पत्नी को पहचान लिया। वह अनुग्रहपूर्वक मुस्कराया और हाथों को मलता हुआ उसके क़रीब आया।

''ओह, बिलकुल ही दूसरी मूर्ति!''

वेरा इग्नात्येव्ना ने एक ऐसी नितान्त सहज मुद्रा से बालों की एक लट को हटाया, जिसका पहले उसे कोई अहसास न था। वह आहिस्ता से बोली : ''मुझे ख़ुशी है कि तुम्हें यह पसन्द आया।''

और उस शाम इवान पेत्रोविच ने अपनी उँगलियों के जोड़ों को कुतरा नहीं, वह विचारमग्न सा दीवारों को ताकता नहीं रहा और उसने गाने की मज़ाकिया धुन पर सीटी भी नहीं बजायी। उसने हास-परिहास किया, मज़ाक की और आँखें भी बनायीं। उसका उत्साह केवल तभी किंचित कम हुआ, जब वेरा इग्नात्येव्ना ने शान्ति से कहा :

''इवान, यों ही एक बात है, मैं तुमसे यह पूछना बार-बार भूल जाती हूँ कि इन दिनों तुम कितना वेतन पा रहे हो?''

हमारी माताएँ समाजवादी देश की नागरिक हैं : उनकी ज़िन्दगियाँ उतनी ही उल्लासमय और पूर्ण होनी चाहिये, जितनी कि हमारे पिताओं और बच्चों की। हम नहीं चाहते कि लोग अपनी माताओं की ख़ामोश कुर्बानियों पर पलें, उनकी सतत जारी शहादत पर पोषित हों... अपनी माताओं की कुर्बानियों पर पले हुए बच्चे केवल उसी समाज में रह सकते हैं जहाँ शोषण होता है।

और हमें चाहिये कि हम उन माताओं के उस आत्मबलिदान का विरोध करें, जो हमारे देश में यत्र-तत्र होता है। अन्य निम्नकोटि के स्वेच्छाचारियों के अभाव में ये माताएँ उन्हें ख़ुद... अपने ही बच्चों से बनाती हैं। यह कालक्रमिक दोष हमारे परिवारों में, ख़ास तौर से बुद्धिजीवियों के परिवारों में, कमोबेश, अभी भी मौजूद हैं। यहाँ **सब कुछ बच्चों के लिये** नारे की अननुज्ञेय औपचारिक व्याख्या की जाती है और उसका अर्थ **सब कुछ सम्भव** लगा लिया जाता है, यानी माँ के जीवन का मूल्य भी और माँ की जड़ता भी। यह सब बच्चों के लिये! हमारी माताओं का जीवन और कार्य अन्धे प्यार से नहीं बल्कि सोवियत नागरिक की महान अग्रगामी आन्तरिक प्रेरणा से निर्देशित होना चाहिये। और ऐसी माताएँ हमें उत्तम व सुखी लोग प्रदान करेंगी और ख़ुद भी अन्त तक सुखी रहेगी।

नवें अध्याय से

दो वर्ष का ज़ोरा दूध की प्याली को तिरस्कार से देखता है, उसे देखकर अपने नन्हे हाथ को झटकता है और उससे मुँह फेर लेता है। उसका पेट भरा है और उसे दूध पीने की कोई इच्छा नहीं है। यह भावी इंसान पोषण के मामले में किसी तरह क अभावों का अनुभव नहीं करता है। लेकिन बहुत सम्भव है कि ऐसे अन्य क्षेत्र हों, जहाँ उसकी ज़रूरतें पूरी तरह से सन्तुष्ट नहीं की जातीं। शायद उसे अन्य लोगों, या कम से कम अन्य प्राणियों के लिये सहानुभूति का अनुभव करने की आवश्यकता हो। और अगर जोरा को अभी ऐसी आवश्यकता महसूस नहीं होती है, तो शायद उस आवश्यकता को पैदा करना ज़रूरी हो!

माँ ज़ोरा को प्यार से देखती है, लेकिन किसी कारणवश इन प्रश्नों में उसके लिये कोई दिलचस्पी नहीं है। ये प्रश्न अपने बच्चों का पालन करनेवाली मुर्ग़ी या जीव-जगत की किसी अन्य माँ के लिये भी दिलचस्पी की चीजें नहीं हैं।

जहाँ जीवन सहज-वृत्ति से निर्देशित होता है, वहाँ माँ का केवल एक ध्येय होता है-अपने बच्चे को खिलाना। जीव-जगत की माताएँ इस काम को अद्भुत सरलता से करती हैं, वे जितना भी भोजन पाने या घोंसले में लाने में कामयाब होती हैं, उसे बच्चों की खुली चोंचों और मुँहों में ठूँसती जाती हैं तथा तब तक ऐसा ही करती जाती हैं, जब तक कि उनके बच्चे पूरी तरह से सन्तुष्ट होकर अपना मुँह बन्द ही नहीं कर लेते। इसके बाद जन्तु-जगत की वह माँ आराम कर सकती है और अपनी व्यष्टिगत ज़रूरतों को पूरा कर सकती है।

प्रकृति ने जन्तु-जगत की माताओं के लिये अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक बहुत ही उपयुक्त परिस्थितियाँ पैदा की हैं। गौरैयाओं तथा अबाबीलों को अपने बच्चों को खिलाने के लिये एक ही दिन में कई दर्जन, या शायद कई सौ फेरे लगाने पड़ते हैं। उस हर कीड़े के लिये एक अलग फेरा लगाना पड़ता है, जिसके शरीर में एक कैलोरी के सौवें अंश भर की ऊर्जा होती है, पर अक्सर यह भी नाकामयब हो जाता है। दूसरी बात यह है कि जन्तु-जगत की माताओं के पास सुस्पष्ट भाषण की शक्ति नहीं होती है। यह केवल मनुष्य की उपलब्धि है।

ऐसा प्रतीत होगा कि इनकी तुलना में मानवीय माताएँ कहीं अधिक अच्छी परिस्थितियों में हैं। लेकिन यह अनुकूल परिस्थितियाँ मनुष्यों के बच्चों के लालन-पालन के लिये एक ख़तरा बनी रहती है।

मनुष्य प्रकृति के नियमों के साथ ही मानव समाज के नियमों के अधीन भी होता

है। सामाजिक जीवन के नियम प्रकृति के नियमों के मुक़ाबले अधिक सही, अधिक सुविधापूर्वक और कहीं अधिक विवेकसंगतता से काम करते हैं। लेकिन प्रकृति की तुलना में वे मनुष्य से कहीं अधिक कठोर अनुशासन की माँग करते हैं और इस अनुशासन को तोड़ने पर बहुत ही कड़ा दण्ड देते हैं।

बहुधा ऐसा होता है कि मानव-माता में केवल प्रकृति के नियमों को ही मानने की ही प्रवृत्ति होती है, लेकिन साथ ही वह मानव सभ्यता के फ़ायदों का परित्याग भी नहीं करती। इस व्यवहार को क्या नाम दिया जा सकता है? ज़ाहिर है कि यह छल-कपट के सिवा और कुछ नहीं है। मनुष्य की श्रेष्ठ प्रकृति के ख़िलाफ़ माँ के इस अपराध की वजह से बच्चे भयावह प्रतिशोध के शिकार बन जाते हैं। वे मानव समाज के निकृष्ट सदस्यों के रूप में बड़े होते हैं।

हमारी माँओं को अपने बच्चों का पेट भरने में इतनी अधिक शक्ति ख़र्च करने की ज़रूरत नहीं होती। मनुष्य की सूझबूझ से बाज़ारों, दुकानों और सुसंगठित खाद्य आपूर्तियों की व्यवस्था हो गयी है। इसलिये बच्चों के मुँहों में भोजन ठूँसने का जोश घातक और अनावश्यक हो गया है। और इस उ द्देश्य के लिये मानवीय वाक्-शक्ति जैसी जटिल विधि का उपयोग और भी अधिक ख़तरनाक है।

ज़ोरा दूध की प्याली को तिरस्कार से देखता है। ज़ोरा का पेट भरा हुआ है। लेकिन माँ ज़ोरा से कहती है :

''पूसी दूध पीना चाहती है, पूसी दूध की तरफ़ देख रही है। नहीं! हम पूसी को दूध नहीं देंगे। इसे ज़ोरो पियेगा! भाग जा पूसी, भाग!''

माँ के ये शब्द सच जान पड़ते हैं। पूसी दूध की तरफ़ देख रही है और उसे नाश्ते में थोड़ा दूध पीने में कोई एतराज़ नहीं होगा। जोरा पूसी की तरफ़ सन्देह से देखता है। और फिर प्रकृति-माता की जीत हो जाती है : जोरा अपना दूध पूसी को नहीं दे सकता है।

ऐसी छोटी-छोटी बातें अहंवादियों को जन्म देती हैं।

लालन-पालन की सारी विफलताओं को शायद एक सूत्र में पेश किया जा सकता है : ''लोभ का पोषण''। उपभोग करने की सदा सतर्क व अथक वासना विविध रूपों में प्रकट हो सकती है, और बहुधा बाहर से वे सब अरुचिकर नहीं जान पड़ते। यह वासना जीवन के प्रारम्भिक महीनों से ही विकसित होने लगती है। जहाँ इस वासना के सिवा और कुछ न हो, वहाँ सामाजिक जीवन व मानव-संस्कृति असम्भव होगी। लेकिन इस वासना के साथ ही साथ हमारा जीवन सम्बन्धी ज्ञान, और, सर्वोपरि रूप से, लोभ की सीमाओं से सम्बन्धित हमारा ज्ञान भी, बढ़ता एवं विकसित होता जाता है।

बुर्जुआ समाज में लोभ का नियमन प्रतिस्पर्द्धा से होता है। एक व्यक्ति की इच्छाओं का परिसर दूसरे की इच्छाओं के परिसर से सीमित हो जाता है। यह एक सीमित

जगह में ठूँसे हुए लाखों लोलकों के दोलन के समान है। वे विभिन्न दिशाओं और विभिन्न धरातलों पर दोलित होते हैं, वे एक साथ लटके होते हैं, एक-दूसरे से टकराते हैं, खुरचते और घिसते-घिसाते हैं। इस दुनिया में अपने आप में धातुपिण्ड की शक्ति को संचित करना, अधिकाधिक सम्भव प्रचण्डता से झूलना और अपने पड़ोसियों को गिराना व नष्ट कर देना लाभदायक होता है। लेकिन इस दुनिया में पड़ोसी की शक्ति और प्रतिरोध को जानना भी महत्वपूर्ण होता है, ताकि खुद को चूर-चूर करनेवाली उग्र उतावली पेंग न ले ली जाये। बुर्जुआ-जगत की नैतिकता लोभ के प्रति अनुकूलित लोभ की नैतिकता है।

स्वयं मानव की इच्छा में लोभ नहीं होता है। यदि कोई आदमी धुएँ से भरे नगर से चीड़वन में आता है और ताज़ी हवा में जी भर के साँस लेने का आनन्द उठाता, तो उस पर कोई भी व्यक्ति यह आरोप नहीं लगायेगा कि वह अत्यधिक लोभ के साथ ऑक्सीजन का उपयोग कर रहा है। लोभ की शुरुआत वहाँ से होती है, जहाँ एक आदमी की ज़रूरत दूसरे की ज़रूरत से टकराती है, जहाँ उल्लास या सन्तोष किसी पड़ोसी से बलपूर्वक, चालाकी या चोरी से ही हासिल किया जाता है।

हमारे कार्यक्रम में न तो इच्छाओं और कामनाओं का आत्मनिषेध शामिल है, न अभाव-पीड़ित अलगाव और न ही अन्य लोगों के लोभ के सम्मुख कंगालों की भाँति घुटने टेकना।

हम इतिहास में युग प्रवर्तनकारी काल की महत्वपूर्ण अवधि में रह रहे हैं, हमारे युग ने मानवीय सम्बन्धों में एक नयी व्यवस्था का, एक नयी नैतिकता का और एक ऐसे नये क़ानून का समारम्भ होते देखा है, जिसका आधार मानवीय एकजुटता का विजयी विचार है। हमारी कामनाओं के लोलकों को एक प्रबल दोलन के लिये स्थान दे दिया गया है। अब हर आदमी के सामने अपनी कामनाओं को पूरा करने का, अपनी ख़ुशी और कल्याण की उपलब्धि का मार्ग प्रशस्त हो गया है। लेकिन अगर वह इस खुले, प्रशस्त मार्ग पर अपनी कोहनियों का दुरुपयोग करने की अपनी पुरानी आदत से चलने लगे, तो वह एक दुखद ग़लती होगी, क्योंकि आज एक बच्चा भी भली-भाँति जानता है कि मनुष्य को कोहनियाँ अपने लिये रास्ता बनाने के लिये नहीं, बल्कि पड़ोसी को महसूस करने के लिये दी गयी हैं। हमारे युग में दूसरों को जबरन धकेलकर राह बनाने की हरकत अनैतिक के बजाय मूर्खता ही अधिक है।

एकजुटता के विवेकपूर्ण विचार पर आधारित समाजवादी समाज में नैतिक कर्म नैतिक होने के साथ ही सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण भी होता है। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण तथ्य है, जिसे प्रत्येक माता-पिता और शिक्षक को जानना चाहिये।

एक रेगिस्तान में भूखे लोगों के एक समूह की कल्पना कीजिये। कल्पना कीजिये कि ये लोग न तो संगठित हैं, न उनमें एकजुटता की भावना है। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपने ही बलबूते पर, अपने जोखिम पर खाने की तलाश कर रहा हैं तब उन्हें थोड़ा खाना मिल जाता है और वे सब एक उलझन भरी और वहशी जद्दोजहद

करते हुए उस पर झपट पड़ते हैं इस छीना-झपटी में वे एक दूसरे को भी नष्ट करते हैं और भोजन को भी। यदि इस समूह में एक ऐसा आदमी हो जो इस जद्दोजहद में शामिल नहीं होता है, जो भूख से मरना कुबूल करता है, पर दूसरे आदमी की गर्दन दबोचने से इंकार कर देता है, वह निश्चय ही अन्य सब का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करेगा। वे सब उसे विस्मय-विस्फारित नेत्रों से मरता हुआ देखेंगे। कुछ दर्शक कहेंगे वह एक सदाचारी वीर और भक्त था, कुछ अन्य कहेंगे कि वह एक मूर्ख था, और इन दो मूल्याँकनों के बीच में कोई अन्तर्विरोध नहीं होगा।

अब एक अन्य स्थिति की कल्पना कीजिये : लोगों का एक संगठित दस्ता ठीक ऐसी ही स्थिति में पड़ जाता है। वे अपने-अपने हितों की पारस्परिकता की सचेत धारणा से, अच्छे अनुशासन से और अपने नेताओं पर विश्वास से एकताबद्ध हैं। ऐसा दस्ता खोजी हुई खाद्य-आपूर्तियों की ओर अनुशासनबद्ध तरीके से बढ़ेगा और केवल एक नायक के आदेश के गम्भीर शब्द पर उस स्थल से कुछ दूरी पर रुक जायेगा। और अगर इस दस्ते में कोई ऐसा आदमी हुआ, जिसकी एकजुटता की भावना जवाब दे जाये, जो चीखता-चिल्लाता और गुर्राता हुआ उन खाद्य-आपूर्तियों को सिर्फ़ अपने वास्ते हासिल करने के लिये झपटे, तो अन्य लोग चुपचाप उसका कॉलर पकड़कर उसे रोक देंगे और कहेंगे :

''तुम एक दुर्जन और मूर्ख हो।''

लेकिन इस दस्ते में नैतिकता का सर्वोत्तम उदाहरण कौन होगा?

शेष सारे लोग।

पुरानी दुनिया में नैतिक श्रेष्ठता कुछ विरले ही लोगों का गुण होता था और ऐसे लोगों की संख्या अत्यन्त कम होती थी तथा वे यदा-कदा ही मिलते थे। फलतः, नैतिक पूर्णता के प्रति दम्भपूर्ण रवैया सामाजिक नैतिकता का स्वीकृत मानक बन गया। वास्तव में तब दो मानक थे। एक दिखावटी मानक था जो नैतिक प्रवचनों ओर व्यावसायिक भक्तों के लिये था और दूसरा दैनिक जीवन तथा 'बुद्धिमान' लोगों के लिये था। पहले मानक के अनुसार अपनी अन्तिम कमीज़ भी ग़रीबों को दे देनी होती थी, अपनी जायदाद लोगों के लिये दे देनी होती थी, कोई एक गाल पर चाँटा मारे तो दूसरा भी उसके आगे पेश कर देना होता था। लेकिन दूसरे मानक के अनुसार इसमें से किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती थी, वस्तुतः कुछ भी पवित्र-काम ज़रूरी नहीं था। यहाँ नैतिकता का मानदण्ड नैतिक श्रेष्ठता नहीं, बल्कि सामान्य दैनिक पापकर्म थे। लोग पहले से ही इसी तरीक़े से सोचते थे : हर कोई पाप करता है और इस सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं कर सकता है। थोड़ा बहुत पाप करते रहना ही मानक था। सम्भ्रान्तता के लिये यह ज़रूरी था कि साल में एक बार उस अवधि के अपने पापों का लेखा-जोखा कर लिया जाये, दो-एक व्रत रख लिये जायें, कुछ घण्टे पादरी के नकियाये स्वरों में भक्तिगीत सुन लियें, एक मिनट के लिये पादरी के चिक्कट गन्दे दुपट्टे तले झुक लिया जाये-और अपने सारे दुष्कर्मों को ''ख़ारिज'' करवा लिया

जाये। दैनिक नैतिकता मामूली पाप से अधिक दूर नहीं जाती थी, यानी ऐसे पाप से, जो इतना गम्भीर नहीं होता था, जिसे अपराध कहा जा सके और इतना कमज़ोर भी नहीं होता था कि उस पर ऐसे भोंदूपन का आरोप लगाया जा सके, जो, हर कोई जानता है, ''चोरी से भी बुरा'' होता है।

समाजवादी समाज में नैतिकता की माँगें हर किसी पर लागू होती हैं, और हर किसी के लिये ज़रूरी है कि वह उनके अनुरूप आचरण करे। हमारे पास पवित्रता के दिखावटी मानक नहीं हैं, और हमारी नैतिक उपलब्धियाँ जन-समुदाय के व्यवहार में अभिव्यक्त होती हैं।

बेशक, हमारे यहाँ सोवियत संघ के वीर मौजूद हैं, लेकिन जब हमारी सरकार उन्हें वीरता के काम करने भेजती है, तो उनकी कोई विशेष परीक्षा नहीं लेती। वह उन्हें नागरिकों के सामान्य समुदाय में से छाँटती है। कल वह लाखों नागरिकों का ऐसे ही बड़े कारनामे करने के लिये भेज सकती है और उसे इस बात पर कोई सन्देह नहीं होगा कि ये लाखों लोग वैसी ही श्रेष्ठ नैतिकता का प्रदर्शन करेंगे। हमारे वीरों के प्रति लोगों के सम्मान और प्यार में जो तत्व विरले ही कभी मिलता है, वह है नैतिक आश्चर्य। हम उनसे प्यार करते हैं, क्योंकि हम उनके प्रति लगाव का अनुभव करते हैं-उनके वीरतापूर्ण कारनामे में हमें एक ऐसे व्यावहारिक उदाहरण के दर्शन होते हैं, जिसे हमें स्वयं अपने व्यवहार में लागू करना ही चाहिये।

हमारी नैतिकता श्रमजीवी जनों की वास्तविक एकजुटता से उत्पन्न होती है।

महज़ इस कारण से कि वह एकजुटता के विचार से निर्मित है कम्युनिस्ट नैतिकता संयम की नैतिकता नहीं हो सकती है। व्यक्ति से लोभ का उन्मूलन करने तथा अपने साथियों के हितों और जीवन के लिये सम्मान की माँग करने में, कम्युनिस्ट नैतिकता अन्य हर मामले में, ख़ास तौर पर संघर्ष में, एकजुटता की माँग करती है। यदि इसका दार्शनिक सामान्यीकरण किया जाये तो एकजुटता का विचार जीवन के समस्त क्षेत्रों को आवेष्टित करता है। जीवन हर आनेवाले दिन के लिये संघर्ष है, प्रकृति के साथ, अज्ञान के साथ, पिछड़ेपन के साथ, पाशविक पूर्वजप्रवृत्ति के साथ और बर्बरता के अवशेषों के साथ संघर्ष है; जीवन पृथ्वी और आकाश की अक्षय शक्तियों पर नियंत्रण की प्राप्ति का संघर्ष है।

इस संघर्ष में सफलता और मानव एकजुटता की मात्रा प्रत्यक्षः सानुपातिक हैं।

इस नये नैतिक वातावरण में रहते हुए हमें अभी केवल 20 वर्ष हुए हैं और इस छोटी-सी अवधि में ही हम मानव-स्वभाव में कितने ही बड़े परिवर्तनों का अनुभव कर भी चुके हैं।

हम अभी यह नहीं कह सकते हैं कि हमें कम्युनिस्ट नैतिकता की द्वन्द्वात्मकता पर पूर्ण नियंत्रण हासिल हो गया है। अपने शैक्षिक क्रियाकलाप में हम काफ़ी हद तक सहजवृत्ति से निर्देशित होते हैं, हम सही-सही चिन्तन के बजाय अपनी भावनाओं पर अधिक भरोसा करते हैं।

हमारे अन्दर पुराने जीवन के आनके अवशेष, पुरानी आदत से निर्धारित नैतिक धारणाएँ अभी भी विद्यमान हैं। हम अपने व्यावहारिक जीवन में उन अनेक ग़लतियों और उन मिथ्या धारणाओं को अभी भी अनजाने ही दोहराते हैं, जो मनुष्य-जाति के इतिहास में की जा चुकी हैं। हममें से अनेक लोग प्रेम के नाम से ज्ञात वस्तु के महत्व को अचेतन रूप से बढ़ा-चढ़ा देते हैं, अन्य लोग तथाकथित स्वतंत्रता में अपने विश्वास का दिखावा करते हैं, और बहुधा यह भी नहीं देख पाते कि प्रेम के बदले हम भावुकता का, स्वतंत्रता के बदले स्वेच्छाचारिता का पोषण कर रहे हैं।

हितों की एकजुटता हमें कर्तव्य का विचार प्रदान करती है, लेकिन उससे कर्तव्य की वास्तविक पूर्ति नहीं होती। इसीलिये हितों की एकजुटता अभी एक गोचर नैतिक तथ्य नहीं बना है। ऐसा तभी होता है, जब हममें व्यवहार की एकजुटता हो। मनुष्य-जाति के इतिहास में मेहनतकशों के बीच हितों की एकजुटता हमेशा विद्यमान रही है, लेकिन एक एकीकृत सफलतापूर्वक संघर्ष केवल तभी सम्भव होता है, जब हमें एक लम्बा ऐतिहासिक अनुभव हो गया हो और वह अनुभव हमारे नेताओं की ऊर्जा और चिन्तन द्वारा परिष्कृत हो गया हो।

व्यवहार केवल चेतना का ही नहीं, बल्कि ज्ञान, बल, आदत, दक्षता, औचित्य, साहस, तन्दुरुस्ती और, सबसे अधिक महत्वपूर्ण-सामाजिक अनुभव का भी एक बहुत जटिल परिणाम होता है।

बच्चे के बिल्कुल प्रारम्भिक वर्षों से ही सोवियत परिवार को इस अनुभव का सम्पोषण करना चाहिये, उसे चाहिये कि वह बच्चे को एकजुटता-व्यवहार के विविध प्रकारों में, कठिनाइयों को दूर करने में, सामूहिक संवर्धन की अत्यन्त कठिन प्रक्रिया में अभ्यास कराये। यह बात विशेष महत्वपूर्ण है कि एक लड़के या लड़की की एकजुटता की भावना केवल परिवार के ही संकीर्ण प्रकार पर आधारित न हो, उसे परिवार की सीमाओं से परे सोवियत जीवन के व्यापक क्षेत्र में और, सामान्यतः मनुष्य-जाति के जीवन में फैल जाना चाहिये।

'माता-पिता के लिए' इस पुस्तक के पहले खण्ड को समाप्त करते हुए मैं यह उम्मीद करता हूँ कि इससे कुछ भला होगा। मुख्य रूप से मैं यह आशा करता हूँ कि इसमें पाठक को बच्चों की शिक्षा तथा लालन-पालन के बारे में अपने ही सक्रिय चिन्तन के लिये उपयोगी प्रारम्भिक बातें मिलेंगी। मैं इससे अधिक का भरोसा नहीं कर सकता हूँ। हरेक परिवार के अपने ही विशिष्ट लक्षण और जीवन-दशाएँ होती हैं, अनके शैक्षिक समस्याएँ हर परिवार को स्वयं ही हल करनी चाहिये, लेकिन इधर-उधर से बटोरे हुए तैयार नुस्ख़ों के उपयोग से नहीं, बल्कि केवल सोवियत-जीवन और कम्युनिस्ट नैतिकता के सामान्य सिद्धान्तों पर ही पूर्ण भरोसा करके हल करनी चाहिये।

□

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

ISBN 81-87425-69-0
मूल्य : रु. 80.00

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2021

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिंगारी।
घर-घर तक चिंगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुँचाना होगा।

तीन दशक से भी पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी-सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी-सी दुकान और फुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर-घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। अपने प्रदर्शनी वाहनों के माध्यम से भी जनचेतना कई राज्यों के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी, मराठी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला-सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन-संघर्ष-सृजन-प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइए, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिए।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

नयी

1. **पहला अध्यापक**/चिंगीज़ आइत्मातोव 50.00
2. **तरुणाई का तराना**/याङ मो ...
3. **तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ...
4. **माँ**/मक्सिम गोर्की 275.00
5. **वे तीन**/मक्सिम गोर्की 75.00
6. **मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की ...
7. **जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की ...
8. **मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की ...
9. **फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की 55.00
10. **अभागा**/मक्सिम गोर्की 40.00
11. **बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की 25.00
12. **असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई 260.00
13. **तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव (दो खण्डों में) 160.00
14. **गोदान**/प्रेमचन्द ...
15. **निर्मला**/प्रेमचन्द ...
16. **पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र ...
17. **चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र ...
18. **गृहदाह**/शरत्चन्द्र ...
19. **शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र ...
20. **इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का ...
21. **इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव ...
22. **दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव 70.00
23. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
24. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
25. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/ व्सेवोलोद इवानोव 30.00
26. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
27. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
28. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
29. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00

30. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 70.00

31. **Mother**/*Maxim Gorky* 250.00

32. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

नयी

3. **इटली की कहानियाँ** 150.00
4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 200.00
6. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) 150.00
7. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 15.00
8. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** 10.00

अन्तोन चेख़व

9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00
10. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 150.00

11. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
12. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
13. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
14. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
15. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
16. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
17. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00
18. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
19. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
20. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
21. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
22. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
23. **समय के पंख**/ कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
24. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
25. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
26. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
27. **दोन की कहानियाँ**/ मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
28. **अब इन्साफ़ होने वाला है** (भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन) (ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/ स. **शकील सिद्दीक़ी** ...
29. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
30. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/ मदन मोहन 35.00

कविताएँ

नयी 1. **कौन देखता है कौन दिखता**/लाल्टू 150.00

नयी 2. **अनिश्चय के गहरे धुएँ में**/ निर्मला गर्ग 100.00

3. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/ पाब्लो नेरूदा 60.00

4. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/ लैंग्सटन ह्यूज़ 60.00

5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ - बेर्टोल्ट ब्रेष्ट** (मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल) 130.00 (ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित)

6. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) ...

7. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00

8. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/ हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00

9. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00

10. **ओस की बूँदें और लाल ग़ुलाब**/ होसे मारिया सिसों 25.00

11. **इन्तिफ़ादा : फ़िलस्तीनी कविताएँ**/ स. रामकृष्ण पाण्डेय 100.00

12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :** फ़िलस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन) **A Rose Breaking Out of Steel and Blood** (Palestinian Poems) ...

13. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश 125.00

14. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00

15. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00

16. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/ विष्णु खरे 60.00

17. **वाचाल दायरों से दूर**/मलय 125.00

18. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00

19. **देखते न देखते**/मलय 65.00

20. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00

21. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00

22. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...

23. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00

24. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00

25. **कविता का जीवन**/असद ज़ैदी 75.00

26. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00

27. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/ शशिप्रकाश 50.00

28. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00

29. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/ कात्यायनी 120.00

30. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 120.00

31. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी 150.00

32. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00

33. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00

34. **नगर में बर्बर**/कविता कृष्णपल्लवी 100.00 (अँधेरे समय की कुछ कविताएँ और कुछ क़िस्से)

35. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00
36. **यह जो वक़्त है**/कपिलेश भोज 60.00
37. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/ नरेश चन्द्रकर 60.00
38. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00
39. **तो**/शैलेय 75.00
40. **पानी है तो फूटेगो**/ राजेश सकलानी 100.00
41. **सवालों का कारख़ाना**/सरिता तिवारी (नेपाली कविताएँ) 100.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00
3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/ अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/ व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/ निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री–विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच** (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य – विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/बेलिंस्की, हर्ज़ेन, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00
5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**
कात्यायनी, सत्यम 25.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

——::——

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1. **नौजवानों से दो बातें**/ पीटर क्रोपोटकिन 15.00
2. **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/ भगतसिंह 15.00
3. **मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह 15.00
4. **बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह 15.00
5. **जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह 15.00
6. **भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह 15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. **भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़** स. सत्यम 350.00
2. **शहीदेआज़म की जेल नोटबुक** भगतसिंह 100.00
3. **विचारों की सान पर**/भगतसिंह 50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. **बहरों को सुनाने के लिए** एस. इरफ़ान हबीब 160.00 (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)
2. **क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा 25.00
3. **भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र 25.00
4. **यश की धरोहर**/भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर 50.00
5. **संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा 100.00
6. **शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/ स. डॉ. हरदीप सिंह 40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है** ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 80.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 100.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 30.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 20.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 20.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 20.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 25.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00
6. **मार्क्सवाद-लेनिनवाद और राष्ट्रीय प्रश्न** (एक बहस)/शिवानी, अभिनव 150.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 20.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00
3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की ...
4. **मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00
6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 15.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 10.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** ...
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 20.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** ...
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** ...
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 120.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है**
आलोक रंजन/आनन्द सिंह 150.00
19. **तीन कृषि विधेयक और मज़दूर वर्ग का नज़रिया**/अभिनव 40.00

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

एक प्रति : 5 रुपये

(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड
निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स ...
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र** मार्क्स-एंगेल्स 50.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उज़रती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/ कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/ कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00
11. **जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 30.00
12. **समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स ...
13. **पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन 15.00
14. **एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन ...
15. **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन 25.00
16. **समाजवाद और युद्ध**/लेनिन 20.00
17. **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन 30.00
18. **राज्य और क्रान्ति**/लेनिन ...
19. **सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन ...
20. **दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन 15.00
21. **गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन 50.00
22. **मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन 20.00
23. **कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन ...
24. **क्या करें?**/लेनिन ...
25. **"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन ...
26. **पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन 15.00
27. **जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन 70.00
28. **धर्म के बारे में**/लेनिन ...
29. **तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन 10.00
30. **मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ** जी. प्लेख़ानोव 30.00
31. **जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव 35.00
32. **लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन 50.00
33. **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास** 90.00

34. **माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में) ...

35. **कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ ...

36. **सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/ माओ त्से-तुङ ...

37. **दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/ माओ त्से-तुङ 70.00

38. **कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़**/माओ त्से-तुङ 15.00

39. **माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण** 50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

नयी

1. **दर्शन कोई रहस्य नहीं** 50.00 (जब किसानों ने अपने अध्ययन को व्यवहार में उतारा)
2. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** 300.00
3. **ख़ुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00
4. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00
5. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
6. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/ डी. रियाज़ानोव ... (विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)
7. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ डेविड गेस्ट ...
8. **इतिहास ने जब करवट बदली**/ विलियम हिण्टन 25.00
9. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ वी. अदोरात्स्की 50.00
10. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन** अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00 (महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)
11. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/ राहुल सांकृत्यायन 65.00
4. **राहुल निबन्धावली**/ राहुल सांकृत्यायन 50.00
5. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/ गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/ गणेशशंकर विद्यार्थी ...
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता** राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 80.00
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** 35.00
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा** (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/ एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00
7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/ लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक ...
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ...

——::——

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1. **A Contribution to the Critique of Political Economy** ...
2. **The Civil War in France** ...
3. **The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte** 80.00
4. **Critique of the Gotha Programme** 50.00
5. **Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy** 25.00
6. **The Poverty of Philosophy** 80.00
7. **Wages, Price and Profit** 50.00
8. **Class Struggles in France** 50.00

FREDERICK ENGELS

9. **The Peasant War in Germany** 70.00
10. **Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy** 65.00
11. **On Capital** 80.00
12. **The Origin of the Family, Private Property and the State** 100.00
13. **Socialism: Utopian and Scientific** 60.00
14. **On Marx** 30.00
15. **Principles of Communism** 5.00

MARX and ENGELS

16. **Historical Writings** (Set of 2 Vols.) 700.00
17. **Manifesto of the Communist Party** 50.00
18. **Selected Letters** 75.00

V. I. LENIN

19. **Theory of Agrarian Question** 160.00
20. **The Collapse of the Second International** 25.00
21. **Imperialism, the Highest Stage of Capitalism** 80.00
22. **Materialism and Empirio-Criticism** 150.00
23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00
24. **Capitalism and Agriculture** 50.00
25. **A Characterisation of Economic Romanticism** ...
26. **On Marx and Engels** 35.00
27. **"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder** 75.00
28. **Party Work in the Masses** 55.00
29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 75.00

30. **One Step Forward, Two Steps Back** ...
31. **The State and Revolution** 80.00

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat, *Questions and Answers*** 50.00
33. **On the Dictatorship of the Proletariat: *Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** ...

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00
36. **Anarchism or Socialism?** 60.00
37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** ...
38. **On Organisation** 15.00
39. **The Foundations of Leninism** 70.00
40. **The Essential Stalin** ...
    Major Theoretical Writings 1905–52 (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** 30.00

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 80.00
43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00
44. **On Literature and Art** 80.00
45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** ...
46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** ...

OTHER MARXISM

1. **Political Economy, *Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 375.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 150.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/*Howard Selsam & Harry Martel* ...
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* ...
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)/*Howard Selsam* 100.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics**/*Maurice Cornforth* 70.00

George Thomson

7. **From Marx to Mao Tse-tung** 120.00
8. **Capitalism and After** 100.00
9. **The Human Essence** 80.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions**/*Bob Avakian* ...
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00

12. **The Lessons of the Paris Commune**/*Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

13. **Subversive Interventions** (An Anthology**)** *Abhinav Sinha* 500.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) ...
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov 150.00
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* 80.00

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle Red Papers 7** 175.00
2. **Preface of Class Struggles in the USSR**/*Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University**/*Victor Nee* with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** *William Hinton* 50.00
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* 50.00

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969
Joshua S. Horn 125.00
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China / *Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* …
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) …

ON THE CASTE QUESTION

1. **On the Caste Question:**
Towards a Marxist Understanding
Abhinav Sinha 200.00
2. **Caste and Class:**
A Marxist Viewpoint / Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles** / *Deepayan Bose* 30.00
2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism?** / *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?** 20.00
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality** / *Alok Ranjan* 20.00

"The books that help you most are those which make you think the most. The hardest way of learning is that of easy reading; but a great book that comes from a great thinker is a ship of thought, deep freighted with truth and beauty."

– Pablo Neruda

BIGUL REPRINT SERIES

1.	**Still Ablaze is the Torch of October Revolution**	30.00
2.	**Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan	75.00

WOMEN QUESTION

1.	**The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin*	100.00
2.	**Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** / *Mary Lou Greenberg*	50.00

MISCELLANEOUS

1.	**Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin*	…
2.	**An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin*	20.00

The Anvil

A Journal of Marxist Theory

Editor: Shashi Prakash

Editorial Office

69 A-1, Baba ka Purwa
Paper Mill Road, Nishatgunj, Lucknow 226 006, India
Phone: 9560130890, Email: editor.anvil@gmail.com

Website: http://anvilmag.in

FB: facebook.com/anvilmag

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलनः निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद** (चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना इन पुस्तकों की भी मुख्य वितरक है

1. **बच्चों के लिए अर्थशास्त्र (मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ)**/रंगनायकम्मा 120.00
2. **घरेलू काम और बाहरी काम**/रंगनायकम्मा 40.00
3. **For the Solution of the 'Caste' Question, Buddha is not enough, Ambedkar is not enough either, Marx is a must**/Ranganayakamma 100.00
4. **Economics for Children [Lessons based on Marx's 'Capital']**/Ranganayakamma 150.00
5. **Household Work and Outside Work** 60.00

अनुराग ट्रस्ट

1. **बच्चों के लेनिन** 35.00
2. **Stories About Lenin** 35.00
3. **सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर 25.00
4. **औज़ारों की कहानियाँ** 20.00
5. **गुड़ की डली** /कात्यायनी 20.00
6. **फूल कुण्डलाकार क्यों होते हैं**/सनी 20.00
7. **धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव ...
8. **कज़ाकी**/प्रेमचन्द 35.00
9. **नीला प्याला**/अरकादी गैदार 40.00
10. **गड़रिये की कहानियाँ**/ क्यूम तंगरीकुलीयेव 35.00
11. **चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/ अ. मित्यायेव 35.00
12. **अन्धविश्वासी शेकी टेल**/ सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
13. **चलता-फिरता हैट**/ एन. नोसोव, होल्कर पुक्क 20.00
14. **चालाक लोमड़ी** (लोककथा) 20.00
15. **दियांका-टॉमचिक** 20.00
16. **गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
17. **गुफ़ा मानवों की कहानियाँ**/ मैरी मार्स 20.00
18. **हम सूरज को देख सकते हैं**/ मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच 20.00
19. **मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
20. **नन्हे आर्थर का सूरज**/ ह्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा 20.00
21. **आकाश में मौज-मस्ती**/ चिनुआ अचेबे 20.00
22. **ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन 40.00
23. **एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की 20.00
24. **बहादुर**/अमरकान्त 15.00
25. **बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/ शस्या हर्ष ...
26. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/ मक्सिम गोर्की 10.00
27. **नन्हा राजकुमार**/ आतुआन द सैंतेक्जूपेरी 40.00
28. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/ मक्सिम गोर्की 30.00
29. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/ मक्सिम गोर्की 15.00
30. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
32. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
33. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
34. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00

35. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
36. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
37. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
38. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
39. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
40. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
41. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
42. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
43. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
44. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
45. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
46. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
47. **उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर 35.00
48. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
49. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
50. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी 30.00
51. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
52. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
53. **लाखी**/अन्तोन चेख़व 25.00
54. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00
55. **हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक 25.00
56. **घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव 10.00
57. **बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव 20.00
58. **मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन 35.00
59. **पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की 20.00
60. **कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय 30.00
61. **मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव 30.00
62. **सदानन्द की छोटी दुनिया**/ सत्यजीत राय 15.00
63. **छत पर फँस गया बिल्ला**/ विताउते जिलिन्सकाइते 35.00
64. **गोलू के कारनामे**/रामबाबू 25.00
65. **दो साहसिक कहानियाँ**/ होल्गार पुक्क 15.00
66. **आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गार पुक्क 20.00
67. **कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गार पुक्क 20.00
68. **रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गार पुक्क 20.00
69. **अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गार पुक्क ...
70. **नये ज़माने की परीकथाएँ**/ होल्गार पुक्क 25.00
71. **किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/ मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन 15.00
72. **पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन) / कमला पाण्डेय 30.00
73. **यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण) / कमला पाण्डेय 100.00
74. **हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ) / कमला पाण्डेय 60.00
75. **कालमन्थन** (उपन्यास) / कमला पाण्डेय 60.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फ़ोन: 9936650658, 8853093555

वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com

वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

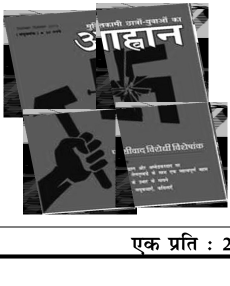

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय

बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094

ईमेल : ahwan@ahwanmag.com, ahwan.editor@gmail.com

वेबसाइट : ahwanmag.com

फ़ेसबुक : facebook.com/muktikamiahwan

एक प्रति : 20 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास और **ऐरण प्रकाशन** की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्त्रोतों - सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और देशी-विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

हमसे पुस्तकें मँगाने के लिए इन बातों का ध्यान रखें

- प्रत्येक पत्र तथा आदेश-पत्र पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) और फ़ोन नम्बर साफ़-साफ़ लिखें।
- मनीऑर्डर के पीछे सन्देश वाले स्थान पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) साफ़-साफ़ ज़रूर लिखें।
- चेक/ड्राफ़्ट 'जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति' (JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI) के नाम से लखनऊ में देय भेजें। बैंक खाते की जानकारी :

  खाता सं. 0762002109003796

  पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज, लखनऊ

  IFSC: PUNB0076200
- पुस्तकों पर डाक-व्यय तथा रेल या ट्रांसपोर्ट का भाड़ा अलग से देय होगा।
- पुस्तक विक्रेताओं तथा वितरकों द्वारा पुस्तकें मँगाने की शर्तों के लिए हमसे पत्र, ईमेल अथवा फ़ोन से सम्पर्क करें।

जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति द्वारा संचालित